DISCOVERY®

...Discover your mettle

सामान्य अध्ययन

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

मुख्य परीक्षा

Head Office (B-14) Basement Commercial Complex Dr. Mukherjee Nager, Delhi-110009
E-mail:discoveryiasacademy@gmail.com
Enquiry: 011-32906050, 9313058532, 9999044179

Lucknow Branch: Arif chamber iv, Ist Floor Above Maha Laxmi Sweets, Purania chauraha Aliganj
PH: 08960240900

Visit us at: www.discoveryiasacademy.com

विषय सूची

- आयनोस्फिरिक रिसर्च सेटेलाइट: प्रथम
- अनुसैट
- विकीलिक्स
- 'क्वांटम मेमोरी'
- सिम लाइट मिशन (SIM Light Mission)
- रोबोनॉट-2
- ब्राउजर युद्ध
- बूट-अप समय
- पेज लोडिंग
- जावा स्क्रिप्ट रेंडरिंग
- रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन को अधिक जवाबदेहपूर्ण बनाना
- जूस मिशन (JUICE MISSION)
- ई-ट्यूटर (E-Tutor)
- पैन इंडिया सुरक्षित नेटवर्क (Pan-India Secure Network)
- 'डुकु' कंप्यूटर वायरस (Duqu Computer Virus)
- सुदूर संवेदन डाटा नीति 2011 (Remote Sensing Data Policy)
- अरहर दाल का जीनोम मानचित्रण (Gene Mapping of Pigeon Rea)
- आलू का जीनोम मानचित्रण (Gene Mapping of Potato)
- देश के आर्द्र प्रदेशों का पहला विस्तृत ब्योरा (Detailed Statement of Wetlands)
- स्टीरियो डिजिटल एरियल फोटोग्राफी (SDAP: Stereo Digital Aerial Photography)
- ग्रीन नेशनल अकाउंटिंग सिस्टम (National Green Accounting System)
- एमआई-17 वी 5' (Mi-17 V5)
- आईएनएस कृष्णा (INS Krishna)
- दक्ष (Daksh)
- 'शिवालिक' ग्रेनेड (Shivalic Grenade)
- सी-17 ग्लोबमास्टर-III (C-17 Globemaster-III)
- सामुद्रिक अनुसन्धान हेतु भारत की मानव रहित पनडुब्बी
- सी-130जे सुपर हर्क्यूलिस (C-130J Super Hercules)
- ग्लोरी मिशन (Glory Mission)
- अम्ब्रेला ग्राफ्टिंग (Umbrella Grafting)
- अर्थ सिमिलैरिटी इंडेक्स और प्लैनेटरी हैबिटैबिलिटी इंडेक्स (ESI And PHI)
- केपलर 22बी (Keplar 22b)
- भारत का मंगल मिशन 'मंगलायन' (India's Mars Mission 'Mangalyan')
- एस 2012 (S-2012)
- हिग्स बोसॉन या गॉड पार्टिकल (Higgs Boson or God Particle)
- लैक्स (LAX)
- एएस10 (AS-10)
- रडार इमेजिंग सेटेलाइट (आरआइसेट-1) (Radar Imaging Satellite : RISAT-1)
- नूरी (Noorie)
- टमाटर जीनोम का अनुक्रमण (Tomato Gene Sequence)
- स्विचब्लेड (ड्रोन)
- द साइंस एक्सप्रेस-जैव विविधता स्पेशल
- नियोबियम (Niobium)
- राष्ट्रीय इलैक्ट्रॉनिक मिशन (National Electronic Mission)
- एनेक्स-1 एवं गैर एनेक्स-1 (Anuexei & Non-Aunexe)
- मेघा ट्रॉपिक्स (Megha Tropiques)
- मद्रास (Madras)
- साफिर (Saphir)
- स्कारैब (scarab)
- नेरपा परमाणु पनडुब्बी (Nerpa Nuclear Submarine)
- मीका मिसाइल (Mica Missile)
- रीप प्रणाली (REAP System)
- जैक्सटर एस.एम.एस. (Jaxtor SMS)
- नम्मा मेट्रो (Namma Metro)
- जीकैब्स (G-Cabs)
- एईरास (Eiras)
- नेक्सावार (Nexavar)
- आईएस 701 (IS 701)
- निर्भय (Nirbhay)
- पी-4 (P-4)
- प्रास्पेक्टिव मल्टीरोल फाइटर (Prospective Multirole Fighter)
- ग्रेल (GRAIL: Gravity Recovery And Interior Laboratory)
- सनवे ब्लूलाइट (Sunway Bluelight)
- कार्बन इंडेक्स (Carbon Index)
- आईएलओ-एक्स (ILO-X)
- एसजीके-1 (SGK-1)
- स्पेस इंटरफेरोमेट्री मिशन (Space Interferometry Mission)
- सोफिया (SOFIA)
- सोलर प्रोब प्लस (Solar Probe Plus)
- न्यू देहली मेटालो बीटा लेक्टामस (NDM-1)
- एचआईवी स्टिग्मा इंडेक्स (HIV Stigma Index)
- फैंटम आई (Phantom Eye)
- स्क्वायर किलोमीटर एरे (SKA: Square Kilometer Array)
- भारती (Bharati)
- वारयाग (Varyag)

1. आधारभूत संकल्पनाए (Basic Concepts)

भूमिका (Introduction)

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी किसी देश के विकास के दो अत्यन्त महत्वपूर्ण उपकरण हैं। वस्तुत: जैसा कि हम जानते हैं, विज्ञान किसी वस्तु अथवा पदार्थ अथवा संकल्पना को उस स्तर पर समझने की विधा है जिससे उसकी गहन और स्पष्ट सूचना प्राप्त की जाती है। दूसरी ओर, प्रौद्योगिकी वैज्ञानिक संकल्पनाओं तथा सिद्धांतों का व्यावहारिक स्वरूप है जिनके माध्यम से न केवल मानव प्रजाति बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी तथा विशेषकर जैवमंडल के लिए विज्ञान को उपयोगी बनाया जाता है। विज्ञान से वस्तुत: ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा प्रौद्योगिकी मनोवृत्तियों में सकारात्मक परिवर्तन करने में सक्षम है। संयुक्त रूप से समाज की अधोसंरचना तथा अधिसंरचना के निर्माण में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की व्यापक भूमिका है।

वर्तमान विश्व बाजार एवं तकनीक संचालित है। इसका अर्थ यह है कि प्रौद्योगिकी के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व तथा सम्पूर्ण बाजार को पूरी तरह समझा जा सकता है। विगत एक दशक में विश्व में जो तीव्र गति से तकनीकी विकास हो रहे हैं उन्हें भूमंडलीकरण का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आयाम कहा जा सकता है। साथ ही, सभ्यता तथा संस्कृति के परिवर्तनों पर भी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का व्यापक प्रभाव पड़ता है। निश्चित रूप से ये परिवर्तन भूमंडलीकरण के लक्ष्यों की प्राप्ति में पूर्णत: सहायक होंगे। हांलाकि तकनीकी रूप से भूमंडलीकरण को परिभाषित नहीं किया जा सका है लेकिन वृहद् रूप में इसे साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों से अलग हटने की एक ऐसी प्रक्रिया कहा गया है जिससे एक विकसित तथा नई वैश्विक व्यवस्था का निर्माण किया जा सकता है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विशेष योगदान है क्योंकि इसके माध्यम से विकास सुनिश्चित करने में सहायता मिलती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि संकल्पनाओं एवं सिद्धांतों को तकनीकों के माध्यम से व्यावहारिक बनाया जाये। इस प्रकार, यह कहना गलत नहीं होगा कि प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों से विश्व की अर्थव्यवस्थाओं को एकीकृत किया जा सकता है।

जहां तक संस्कृति का प्रश्न है, पुन: प्रौद्योगिकी के माध्यम से जीवन शैली को प्रभावित तो किया ही जा सकता है, साथ ही उन सभी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को भी सकारात्मक रूप से प्रभावित किया जा सकता है जिनसे हमारे जीवन की सभी क्रियाओं को अर्थपूर्ण बनाया जाता है। जब तकनीकों को न्यूनतम स्तर पर लाकर परंपरागत तकनीकों के साथ संबद्ध किया जाता है तब उनसे विकास के रूप में प्रत्यक्षत: प्रतिफल प्राप्त होते हैं।

संस्कृति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आयाम धर्म है। लेकिन विगत दो दशकों से इसे समाज को अस्थिर बनाने वाला एक कारक कहा जाने लगा है। ऐसी स्थिति में तकनीकों के माध्यम से इसे तार्किक आधार प्रदान किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, धर्म के विवेकीकरण में तकनीकों का विशेष योगदान होता है।

जहां तक सभ्यता के विकास तथा उसकी संवृद्धि का प्रश्न है, प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों की सहायता से उसके पदार्थीय एवं भौतिक लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, उत्पादों और सेवाओं की गुणवत्ता को गत्यात्मक बनाने में भी प्रौद्योगिकी की विशेष भूमिका है। स्पष्टत: वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास से गुणात्मक एवं मात्रात्मक परिवर्तन सुनिश्चित किये जा सकते हैं।

विगत वर्षों में विश्व भर में आर्थिक संवृद्धि के दृष्टिकोण से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के महत्व में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। आर्थिक उदारीकरण के इस दौर में कई अवसरों पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के कई आविष्कारों पर मानवता के विरूद्ध होने के आरोप भी लगाये गये हैं जिनका मुख्य आधार कदाचित विश्व व्यापार संगठन के प्रावधान रहे हैं। ऐसे आरोपों में सर्वाधिक चर्चित पेटेंट संबंधी विवाद है। इस संबंध में यह भी कहा गया है कि नये पेटेंट कानून से विशेषकर विकासशील राष्ट्रों को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। पेटेंट के अतिरिक्त, अन्य बहुचर्चित प्रौद्योगिकियों में पराजीनी (ट्रांसजेनेसिस) तकनीक विवादास्पद रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि वैज्ञानिकों के एक समूह द्वारा यह आशंका व्यक्त की गई है कि ऐसी प्रजातियों से एक विशेष प्रकार के हानिकारक पदार्थ का स्राव किया जाता है जो अन्य फसलों के लिए निश्चित रूप से हानिकारक सिद्ध होता है। लेकिन डा. एम. एस. स्वामीनाथन के नेतृत्व में वैज्ञानिकों के एक अन्य समूह ने इस आशंका को निराधार बताया है। इस समूह का मानना है कि ऐसी परियोजनाओं को प्रतिबंधित नहीं किया जाना चाहिए।

कई अवसरों पर क्लोनिंग जैसी तकनीक पर भी विवाद उत्पन्न हुये हैं जिसका कारण यह है कि इस तकनीक के विरोधियों का मानना है कि इससे प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन होता है। हांलाकि इनके अतिरिक्त भी कई तकनीकों पर विवाद होते रहे हैं, लेकिन इसके बावजूद केवल कुछ नकारात्मक पक्षों के आधार पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास को रोका नहीं जा सकता। केवल उन्हीं तकनीकों को प्रतिबंधित किया जाना अपेक्षित है जिनसे सम्पूर्ण मानव प्रजाति अथवा पारिस्थितिकी पर व्यापक कुप्रभाव पड़ते हैं।

तेजी से बदलते हुये परिदृश्य की पृष्ठभूमि में यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि आने वाले वर्षों में भी वैश्विक परिवर्तनों से वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय विकास प्रभावित होंगे। इसका मूल कारण यह है कि वैश्विक स्तर पर कई नई संस्थाओं के प्रवेश से एक ओर जहां विकास की नई संभावनाएं प्रबल हो रही हैं, वहीं दूसरी ओर, वैज्ञानिक विकास के लाभों को न्यूनतम स्तर तक पहुंचाने का भी कार्य किया जा रहा है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि आगामी वर्षों में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का दृष्टिकोण मानवतावादी होगा।

इस संदर्भ में यह अपेक्षा की जा सकती है कि 'कल्याणकारी विज्ञान' (Welfare Science) की संकल्पना के विकास पर बल देते हुये अपेक्षाकृत अधिक तार्किक, विवेकपूर्ण और सटीक 'व्यावहारिक प्रौद्योगिकी' (Behavioural Technology) का भी विकास किया जाये। इससे मानव प्रजाति के उन सभी व्यावहारिक पक्षों पर बल दिया जा सकेगा जो सतत विकास की अवधारणा को सफल बनाने में सहायक हैं। दूसरे शब्दों में, जैसा कि ऊपर कहा गया है, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय दृष्टिकोण से कल्याणकारी विज्ञान और व्यावहारिक प्रौद्योगिकी सतत विकास के दो महत्वपूर्ण आयाम हैं।

कल्याणकारी विज्ञान (Welfare Science)

हांलाकि विज्ञान से यह आशा की जाती है कि वह सभी जीवों का कल्याण सुनिश्चित करे लेकिन कभी-कभी विकास की तीव्र आकांक्षा तथा कई अन्य अवसरों पर अन्तर एवं अन्तरा प्रजातीय स्तरों पर अपने प्रभुत्व के विस्तार के लिए संसाधनों का अधिक से अधिक दोहन करने की लालसा के कारण वैज्ञानिक संकल्पनाओं एवं सिद्धांतों और उनके व्यावहारिक पक्षों पर विवाद उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे में यह आरोप लगाये जाते हैं कि विज्ञान का कल्याणकारी पक्ष अत्यन्त कमजोर हो गया है।

कल्याण वास्तव में किसी व्यक्तित्व के आंतरिक भाग को सकारात्मक रूप से प्रभावित तथा परिवर्तित करने वाले व्यावहारिक आयामों को संतुलित करने की एक संकल्पना है। इस आधार पर यदि विज्ञान से किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के ऐसे सभी आयामों को प्रभावित किया जाता है तो उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण की संज्ञा दी जाती है। कल्याणकारी विज्ञान ऐसे ही दृष्टिकोण के विकास का एक कारक है। अत: कल्याणकारी विज्ञान की संकल्पना न केवल जीवन शैली को परिवर्तित करने बल्कि उसे सही दिशा देने में भी सहायक हो सकती है। दूसरे शब्दों में, कल्याणकारी विज्ञान किसी विषय, वस्तु अथवा संकल्पना की बेहतर समझ विकसित करने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रभावकारी उपयोग का एक उपकरण है। यह भी सत्य है कि विज्ञान शिक्षा और स्वास्थ्य के स्तर को भी ऊँचा उठाने में व्यापक योगदान देता है। ये भी निश्चित रूप से कल्याणकारी विज्ञान के गत्यात्मक अवयव कहे जा सकते हैं।

कल्याणकारी विज्ञान एक गत्यात्मक संकल्पना है जिसके माध्यम से शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधी प्रणालियों के लिए आवश्यक संसाधनों को गतिशील अथवा उत्पादक बनाया जा सकता है। ऐसे विज्ञान का उपयोग न केवल प्राथमिक स्तर पर विषयों की गहन जानकारी

प्राप्त करने बल्कि उच्च स्तर पर युवकों एवं युवतियों को आकर्षित करने के लिए भी किया जाना अपेक्षित है ताकि उच्च तकनीकी अध्ययनों में मानव संसाधन के प्रवाह की निरंतरता बनी रह सके। साथ ही, पूर्व विद्यालयी शिक्षा में बच्चों को विज्ञान की ओर आकर्षित करने के लिए कम से कम उपकरणों का प्रयोग किया जाना चाहिये।

जहां तक स्वास्थ्य का प्रश्न है, इस क्षेत्र में भी कल्याणकारी विज्ञान की महती भूमिका है। इसका मूल कारण यह है कि इससे जहां एक ओर बच्चों को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक बनाया जा सकता है, वहीं दूसरी ओर अभिभावकों को भी संवेदनशील तथा उत्तरदायी बनाने में सहायता प्राप्त की जा सकती है। कल्याणकारी विज्ञान का स्वास्थ्य संबंधी अवयव टीकाकरण जैसे कार्यक्रमों को पूर्ण रूप से सफल बनाने में सहायक हो सकता है। वस्तुत: कल्याणकारी विज्ञान का उद्देश्य यह होना चाहिये कि सेवाओं को समाज के न्यूनतम स्तर तक उपलब्ध कराये ताकि समाज की अधोसंरचना के निर्माण के लिए अनिवार्य सामाजिक आधारभूत संरचनाओं का निर्माण किया जा सके।

कल्याणकारी विज्ञान व्यक्तियों तथा समूहों के मध्य क्षैतिज समता स्थापित करने का भी प्रयास करता है। इससे समाज के सभी स्तरों पर संसाधनों के समतामूलक वितरण में भी सहायता प्राप्त होती है। इस प्रकार, कल्याणकारी विज्ञान की संकल्पना संसाधनों की सृजनात्मकता, उत्पादकता तथा उनके वितरण के प्रति उत्तरदायी है जो किसी राष्ट्र के विकास एवं संवृद्धि में प्रत्यक्ष योगदान देती है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, कल्याणकारी विज्ञान सतत् विकास का प्रमुख भाग है। इसका तात्पर्य यह है कि इसके द्वारा सतत् विकास के संसाधन संबंधी सभी आयामों को व्यावहारिक बनाकर उनके दृष्टिकोण को सकारात्मक बनाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, कल्याणकारी विज्ञान से सतत विकास को वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया जा सकता है। तकनीकी रूप से यह कहना तार्किक है कि ऐसे ही दृष्टिकोण का प्रयोग कर सतत विकास के अन्य सभी अवयवों को सही अर्थों में समझा जा सकता है। तभी उन अवयवों को व्यावहारिक बनाकर उन्हें जैवमंडल तथा सम्पूर्ण प्रकृति के लिए उपयोगी बनाना संभव है। स्पष्टत: कल्याणकारी विज्ञान प्राकृतिक संसाधनों को देश के विकास के लिए आवश्यक राष्ट्रीय संसाधनों में रूपान्तरित करने वाला एक महत्वपूर्ण उपकरण है।

व्यावहारिक प्रौद्योगिकी (Behavioural Technology)

वह प्रौद्योगिकी जिसके माध्यम से पर्यावरण के सभी जैविक एवं अजैविक कारकों के व्यवहार में परिवर्तन लाने वाले सभी आयामों का अध्ययन किया जाता है, व्यावहारिक प्रौद्योगिकी कहलाती है। लेकिन यहां यह जान लेना अति आवश्यक है कि ऐसे व्यावहारिक परिवर्तनों का अध्ययन क्यों किया जाना चाहिए। विशेषकर भूमंडलीकरण के दौरान जब व्यक्तिवादी मनोवृत्तियों का विकास तीव्र गति से हो रहा है, तकनीकी तथा प्रौद्योगिकीय उन्नयन हमारे व्यवहारों को निर्देशित करने वाला उपकरण सिद्ध हुआ है।

यह विदित है कि 'प्रवृत्ति' (Tendency) शब्द का अर्थ व्यवहार के सन्निकट है। प्रवृत्तियां वस्तुत: मानव के पूर्वनियोजित व्यवहार हैं। लेकिन इन प्रवृत्तियों में क्षेत्र एवं सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से भी परिवर्तन होते हैं। दूसरी ओर, नृवैज्ञानिक आयाम भी मानव व्यवहारों को प्रभावित करते हैं। इन प्रभावों के कारण किसी व्यक्ति में नम्यता जैसे गुण विकसित होते हैं। इसी नम्यता के कारण उसमें अनुकूलन (Adaptation) तथा अवबोधन (Perception) की क्षमता भी विकसित होती है। यह नम्यता वास्तव में व्यवहार के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक निर्धारकों के प्रभावों का ही परिणाम होती है। ऐसे निर्धारकों को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने में तकनीकों तथा प्रौद्योगिकियों का विशेष महत्व है। उदाहरण के लिए जब किसी नई तकनीक को निचले स्तर पर लाकर परंपरागत तकनीकों के साथ जोड़ा जाता है तब नई प्रवृत्तियों का विकास होता है जो नम्यता के साथ-साथ समूहों को उत्तरदायी भी बनाता है। इसके अतिरिक्त, इसका प्रभाव नृवैज्ञानिक कारकों पर भी पड़ता है जिससे व्यक्तियों में तकनीकों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ती है जो अन्तत: उनकी सफलता में सहायक है। एक बार ऐसे वातावरण के निर्माण के बाद विकास की नई संभावनाएं पनपती हैं। इसी कारण विश्व भर में सभी सरकारें ऐसे वातावरण के निर्माण के लिए पूरी तरह कटिबद्ध हैं तथा हर संभव प्रयास कर रही हैं। इन सरकारी प्रयासों से न केवल ऐसे वातावरण का निर्माण होगा बल्कि विकास की निरंतरता भी बनायी जा सकेगी।

व्यावहारिक प्रौद्योगिकी के माध्यम से हम अपने आस-पास के अजैविक कारकों को भी अच्छी तरह समझ सकते हैं। वास्तव में यह प्रौद्योगिकी मनुष्य को प्रकृति के नियमों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील बनाती है। इससे एक ओर तो प्रकृति की संरक्षा की जा सकती

है तथा दूसरी ओर, भविष्य की पीढ़ियों के लिए संसाधनों को सुरक्षित भी रखा जा सकता है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा सतत विकास (Science & Technology and Sustainable Development)

पर्यावरणीय विकास, हरित विकास और सतत विकास जैसी संकल्पनाएं प्राकृतिक संसाधन की अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग बन गई हैं। लेकिन इन सभी का यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो निश्चित रूप से सतत विकास की संकल्पना में पर्यावरणीय विकास शामिल हो जाता है। दूसरी ओर, सतत विकास, हरित विकास से इस रूप में भिन्न है कि जहां हरित विकास आर्थिक और सांस्कृतिक सततता पर पर्यावरणीय सततता को वरीयता देता है वहीं सतत विकास में आर्थिक, सामाजिक, संस्थागत तथा पर्यावरणीय सभी प्रकार के विकास शामिल होते हैं। दूसरे शब्दों में, सतत विकास की अवधारणा में विकास के इन सभी कारकों के बीच अन्तर्निभरता स्थापित करने के प्रयास किए जाते हैं। वास्तव में सतत विकास की संकल्पना का विकास तब हुआ था जब पृथ्वी का पर्यावरणीय सीमाओं के अन्दर सामाजिक विकास के विभिन्न आयामों पर कार्य करने की आवश्यकता महसूस की गई। ऐसी स्थिति में यह देखा गया कि सीमित प्राकृतिक संसाधनों का यदि संरक्षण नहीं किया गया तो विकास अवरूद्ध हो जाएगा। 1980 के दशक के पूर्वार्द्ध में उभरी यह संकल्पना हांलाकि समाज और पर्यावरण के बीच अन्तर्निभरता पर केन्द्रित रही है लेकिन धीरे-धीरे इसमें कई अन्य पक्ष भी शामिल कर लिए गए हैं। वर्ष 1987 में विश्व पर्यावरण और विकास आयोग (World Commission on Environment and Development) की ब्रण्ड्टलैंड (Brundtland) रिपोर्ट में सतत विकास शब्दावली का प्रयोग किया गया। आयोग का विचार था कि बेहतर जीवन शैली के लिए यह आवश्यक है कि वर्तमान की आवयकताओं की पूर्ति के साथ-साथ भविष्य के लिए भी संसाधनों का संरक्षण किया जाए। इसके बाद 1992 के पहले पृथ्वी सम्मेलन, जिसका आयोजन रियो डि जेनेरो में किया गया था, में अनुमोदित एजेंडा 21 (Agenda 21) में पुन: इस संकल्पना के विकास के लिए तेजी से प्रयास करने पर जोर दिया गया। इस सम्मेलन में यह कहा गया कि आरंभिक चरणों में मानव विकास सतत नहीं रहा था जिसका मुख्य कारण यह था कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में आर्थिक, पर्यावरणीय तथा सामाजिक कारकों पर एकीकृत बल नहीं दिया गया था। इस कारण कई बड़ी पर्यावरणीय समस्याएं जैसे प्रदूषण, मरूस्थलीकरण, जलवायु परिवर्तन, वन्य जीवन के विलुप्त होने की आशंका तथा राष्ट्रों के बीच विषमताएं उत्पन्न हो गई।

सतत विकास का त्रिकोणीय दृष्टिकोण (Triangular Approach to Sustainable Development)

हांलाकि सतत विकास को देखने के कई दृष्टिकोण विकसित किए गए हैं लेकिन सामान्यत: इसमें शामिल तीन आयामों आर्थिक, पर्यावरणीय और सामाजिक पर सबसे अधिक जोर दिया जाता है।

आर्थिक कारकों का उद्देश्य निश्चित रूप से मानव-कल्याण है जो उत्पादों और सेवाओं के उपभोग की दर में वृद्धि कर सुनिश्चित किया जाता है। दूसरी ओर, पर्यावरणीय कारकों द्वारा पारितंत्रों की कार्यकुशलता तथा लचीलेपन की रक्षा की जाती है। जहां तक सामाजिक कारकों का प्रश्न है इनमें मानवीय संबंधों को प्रभावित करने वाले कारक शामिल किए जाते हैं।

हाल के वर्षों में जब ऊर्जा की पहचान सबसे महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में की गई है तब से सतत विकास की अवधारणा और भी संपुष्ट हो गई है। इसका कारण यह है कि ऊर्जा आर्थिक, पर्यावरणीय और सामाजिक आयामों को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सतत विकास को सही दिशा तथा गति देने में सक्षम है। निश्चित रूप से यह कहना तर्कसंगत होगा कि सतत विकास एक बहुआयामी अवधारणा है।

आर्थिक पक्ष (Economic Aspects)

जैसा कि हम जानते हैं कि आर्थिक प्रगति का सबसे महत्वपूर्ण मापक मानव कल्याण है। इसके लिए आय में वृद्धि का होना अनिवार्य होता है क्योंकि तभी उत्पादों और सेवाओं के उपभोग की दर में वृद्धि होती है। अत: अधिकांशत: आर्थिक नीतियों का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य आय में वृद्धि करना होता है। इसके अतिरिक्त, कीमत स्थिरीकरण तथा रोजगार के अवसरों का सृजन भी आर्थिक कारकों में शामिल होते हैं।

जहां तक आर्थिक सततता का प्रश्न है, यहां यह उल्लेख न्यायसंगत होगा कि आर्थिक कार्यकुशलता न केवल उत्पादन के लि आवश्यक संसाधनों के आवंटन में महत्वपूर्ण योगदान देती है, बल्कि उपभोग के स्तर में वृद्धि की उपयोगिता को भी बढ़ाती है। लेकि आर्थिक कार्यकुशलता सुनिश्चित करने के मार्ग में सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम आर्थिक संसाधनों का तो मूल्य निर्धारण कर सक हैं लेकिन पर्यावरणीय तथा सामाजिक संसाधनों के मूल्य का निर्धारण संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में संसाधनों के बीच सामंजस्य स्थापित कर पाना भी आसान नहीं होता। ऐसा सामंजस्य तब और महत्वपूर्ण हो जाता है जब आर्थिक प्रतिस्पर्धा उच्च स्तरीय होती है यही कारण है कि आज के आर्थिक रूप से उदारीकृत विश्व में जहां बाजारी शक्तियों का प्रभाव अत्यधिक है, आर्थिक सततता क पक्ष सबसे महत्वपूर्ण हो गया है। प्रतिस्पर्धा के दौरान कई बार राष्ट्रों द्वारा ऐसी नीतियां बनाई जाती हैं जो अर्थव्यवस्था में असंतुल उत्पन्न कर देती हैं। इसके फलस्वरूप संसाधनों के आवंटन में समस्याओं के उत्पन्न हो जाने की आशंका होती है। अतः यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में उपयोग में आने वाले संसाधनों का स्टॉक भी बना रहे तथा उनका समुचित अनुप्रयोग भी किया जाए।

पर्यावरणीय पक्ष (Environmental Aspects)

पर्यावरणीय सततता वस्तुतः पर्यावरण की वह योग्यता अथवा क्षमता है जिसके आधार पर सभी पर्यावरणीय कारक निरंतर कार्यकुशल बने रहते हैं। दूसरे शब्दों में, सतत विकास का पर्यावरणीय दृष्टिकोण यह बताता है कि किस प्रकार पारितंत्र की व्यवहार्यता (Viability) बनी रह सकती है। व्यवहार्यता बनाए रखने के लिए ही पारितंत्रों में बाह्य आघातों का प्रतिरोध करने की क्षमता पाई जाती है। विकास के साथ-साथ इस क्षमता का संरक्षण ही पर्यावरणीय सततता है।

आर्थिक पक्ष
उत्पादन-उपभोग संतुलन
सतत विकास का त्रिकोणीय दृष्टिकोण
पर्यावरण पक्ष
पारितंत्रों की कार्यकुशलता
सामाजिक पक्ष
मानवीय व्यवहार, सेवा आपूर्ति

पर्यावरणीय सततता पर तब दुष्प्रभाव पड़ते हैं जब प्राकृतिक पूंजी, जो समस्त प्राकृतिक संसाधनों का कुल योग है, की खपत की दर उसके नवीकरण की दर की तुलना में अधिक हो जाती है। अतः मानवीय गतिविधियां इस रूप में होनी चाहिए कि प्राकृतिक पूंजी की खपत और उसके नवीकरण की दर समान हो। हालांकि इससे बेहतर स्थिति तब होगी जब खपत की यह दर अपेक्षाकृत कम हो। यह कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास के जरिए किया जा सकता है। और भी व्यापक स्तर पर पर्यावरणीय सततता का अध्ययन करने पर यह कहा जा सकता है कि यह सतत विकास केवल पारितंत्रों की यथास्थिति बनाए रखने वाली संकल्पना नहीं है। इसके विपरीत, इसमें एक पारिस्थितिकीय तथा सामाजिक-आर्थिक प्रणाली शामिल होनी चाहिए ताकि जैव विविधता का वह स्तर बना रहे जो पारितंत्रों की कार्यकुशलता सुनिश्चित करे। ऐसा इसलिए कि इसी कार्यकुशलता पर मानवीय उपभोग तथा उत्पादन, दोनों ही निर्भर करते हैं।

पर्यावरणीय सततता का एक पक्ष पारितंत्र में प्रवाहित होने वाली ऊर्जा भी है। हम यह भी जानते हैं कि पारितंत्र ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम से संचालित होता है। साथ ही, ऊर्जा का प्रवाह एकदिशीय होता है। इस ऊर्जा का मुख्य स्रोत सूर्य का प्रकाश है। अतः सततता बनाए रखने के लिए यह अनिवार्य है कि ऊर्जा की जो मात्रा पारितंत्र को प्राप्त होती है वह अन्य रूपों में पर्यावरण को वापस कर दी जाए। इसी प्रकार, कई भू-रासायनिक पदार्थों, जैसे कार्बन, नाइट्रोजन, जल आदि भी चक्रीय चरणों के बाद संतुलित मात्रा में पर्यावरण में विद्यमान रहें। अतः यह स्पष्ट है कि सतत विकास तभी संभव हो सकता है जब पारिस्थितिकीय प्रणाली तथा सामाजिक-आर्थिक प्रणालियों के बीच संतुलन बना रहे।

सामाजिक पक्ष (Social Aspects)

सतत सामाजिक विकास और सामाजिक पूंजी का बेहतर अनुप्रयोग एक दूसरे के पूरक हैं। पर्यावरणीय और आर्थिक पूंजी के विपरीत, सामाजिक पूंजी उपयोग से बढ़ती है। वास्तव में सतत विकास के सामाजिक दृष्टिकोण में उन सभी प्रक्रियाओं को शामिल किया जाता है जो समता और वितरण न्याय सुनिश्चित करने में सहायक होती हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक-सांस्कृतिक विविधताओं के संरक्षण के साथ-साथ सामाजिक प्रणालियों को सुदृढ़ बनाया जाए। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर
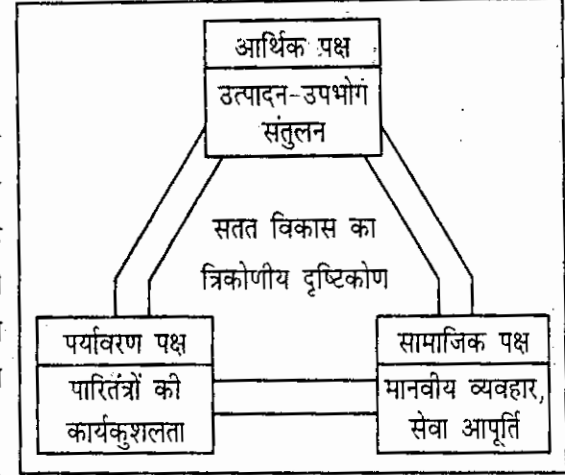
सामाजिक और सांस्कृतिक पूंजी का संरक्षण, विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के बीच अन्तर्निभरता का विकास तथा विद्यमान संघर्षों को दूर किया जाए।

जहां तक समता का प्रश्न है, यह एक जनोन्मुखी संकल्पना है जिसका सबसे महत्वपूर्ण आधार सामाजिक है, लेकिन सतत विकास के संदर्भ में इसका प्रत्यक्ष संबंध आर्थिक एवं पर्यावरणीय कारकों के साथ भी स्थापित होता है। समता के माध्यम से ही नीति निर्धारण में सहभागिता भी सुनिश्चित की जा सकती है। इस संदर्भ में यह कहना समीचीन होगा कि समता लाने के लिए निचले स्तर तक विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था अत्यन्त कारगर हो सकती है।

अब अगर न्याय की बात की जाए तो सबसे महत्वपूर्ण वितरण न्याय है। इसका अर्थ यह है कि संसाधनों के आवंटन, उनके अनुप्रयोग तथा उनके संरक्षण में समतामूलक दृष्टिकोण का प्रयोग किया जाए।

एक व्यावहारिक चुनौती जो दिखाई देती है, वह है आर्थिक कार्यकुशलता और समता के बीच संतुलन की स्थापना। वस्तुत: आर्थिक कार्यकुशलता की माप सीमित संसाधनों के अधिकतम उपयोग के आधार पर की जाती है ताकि आय के स्तर में वृद्धि हो। लेकिन आय में इस तरीके से की गई वृद्धि विषमताओं को जन्म देती है। अत: आवश्यक है कि कार्यकुशलता तथा समता की अन्त:क्रियाओं को संतुलित किया जाए।

सतत विकास का चतुष्कोणीय दृष्टिकोण (Quadrangle Approach to Sustainable Development)

यह विदित है कि सतत विकास पर्यावरण और विकासोन्मुखी नीतियों के समेकन की प्रक्रिया है। इसी कारण अलग-अलग दृष्टिकोणों से इसकी व्याख्या की जाती है। बर्टेलमस (Bartelmus) द्वारा विकसित चतुष्कोणीय दृष्टिकोण में आर्थिक, पर्यावरणीय तथा सामाजिक पक्षों के साथ-साथ सतत विकास के संस्थागत पक्षों को भी शामिल किया गया है।

सतत विकास का मूल आधार पर्यावरण-अर्थव्यवस्था अन्त:क्रिया है। ऐसी अन्त:क्रिया पर्यावरणीय तथा सामाजिक- आर्थिक नीतियों के बीच सामंजस्य चाहती है। पर्यावरणीय अर्थशास्त्रियों का मानना है कि सीमित प्राकृतिक संसाधनों को मौद्रिक दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। पर्यावरण से संबंधित बाह्य कारकों जैसे प्रदूषण दूर करने के उपायों, प्राकृतिक परिसंपत्तियों आदि के मौद्रिक मूल्य का निर्धारण कर लोगों को भुगतान के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। सबसे बड़ी बात यह है कि समष्टि आर्थिक नीतियां इस प्रकार बनाई जानी चाहिए कि उनका समायोजन पर्यावरण तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से हो। तकनीकी रूप से यह कहा जा सकता है कि मात्रात्मक आर्थिक विकास के बदले गुणात्मक आर्थिक विकास की ओर उन्मुख नीतियां बननी चाहिए।

चतुष्कोणीय दृष्टिकोण के तहत आर्थिक सततता का अर्थ यह है कि उत्पादित और प्राकृतिक पूंजी का दीर्घकालिक संरक्षण करते हुए आय में वृद्धि के प्रयास किए जाने चाहिए।

दूसरी ओर, पारिस्थितिकीय सततता यह दर्शाती है कि किसी भी प्रकार प्राकृतिक संसाधन संरक्षित होने चाहिए। अब यदि दोनों ही प्रकार की सततता की तुलना की जाए तो यह स्पष्ट होगा कि जहां आर्थिक सततता यह मानती है कि सीमित प्राकृतिक संसाधनों से आर्थिक विकास करना हमारी बाध्यता है, वहीं पारस्थितिकीय सततता इस बात की द्योतक है कि प्राकृतिक संसाधन जीवन समर्थन प्रणालियों के रूप में कार्य करते हैं।

सामाजिक सततता के अन्तर्गत समता और न्याय के साथ-साथ उन सभी नीतियों को रखा जा सकता है जो गरीबी निवारण के लिए उत्तरदायी होती हैं। इन सभी प्रकार की नीतियों का
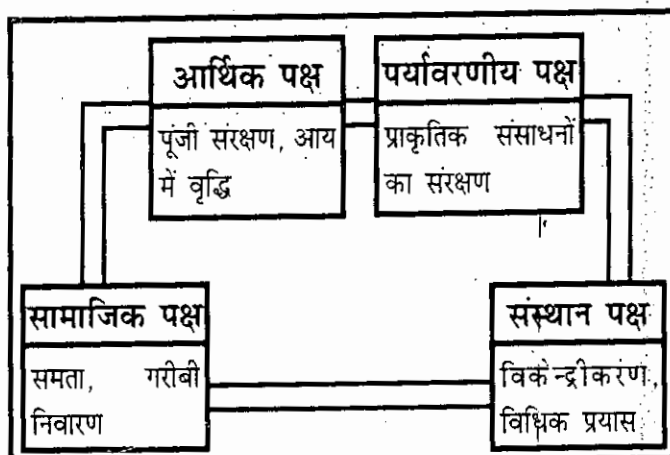
प्रभावी रूप से कार्यान्वयन तभी संभव हो सकता है जब संस्थागत रूप से प्रणाली को सुदृढ़ बनाया जाए। संस्थागत समर्थन देने के लिए प्रशासन के विकेन्द्रीकरण के अलावा विभिन्न विधिक प्रयासों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

इन दोनों ही प्रकार के दृष्टिकोणों का विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि सतत विकास के दो सुदृढ़ आधार स्तम्भ हैं- कार्यकुशलता (Efficiency) तथा समता (Equity)। यह कार्यकुशलता संसाधनों की गत्यात्मकता की है जबकि समता का अर्थ अन्तरपीढी समता से है।

संसाधनों की गत्यात्मक कार्यकुशलता तभी सुनिश्चित हो सकती है जब उनका विवेकपूर्ण अनुप्रयोग हो। यहीं पर संसाधनों के प्रभावी और निष्पादनकारी बनाने में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है।

तकनीकी रूप से संसाधन वह है जिसमें किसी प्रकार की ऊर्जा संचित हो। पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ने वाले कुप्रभावों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि तकनीकों के माध्यम से ऐसे कुप्रभाव कम किए जा सकते हैं। वास्तव में ये कुप्रभाव या तो पदार्थों के जैव भौगोलिक चक्रों की अपूर्णता अथवा किसी पारितंत्र में ऊर्जा प्रवाह में मात्रात्मक कमी के प्रतिफल होते हैं। इन दोनों ही परिस्थितियों में वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, पारितंत्र को संरक्षित कर विभिन्न विलुप्तप्राय प्रजातियों की रक्षा के लिए "इन-सीटू" अथवा "एक्स-सीटू" संरक्षण पद्धतियां प्रयोग में लाई जा सकती हैं।

सतत विकास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की भूमिका (Role of Science & Technology in Sustainable Development)

वर्तमान भूमंडलीकृत और उदारीकृत बाजार तथा तकनीक निर्देशित है। चाहे ऊर्जा, चिकित्सा अथवा स्वच्छ जल एवं वायु की बात हो या परिवहन, प्रबंधन अथवा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की, सभी किसी न किसी रूप में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर व्यापक रूप से निर्भर हैं। दूसरे शब्दों में, विकास के लगभग सभी स्तरों पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है।

आधुनिक समाज को दिशा देने, प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन, अनुप्रयोग तथा आर्थिक विकास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का योगदान अति विशिष्ट है। इसका अर्थ यह हुआ कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का प्रत्यक्ष तथा गहरा संबंध सतत विकास से है।

सतत विकास में संदर्भ में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की रणनीति में निम्नांकित प्रत्यक्षत: शामिल किए जा सकते हैं:-

1. सतत विकास के लिए क्षमता निर्माण
2. नई पीढ़ी के प्रशिक्षण में निवेश
3. सूचनाओं की पहुँच में वृद्धि
4. निर्णय लेने की प्रक्रिया के वैज्ञानिक आधार का सुदृढ़ीकरण
5. जन संपर्क

सतत विकास के लिए क्षमता निर्माण (Capacity Building for Sustainable Development)

जैसा कि विदित है, सतत विकास में मानव पूंजी का स्थान सर्वोपरि है। ऐसी स्थिति में न केवल क्षमता निर्माण बल्कि दक्षता का उन्नयन भी अनिवार्य है। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर नीतियों के निर्धारण के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भी अपेक्षा है। विभिन्न वित्तीय संस्थानों द्वारा खासकर विकासशील देशों में वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय अवसंरचनाओं के विकास के लिए सहायता दी जानी चाहिए। साथ ही, विशेषरूप से विश्वविद्यालय के स्तर पर अनुसंधान कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। निचले स्तर पर क्षमता निर्माण के लिए परंपरागत और आधुनिक तकनीकों के बीच सामंजस्य की स्थापना की आवश्यकता है।

नई पीढ़ी के प्रशिक्षण में निवेश (Investment in Training of New Generation)

आधारिक अनुसंधान विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास का आधार स्तंभ है। इसके अतिरिक्त, दीर्घकालिक आर्थिक विकास के लिए

भी यह आवश्यक है कि गणित, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को बढ़ावा दिया जाए। इसके लिए, सामाजिक तथा आर्थिक अवसंरचनाओं में निवेश अनिवार्य है। निश्चित रूप से इस कार्य में भारी निवेश किया जाना चाहिए। जाहिर है, इसमें निजी क्षेत्र की सहभागिता अनिवार्य हो जाती है। इतना ही नहीं दक्षता उन्नयन के लिए निजी क्षेत्र की इकाइयों द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की भी आवश्यकता है।

सूचनाओं की पहुँच में वृद्धि (Increase in Access of Information)

वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के साथ-साथ नई तकनीकों के बारे में जानकारी का निचले स्तर पर पहुँचना आवश्यक है। इस कारण राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर सूचना नेटवर्क का विस्तार किया जाना चाहिए। भारत जैसे देश में जहां पंचायती राज प्रणाली कार्य करती है, वहां राष्ट्रीय पंचायत पोर्टल का विकास इस दिशा में उठाया गया एक सकारात्मक कदम है। सूचनाओं को तार्किक बनाने के लिए सतत विकास के विभिन्न मानकों की पहचान तथा उनका उपयोग करने के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास किया जाना अपेक्षित है।

निर्णय लेने की प्रक्रिया के वैज्ञानिक आधार का सुदृढ़ीकरण (Strengthening of Scientific Basis of Decision Making)

नीति-निर्धारण में विज्ञान का सहयोग हमेशा लाभकारी होता है। इसके लिए प्रत्येक स्तर पर विज्ञान और नीति निर्धारण की प्रक्रिया को जोड़ने के लिए प्रावधान किए जाने चाहिए। अत: नीति-निर्धारकों तथा वैज्ञानिकों एवं अनुसंधानकर्ताओं के बीच सीधी बातचीत का होना अनिवार्य है।

जन संपर्क (Public Relations)

तकनीकों को प्रयोगशालाओं से निचले स्तर तक लाना विकास की एक पूर्व आवश्यकता है। इससे न केवल नई तकनीकों के प्रति जागरूकता बढ़ेगी बल्कि परंपरागत तकनीकों के साथ उनके समेकन में भी सहायता मिलेगी।

आम लोगों को संसाधनों के अनुकूलतम दोहन तथा उनके संरक्षण के प्रति सचेत बनाने के लिए व्यक्ति-विज्ञान संपर्क को सुदृढ़ बनाना अनिवार्य है।

समूह आठ की कार्य योजना (G8 Action Plan)

सतत विकास के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की रणनीति का निर्धारण वर्ष 2005 में समूह आठ की ईवियान (Evian) बैठक में किया गया था। तीन 'R' ("3R") की रणनीति में पहले 'R' का अर्थ 'रिड्युस' (Reduce), दूसरे का 'रियूज' (Reuse) तथा तीसरे का 'रिसायकल' (Recycle) है। सदस्यों द्वारा इस बात पर जोर दिया गया कि पर्यावरण के लिए हानिकारक तथा खतरनाक पदार्थों के उत्सर्जन को कम करना तथा संसाधनों के पुन: उपयोग तथा पुनर्चक्रण को बढ़ावा देना अपेक्षित है। ऐसे पुन: उपयोग तथा पुनर्चक्रण के लिए जिन पदार्थों, उत्पादों तथा तकनीकों की आवश्यकता है उनके सीमापार मुक्त प्रवाह पर आरोपित प्रतिबंध भी कम अथवा समाप्त किए जाने चाहिए। हालांकि यह ध्यान में रखना होगा कि यह प्रवाह विद्यमान व्यापार एवं पर्यावरण के मानकों के अनुरूप हो।

जहां तक विभिन्न देशों के आंतरिक मामलों का प्रश्न है, निश्चित रूप से केन्द्र तथा स्थानीय सरकारों के बीच सामंजस्य स्थापित करने वाली नीतियां बनाई जानी चाहिए। इसी प्रकार, निचले स्तर पर कार्य करने वाली गैर सरकारी संस्थाओं तथा एजेंसियों को भी संवेदनशील बनाने की जरूरत है। दूसरी ओर, यह भी आवश्यक है कि ऐसी तकनीकों के विकास और हस्तांतरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग किया जाए। इसके लिए राष्ट्रों द्वारा द्विपक्षीय अथवा बहुपक्षीय समझौते किए जाने चाहिए। समूह आठ द्वारा बनाई गई रणनीति में अन्य तथ्यों के अलावा निम्नांकित भी शामिल हैं:-

1. हाइड्रोजन अर्थव्यवस्था के लिए अन्तर्राष्ट्रीय साझेदारी (International Partnership for a Hydrogen Economy, IPHE) को लागू करना।

2. कार्बन सीक्वेसट्रेशन लीडरशिप फोरम की स्थापना।
3. संसाधनीय उत्पादकता में वृद्धि के लिए एक कार्य योजना का निरूपण।
4. पर्यावरणीय उत्पादों और सेवाओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर लगे प्रतिबंधों को आवश्यकतानुसार कम अथवा समाप्त करने की पहल।
5. वैश्विक स्तर पर कृषि से संबंधित समस्याओं को दूर करने के लिए तकनीकी सहायता का आदान-प्रदान।
6. विशेष रूप से अफ्रीका में कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग।

भूमंडलीकरण के काल में विज्ञान और प्राद्यौगिकी (Science & Technology in the Era of Globalisation)

जैसा कि आगे के अध्यायों में विस्तार से उल्लेख किया गया है, सामाजिक-आर्थिक विकास तथा मानव विकास के दृष्टिकोण से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के महत्व का पर्याप्त विस्तार हुआ है। इस संदर्भ में विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सरकार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के तत्काल बाद से ही विशेष प्रयास किये हैं। इन प्रयासों को पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सफल बनाने के प्रावधान भी किये गये हैं। इस अध्याय में भूमंडलीकरण के काल में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के बिकास से संबंधित तथ्यों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

यह सर्वविदित है कि भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण की संकल्पनाओं में प्रशुल्क दरों में कमी करने का लक्ष्य अन्तर्निहित है। इस कारण सरकारी कार्यक्रमों में स्वदेशी तकनीकों के विकास के दृष्टिकोण से नये अनुसंधानों पर विशेष बल दिया जा रहा है।

भूमंडलीकरण की शक्तियों का प्रादुर्भाव विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं की अन्तःक्रिया के कारण हुआ है। इसके फलस्वरूप, व्यापार और बाजार के नये मानक भी विकसित हुवे हैं। आर्थिक संवृद्धि तथा व्यापार एवं बाजार के इन मानकों के निर्धारण में वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय प्रक्रियाओं की विशिष्ट भूमिका है। लगभग सभी उत्पादों और सेवाओं में विस्तार के लिए प्रौद्योगिकीय प्रगति का योगदान बढ़ रहा है। यह भी आशा की जा सकती है कि आने वाले वर्षों में भी तीव्र गति से होने वाले वैज्ञानिक परिवर्तनों के कारण उत्पादों और सेवाओं का और भी विस्तार होगा। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि प्रौद्योगिकीय नवाचारों तथा बाजारी प्रक्रियाओं में आगामी वर्षों में निवेश की मात्रा में वृद्धि होने की प्रबल संभावना है।

जैसा कि हम जानते हैं, भारत सरकार ने समानान्तर रूप से उद्योग, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा अवसरंचना के क्षेत्रों में निवेश किया है। इस निवेश के कारण औद्योगिक क्षेत्र में तीव्र गति से प्रगति हुई है। यह प्रगति आयातित तकनीकों और उपकरणों पर व्यापक रूप से निर्भर करती है। दूसरी ओर, यह प्रगति अनुसंधान संस्थानों द्वारा आधारिक अनुसंधानों पर दिये जाने वाले बल पर भी निर्भर करती है। लेकिन आरंभिक चरणों में राष्ट्रीय अनुसंधान और विकास केन्द्रों तथा औद्योगिक विकास के मध्य एक बड़ी खाई निर्मित थी। इस खाई को पाटने के लिए कई कार्यक्रमों का क्रियान्वयन भी किया जा रहा है। हाल के वर्षों में प्रौद्योगिकीय अनुसंधानों पर बल देने के लिए विशेष कोष, मानव संसाधन तथा उपयुक्त वातावरण की सहायता दी जा रही है। इन अनुसंधानों के माध्यम से प्रौद्योगिकीय नवाचारों तथा उनके व्यावसायीकरण को सुनिश्चित किया जायेगा।

भूमंडलीकरण के इस युग में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के लिए मानवीय दक्षता की अनिवार्यता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रौद्योगिकीय नीति वक्तव्य में तकनीकी संस्थानों, पॉलिटेक्निकों तथा व्यावसायिक संस्थानों के आधार का विस्तार करने का प्रावधान है। इसी क्रम में वैज्ञानिक विकास के क्षेत्र में औद्योगिक क्षेत्र की सहभागिता भी अपेक्षित है। जहां तक अनुसंधान और विकास का प्रश्न है, कार्यक्रमों में निम्नांकित पक्षों को शामिल किया गया है:

1. औद्योगिक क्षेत्र में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की क्षमताओं की पहचान।
2. देश के आर्थिक विकास और संवृद्धि के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के आधार का विस्तार।
3. निजी और सार्वजनिक निवेश में पर्याप्त वृद्धि।

4. ऊर्जा के गैर-परंपरागत स्रोतों के अन्वेषण, अनुप्रयोग तथा संरक्षण के लिए ऊर्जा-संबद्ध तकनीकों का विकास।
5. शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में पोषण और स्वास्थ्य स्तरों को ऊँचा उठाने के लिए नई तकनीकों के विकास को प्रोत्साहन।

इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विज्ञान और तकनीक के माध्यम से मानव संसाधन विकास पर विशिष्ट बल दिया जा रहा है। साथ ही, देश के विभिन्न क्षेत्रों से प्रतिभाओं की खोज के लिए भी विशेष प्रयास किये जा रहे हैं ताकि उन्हें वैज्ञानिक और तकनीकी अनुसंधान कार्यक्रमों में सहभागी बनाया जा सके।

आलोचकों के अनुसार, भूमंडलीकरण ने गरीबी के विस्तार में योगदान दिया है। गरीबी का विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक है। भारत की कुल जनसंख्या का अधिकांश भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। भारत के गांवों की समस्याओं में बेरोजगारी, आर्थिक विषमता, अनुपयुक्त तकनीकों का उपयोग, निरक्षरता, न्यून स्वास्थ्य सेवाएं तथा असुरक्षित पेय जल प्रमुख हैं। इन सभी समस्याओं का निराकरण नई तकनीकों के द्वारा किया जा सकता है। इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य करने वाली संस्थाओं में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (Council of Scientific and Industrial Research, CSIR)] काउंसिल फॉर एडवांसमेंट ऑफ पीपुल्स एक्शन एंड रुरल टेक्नोलॉजी (Council for Advancement of People's Action and Rural Technologies, CAPART) तथा राष्ट्रीय अनुसंधान एवं विकास निगम (National Research and Development Corporation) प्रमुख हैं। इस दिशा में कई गैर-स्वयंसेवी संगठनों द्वारा भी कार्य किये जा रहे हैं। ग्रामीणों को नये वैज्ञानिक विकास की जानकारी प्रदान करने के उद्देश्य से ग्रामीण क्षेत्रों में समय-समय पर विज्ञान प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाता है। साथ ही, संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए कई राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रम भी चलाये जा रहे हैं। ऐसे कार्यक्रमों में संवर्द्धित मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम, राष्ट्रीय कुष्ठ रोग उन्मूलन कार्यक्रम, राष्ट्रीय घेघा उन्मूलन कार्यक्रम आदि प्रमुख हैं।

कृषि में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के सहयोग ने न केवल कृषकों की तकनीकी जागरूकता बढ़ाई है बल्कि इससे कृषि उत्पादन में भी अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। ग्रामीण विकास के दृष्टिकोण से फसल पूर्वानुमान के लिए प्रयुक्त दूर संवेदन तथा उच्च गुणवत्ता वाले बीजों के विकास संबंधी तकनीकों का महत्व अति विशिष्ट सिद्ध हुआ है। इसके अलावा, सरकार ने ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को तेज करने के उद्देश्य से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का संबंध राष्ट्रीय साक्षरता मिशन तथा रोजगारोन्मुखी कार्यक्रमों के साथ करने का प्रावधान किया है। इससे निश्चित रूप से दक्षता उन्नयन को बढ़ावा मिलेगा जो सकल ग्रामीण उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होगा।

स्वदेशी तकनीकों का विकास भी भारत के विकास का एक महत्वपूर्ण आयाम है। इस कार्य के लिए वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् को उत्तरदायी बनाया गया है। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि दसवीं योजना में इस बात पर बल दिया जा रहा है कि नवीं योजना में वैज्ञानिक विकास के जो कार्यक्रम आरंभ किये गये थे उन्हें चालू रखा जाना है। इनमें से कुछ कार्यक्रमों का संक्षिप्त उल्लेख आगे किया गया है।

यहां यह समझना आवश्यक है कि वैज्ञानिक और तकनीकी विकास किस प्रकार भारत के सामाजिक-आर्थिक ढांचे को सुदृढ़ बनाने में सहायक है। ऐसे सभी कार्यक्रमों का मूल आधार जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण का निर्माण है। जीवन की गुणवत्ता के बिना दक्षता उन्नयन संभव नहीं होता। इस आधार पर वैज्ञानिक कार्यक्रमों को पूर्णत: तार्किक कहा जा सकता है। सामाजिक आर्थिक विकास को ठोस आधार देने में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इस दृष्टिकोण से ऐसे कार्यक्रमों के तहत महिलाओं के लिए कई तकनीकी पार्कों की स्थापना का प्रावधान किया गया है। इसके अतिरिक्त, आवासन, स्वास्थ्य संवाओं के विस्तार, जल संसाधन प्रबंधन, पारिस्थितिकी संरक्षण तथा विशेषकर पहाड़ी क्षेत्रों में जैव परिमाण का सतत उपयोग आदि कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां विज्ञान का प्रयोग किया जा रहा है।

भूमंडलीकरण का लाभ लेते हुये भारत सरकार ने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय संधियों तथा समझौतों पर बल दिया है। विशेषकर, दक्षेस तथा आसियान के देशों के साथ ऐसी संधियां की जा रही हैं। वास्तव में, भारत ने लगभग 56 देशों के साथ विज्ञान के क्षेत्र में द्विपक्षीय संबंध स्थापित किये हैं। हाल ही में, भारत तथा अमेरिका ने संयुक्त रूप से एक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी फोरम की स्थापना की है। इन प्रयासों से आने वाले वर्षों में भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का स्तर विश्व के किसी भी विकसित देश के समकक्ष होगा।

भारत के वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान विभाग ने टेक्नोलॉजी प्रोमोशन, डेवेलवपमेंट एंड यूटिलाइजेशन नामक कार्यक्रम का क्रियान्वयन किया है जिसके निम्नांकित प्रमुख अवयव हैं:

1. उच्च स्तरीय प्रभाव वाले उत्पादों तथा प्रक्रियाओं के व्यावसायीकरण के लिए स्वदेशी क्षमता का निर्माण।
2. घरेलू उपयोग तथा निर्यात की आवश्यकताओं के अनुरूप परामर्शी क्षमताओं का सुदृढ़ीकरण।
3. तकनीक हस्तांतरण के लिए राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं प्रक्रियाओं का समर्थन।
4. अंकीय सूचना सेवाओं का प्रभावकारी अनुप्रयोग।
5. देश भर में विज्ञान और तकनीक के विकास के लिए आवश्यक अवसरंचनाओं का सुदृढ़ीकरण।

स्वदेशी तकनीकों के विकास के दृष्टिकोण से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यक्रम के रूप में प्रोग्राम एम्ड ऐट टेक्नोलॉजिकल सेल्फ रिलायंस (Programme Aimed at Technological Self-Reliance, PATSER) का क्रियान्वयन किया जा रहा है।

इस कार्यक्रम का आरंभ 1990 के दशक में किया गया था जिसका मूल उद्देश्य औद्योगिक परियोजनाओं को समर्थन प्रदान करना है। अब तक ऐसी लगभग 120 परियोजनाओं को स्वीकृति प्रदान की जा चुकी है। इस कार्यक्रम पर वार्षिक व्यय औसतन 6 करोड़ रुपए का है। कार्यक्रम के तहत पेटेंट के लिए कुल 20 आवेदन किये गये हैं। यह आशा व्यक्त की गई है कि वर्ष 2005 के अंत तक कार्यक्रम के तहत स्वीकृत परियोजनाओं पर लगभग 200 करोड़ रुपए का व्यय किया जायेगा।

यह विदित है कि स्वदेशी तकनीक के विकास में उद्यमशीलता का विकास अनिवार्य है। इस संदर्भ में विभाग द्वारा उद्यमी प्रवर्तन कार्यक्रम क्रियान्वित किया जा रहा है। कार्यक्रम को प्रौद्योगिकी सूचना पूर्वानुमान तथा मूल्यांकन परिषद् (Technology Information Forecasting and Assessment Council, TIFAC) द्वारा समर्थन प्रदान किया जा रहा है। परिषद् विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के अधीन एक स्वायत्त संस्था के रूप में कार्यरत है। वर्ष 1992 से क्रियान्वित किये जाने वाले होम ग्रोन टेक्नोलॉजी (Home Grown Technology, HGT) नामक कार्यक्रम के तहत कुल 50 परियोजनाओं को परिषद् द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई है।

स्वदेशी तकनीक के विकास के क्षेत्र में वर्ष 1996 से प्रौद्योगिकी विकास बोर्ड (Technology Development Board, TDB) कार्य कर रहा है। बोर्ड का मूल उद्देश्य उन औद्योगिक इकाइयों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना है जो स्वदेशी तकनीकों के व्यावसायिक उपयोग के लिए अथवा आयातित तकनीकों के घरेलू उपयोग के लिए प्रयासरत हैं।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी नीति, 2003 (Science & Technology Policy, 2003)

भारत की नई विज्ञान और प्राद्योगिकी नीति राष्ट्र के पुनर्निर्माण, आर्थिक विकास और स्थायित्व तथा राष्ट्र की सुरक्षा के प्रति पूर्णत: कटिबद्ध है। हांलाकि अब तक कई नीतियों के माध्यम से सतत विकास और संसाधनों के समतामूलक वितरण के प्रयास किये गये थे लेकिन आर्थिक अधिकारों की रक्षा और आर्थिक शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से एक पूर्णत: नई रणनीति की नितांत आवश्यकता थी। इसी तीक्ष्ण दृष्टि के साथ इस नई नीति की घोषणा की गई है। हाल के वर्षों में तकनीकी विकास तथा प्रगति के सामाजिक, विधायी तथा नैतिक आयामों पर विशेष बल दिया जाने लगा है। भूमंडलीकरण के इस युग में विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में एक नई चेतना के विकास की भी आवश्यकता है। इसका मूल कारण यह है कि विज्ञान लोगों, विशेषकर समाज के कमजोर वर्गों के जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इसी प्रकार विज्ञान से यह भी अपेक्षित है कि वह संसाधनों के अनुकूलतम दोहन से वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ-साथ भविष्य के लिए ऐसे संसाधनों का संरक्षण भी करे। इस आलोक में नीति के उद्देश्यों की व्याख्या की गई है। ऐसे उद्देश्यों में कुछ प्रमुख का उल्लेख नीचे किया गया है:

1. वैज्ञानिक और तकनीकी लाभों को निम्नतम स्तर तक पहुँचाने का प्रयास।
2. विकास के सभी पक्षों के साथ विज्ञान और तकनीक के प्रत्यक्ष और घनिष्ठ संबंधों की स्थापना का प्रयास।
3. सतत आधार पर लोगों के लिए खाद्य, कृषि, पोषण, पर्यावरणीय, जल, स्वास्थ्य तथा ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करना।

4. ग्रामीण तथा नगरों में क्षेत्रीय असंतुलन कम करने का प्रयास।
5. देश भर में स्वास्थ्य एवं पोषण संवाओं की पर्याप्त उपलब्धता।
6. गरीबी उपशमन के लिए हर संभव प्रयास।
7. विश्वविद्यालय स्तर पर वैज्ञानिक अनुसंधानों को प्रोत्साहन।
8. भारत की संस्कृति और सभ्यता के संरक्षण एवं परिरक्षण के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का उपयोग।
9. बौद्धिक सम्पदा के सृजन और उसके संरक्षण के लिए बौद्धिक संपदा अधिकारों की प्रणाली का सुदृढ़ीकरण।
10. सभी वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय गतिविधियों में महिलाओं की पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित कर उनका सशक्तिकरण।
11. अत्याधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के माध्यम से देश की सामरिक और सुरक्षा संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति।
12. विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में सार्वजनिक और निजी संस्थानों के मध्य समन्वय और सामंजस्य की स्थापना।
13. संकल्पना से अनुप्रयोग तक के स्तरों पर उन सभी प्रक्रियाओं का सुदृढ़ीकरण जिनका संबंध प्रौद्योगिकी विकास, मूल्यांकन, अवशोषण और उन्नयन से है।
14. विशेषकर बाढ़, सूखा, तूफान, भूकंप तथा भू-स्खलन जैसी प्राकृतिक आपदाओं के पूर्वानुमान तथा प्रबंधन के लिए अनुसंधान को व्यापक बनाने का प्रयास।
15. विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में पर्याप्त अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग।

सरकार ने इस नीति के माध्यम से तेजी से बदलते हुये वैश्विक परिदृश्य के अनुरूप विकास को दिशा देने का प्रयास किया है। इसके लिए नीति के क्रियान्वयन हेतु विशिष्ट रणनीति का निर्धारण भी किया गया है। इसके पूर्व बड़ी संख्या में विशेषज्ञों की राय ली गई है ताकि क्रियान्वयन के सभी अवरोधों को तत्काल दूर किया जा सके। नीति की एक विशेषता यह है कि व्यापक स्तर पर विकास के सभी आयामों के साथ विज्ञान और तकनीक के संबंधों की स्थापना के प्रयास किये जा रहे हैं। निश्चित रूप से इसके लिए अनुसंधान और विकास को प्राथमिकता दी गई है। भारत जैसे देश में यह अत्यन्त आवश्यक है कि किसी भी नीति को तब तक सफल नहीं बनाया जा सकता तब तक कि राज्य का समर्थन पर्याप्त नहीं हो। इस कारण नीति में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख है कि क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकारों का सहयोग प्रत्यक्ष तथा पूर्ण रूप से प्राप्त किया जायेगा।

भारत सरकार ने यह महसूस किया है कि देश में वैज्ञानिक और तकनीकी कार्यक्रमों को और अधिक गत्यात्मक तथा उत्पादक बनाने की आवश्यकता है। इस कारण न केवल क्रियान्वयन बल्कि मूल्यांकन तथा समीक्षा के स्तर को भी सुदृढ़ बनाने के प्रयास किये जाएंगे। नीति को क्रियान्वित करने वाले अधिकारियों को समय-समय पर आवश्यक सुझाव देने के उद्देश्य से एक उच्च-स्तरीय परामर्शदात्री समिति के गठन का भी प्रस्ताव है। समिति को दक्ष तथा कार्यकुशल बनाये रखने के लिए वैज्ञानिकों और तकनीकी विशेषज्ञों के अतिरिक्त औद्योगिक क्षेत्र के विशेषज्ञों को भी सदस्य के रूप में नियुक्त किया जायेगा। साथ ही, उद्योग को विज्ञान के साथ संबद्ध करने का एक उद्देश्य यह भी है कि इससे निवेश की पर्याप्तता सुनिश्चित की जा सकेगी।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास के लिए एक ओर जहां नई अवसंरचनाओं का निर्माण किया जायेगा, वहीं दूसरी ओर, विद्यमान अवसंरचनाओं के आधुनिकीकरण को भी प्राथमिकता दी जायेगी। इससे निश्चित रूप से चिकित्सा, अभियांत्रिकी और वैज्ञानिक संस्थानों को अपेक्षाकृत अधिक कार्यकुशल बनाने में सहायता मिलेगी। इसी क्रम में विश्वविद्यालय स्तर पर भी वैज्ञानिक अवसंरचनाओं के निर्माण को प्रोत्साहित किया जा रहा है। ऐसे सभी प्रयासों को सफल बनाने के लिए सरकार ने वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता की एक नई प्रणाली विकसित की है। इससे न केवल प्रशासकीय तथा वित्तीय समस्याएं दूर होंगी बल्कि भारतीय विज्ञान और तकनीक को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धात्मक भी बनाया जा सकेगा।

तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों के दृष्टिकोण से प्रशिक्षण और दक्षता उन्नयन कार्यक्रमों के तहत मानव संसाधन विकास के आधार को बढ़ाने का निर्णय किया गया है। इस क्रम में वैज्ञानिक और तकनीकी कार्यक्रमों में महिलाओं की पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करने

की भी योजना है। यह आशा व्यक्त की गई है कि इस नीति की सफलता से सभी वैज्ञानिक और तकनीकी लाभों को समाज के निचले स्तर तक उपलब्ध कराने के लक्ष्य भी प्राप्त होंगे जिनसे अन्ततः सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रियाओं को गति प्रदान की जा सकेगी।

किसी राष्ट्र की सुरक्षा में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विशेष योगदान होता है। इस संदर्भ में नीति में नई प्रतिरक्षा प्रौद्योगिकियों के विकास पर बल दिया जाना न्यायोचित प्रतीत होता है। इस कार्य के लिए सभी प्रक्रियाओं के सरलीकरण का भी प्रस्ताव है। विश्व बाजार में नये एवं अत्याधुनिक तकनीकों के विकास के लिए सरकार द्वारा कटिबद्धता व्यक्त की गई है।

तकनीक-आधारित निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए नये विधानों के निर्माण को प्राथमिकता दिया जाना नीति की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। एक अन्य विशेषता के रूप में यह प्रावधान किया गया है कि विश्व व्यापार के माध्यम से नई तकनीकों के आयात के लिए औद्योगिक इकाइयों को प्रशुल्क संबंधी सुविधाएं प्रदान की जाएंगी। वैज्ञानिक और तकनीकी लाभों को त्वरित गति प्रदान करने के लिए एक स्वायत्त प्रौद्योगिकी हस्तांतरण संगठन (Autonomous Technology Transfer Organisation) के गठन का प्रस्ताव है। यह संगठन विश्वविद्यालयों के सहायतार्थ कार्य करेगा। भारत के विज्ञान संबंधी परंपरागत ज्ञान के आलोक में नई नीति में इस परंपरागत ज्ञान तथा अत्याधुनिक तकनीकों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने पर जोर दिया गया है। साथ ही, बौद्धिक संपदा अधिकारों के संरक्षण की सहायता से विज्ञान और तकनीक के विकास को प्रोत्साहित किया जायेगा।

नई नीति को क्रियान्वित करने के लिए एक कार्य बल का गठन किया गया है जो विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सरकार को यथासंभव परामर्श देगा।

2. अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी (Space Science and Technology)

महत्व (Significance)

किसी भी ऐसे क्षेत्र जिसका केन्द्र नहीं होता, को अंतरिक्ष कहा जा सकता है। वास्तव में अंतरिक्ष विज्ञान की सहायता से एक ओर तो विकास को गति प्रदान की जा सकती है और दूसरी ओर, प्रगति और संवृद्धि की सभी प्रक्रियाओं को मानव के लिए कल्याणोन्मुखी बनाना भी संभव होता है। कई अवसरों पर आलोचकों का यह मानना रहा है कि अल्प विकसित अथवा विकासशील देशों को या तो अंतरिक्ष अनुसंधानों में निवेश नहीं करना चाहिए अथवा यदि निवेश करना आवश्यक है तो उसकी मात्रा अत्यन्त कम होनी चाहिए।

अंतरिक्ष विज्ञान ब्रह्मांडीय अथवा खागोलीय पिंडों के विस्तृत अध्ययन के अनुप्रयोगों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ब्रह्मांडीय अध्ययन के अन्तर्गत विभिन्न ग्रहों, उपग्रहों और क्षुद्रग्रहों को समझने का कार्य किया जाता है। इससे ऐसे पिंडों पर उपस्थित खनिजों तथा अन्य पदार्थों के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

दूसरी ओर जहां तक इसकी असैनिक उपयोगिता का प्रश्न है, कृषि के क्षेत्र में फसलों का पूर्वानुमान तथा मृदा संरचना का अध्ययन, संचार नेटवर्क का सुदृढ़ीकरण तथा संसाधनों की प्रस्थिति का आकलन और उन्हें गत्यात्मक प्रत्यक्ष समर्थन मिलता है।

इसी प्रकार, सैनिक कार्यों जैसे प्रक्षेपास्त्रों के विकास और अन्य प्रतिरक्षा तकनीकों को सुदृढ़ बनाने में अंतरिक्ष विज्ञान का पूरा लाभ लिया जा सकता है।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने ऐसी परिस्थितियों को जन्म दिया है जिनमें समाज के सामूहिक ज्ञान को आम लोगों के कल्याण के दृष्टिकोण से निम्नतम स्तर पर लाने में सहायता मिल रही है। इन परिस्थितियों में राष्ट्रीय नीतियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से समर्थन भी प्रदान किया जा रहा है। आम जीवन में इस तथ्य के प्रति जागरूकता अनिवार्य हो गई है कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के लाभ क्या हैं तथा यह हमें किस दिशा की ओर ले जा रही है। यह कार्य अंतरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के माध्यम से सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

यदि हम अंतरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास के इतिहास पर दृष्टि डालें तो यह ज्ञात होता है कि यूरोपीय पुनर्जागरण (European Renaissance) के काल में कदाचित इसका विकास आरंभ हुआ था। इस काल में ग्रहीय गति को नियंत्रित करने वाले आधारभूत भौतिक नियमों की खोज की गई थी तथा सूर्य की परिक्रमा करने वाले ग्रहों की कक्षाओं की गणना भी की गई थी। 17वीं शताब्दी में वैज्ञानिकों द्वारा दूरदर्शी (Telescope) का आविष्कार किया गया जिसने आगामी वर्षों में कई महत्वपूर्ण आविष्कारों में वैज्ञानिकों की सहायता की।

जहां तक रॉकेट विज्ञान का प्रश्न है, तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व चीन में बारूद के रूप में ठोस प्रणोदक का विकास किया गया था। बाद में 1045 ई. में बारूद को रॉकेट के ईंधन के रूप में पूरी तरह से प्रयोग में लाया जाने लगा तथा यह चीनी सैन्य रणनीति का एक अभिन्न अंग बन गया। 13वीं शताब्दी में चीन के शुंग वंश (Shunga Dynasty) ने मंगोलों (Mongols) के आक्रमणकारी दबाव से स्वयं की रक्षा करने के लिए नई तकनीकों के विकास को प्रोत्साहित किया था। इस क्रम में चीनी वैज्ञानिकों तथा आयुध विशेषज्ञों ने

कई प्रकार के प्रक्षेपकों (Projectiles) तथा विस्फोटक ग्रेनेडों एवं तोपों का विकास भी किया।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान पहली बार विमानों की सहायता से रॉकेट प्रक्षेपित किये गये थे जो शत्रु सेना के हाइड्रोजन से भरे बैलूनों को ध्वस्त करने के लिए थे। लेकिन इस अवधि तक रॉकेट विज्ञान की सबसे बड़ी समस्या के रूप में ईंधन की समस्या विद्यमान थी। इस लिए द्रव प्रणोदकों के विकास के लिए अनुसंधान कार्य किये जा रहे थे।

एक अमेरिकी वैज्ञानिक रॉबर्ट गोडार्ड (Robert Goddard) तथा जर्मनी के एक वैज्ञानिक वर्नहर वॉन ब्रॉन (Wernher von Braun) के नाम ऐसे अनुसंधानों में अग्रणी थे। इनमें से गोडार्ड ने सर्वप्रथम द्रव प्रणोदक का उपयोग करने वाले रॉकेट का सफल प्रक्षेपण किया था।

रॉकेट विज्ञान तथा अन्य संबद्ध अनुसंधानों एवं अविष्कारों के साथ ही अंतरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने विकास के नये क्षेत्रों की पहचान की ताकि ऐसे वैज्ञानिक अनुसंधानों का अनुप्रयोग सुनिश्चित किया जा सके। इन क्षेत्रों में से कुछ का उल्लेख नीचे किया गया है:

1. संसाधन निगरानी, प्रस्थिति मूल्यांकन और प्रबंधन।
2. उपग्रह-आधारित संचार।
3. मौसम संबंधी अवलोकन।
4. कृषि जलवायवीय अध्ययन।
5. नगरीकरण और व्यवस्थापन।
6. चौकसी और अन्य प्रतिरक्षा एवं सामरिक मुद्दे।
7. खगोलीय अध्ययन।
8. असैनिक उपयोग के लिए तकनीक हस्तांतरण।

कक्षाओं के प्रकार (Types of Orbits)

1. **ध्रुवीय कक्षा** (Polar Orbit):- 90 डिग्री की आनति (Inclination) वाली कक्षा को ध्रुवीय कक्षा कहते हैं। इस कक्षा में सामान्यत: दूर संवेदी उपग्रहों को स्थापित किया जाता है जिनका मुख्य कार्य मानचित्रीकरण तथा चौकसी है। इसका कारण यह है कि ग्रह की गति के घूर्णन के साथ उपग्रह ग्रह के लगभग सभी भागों का अध्ययन कर पाने में सक्षम होता है। सामान्यत: इसकी ऊँचाई विषुवत रेखा से 1000 कि.मी. होती है।

2. **भू-तुल्यकालिक कक्षा** (Geosynchronous Orbit):- पृथ्वी के चारों-ओर 24 घंटे के आवर्त्त वाली वृत्ताकार कक्षा को भू-तुल्यकालिक कक्षा कहते हैं। इसकी आनति (Inclination) शून्य डिग्री होती है तथा इसे भू-स्थैतिक कक्षा (Geostationary orbit) भी कहा जाता है। सामान्य रूप से इस कक्षा में संचार एवं मौसम संबंधी उपग्रह स्थापित किये जाते हैं। इसका कारण यह है कि इस कक्षा में स्थापित उपग्रह अपने स्थान पर स्थिर दिखाई पड़ते हैं तथा विषुवत रेखा के ठीक ऊपर अवस्थित होते हैं। तकनीकी रूप से अंतरिक्ष यान को पहले एक दीर्घवृत्ताकार (Elliptical) कक्षा, जिसे भू-तुल्यकालिक हस्तांतरण कक्षा (Geosynchronous Transfer Orbit, GTO) कहते हैं, में स्थापित किया जाता है। इसका अपभू (Apogee) 35,786 कि.मी. होता है। कक्षा को इसके बाद वृत्ताकार बनाने के लिए अंतरिक्ष यान के ईंजन को अपभू से प्रज्वलित किया जाता है।

3. **सूर्य-तुल्यकालिक कक्षा** (Sunsynchronous Orbit):- इसे वाकिंग ऑरबिट (Walking Orbit) भी कहते हैं क्योंकि इसके कक्षीय तल (Orbital Plane) का आवर्त्त (Period) ग्रह की सौर कक्षा के आवर्त्त के समान होता है। यह कक्षा उन उपग्रहों के लिए प्रभावकारी है जिनके द्वारा उपकरणों के माध्यम से ग्रह की सतह पर सूर्य के प्रकाश का अध्ययन किया जाता है।

4. **पूर्वगामी कक्षा** (Precessing Orbit):- यह कक्षा भी वाकिंग कक्षा की भांति होती है जिसमें उपग्रह पर कई प्रकार के गुरूत्वीय प्रभाव पड़ते हैं। ये प्रभाव सूर्य, ग्रहों तथा चन्द्रमा के कारण उत्पन्न होते हैं।

5. **मॉल्निया कक्षा** (Molniya Orbit):- यह पृथ्वी की अत्यधिक उत्केन्द्री (Eccentric) कक्षा है जिसका आवर्त्त लगभग 12 घंटों का होता है। इसमें कक्षीय आनति (Orbital inclination) का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि उपभू (Perigee) के परिवर्तन की दर शून्य हो। ऐसा करने से उच्च उत्तरी अक्षांशों पर सतह की व्यापक तथा सटीक जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

भारत में अंतरिक्ष कार्यक्रम का उद्विकास (Evolution of Space Programme in India)

अंतरिक्ष के क्षेत्र में तीव्र गति से होने वाले विकास ने वास्तव में सतत विकास की अवधारणा को पूर्व की अपेक्षा वर्तमान में अधिक प्रासंगिक तथा उपयोगी बना दिया है।

भारत के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के विकास कार्यक्रमों से प्रभावित होकर डा. विक्रम साराभाई ने भारत में अंतरिक्ष कार्यक्रम की आधारशिला रखी। इस दिशा में पहला ठोस प्रयास भारतीय राष्ट्रीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति (Indian National Committee for Space Research, INCOSPAR) के गठन के रूप में किया गया। समिति का गठन डा. साराभाई की अध्यक्षता में सन् 1962 में किया गया था। समिति ने भारत में अंतरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास तथा सभी क्षेत्रों में इसकी उपयोगिता तलाशने का कार्य आरंभ किया।

प्रारंभिक अध्ययनों के आधार पर भारत में 1972 में अंतरिक्ष आयोग तथा अंतरिक्ष विभाग की स्थापना की गई जिसके फलस्वरूप अंतरिक्ष कार्यक्रमों को त्वरित गति प्रदान की गई। अन्तत: 1975 में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान केन्द्र (Indian Space Research Organisation, ISRO) के पूर्ण रूप से कार्य आरंभ करने के साथ ही अंतरिक्ष कार्यक्रमों की सफलता की संभावनाएं प्रबल हो गईं। उल्लेखनीय है कि इसरो की स्थापना 1969 में की गई थी लेकिन 1975 से यह पूर्ण रूप से एक सरकारी संस्था के रूप में कार्य कर रहा है। इन संगठनों ने भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रमों के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुये इस दिशा में कार्य आरंभ किये। इन उद्देश्यों में निम्नांकित अत्यन्त महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं:

1. अंतरिक्ष-आधारित संचार की आम जनता, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली जनसंख्या तक उपलब्धता।
2. मौसम पूर्वनुमान, संसाधन निगरानी, फसल पूर्वानुमान तथा आपदा प्रबंधन में दूर संवेदन तकनीक का बेहतर अनुप्रयोग।
3. पर्यावरणीय प्रस्थिति मूल्यांकन तथा पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन की सहायता से पर्यावरण मानकीकरण सुनिश्चित करने का प्रयास।
4. अंतरिक्ष के लिए अवसंरचनाओं का निर्माण। इन संरचनाओं में प्रमोचक यानों, प्रणोदकों तथा उपग्रहों के विकास की संरचनाएं सम्मिलित होंगी।

इन उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में भारत विशेष रूप से दूर संवेदी उपग्रहों को उनकी कक्षाओं में स्थापित करने वाले प्रमोचक यानों (Launch Vehicles) के निर्माण और विकास में कमोबेश स्वावलंबी हो गया है। हाल के वर्षों में इन्हीं प्रमोचक यानों की सहायता से शिक्षा तथा मौसम संबंधी उपग्रहों को भू-स्थैतिक कक्षा में भी स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई है। बहुत हद तक भारत ने संचार उपग्रहों की क्षमताओं में वृद्धि के दृष्टिकोण से भी कई सफल प्रयास किये हैं।

एक ओर जहां भारत ने मेटसैट -1 (अब कल्पना -1), इनसैट - 3ए, आई.आर.एस. -पी 5 (रिसोर्ससैट) तथा हाल ही में कार्टोसैट - 1 जैसे उपग्रहों को सफलतापूर्वक प्रक्षेपित किया है, वहीं दूसरी ओर, भारत क्रायोजेनिक ईंजन के विकास के प्रति भी पूर्णत: कटिबद्ध है।

इसरो ने आगामी वर्षों में संचार और दूर संवेदन के कई विषय-विशिष्ट उपग्रहों के विकास की योजना बनाई है। इन विषयों में स्वास्थ्य, आपदा प्रबंधन तथा महासागरीय अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। इसरो के पूर्व अध्यक्ष, डा. जी. माधवन नायर के शब्दों में, 'इन उपग्रहों के माध्यम से भारत अंतरिक्ष की उपयोगिताओं को समाज के कमजोर वर्गों तक उपलब्ध कराने में सफल हो सकेगा। वस्तुत: भारत विकास में अन्य देशों मे विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के अत्याधुनिक विकास की सहायता से ही आगे बढ़ सकता है।'

आम लोगों को सशक्त बनाने के लिए इसरो ने ग्रामीण सूचना छतरियों (Village Information Kiosks) की स्थापना की योजना बनाई

है। इनके माध्यम से दूरस्थ-चिकित्सा (Telemedicine), दूरस्थ-शिक्षा (Tele-education) जैसी स्थानिक सूचना सेवाएं उपलब्ध कराई जा सकेंगी। इनके अतिरिक्त, एक कार्यशील आपदा प्रबंधन नेटवर्क के विकास का भी प्रस्ताव है।

हाल के वर्षों में विशेषकर मंगल ग्रह के अध्ययनों ने भारत सहित विश्व के अन्य देशों को भी अंतरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के प्रति अत्यधिक जागरूक बना दिया है। इस क्रम में चन्द्रयान-1 मिशन का महत्व अति विशिष्ट है।

यह सर्वविदित है कि अंतरिक्ष गतिविधियों से अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा मिलता है। वस्तुत: मानव प्रजाति तथा सम्पूर्ण पारिस्थितिकी के लिए बाह्य अंतरिक्ष को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है जो निश्चित रूप से तर्कसंगत एवं न्यायोचित है।

ऐसी परिस्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से ही व्यापक स्तर पर अंतरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास कार्य किये जा सकते हैं। इस पृष्ठभूमि में भारत ने लगभग 56 देशों के साथ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में समझौते किये हैं। आगामी वर्षों में कई और देशों के साथ भी ऐसी ही संधियां होने की पूरी संभावना है।

अंतरिक्ष-आधारित संचार का उद्‌विकास (Evolution of Space-based Communication)

अपनी सर्वशक्तिमता (Omnipotence) के कारण अंतरिक्ष संचार ने आधुनिक विश्व में क्रांतिकारी परिवर्तन किये हैं। हम इस तथ्य से इनकार नहीं कर सकते कि तेजी से बदलते हुये वैश्विक परिदृश्य में प्रौद्योगिकीय, सामाजिक, आर्थिक तथा पर्यावरणीय विकास के संदर्भ में अंतरिक्ष संचार के माध्यम से ही संचार प्रणाली को सर्वव्यापी बनाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, किसी भी विकासशील देश में लगभग सभी तकनीकों के विकास पर बल दिया जाना अनिवार्य है ताकि शहरी तथा ग्रामीण, दोनों ही क्षेत्रों में शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाया जा सके। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भी अंतरिक्ष संचार का विकास तर्कसंगत है।

उपग्रह संचार के महत्व को देखते हुये भारत सरकार द्वारा 1970 के दशक में ही प्रयास आरंभ किये गये थे। वर्ष 1975-76 में उपग्रह निर्देशित दूरदर्शन प्रयोग (Satellite Ins-tructional Television Experiment, SITE) नामक कार्यक्रम आरंभ किया गया था। इस कार्यक्रम में एक अमेरिकी उपग्रह ए.टी.एस.-6 (ATS - 6) का उपयोग किया गया था। इसके माध्यम से संचार प्रौद्योगिकी को ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचाने में अप्रतिम योगदान दिया। इसके तहत शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन आदि विषयों पर विशिष्ट कार्यक्रम बनाये गये थे। इस कार्यक्रम को विश्व के वृहततम समाजशास्त्रीय कार्यक्रमों में से एक कहा गया है।

इसी प्रकार, 1977-79 में उपग्रह दूरसंचार प्रयोगात्मक परियोजना (Satellite Telecommunication Experimental Project, STEP) की शुरूआत की गई जिसमें फ्रांस तथा जर्मनी के संयुक्त उपग्रह सिम्फनी (Symphonie) का प्रयोग किया गया था। हालांकि भारत ने इन कार्यक्रमों में विदेशी उपग्रहों की सहायता ली थी लेकिन इसके बावजूद भारतीय उपग्रह-आधारित संचार प्रणाली को सुदृढ़ बनाने में इनसे व्यापक सहायता मिली।

जून 1981 में भारत ने अपने पहले संचार उपग्रह एपल (Ariane Passenger Pay Load Experi-ment, APPLE) का सफल प्रक्षेपण किया जिसने भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान के समाजशास्त्रीय उद्देश्यों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उपग्रह संचार के क्षेत्र में वर्ष 1983 का विशेष महत्व है क्योंकि इस वर्ष इनसैट -1 बी के सफल प्रक्षेपण के साथ ही इस प्रणाली को राष्ट्र को समर्पित किया गया था। इसकी सहायता से भारत आज भी अंतरिक्ष संचार के क्षेत्र में अपना मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

अंतरिक्ष संचार नीति (Satellite Communication Policy)

भारत सरकार द्वारा एक अंतरिक्ष संचार नीति को स्वीकृति प्रदान की गई है जिसके क्रियान्वयन के लिए 12 जनवरी, 2000 को एक कार्य योजना भी निरूपित की गई है। इस कार्य योजना में निम्नांकित तथ्यों को प्राथमिकता दी गई है:

1. भूमंडलीकरण के दौर में दूरसंचार के क्षेत्र के उदारीकरण से निजी इकाइयों को भागीदार बनाने के लिए उन्हें अधिक से अधिक प्रोत्साहन।

2. इनसैट क्षमता को दूरसंचार विभाग, दूरदर्शन तथा आकाशवाणी को सौंपने का निर्णय। एक अन्तरापृष्ठ एजेंसी के रूप में इनसैट समन्वय समिति कार्य करेगी लेकिन इसके लिए अंतरिक्ष विभाग शीर्षस्थ संस्था होगी।

3. भारतीय उपग्रहों की स्थापना तथा कार्य संचालन के लिए उन भारतीय कंपनियों को उत्तरदायी बनाया गया है जिनमें विदेशी निवेश की सीमा 74 प्रतिशत तक है। अंतरिक्ष विभाग की अध्यक्षता में एक अन्तर-मंत्रालयी समिति का भी गठन किया गया है जो आवेदनों के प्रसंस्करण को सुनिश्चित करेगी।

4. केवल विशिष्ट परिस्थितियों में ही विदेशी उपग्रहों की सेवाएं प्राप्त की जाएंगी। इसके लिए ऐसी सेवा प्राप्त करने वाली एजेंसियां अंतरिक्ष विभाग से संपर्क स्थापित करेंगी।

इनसैट प्रणाली (The INSAT System)

यह एक बहुआयामी उपग्रह प्रणाली है जिसका विकास देश के सामाजिक-आर्थिक ढांचे को प्रगतिशील बनाने के लिए किया गया है। इस प्रणाली का उपयोग दूरसंचार, दूरदर्शन, राहत एवं बचाव, मौसम संबंधी जानकारी प्राप्त करने तथा रेडियो नेटवर्किंग के लिए किया जा रहा है। अब तक तीन पीढ़ी के इनसैट उपग्रहों को प्रक्षेपित किया जा चुका है जबकि चौथी पीढ़ी के उपग्रहों को वर्ष 2007 तक प्रक्षेपित किये जाने की संभावना है।

इनसैट प्रणाली को 30 अगस्त, 1983 को इनसैट -1बी. के सफल प्रक्षेपण के साथ राष्ट्र को समर्पित किया गया था। हालांकि यह कार्य 10 अप्रैल, 1982 को ही होना था लेकिन इनसैट -1ए की असफलता के कारण यह लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सका।

इनसैट उपग्रहों में प्रयुक्त वेरी हाई रिजोल्यूशन रेडियोमीटर (Very High Resolution Radiometer, VHRR) की सहायता से दूरसंचार, दूरदर्शन तथा रेडियो नेटवर्क के अतिरिक्त मोबाइल नेटवर्क का भी विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण किया जाता है। राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इनसैट प्रणाली को प्रभावी बनाने में कई एजेंसियों जैसे दूरसंचार विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय तथा भारतीय मौसम विभाग की भूमिका अत्यन्त कारगर सिद्ध हुई है। इस दिशा में भारत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि 3 अप्रैल 1999 को फ्रेंच गुआना के कौरू प्रक्षेपण केन्द्र से इनसैट-2 ई का सफल प्रक्षेपण किया गया था। वर्ष 1999 तक यह भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा विकसित सर्वाधिक उत्कृष्ट उपग्रह था। इसमें 17 सी-बैंड तथा विस्तरित सी-बैंड ट्रांसपौंडर, इनसैट -2ए तथा इनसैट -2बी की भांति वी.एच.आर.आर. के अतिरिक्त जलवाष्प चैनेल (Water Vapour Channel) तथा एक चार्ज्ड कपल डिवाइस (Charged Couple Device) कैमरे का भी प्रयोग किया गया था। इस कैमरे के माध्यम से एक किलोमीटर की दूरी तक दृश्य, निकटस्थ अवरक्त तथा लघु तरंगदैर्ध्य वाली अवरक्त विकिरणों का प्रयोग कर चित्रण किया जा सकता है।

इसी क्रम में भारत ने 22 मार्च, 2000 को इनसैट -3बी का सफल प्रक्षेपण किया था जिसने भारत को अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में विश्व के अग्रणी देशों की श्रेणी में खड़ा कर दिया। इस उपग्रह ने न केवल इनसैट प्रणाली की गुणवत्ता बल्कि सम्पूर्ण संचार नेटवर्क के सुदृढ़ीकरण में अति विशिष्ट योगदान भी दिया।

इनसैट प्रणाली के प्रमुख अनुप्रयोग (Main Applications of INSAT System)

1. **स्वर्णजयंती विद्या विकास अंतरिक्ष उपग्रह योजना (विद्या वाहिनी):-** इस कार्यक्रम का आरंभ उड़ीसा में मई 2000 में किया गया था जिसका मुख्य उद्देश्य कालाहांडी- बोलंगीर- कोरापेट क्षेत्र के 800 गांवों में विकासोन्मुखी संचार की सुविधा उपलब्ध कराना था।

2. **दूरस्थ शिक्षा:-** इनसैट -3बी के विशिष्ट ट्रांसपौंडर की सहायता से आंध्र प्रदेश में दूरस्थ शिक्षा का कार्यक्रम क्रियान्वित किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, उपग्रह के माध्यम से कृषि, दूरस्थ चिकित्सा, इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन जैसे क्षेत्रों में भी विशेष कार्यक्रम क्रियान्वित किये जा रहे हैं।

3. **झाबुआ विकास संचार परियोजना** (Jhabua Development Communication Project, JDCP):- मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले

के सभी पंचायतों के लगभग 200 गांवों जो धार तथा बरवानी जिलों के समीपवर्ती हैं, में 1 नवम्बर, 1996 को इस कार्यक्रम का आरंभ किया गया था।

इसके तहत 1995 में आरंभ किये गये प्रशिक्षण तथा विकास संचार चैनल (Training and Development Communication Channel) का प्रयोग किया जाता है। इस चैनल के माध्यम से एकल-मार्गी वीडियो तथा द्विमार्गी ऑडियो अंतरापृष्ठ नेटवर्क उपलब्ध कराया जाता है। इसके लिए इनसैट- 3बी समन्वय का कार्य करता है।

संचार में इनसैट की भूमिका (Role of INSAT in Communication)

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के तहत उपग्रह संचार प्रणाली के दो आधार स्तंभ हैं - इनसैट तथा दूर संवेदी उपग्रह। विगत वर्षों में भारत ने इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभाओं और क्षमताओं का प्रदर्शन भी किया है। लेकिन अब तक भारत को भू-स्थैतिक कक्षा में उपग्रहों को स्थापित करने में स्वावलंबन प्राप्त नहीं हो पाया है। इस कारण ऐसे प्रक्षेपणों के लिए भारत को विदेशी प्रमोचक यानों पर निर्भर होना पड़ता है। जहां तक उपग्रहों का प्रश्न है, भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) को संचार तथा दूर संवेदी, दोनों ही प्रकार के उपग्रहों का स्वदेशी तकनीक से विकास करने में सफलता मिली है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, निकट भविष्य में भारत द्वारा इनसैट -3डी तथा इनसैट-3 ई उपग्रहों का प्रक्षेपण किया जायेगा। यह संभावना व्यक्त की गई है कि इन प्रक्षेपणों के उपरांत दूरदर्शन प्रसारण में उपग्रहों की भूमिका का व्यापक विस्तार होगा तथा दूर संचार के क्षेत्र में संवृद्धि की दर भी बढ़ाई जा सकेगी।

इसरो ने यह आशा की थी कि वर्ष 2001 तक इनसैट उपग्रहों में लगभग 160 ट्रांसपौंडर कार्य करेंगे। लेकिन उपरोक्त दोनों उपग्रहों के प्रक्षेपण के उपरांत ट्रांसपौंडरों की संख्या बढ़कर 122 होगी। वास्तव में सुदृढ़ संचार की तेजी से बढ़ती हुई मांग के कारण भारत को कुल 300 सी-बैंड ट्रांसपौंडरों की आवश्यकता है। लेकिन वर्ष 2007 तक इस संख्या के 250 तक ही पहुंचने की आशा है। वर्तमान में कुल 15 विदेशी उपग्रहों की सेवाएं ली जा रही हैं।

भारत को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि उपग्रहों में प्रयुक्त विस्तरित सी-बैंड ट्रांसपौंडर सही रूप में कार्य करते रहें। दुर्भाग्यवश अब तक इनसैट उपग्रहों में प्रयुक्त ऐसे ट्रांसपौंडरों से अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं किये जा सके हैं। तकनीकी रूप से विस्तरित-सी बैंड ट्रांसपौंडर रेडियो आवृत्ति में कार्य करते हैं। सरकार ने इस सेवा के व्यापक विस्तार और संचार नेटवर्क को सुदृढ़ बनाने के लिए जनवरी 2000 में एक उपग्रह संचार नीति की घोषणा की थी। इस नीति के प्रभावी हो जाने से यह आशा की गई है कि वर्ष 2007 तक 300 ट्रांसपौंडरों की आवश्यकता के संदर्भ में निजी इकाइयों की भूमिका का विस्तार होगा। इसके लिए कई अन्य प्रयास भी किये गये हैं। इन प्रयासों में कम तथा लंबी दूरी के लिए दूर संचार सुविधाओं का उपयोग करने की छूट विदेश संचार निगम लिमिटेड के अतिरिक्त कई अन्य एजेंसियों को भी प्रदान करना शामिल है। साथ ही, प्रकाश तंतुओं के नेटवर्क के विस्तार पर अत्यधिक बल दिया गया है जो आने वाले वर्षों में निश्चित रूप से संचार नेटवर्क के सुदृढ़ीकरण में सहायक होगा।

इनसैट प्रणाली के प्रभाव (Impact of INSAT System)

राष्ट्र को समर्पित किये जाने के साथ ही इनसैट प्रणाली भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। विकासोन्मुखी प्रक्रियाओं को बेहतर बनाने के लिए यह दूरस्थ अवस्थित क्षेत्रों में भी संचार को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करती है।

निश्चित रूप से यह कार्य कम कीमत वाले टर्मिनलों (Low Cost Terminals, LCTs) से संभव हो सका है। साथ ही, 450 पृथ्वीय केन्द्रों (Earth Stations) भी कार्यरत हैं। इनके अतिरिक्त, लगभग 12,000 वी-सैट भी स्थापित किये गये हैं। इनसैट प्रणाली के प्रभावों में से कुछ प्रमुख का उल्लेख नीचे किया गया है:

1. व्यापारिक प्रतिष्ठानों की संचार संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति।
2. जनसंख्या के लगभग 85 प्रतिशत भाग तक दूरदर्शन नेटवर्क की उपलब्धता सुनिश्चित करने का प्रयास।

3. प्रशिक्षण और विकासोन्मुखी शिक्षा का विस्तार।
4. औद्योगिकी कर्मचारियों, समाज कल्याण के क्षेत्र में कार्यरत लोगों तथा पंचायती राज संस्थाओं के कर्मचारियों को कार्यस्थल पर ही प्रशिक्षण देने की सुविधा की उपलब्धता।
5. आम नागरिकों के साथ-साथ जनजातियों में स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, परिवार नियोजन तथा अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता का विकास।
6. मौसमी घटनाक्रमों के सटीक पूर्वानुमान में सहायता।
7. आपदा प्रबंधन के लिए एक पूर्व सूचना प्रणाली के विकास में सहायता। तूफान-संभावित क्षेत्रों तथा भारत के पूर्वी एवं पश्चिमी तट पर अब तक लगभग 250 आपदा सूचना संग्राहकों की स्थापना की गई है।

वी-सैट (VSAT)

इनसैट प्रणाली को भू-स्थित वी-सैट के माध्यम से कार्यशील बनाया जाता है। तकनीकी रूप से वी-सैट पृष्ठीय समस्याओं से सुरक्षित होता है। विगत वर्षों में वी-सैट का उपयोग सूचनाओं के संप्रेषण से कहीं अधिक होने लगा है। हांलाकि भारत ने संचार के क्षेत्र में कई उत्कृष्ट कार्य किये हैं लकिन अब भी इस दिशा में ठोस प्रयास करने की नितांत आवश्यकता है। इनसैट -3बी में प्रयुक्त के.यू. बैंड ट्रांसपौंडरों के कारण वी-सैट सेवाओं के विस्तार तथा बैंडविथ के विस्तृत होने की पूरी संभावना है। वी-सैट के माध्यम से इंटरनेट सेवाओं का भी विस्तार करने की योजना है। वर्तमान में वी-सैट का प्रयोग इंट्रानेट में किया जाता है जिससे अन्ततः इन्टरनेट की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। वी-सैट उद्योग के समक्ष विद्यमान समस्याओं में सरकार के निर्देशानुसार बड़े एन्टिना का प्रयोग जिससे कीमत वृद्धि होती है, विदेशी उपग्रहों के प्रयोग पर रोक तथा इंटरनेट सेवाओं के विस्तार पर रोक प्रमुख हैं।

वी-सैट के औद्योगिक उपयोग (Industrial Uses of VSATs)

1. जैसा कि हम जानते हैं, वी-सैट सूचना संप्रेषण के लिए अत्यन्त उपयोगी है अतः स्टॉक एक्सचेंजों में इनका प्रयोग व्यापक स्तर पर किया जाता है। नेशनल स्टॉक एक्सचेंज के पास देश का वृहत्तम वी-सैट नेटवर्क है।
2. अन्तर्क्रियात्मक स्कूली शिक्षा में वी-सैट का प्रयोग अत्यन्त उपयोगी है।
3. तेल अन्वेषण में वी-सैट तथा माइक्रोवेव संचार का एकीकृत उपयोग।
4. खुदरा बैंकिंग में विशेषकर ए.टी.एम. सेवाओं के विस्तार में।

दूर संवेदन (Remote Sensing)

दूर संवेदन वह विज्ञान है जिसमें संपर्क में आये बिना पृथ्वी की सतह से संबंधित सूचनाएं ग्रहण की जाती हैं। इन सूचनाओं को संवेदकों द्वारा संग्रहित कर उनका विश्लेषण किया जाता है जिसके उपरांत उनका अनुप्रयोग किया जाता है।

तकनीकी रूप से दूर संवेदन को निम्नांकित रूप में परिभाषित किया जा सकता है। 'किसी पदार्थ, वस्तु अथवा प्रक्रिया की पार्थिव संपर्क के बिना संवेदकों के माध्यम से विस्तृत सूचना प्राप्त करने की तकनीक को दूर संवेदन कहते हैं।'

दूर संवेदन की पहली पूर्व आवश्यकता ऊर्जा का स्रोत है जो लक्ष्य को विद्युत चुंबकीय ऊर्जा प्रदान करता है। स्रोत से लक्ष्य तक प्रवाहित होने के क्रम में यह ऊर्जा वायुमंडल के संपर्क में आकर उससे अन्तःक्रिया करती है। लक्ष्य से संवेदक तक ऊर्जा के प्रवाह के दौरान दुबारा ऐसी अन्तःक्रिया के होने की भी संभावना होती है। जब ऊर्जा का प्रकीर्णन (Scattering) होता है तो संवेदकों द्वारा विद्युत चुंबकीय विकिरणों के रूप में ऊर्जा का संग्रहण किया जाता है। इन विकिरणों को संवेदकों द्वारा संग्राहक केन्द्रों तक संप्रेषित किया जाता है जहां उनका विश्लेषण तथा उपयोग होता है।

एक तकनीक के रूप में दूर संवेदन को 19वीं शताब्दी में संकल्पित किया गया था। लगभग सौ वर्षों तक दूर संवेदन की सर्वाधिक

महत्वपूर्ण युक्ति फोटोग्राफी कैमरा थी। ऊपरी वायुमंडल में दूर संवेदन तकनीक का विकास अंतरिक्ष विज्ञान के विकास के आरंभिक चरणों में हुआ था। वर्ष 1946 में अमेरिका द्वारा वाइकिंग-2 (Viking-2) नामक रॉकेट का प्रक्षेपण किया गया था। यान में प्रयुक्त कैमरों की सहायता से ऊँचाइयों पर अवस्थित पिंडों के चित्र लिये गये थे। पहली बार बादलों के अध्ययन के लिए संवेदकों का प्रयोग किया गया था। अमेरिका द्वारा पहले मौसम संबंधी अध्ययनों के लिए टायरॉस-1 (Television Infrared Observation Satellite, TIROS) श्रेणी के उपग्रह का प्रक्षेपण 1 अप्रैल, 1960 को किया गया था। इस श्रेणी के कुल दस उपग्रहों का प्रक्षेपण हुआ था। इन उपग्रहों में विडिकॉन कैमरे प्रयुक्त हुये थे। 1960 के दशक में मानव ने अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति करते हुये कई विशिष्ट अध्ययन किये। संवेदक तकनीक के तहत प्राप्त विकिरणों के वर्णक्रम के आधार पर भी चित्रण को पर्याप्त सफलता मिली।

निष्क्रिय तथा सक्रिय संवेदन (Passive & Active Sensing)

यह विदित है कि दूर संवेदन के लिए ऊर्जा के एक स्रोत का होना अनिवार्य है। निश्चित रूप से सूर्य ऊर्जा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत है। सौर ऊर्जा या तो दृश्य तरंगदैर्घ्य के रूप में परावर्तित हो जाती है या फिर पहले अवशोषित होती है तथा उसके बाद पुन: उत्सर्जित हो जाती है। यह उत्सर्जन तापीय अवरक्त विकिरणों के रूप में होता है। ऐसी दूर संवेदन प्रणालियां जो स्वाभाविक रूप से उपलब्ध ऊर्जा की माप करती हैं, निष्क्रिय संवेदन कहलाती हैं। निष्क्रिय संवेदकों का उपयोग तभी किया जा सकता है जब ऊर्जा स्वाभाविक रूप से उपलब्ध हो। सभी परावर्तित ऊर्जा के लिए यह प्रक्रिया तब होती है जब सूर्य का प्रकाश पृथ्वी की सतह पर पड़ रहा होता है। सूर्य से परावर्तित ऊर्जा की प्राप्ति रात्रि में नहीं होती। दूसरी ओर, तापीय अवरक्त विकिरणों के रूप में स्वाभाविक रूप से उत्सर्जित होने वाली ऊर्जा दिन तथा रात दोनों ही समय उपलब्ध होती है जिसकी माप की जा सकती है।

इसके विपरीत, सक्रिय संवेदकों द्वारा स्वत: ही ऊर्जा उपलब्ध कराई जाती है। संवेदकों द्वारा ऊर्जा विमुक्त कर उसे लक्ष्य तक भेजा जाता है ताकि उस लक्ष्य का अध्ययन किया जा सके। लक्ष्य से परावर्तित विकिरणों को संवेदकों द्वारा ग्रहण किया जाता है ताकि उनका विश्लेषण किया जा सके। सक्रिय संवेदकों का उपयोग उन तरंगदैर्घ्य वाली विकिरणों के परीक्षण के लिए किया जाता है जो सामान्यत: सौर विकिरणों द्वारा उपलब्ध नहीं हो पाती हैं। इन विकिरणों में माइक्रोवेव अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

कृषि में दूर संवेदन (Remote Sensing in Agriculture)

जैसा कि अध्याय में पहले कहा गया है, कृषि दूर संवेदन में विद्युत चुंबकीय वर्णक्रम में दृश्य, निकटस्थ अवरक्त तथा तापीय अवरक्त विकिरणों का प्रयोग किया जाता है। सतह से विकिरित होने वाली ऊर्जा को मापने के लिए प्रयुक्त होने वाली प्रमुख युक्तियों में से एक को रेडियोमीटर कहते हैं। किसी रेडियोमीटर को दो प्रकार से प्रयोग में लाया जा सकता है। प्रथम, इसे हाथ में लेकर किसी स्थान विशेष में अनुसंधान कार्य किया जा सकता है, तथा द्वितीय, इसे किसी एक स्थान पर स्थिर कर बड़े कृषि क्षेत्रों का अध्ययन भी किया जा सकता है।

किसी पिंड अथवा वस्तु से होने वाले विकिरण को दीप्ति (Radiance) कहते हैं जो उस पिंड अथवा वस्तु के गुणों तथा उस पर पड़ने वाले विकिरण जिसे प्रदीप्ति (Irradiance) कहते हैं, से प्रभावित होती है। यदि सूर्य प्रदीप्ति का स्रोत है तो यह स्थिरांक नहीं होता क्योंकि समयानुसार इसमें परिवर्तन होते रहते हैं। इस कारण दीप्ति को भौतिक गुणों के अध्ययन का अच्छा माध्यम नहीं कहा जाता। इसके विपरीत, ऐसे गुणों के अध्ययन के लिए परावर्तित विकिरणों का प्रयोग सर्वथा उपयुक्त माना गया है।

परावर्तन वस्तुत: दीप्ति तथा प्रदीप्ति का अनुपात है। एक रेडियोमीटर का प्रयोग कर किसी क्षेत्र में फसल घनत्व की माप लाल तथा निकटस्थ अवरक्त विकिरणों की सहायता से की जाती है। इन विकिरणों के प्रभाव में वनस्पतियों की प्रतिक्रिया को वानस्पतिक सूचकांक (Vegetation Index) कहते हैं।

जहां तक वर्णक्रम में तापीय अवरक्त विकिरणों का प्रश्न है इनका प्रयोग भी फसलों की स्थिति के मापन तथा उस क्षेत्र के तापक्रम के अध्ययन के लिए किया जाता है।

तकनीकी रूप से हम यह जानते हैं कि वाष्पोत्सर्जन की दर पृष्ठीय तापक्रम के व्युत्क्रमानुपाती होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि पौधों द्वारा जल का वाष्पोत्सर्जन कम होता है तब पृष्ठीय तापक्रम अधिक होता है।

आपदा प्रबंधन में दूर संवेदन (Remote Sensing in Disaster Management)

दूर संवेदन तकनीक की उपयोगिताओं की सूची में आपदा प्रबंधन तथा मौसम पूर्वानुमान का महत्व भी अति विशिष्ट है। इसके लिए भौगोलिक सूचना प्रणाली तथा वैश्विक अवस्थान प्रणाली का उपयोग किया जाता है। साथ ही, अंतरिक्ष-आधारित सूचनाओं के प्रभावकारी मूल्यांकन के लिए प्रकाशीय, अवरक्त तथा माइक्रोवेव दूर संवेदन का एकीकरण आवश्यक है।

सामान्यत: भूकंप के अध्ययनों के लिए आधुनिक भूगणितीय तकनीकों (Geodetic Techniques) का प्रयोग किया जाता है। कई अवसरों पर पुरातन भूगणितीय सर्वेक्षणों तथा परिशुद्ध स्तरीकरण जैसी तकनीकें भी प्रयुक्त होती हैं। हाल के वर्षों में इलेक्ट्रॉनिक दूरी मापन (Electronic Distance Me-asuring) युक्तियों तथा अत्याधुनिक भूगणितीय तकनीकों के प्रयोग के कारण, भूकंप को सही रूप में समझने में सहायता मिली है। भारत में निम्नांकित संगठन आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में कार्य करते हैं। इन संगठनों द्वारा भूगणितीय तकनीकों का प्रयोग कर एकीकृत प्रक्रिया का विकास किया गया है:

1. भारतीय भू-सर्वेक्षण (Geological Survey of India, GSI)
2. राष्ट्रीय भू-भौतिकी अनुसंधान संस्थान (National Geophysical Research Institute)
3. भारतीय भूचुंम्बकत्व संस्थान (Indian Institute of Geomagnetism)
4. भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (Indian Institute of Technology, Mumbai)
5. गणितीय प्रारूपण तथा कम्प्यूटर अनुरूपण केन्द्र, बंगलौर (Centre for Mathematical Modelling and Computer Simulation, Bangalore)

भारत सरकार द्वारा 1984 से 1992 के बीच हिमालय के क्षेत्र में भूकंपीय तथा विवर्तनिक अध्ययनों के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम क्रियान्वित किया गया था। 1993 में लातूर में आये भूकंप के बाद भूगणितीय और वैश्विक अवस्थान प्रणाली जैसी तकनीकों का व्यापक स्तर पर प्रयोग किया गया। 26 जनवरी, 2001 को गुजरात में आये भूकंप के बाद उपग्रह-आधारित भूगणितीय तकनीकों का प्रयोग किया जाने लगा है।

भारतीय दूर संवेदी उपग्रह आई.आर.एस.-पी 4 (ओसनसैट) द्वारा 29 अक्टूबर, 1999 को उड़ीसा में आये तूफान के आकलन का कार्य किया गया था। इस उपग्रह द्वारा सामान्यीकृत विभिन्नता वानस्पतिक सूचकांक (Normalised Difference Vegetation Index, NDVI) का निर्माण किया गया था जिसके लिए लाल तथा निकटस्थ अवरक्त विकिरणें प्रयोग में लाई गई थीं।

दूर संवेदन की अन्य उपयोगिताएं (Other Applications of Remote Sensing)

वर्ष 2003-04 में सरकार द्वारा राष्ट्रीय दूर संवेदन सूचना नीति की घोषणा की गई थी। इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय तथा विदेशी उपग्रहों से प्राप्त की जाने वाली सूचनाओं का सटीक एवं प्रभावी उपयोग करना है। हैदराबाद-स्थित राष्ट्रीय दूर संवेदन एजेंसी को भारत में ऐसी सूचनाओं के संकलन और वितरण के लिए उत्तरदायी बनाया गया है। वर्तमान में दूर संवेदन तकनीक का प्रयोग निम्नांकित क्षेत्रों में किया जा रहा है:

1. **फसल क्षेत्रफल उत्पादन एवं मूल्यांकन (Crop Acreage & Production Estimation, CAPE):-** इस कार्यक्रम का आरंभ 1995 में किया गया था जिसके लिए कृषि और सहकारिता विभाग को प्रायोजक बनाया गया था। कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य प्रमुख फसलों की कटाई के पूर्व उनके उत्पादन के मूल्यांकन से संबंधित उपग्रह-आधारित सूचनाओं का विश्लेषण करना था।
2. **फसल (FASAL; Forecasting Agricultural output using Space, Agrometeoro-logy & Land):-** कृषि मंत्रालय द्वारा इस कार्यक्रम का क्रियान्वयन किया जाता है। वस्तुत: यह फसल क्षेत्रफल उत्पादन और मूल्यांकन नामक कार्यक्रम का ही विस्तार है। इस कार्यक्रम के तहत खरीफ फसलों का पूर्वानुमान किया जाता है।
3. **बाढ़ मानचित्रीकरण (Flood Mapping):-** कृषि विभाग, केन्द्रीय जल आयोग तथा राज्य राहत एजेंसियों द्वारा संयुक्त रूप से 1987 से बाढ़ मानचित्रीकरण के लिए एक कार्यक्रम का क्रियान्वयन किया जा रहा है। इसके तहत गंगा, ब्रह्मपुत्र, कोसी, सिन्धु,

सतलज, गोदावरी तथा महानदी के जलग्रहण क्षेत्र में बाढ़ मानचित्रीकरण का कार्य किया जाता है।

4. **सूखा मूल्यांकन (Drought Assessment)**:- वानस्पति सूचकांक तथा पृष्ठीय सूचनाओं के आधार पर उपग्रह-आधारित विश्लेषण कर 11 राज्यों में फसल की स्थितियों की जानकारी प्रदान की जाती है।

5. **वन पर्यवेक्षण (Forest Monitoring)**:- उपग्रह-आधारित सूचनाओं का उपयोग भारतीय वन सर्वेक्षण द्वारा वनों के द्विवर्षीय पर्यवेक्षण के लिए किया जाता है। इस प्रकार के उपयोग से जैव विविधता के संरक्षण में भी व्यापक सहायता मिलती है। देश के चार क्षेत्रों में जैव विविधता के संरक्षण के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। ये क्षेत्र हैं : उत्तर-पूर्वी हिमालय, पश्चिमी हिमालय, पश्चिमी घाट तथा अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह।

6. **सिंचाई (Irrigation)**:- केन्द्रीय जल आयोग द्वारा दूर संवेदन का उपयोग कर एक विशेष कार्यक्रम का क्रियान्वयन किया जा रहा है। इसके तहत असम, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान तथा पश्चिम बंगाल में कमान क्षेत्र के अन्तर्गत सिंचाई के सुदृढ़ीकरण I के प्रयास किये जा रहे हैं।

7. **बंजरभूमि मानचित्रीकरण (Wasteland Mapping)**:- वर्ष 1986-2000 के मध्य ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा बंजरभूमि विकास हेतु एक वृहत कार्यक्रम क्रियान्वित किया गया था। पांच चरण वाले इस कार्यक्रम के तहत भारत के बंजरभूमि मानचित्र का निर्माण किया गया है।

उपग्रह प्रमोचक यान (Satellite Launch Vehicle)

किसी देश को अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में तब तक स्वावलंबी नहीं कहा जा सकता जब तक कि उसके द्वारा उपग्रह प्रमोचक यान तकनीक का विकास नहीं किया जाये। इसका मुख्य कारण यह है कि कई अवसरों पर प्रमोचन पर होने वाला व्यय उसके निर्माण पर होने वाले व्यय से अधिक हो जाता है। इस कारण भारत जैसे देश में प्रमोचक यान तकनीक के विकास की रणनीति को अंतरिक्ष कार्यक्रम के उद्देश्यों में शामिल कर लिया गया। प्रत्येक प्रमोचक यान की उड़ानें विकासात्मक तथा व्यावसायिक दोनों होती हैं। इन्हें क्रमशः अंग्रजी के अक्षरों 'D' तथा 'C' से अभिव्यक्त किया जाता है।

उपग्रह प्रमोचक यान (Satellite Launch Vehicle, SLV)

स्वदेशी तकनीक से उपग्रह प्रमोचक यान का विकास किया गया था, जिसके द्वारा रोहिणी श्रेणी के उपग्रहों का प्रक्षेपण किया गया। इस यान के चारों चरणों में ठोस प्रणोदकों का प्रयोग किया गया था।

संवर्द्धित उपग्रह प्रमोचक यान (Augmented Satellite Launch Vehicle, ASLV)

यह एस.एल.वी. का ही संवर्द्धन है। यह एक पांच चरणों वाला यान था जिसमें ठोस प्रणोदक के रूप में एच.टी.पी.बी. (HTPB: Hydroxyl Terminated Poly Butadyne) अथवा एल.टी.पी.बी. (LTPB; Lactone Terminated Poly Butadyne) का प्रयोग किया गया था। इसमें उपग्रहों को सटीकता के साथ कक्षा में स्थापित करने के लिए एक विशेष युक्ति के रूप में रियल टाइम डिसीशन (RTD; Real Time Decision) का प्रयोग हुआ था।

ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचक यान (Polar Satellite Launch Vehicle, PSLV)

इस प्रमोचक यान की प्रथम दो विकासात्मक उड़ानों को संवर्द्धित उपग्रह प्रमोचक यान के समकक्ष कहा जा सकता था। लेकिन तीसरी विकासात्मक उड़ान में पहली बार द्रव प्रणोदक का प्रयोग किया गया था। द्रव प्रणोदक के रूप में यू.डी.एम.एच. (UDMH; Unsymmetrical Di Methyl Hydrazine) तथा ऑक्सीकारक के रूप में नाइट्रोजन टेट्राक्साइड (Nitrogen Tetroxide) प्रयुक्त हुआ था। इस प्रणोदक तथा आक्सीकारक का प्रयोग करने वाले ईंजन को विकास ईंजन (Vikas Engine) की संज्ञा दी गई थी जिसका प्रयोग यान के दूसरे चरण में किया गया था। इस यान ने 21 मार्च, 1996 को आई.आर.एस. -पी 3 नामक दूर संवेदी उपग्रह को ध्रुवीय कक्षा में स्थापित किया था।

विकासात्मक उड़ानों की सफलता के उपरांत ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचक यान की व्यावसायिक उड़ान की सहायता से कोरियाई उपग्रह किटसैट तथा जर्मनी के उपग्रह ट्यूबसैट का सफल प्रक्षेपण किया गया। पी.एस.एल.वी. -डी 3 में वितरक कम्प्यूटर नेटवर्क तकनीक प्रयोग में लाई गई थी जिसके अन्तर्गत 4 मिनी तथा 30 माइक्रो कम्प्यूटर प्रयुक्त हुये थे।

पी.एस.एल.वी. अब वास्तव में एक विश्व स्तरीय प्रमोचक यान बन गया है। इसका प्रयोग कर वर्ष 2001-02 में जर्मनी के बर्ड (BIRD) तथा बेल्जियम के प्रोब (PROBA) नामक उपग्रहों को प्रक्षेपित किया गया था।

इसी प्रकार, 23 अप्रैल 2007 को पीएसएलवी सी-8 द्वारा इटली के एजाइल नामक उपग्रह का भी सफल प्रक्षेपण किया गया था।

चन्द्रयान-I मिशन तथा रिसैट (RISAT - Radar Imaging Satellite) प्रक्षेपण के लिए पीएसएलवी- एक्स.एल. नामक संस्करण का विकास किया गया था। अधिक भार वाले उपग्रहों के प्रक्षेपण के लिए भी एक नए संस्करण का विकास किया जाएगा जिसे पीएसएलवी-एच.वी. (हाई परफॉर्मेन्स) की संज्ञा दी गई है।

भू-स्थैतिक उपग्रह प्रमोचक यान (Geostationary Satellite Launch Vehicle, GSLV)

इनसैट श्रेणी के उपग्रहों के प्रक्षेपण के उद्देश्य से भू-स्थैतिक उपग्रह प्रमोचक यान के विकास को संकल्पित किया गया था। तकनीकी रूप से जी.एस.एल.वी. का विकास पी.एस.एल.वी. को संवर्द्धित कर किया गया है। पी.एस.एल.वी. के ऊपरी दोनों चरणों को निम्नतापी ईंजन (क्रायोजेनिक ईंजन) से प्रतिस्थापित किया गया है जिसमें द्रवित हाइड्रोजन ईंधन के रूप में तथा द्रवित आक्सीजन आक्सीकारक के रूप में प्रयुक्त हुये हैं। इन दोनों ही पदार्थों को अल्युमिनियम के मिश्र धातु से निर्मित दो अलग-अलग प्रकोष्ठों में रखा जाता है। ये दोनों प्रकोष्ठ एक दूसरे से एक आंतरिक चरण की सहायता से जुड़े रहते हैं। जी.एस.एल.वी. -डी 1 में लगभग 12.5 टन प्रणोदक का उपयोग किया गया था जिसकी ज्वलन क्षमता 750 सेकेंड तक की थी तथा इससे 75 किलो न्यूटन की शक्ति उत्पन्न की गई थी। इस यान में द्रवित हाइड्रोजन -253० सेल्सियस तथा द्रवित आक्सीजन -195० सेल्सियस तापक्रम पर रखे गये थे।

जी.एस.एल.वी. के पहले चरण में ठोस प्रणोदक का प्रयोग करने वाला एक तथा द्रव प्रणोदक का प्रयोग करने वाले चार मोटर होते हैं। ठोस प्रणोदक के रूप में एच.टी.पी.बी. तथा द्रव प्रणोदक के रूप में यू.डी.एम.एच. का प्रयोग किया जाता है। इसके साथ नाईट्रोजन टेट्राक्साइड आक्सीकारक के रूप में प्रयुक्त होता है। दूसरे चरण में केवल द्रव प्रणोदक तथा आक्सीकारक का ही प्रयोग होता है। जी.एस.एल.वी. की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें लगाये गये कम्प्यूटरों की सहायता से उपग्रहों को उनकी कक्षा में सटीकता के साथ स्थापित किया जा सकता है। पी.एस.एल.वी. की तुलना में यह प्रमोचक यान कई मामलों में भिन्न है, जैसे -

1. पहले चरण में द्रव प्रणोदक वाले स्ट्रैप ऑन मोटरों का प्रयोग।
2. पी.एस.एल.वी. की तुलना में यान का अधिक व्यास।
3. मिशन डिजाइन तथा सिम्यूलेशन।
4. क्रायोजेनिक ईंजन।
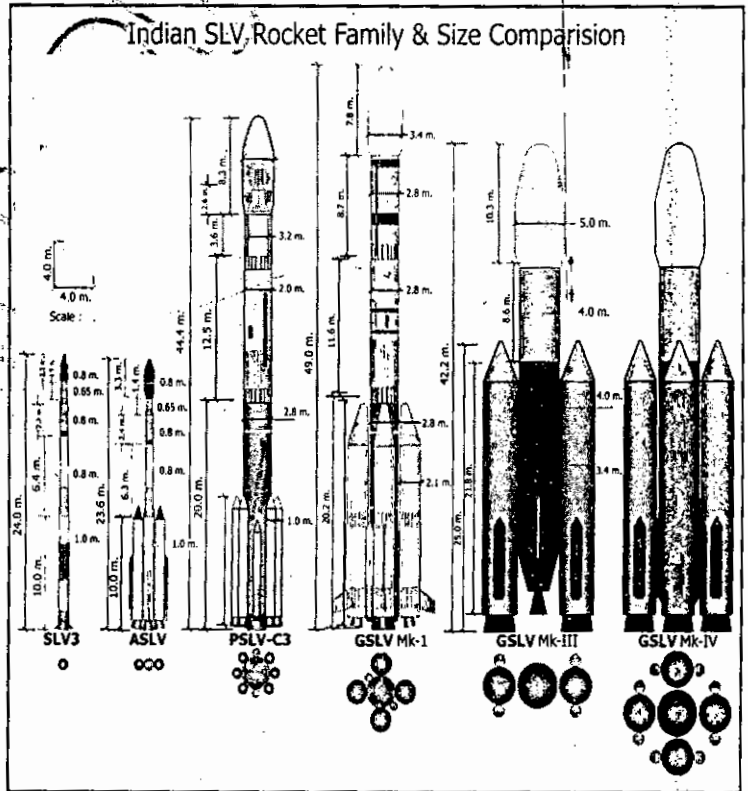
जीएसएलवी की पहली विकासात्मक उड़ान 18 अप्रैल 2001 को हुई थी जबकि दूसरी उड़ान 8 मई 2003 को। दोनों उड़ानों से क्रमशः ग्रामसैट-1 तथा ग्रामसैट-2 को उनकी कक्षा में स्थापित किया गया था। इसके उपरांत 20 सितम्बर, 2004 को यान की पहली कार्यात्मक उड़ान द्वारा एजुसैट को प्रक्षेपित किया गया था। लेकिन 10 जुलाई 2006 को यान की दूसरी कार्यात्मक उड़ान असफल हो गई जिसके कारण इनसैट-4 सी उपग्रह को नष्ट करना पड़ा। जुलाई 2007 में जीएसएलवी की तीसरी कार्यात्मक उड़ान की सहायता से इनसैट-4 सी-आर को प्रक्षेपित किया गया।

नई परियोजना के तहत जीएसएलवी मार्क-3 नामक यान का विकास किया जा रहा है। हाल ही में तमिलनाडु के महेन्द्रगिरि में इसके एक शक्तिशाली ईंजन का सफल परीक्षण किया गया है।

उपग्रह संचालन प्रणालियां (Satellite Navigation Systems)

हालांकि उपग्रह संचालन प्रणालियां काफी पहले से सुरक्षा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रही हैं लेकिन हाल के दशकों में विश्व स्तर पर व्यापक तथा क्षेत्रीय प्रणालियों के विकास की दिशा में तेजी से प्रगति हुई है। तकनीकी रूप से उपग्रह संचालन प्रणाली उन इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों अथवा यंत्रों का समूह है जिनकी सहायता से किसी वस्तु, अथवा पिंड अथवा स्थान की अक्षांशीय, देशांतरीय, उच्चावच तथा अन्य संबंधित पक्षों की विस्तृत और स्टीक जानकारी प्राप्त की जाती है। दूसरे शब्दों में, ये प्रणालियां भू-स्थानिक (Geo-spatial) सूचनाएं देने में सहायक होती हैं। मुख्य रूप से इन प्रणालियों द्वारा रेडियो संकेतों का प्रयोग किया जाता है जो उपग्रहों के माध्यम से पृथ्वी पर स्थापित केन्द्रों तक संप्रेषित किए जाते हैं, जहां उनका सटीक अध्ययन कर अपेक्षित जानकारी उपलब्ध कराई जाती है। ये रेडियो तरंगें दीर्घ तरंगदैर्ध्य वाली होती हैं। इनकी आवृत्ति कम होने से अधिक दूरी तक संकेतों को भेजा जा सकता है।

1960 के दशक के पूर्व संचालन प्रणालियों, जैसे लोरान (LORAN), डेका (DECCA) तथा ओमेगा (OMEGA) में उपग्रहों के बदले दीर्घ तरंग दैर्ध्य वाली पार्थिव रेडियो तरंगों का प्रयोग किया जाता था। एक प्रणाली द्वारा एक मुख्य केन्द्र से रेडियो विक्षोभ (Radio pulse) भेजा जाता था। इसके बाद विक्षोभों की पुनरावृत्ति की जाती थी जिन्हें अन्य केन्द्रों द्वारा संग्रहित कर लिया जाता था। संकेतों के भेजने तथा उनका संग्रहण करने के बीच की अवधि को नियंत्रित किया जाता था।

1960 के दशक में अमेरिका द्वारा "ट्रांजिट" (TRANSIT) नामक विश्व की पहली उपग्रह-आधारित संचालन प्रणाली विकसित की गई। यह प्रणाली "डॉप्लर प्रभाव" पर आधारित थी। इसमें शामिल उपग्रह अपने निश्चित पथ पर परिक्रमा करते थे तथा उनके द्वारा नियंत्रित आवृत्ति पर संकेत भेजे जाते थे। उपग्रह के गतिशील होने के कारण संप्रेषित आवृत्ति तथा संग्रहित आवृत्ति में भिन्नता देखी जाती थी। कम समयांतराल में आवृत्ति में हुए इस परिवर्तन का आकलन कर अवस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। उल्लेखनीय है कि उपग्रह संचालन प्रणाली में शामिल सभी उपग्रहों को समतुल्य बनाए रखने के लिए एक परमाणविक घड़ी (Atomic Clock) का प्रयोग किया जाता है।

उपग्रह संचालन प्रणालियों को सैनिक तथा असैनिक दोनों ही क्षेत्रों में प्रयोग में लाया जा सकता है। आरंभिक चरणों में इसका प्रयोग केवल सैन्य उद्देश्यों की प्राप्ति, विशेषकर हथियारों को लक्ष्य तक पहुँचाने तथा चौकसी के लिए किया जाता था। लेकिन हाल के वर्षों में विश्व में तेजी से बढ़ रही असैनिक आवश्यकताओं ने इस क्षेत्र में भी इसके उपयोग को प्रोत्साहित किया है। असैनिक क्षेत्र में मुख्य रूप से ऐसी प्रणालियों को निम्नांकित कार्यों के लिए प्रयोग में लाया जाता है-

1. राहत एवं बचाव
2. स्थान-विशिष्ट सेवाओं की उपलब्धता
3. वन तथा वन्य जीव प्रबंधन
4. वाहनों, जलयानों तथा वायुयानों का संचालन
5. सर्वेक्षण
6. भौगोलिक सूचना प्रणाली को सहयोग

वैश्विक अवस्थान प्रणाली (Global Positioning System, GPS)

जीपीस विश्व की एकमात्र पूर्णतः कार्यशील उपग्रह संचालन प्रणाली है जिसे तकनीकी रूप से नैवस्टार (NAVSTAR-Navigation Satellite Timing And Ranging) जीपीएस कहते हैं। इसका मुख्य कार्य भू-सर्वेक्षण, मानचित्रीकरण तथा वैज्ञानिक अनुसंधान में सहयोग करना है।

जीपीएस नियंत्रण
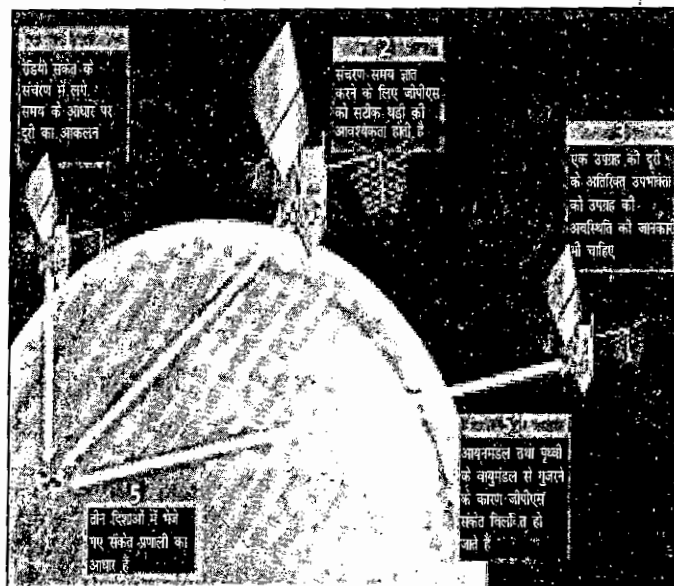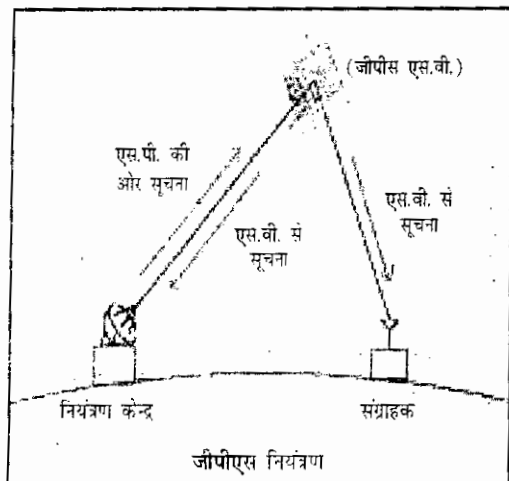
हांलाकि अमेरिका द्वारा विकसित इस प्रणाली को 1976 में ही संकल्पित किया गया था लेकिन 17 जुलाई 1995 से इसे पूर्णतः कार्यशील बना दिया गया। मई 2009 तक इस प्रणाली में कुल 30 उपग्रह कार्यरत थे।

तकनीकी रूप से प्रणाली के तीन अवयव हैं, जिन्हें अंतरिक्ष अवयव (Space segment), नियंत्रण अवयव (Control Segment) तथा उपयोग अवयव (User segment) कहते हैं। अंतरिक्ष अवयव में शामिल 30 उपग्रह कुल 6 कक्षीय तल पर परिक्रमा करते हैं। इनकी औसत आनति 55० है। उपग्रहों को मध्य भू कक्षा (Medium Earth Orbit, MEO) में 20,200 किमी. की ऊँचाई पर स्थापित किया गया है। उपग्रहों के इस समूह से प्राप्त सूचनाओं से अवस्थान, वेग तथा समय की सटीक जानकारी प्राप्त होती है।

नियंत्रण अवयव, जिसे पार्थिव नियंत्रण नेटवर्क (Ground Control Network) भी कहा जाता है के तहत कोलेराडो में श्राइवर वायु सेना बेस (Shriever Air Force Base) पर मास्टर केन्द्र स्थापित है। इस केन्द्र को समर्थन देने के लिए हवाई तथा दिएगो गार्सिया द्वीपों पर निगरानी केन्द्र भी स्थापित हैं। वैश्विक नियंत्रण नेटवर्क के लिए ये निगरानी केन्द्र सूचना संग्राहकों का कार्य करते हैं।

जहां तक उपयोग के अवयव का प्रश्न है, जीपीएस संग्राहकों (Receivers) द्वारा सूचनाओं को संग्रहित किया जाता है। इस यंत्र में एक एन्टिना, एक घड़ी तथा एक प्रौसेसर होता है। कई यंत्रों में इन युक्तियों के अतिरिक्त एक डिस्प्ले प्रणाली भी होती है। संग्राहकों द्वारा जो सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं उनसे उपयोगकर्ता को स्थिति, वेग तथा समय की जानकारी प्राप्त होती है जिनका उपयोग वह जलीय, स्थलीय अथवा वायवीय अनुप्रयोगों के लिए कर सकता है। कई अवसरों पर दूरी से संबंधित अतिरिक्त सूचनाएं भी प्राप्त होती हैं जिनसे मानचित्रों का निरूपण सरल होता है। जीपीएस प्रणाली का उपयोग स्थलीय, सागरीय तथा वायवीय संचालन, सर्वेक्षण, भूभौतिक (Geophysical) अन्वेषण, मानचित्रीकरण, वाहनों के अवस्थान की जानकारी, कृषि प्रणाली तथा दूर संचार नेटवर्किंग के लिए व्यापक रूप से किया जा रहा है।

जीपीएस से मुख्यतः दो प्रकार की सेवाएं प्रदान की जाती हैं-

1. **मानक अवस्थान सेवाएं** (**Standard Positioning Service, SPS**)- सिविल (असैनिक) उपयोग के लिए।
2. **सटीक अवस्थान सेवाएं** (**Precise Positioning Service, PPS**)- अमेरिकी सुरक्षा विभाग के लिए।

हाल ही में जीपीएस प्रणाली के आधुनिकीकरण पर विचार किया गया है। इस योजना के तहत असैनिक उपयोग के विस्तार के लिए दो नए संचालन संकेतों को शामिल करने का निर्णय किया गया है। एल-2 सी नामक पहले संचालन संकेत का प्रसारण 1227.60 मेगाहर्ट्ज पर किया जाएगा। इसके लिए आई.आई.आर-एम नामक उपग्रह 25 सितम्बर, 2005 को ही प्रक्षेपित किया गया है। इसी प्रकार, वर्ष 2007 से वर्ष 2012 के बीच ब्लॉक आई.आई.एफ. श्रेणी के उपग्रहों का प्रक्षेपण किया जाएगा। इसके उपरांत, वर्ष 2012 तक तीनों ही असैनिक संकेत, एल-1 सी/ए (L1-C/A), एल-2 सी (L2C) तथा एल-5 (L5) उपलब्ध होंगे जिन्हें 2015 तक पूर्ण रूप से कार्यात्मक बना दिया जाएगा।

गैलीलियो परियोजना (Galileo Project)

यूरोपीय संघ तथा यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी द्वारा संयुक्त रूप से गैलीलियो उपग्रह संचालन प्रणाली विकसित की जा रही है जो वैश्विक स्तर पर कार्य करने वाली जीपीएस प्रणाली के समानान्तर होगी। इस परियोजना में भारत, चीन, इजरायल, मोरक्को, सऊदी अरब, दक्षिण कोरिया तथा यूक्रेन भी शामिल हैं। यह आशा की गई है कि आगामी वर्षों में अर्जेन्टिना, ऑस्ट्रेलिया, ब्राजील, कनाडा, चिली, जापान, मलेशिया, मेक्सिको, नार्वे, पाकिस्तान तथा रूस भी परियोजना में शामिल हो जाएंगे। इस परियोजना के वर्ष 2011-12 तक पूरी तरह क्रियाशील हो जाने की संभावना है।

इस प्रणाली द्वारा निम्नांकित क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य किए जाएंगे-

1. राहत और बचाव
2. परिवहनीय सुविधाओं का सुदृढ़ीकरण
3. सीमांतीय सुरक्षा
4. निर्देशन प्रणालियों को सहायता
5. भौगोलिक सूचना प्रणाली को सहयोग

गैलीलियो परियोजना में उपग्रहों की कुल संख्या 30 होगी तथा इनके माध्यम से चार प्रकार की महत्वपूर्ण सेवाएं उपलब्ध कराई जाएंगी।

मुक्त सेवा (Open Service) सभी तक उपलब्ध होगी। इन सेवाओं के लिए दो आवृत्ति बैंडों में संकेतों का प्रसारण होगा। ये बैंड 1164-1214 मेगाहर्ट्ज तथा 1563-1591 मेगाहर्ट्ज होंगे। स्वचालित संचालन प्रणालियों द्वारा इन आवृत्तियों का उपयोग किया जाएगा।

दूसरी सेवा के रूप में वाणिज्यिक सेवा (Commercial Service) होगी। यह सेवा तीन आवृत्ति बैंडों पर प्रसारित होगी जिनका पृथ्वी पर स्थापित केन्द्रों द्वारा सटीक जानकारी के लिए उपयोग किया जाएगा।

तीसरी सेवा, जन विनियमित सेवा (Public Regulated Service) तथा चौथी, जीवन सेवा सुरक्षा (Safety of Life Service) द्वारा मुक्त सेवाओं की तुलना में अधिक सटीक सूचनाएं उपलब्ध कराई जाएगी। इन सेवाओं का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह भी होगा कि 10 सेकेंड की अधिकतम अवधि में किसी समस्या की पहचान कर ली जाए। ये सेवाएं राष्ट्रों को उनके पुलिस तथा सैन्य प्रशासन को सुदृढ़ तथा अत्याधुनिक बनाने में सहयोग करेंगी।

ग्लोनास परियोजना (Glonass Project)

ग्लोनास अर्थात् वैश्विक उपग्रह संचालन प्रणाली (Global Navigation Satellite System) एक रेडियो-आधारित उपग्रह संचालन प्रणाली है जिसका विकास तत्कालीन सोवियत संघ द्वारा किया गया था लेकिन वर्तमान में रूस के अंतरिक्ष बलों द्वारा इस पर कार्य किया जा रहा है।

वर्ष 1976 में ही इसे संकल्पित किया गया था तथा यह लक्ष्य रखा गया था कि 1991 तक इसका विश्व स्तर पर विस्तार कर दिया जाएगा। इसी कारण 1982 तथा उसके उपरांत उपग्रहों का प्रक्षेपण किया गया। यह प्रक्षेपण 1995 तक चलता रहा। लेकिन रूस की

अर्थव्यवस्था के कमजोर हो जाने के कारण परियोजना पर कार्य पूरा नहीं किया जा सका। वर्ष 2001 में पुन: रूस ने इस पर कार्य आरंभ किया तथा 2011 तक इसके वैश्विक विस्तार का लक्ष्य रखा है।

ग्लोनास का विकास वास्तविक समय, स्थिति तथा वेग के निर्धारण के उद्देश्य से किया गया था। यह तत्कालीन सोवियत संघ द्वारा विकसित की जाने वाली दूसरी उपग्रह संचालन प्रणाली थी। पहली ऐसी प्रणाली को "सिकाडा" (Tsikada) की संज्ञा दी गई थी।

पूर्ण रूप से विकसित हो जाने के बाद ग्लोनास प्रणाली में 24 उपग्रह होंगे जिसमें से 21 कार्यशील तथा 3 वैकल्पिक होंगे। इन उपग्रहों को तीन कक्षीय तलों पर स्थापित किया जाएगा। ये तल 120 डिग्री की आनति पर एक-दूसरे से अलग रहेंगे।

ग्लोनास के उपग्रहों द्वारा दो प्रकार के संकेतों का संप्रेषण किया जाएगा। पहले संकेत को मानक परिशुद्ध संकेत (Standard Precision Signal) तथा दूसरे संकेत को उच्च परिशुद्ध संकेत (High Precision Signal) कहा गया है।

कार्यकुशलता के उच्चतम स्तर पर SP संकेत 57-70 मीटर तक क्षैतिज अवस्थिति की पहचान करेगा। इसी प्रकार, HP संकेत रूस के सैनिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयोग में लाया जाएगा।

इस उपग्रह संचालन प्रणाली के तहत पहली पीढ़ी के उपग्रहों को ऊरगान (Uragan) कहा गया था। इनका प्रक्षेपण मुख्यत: 1980 के दशक के मध्य में किया गया था।

दूसरी पीढ़ी के उपग्रहों के रूप में ग्लोनास-एम तथा तीसरी पीढ़ी के लिए ग्लोनास-के (GLONASS-K) नामक उपग्रह का विकास किया गया है। तीसरी पीढ़ी के उपग्रहों का प्रक्षेपण वर्ष 2008 में "सोयुज-यू" (Soyuz-U) नामक प्रमोचक यान से किया जाएगा।

जनवरी 2004 में भारत तथा रूस के बीच हुए एक समझौते के तहत यह कहा गया है कि दोनों देश इस प्रणाली को 2010 तक पूर्णत: कार्यशील बनाने का प्रयास करेंगे। समझौते में यह भी कहा गया था कि 2006-08 में भारत जीएसएलवी द्वारा ग्लोनास श्रृंखला के दो उपग्रहों का प्रक्षेपण करेगा। साथ ही, "ग्लोनास-के" श्रृंखला के उपग्रहों के विकास पर होने वाले व्यय में भी भारत की हिस्सेदारी होगी। लेकिन अब तक ऐसे किसी उपग्रह का प्रक्षेपण नहीं किया जा सका है।

वर्तमान में इस प्रणाली का उपयोग मुख्यत: चेचेन्या के क्षेत्र में किया गया है जबकि विश्व स्तर पर यह अभी पूर्वी यूरोप तथा कनाडा तक ही सीमित है।

गगन परियोजना (Gagan Project)

जीपीएस एडेड जियो ऑग्मेंटेड नेविगेशन (GAS Aided Geo Augmented Navigation, GAGAN) भारत द्वारा विकसित की जाने वाली एक क्षेत्रीय उपग्रह संचालन प्रणाली है जिसे अंतरिक्ष-आधारित संवर्द्धन प्रणाली (Space-based Augmentation System) भी कहा गया है। इसका विकास भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण तथा भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा संयुक्त रूप से किया जा रहा है। इस प्रणाली के विकास का विस्तार अन्तत: एशिया-प्रशांत क्षेत्र में होगा जिसके लिए एक प्रभावी प्रणाली, भारतीय क्षेत्रीय संचालन उपग्रह प्रणाली (Indian Regional Navigational Satellite System, IRNSS) विकसित की जाएगी। इसके लिए आठ भारतीय संदर्भ स्टेशन (Indian Reference Station, INRES), एक भारतीय मास्टर कन्ट्रोल केन्द्र (Indian Master Control Centre, INMCC) तथा एक इंडियन नेविगेशन लैंड अपलिंक स्टेशन (Indian Navigation Land Uplink Station, INLUS) स्थापित किया जाएगा।

इस प्रणाली के लिए वाइड एरिया ऑग्मेंटेशन सिस्टम के एल-1 तथा एल-5 आवृत्ति वाले कोड क्रमश: 2001 तथा 2005 में अमेरिका से प्राप्त किए गए थे।

गगन परियोजना तीन चरणों में लागू की जाएगी।

1. प्रौद्योगिकी प्रदर्शन प्रणाली का चरण (Phase of Technology Demonstration System)
2. आरंभिक प्रायोगिक चरण (Initial Experimental Phase)
3. अंतिम कार्यात्मक चरण (Final Operation Phase)

पहले चरण में संदर्भ केन्द्रों तथा अन्य केन्द्रों की स्थापना का प्रावधान है। संदर्भ केन्द्र दिल्ली, बंगलौर, अहमदाबाद, कोलकाता, जम्मू, पोर्ट ब्लेयर, गुवाहाटी तथा तिरुअनन्तपुरम में स्थापित होंगे। पहले ऐसे केन्द्र की स्थापना बंगलुरू में कंडनहल्ली (Kundanhalli) में की गई है।

दूसरे चरण में संदर्भ केन्द्रों द्वारा प्राप्त संकेतों का सटीक अध्ययन किया जाएगा। इसके लिए जीपीएस संकेतों को प्राप्त करने का प्रावधान किया जाएगा।

तीसरे चरण में प्रणाली को पूर्णत: कार्यात्मक बनाया जाएगा।

क्रायोजेनिक्स (Cryogenics)

क्रायोजेनिक्स अत्यन्त कम तापक्रम पर पदार्थों तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन है। 'क्रायोजेनिक्स' शब्द वस्तुत: ग्रीक भाषा के दो शब्दों 'क्रायोस' तथा 'जेनिक्स' से बना है जिनका अर्थ क्रमश: बर्फ की भांति ठंढा तथा विज्ञान होता है। इस विज्ञान का उपयोग वैज्ञानिकों तथा अभियंताओं द्वारा विगत सौ वर्षों से मानव प्रजाति के हित के लिए किया जा रहा है।

तकनीकी रूप से 'कम' शब्द का प्रयोग सर्वथा उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि इसमें -148°F से -459-67°F या -273-15°C तक पदार्थों अथवा प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त, क्रायोजेनिक्स में फारेनहाइट अथवा सेल्सियस के बदले वैज्ञानिकों द्वारा केल्विन (K) का प्रयोग किया जाता है। क्रायोजेनिक्स के तहत अतिचालकता (Super-conductivity) तथा अतिद्रविता (Superfluidity) का भी अध्ययन होता है।

सन् 1877 में सर्वप्रथम रसल पिक्टेट (Rasul Pictet) तथा लूईस पी. कैलेटेट (Louis P. Cailletet) ने आक्सीजन को द्रवीभत कर क्रायोजेनिक्स के विकास का आरंभ किया था। कैलेटेट ने रूद्धोष्म प्रसार (Adiabatic Expansion) नामक एक ऊष्मागतिकी (Thermodynamics) की प्रक्रिया का प्रयोग किया था। इसके तहत किसी गैस के तापक्रम को बढ़ाने के लिए उसे ऊर्जा देना अथवा उससे ऊर्जा बाहर करना आवश्यक नहीं होता। इसी प्रक्रिया द्वारा आक्सीजन को द्रवीभूत किया गया था।

इसके विपरीत, पिक्टेट ने ऊष्मागतिकी (Thermo-dynamics) की एक अन्य प्रक्रिया जूल-थॉम्पसन प्रभाव (Joule-Thompson Effect) का प्रयोग किया जिसमें किसी विशिष्ट तापक्रम और दाब पर किसी द्रव के तापक्रम को कम किया जाता है। इन प्रयोगों के उपरांत कैरोल ओल्सजेविस्की (Karol Olszewski) तथा जिग्मट वॉन व्रॉबलेविस्की (Zygmut von Wroblewski) ने कैसकेडिंग (Cascading) नामक एक विधि का विकास किया। इसके द्वारा इन दोनों वैज्ञानिकों ने 90 केल्विन तापक्रम पर आक्सीजन को द्रवीभूत करने में सफलता प्राप्त की। हांलाकि आगामी वर्षों में 77 केल्विन तापक्रम पर नाइट्रोजन को भी द्रवीभूत करने में सफलता प्राप्त की गई।

वर्ष 1898 में जेम्स डी वार (James DeWar) ने 20 केल्विन तापक्रम पर हाइड्रोजन को द्रवीभूत कर क्रायोजेनिक्स को एक नया आयाम दिया। इस तापक्रम पर द्रवित हाइड्रोजन को संग्रहित करना दुष्कर था। इस समस्या का निराकरण करते हुये डी वार ने एक द्वि-संस्तरीय फ्लास्क का विकास किया। इसे डी वार फ्लास्क कहा जाता है। इस संग्राहक में द्रवित हाइड्रोजन को कुछ दिनों तक के लिए संग्रहित किया जा सकता था। इस समय वैज्ञानिकों ने यह तय किया कि यदि उन्हें इस क्षेत्र में और तेज गति से विकास करना है तो पहले संग्राहकों का विकास करना होगा। इसी कारण वैज्ञानिकों ने कुचालक तकनीक का विकास किया। ऐसी ही तकनीकों का प्रयोग आज भी किया जाता है। इन तकनीकों में झागदार पदार्थों तथा विकिरण ढालों को शामिल किया जाता है।

क्रायोजेनिक्स कई आधुनिक आविष्कारों का भी एक महत्वपूर्ण आयामा बन गया है। इन आविष्कारों में किसी द्रवीभूत गैस के माध्यम से ऊर्जा का हस्तांतरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, द्रवित आक्सीजन का प्रयोग प्रणोदकों तथा द्रवित हाइड्रोजन का प्रयोग उच्च-ऊर्जा भौतिकी के क्षेत्र में होता है। विगत कुछ वर्षों से क्रायोजेनिक्स का उपयोग रॉकेटों में भी किया जा रहा है। ऐसा प्रयोग सर्वप्रथम 1970 में किया गया था जब अमेरिका ने क्रायोजेनिक ईंजन का प्रयोग कर एटलस-सेंटॉर (Atlas-Centaur) नामक रॉकेट का प्रक्षेपण किया था। यह विदित है कि सामान्य रूप से क्रायोजेनिक ईंजनों में द्रव प्रणोदकों का प्रयोग किया जाता है।

प्रणोदक एक रासायनिक मिश्रण है जिसमें एक ईंधन तथा एक आक्सीकारक होता है तथा इसके जलने के उपरांत रॉकेटों को बल

प्रदान किया जाता है। रॉकेट के प्रणोदक की कार्यकुशलता की दर की माप विशिष्ट उत्तेजकों (Specific Impulse) द्वारा की जाती है। इसे सेकेंड में अभिव्यक्त किया जाता है। ऐसे विशिष्ट उत्तेजक द्वारा यह जानकारी प्राप्त की जाती है कि एक सेकेंड में एक पाउंड अथवा एक किलोग्राम प्रणोदक के उपभोग से कितने पाउंड अथवा किलोग्राम का बल उत्पन्न होता है।

क्रायोजेनिक ईंजनों में यह देखा गया है कि सामान्यत: द्रव प्रणोदक का प्रयोग करने वाले ईंजन ठोस प्रणोदक वाले ईंजनों से अधिक जटिल लेकिन कार्यक्षम होते हैं। उल्लेखनीय है कि -273°C तापक्रम पर द्रवित हाइड्रोजन तथा -183°C तापक्रम पर द्रवित आक्सीजन को प्रणोदंक युग्मों में सबसे लोकप्रिय माना गया है। हालांकि कई और प्रणोदक युग्मों का भी प्रयोग किया जा सकता है। इनमें द्रवित हाइड्रोजन तथा आक्सीजन डाईफ्लोराइड, किरासन तेल तथा आक्सीजन और फ्लोरिन तथा आक्सीजन प्रमुख हैं। इन सभी युग्मों में द्रवित हाइड्रोजन तथा द्रवित आक्सीजन को वरीयता दी जाती है क्योंकि यह अन्य युग्मों की तुलना में भार में पचास प्रतिशत कम लेकिन कार्यक्षमता में शत प्रतिशत अधिक है। जहां तक भारत का प्रश्न है, स्वदेशी तकनीक की सहायता से क्रायोजेनिक ईंजन का विकास किया गया है जिसका सर्वप्रथम 1998 में तमिलनाडु के महेन्द्रगिरि-स्थित द्रव प्रक्षेपण प्रणाली केन्द्र (Liquid Propulsion Systems Centre, LPSC) में सफलतापूर्वक परीक्षण किया गया था। इसी केन्द्र में वर्ष 2000 में दूसरे ईंजन जिसका भार 12.5 टन था, का सफल प्रक्षेपण किया गया।

अंतरिक्ष कचरे की समस्या (Problem of Space Debris)

विश्व स्तर पर अंतरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास के कारण एक ओर जहां विकास के सभी क्षेत्रों में संभावनाएं प्रबल हुई हैं, वहीं दूसरी ओर, अंतरिक्ष में एक दूसरे से टकराने वाले अंतरिक्ष यानों तथा उनके टूटे हुये भागों से कचरे की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है।

एक अनुमान के अनुसार, वर्तमान में लगभग 9000 पिंड पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमारत हैं। इन पिंडों में कार्यरत उपग्रहों का अंश केवल 5 प्रतिशत है। शेष 95 प्रतिशत में मुख्य रूप से प्रमोचक यानों के नष्ट हुये भाग तथा अन्य पदार्थ शामिल हैं। अनुमान में यह भी कहा गया है कि अब तक लगभग 160 उपग्रहों की आयु समाप्त हो जाने के उपरांत उनके अवशेष अंतरिक्ष कचरे के रूप में विद्यमान हैं। यह विदित है कि अंतरिक्ष कचरे की समस्या एक बहुआयामी समस्या के रूप में उभरी है। इन कचरों से अंतरिक्ष यानों के नष्ट होने की भी आशंका होती है। इस क्रम में अमरीका द्वारा स्पेडस (Spadus) नामक एक भू-पर्यवलोकन उपग्रह अंतरिक्ष में स्थापित किया गया है जो इन कचरों के पर्यवेक्षण का कार्य करता है।

राष्ट्र विकास में अंतरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की भूमिका (Role of Space Science & Technology in National Development)

वर्ष 1962 से ही भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम ने संचार, कृषि, आपदा प्रबंधन तथा संसाधन प्रबंधन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह भी सत्य है कि तेजी से बढ़ती हुई आर्थिक और अन्य आवश्यकताओं ने अंतरिक्ष विज्ञान के और भी प्रभावकारी उपयोग की अनिवार्यता उत्पन्न कर दी है। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के पूर्व अध्यक्ष, डा. के. कस्तूरीरंगन के शब्दों में, 'व्यावसायीकरण के कारण बढ़ती हुई आवश्यकताओं ने अंतरिक्ष विज्ञान के अनुप्रयोगों का व्यापक विस्तार किया है। विशेषकर अंतरिक्ष-आधारित संचार ने अंतरिक्ष विज्ञान को आम आदमी तथा उद्योगों के निकट लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।'

अंतरिक्ष विज्ञान की भूमिका कृषि उत्पादकता और उत्पादन बढ़ाने में भी रही है। विशेषकर दूर संवेदन तथा मौसम पूर्वानुमान तकनीकों का प्रयोग कर इस दिशा में कार्य किये जाते हैं।

आपदा प्रबंधन में भी अंतरिक्ष-आधारित सुविधाओं का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए देश भर में लगभग 250 बाढ़ पूर्वानुमान केन्द्र स्थापित किये गये हैं। ये केन्द्र चक्रवात-संभावित भारत के पूर्वी तथा पश्चिमी तटवर्ती क्षेत्रों में कार्यरत हैं।

फसल पूर्वानुमान अंतरिक्ष विज्ञान के उपयोग का अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इसके लिए चलाये जाने वाले कार्यक्रम में फसल क्षेत्रफल तथा मृदा के गुणों का विश्लेषण किया जाता है।

पर्यावरणीय विकास में भी अंतरिक्ष विज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान है। इसके लिए उपग्रहों द्वारा वन सर्वेक्षण का कार्य किया जाता है।

भारतीय दूर संवेदी उपग्रहों की एक विशिष्टता यह है कि इनसे प्राप्त सूचनाओं का उपयोग समन्वित सतत विकास मिशन (Integrated Mission for Sustainable Development, IMSD) में किया जाता है। इसका उद्देश्य सूक्ष्म स्तर पर विकास को प्रोत्साहित करना है।

हांलाकि अंतरिक्ष विज्ञान को वैज्ञानिक विकास के लिये प्रोत्साहित किया जाता है लेकिन अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में भी इसन महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसी क्रम में अंतरिक्ष निगम की स्थापना की गई है जिसने विदेशी मुद्रा अर्जन की प्रक्रिया में उत्प्रेरक का कार्य किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन (International Space Station)

अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन के निर्माण का कार्य 1998 से आरंभ हुआ था जिसके 2011 के अंत तक पूरा हो जाने की आशा है। निम्न भू-कक्षा में स्थापित यह उपग्रहीय स्टेशन 278 किमी. से 460 किमी. के बीच स्थापित है (औसत 360 किमी.)।

इस परियोजना का मूल उद्देश्य गुरूत्वीय दशाओं में भौतिक,रासायनिक,जैविक,खगोलीय तथा मौसम संबंधी अध्ययन करना है। हाल ही में यूरोप की नेशनल इंसस्टीट्यूट आफ हेल्थ संस्था द्वारा विशेष वित्तीय सहायता देकर सूक्ष्म जैविकी के अध्ययन को प्रोत्साहित किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य मानव स्वास्थ्य के लिए संभावित प्रयोगों का अध्ययन है।

मई 2010 तक इस स्टेशन में कुल 14 अवयव(माड्यूल) कार्यरत थे। इसके अतिरिक्त कई प्रयोगशालाएं भी इससे जुड़ी हुई है। 1नवम्बर 2010 को Leonardo नामक एक वैज्ञानिक माड्यूल भेजा जाएगा जो इटली द्वारा निर्मित है जबकि अमेरिका द्वारा प्रचालित होगा। इसी प्रकार दिसम्बर 2011 में रूसी मोड्यूल नौका का भी प्रक्षेपण किया जाएगा। अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन परियोजना में अमेरिका (नासा) यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी, रूस, जापान, कनाडा भागीदार हैं। यह अंतरिक्ष स्टेशन अंतरिक्ष पर्यटन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

स्डुड सैट

देशभर में स्नातक स्तर तक के छात्रों द्वारा संकलित, विकसित तथा संचालित इस उपग्रह का प्रक्षेपण PSLV-C-15 द्वारा 12 जुलाई, 2010 को किया गया था तथा इसे सूर्य तुल्य कालिक कक्षा में स्थापित किया गया है। 6 माह के जीवनकाल का यह उपग्रह एक प्रयोगिक उपग्रह है जिसका मुख्य उद्देश्य निचले स्तर पर उपग्रहों के विकास और ऐसे अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के लिए एक सम्पर्क के रूप में कार्य करना हैं।

जुगनू

कानपुर स्थित 'भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान' द्वारा विकसित यह एक दूर संवेदी नैनो उपग्रह है जिसका प्रक्षेपण न्यून भू-कक्षा में PSCV द्वारा इस वर्ष के अंत तक किया जाएगा। इस उपग्रह का मुख्य कार्य आपदाओं पर निगरानी रखना और कृषि संबंधित सूचनाएं संकलित करना है।

प्रथम

भारत द्वारा विकसित किया जाने वाला यह पहला आयन मंडलीय उपग्रह होगा। जिसका उद्देश्य आयन मंडल में उपस्थित इलेक्ट्रानों की संख्या का अध्ययन करना है। स्टुडेंट सेटेलाइट इनिसिएटीव (छात्र उपग्रह पहल) नामक कार्यक्रम के तहत इसका विकास किया गया है। जुलाई 2010 से इसके परीक्षण की तैयारी आंरभ की गयी है। इस संबंध में कई परीक्षण किए गए हैं।

आइस मिशन सैटेलाइट

8 अप्रैल 2010 को यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी द्वारा क्रायोसेट-2 नामक उपग्रह कजाकिस्तान से प्रक्षेपित किया गया था। जिसका मुख्य उद्देश्य पृथ्वी की सतह पर उपस्थित बर्फ तथा हिमनदों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को अध्ययन करना है। विशेषकर ध्रुवीय हिमनदों के अध्ययन के साथ-साथ यह हिमनदों के पिघलने की दर और उसकी प्रक्रियाओं का अध्ययन करेगा। उल्लेखनीय है कि यह उपग्रह अंटार्कटिका और ग्रीनलैण्ड के क्षेत्रों में अध्ययन को प्राथमिकता देगा। हाल ही में ग्रीनलैंण्ड में लगभग 206 किमी. क्षेत्रफल वाला हिमनद का एक टुकड़ा मुख्य हिमनद से अलग हो गया है। इस क्षेत्र में किए गए अध्ययनों में यह उल्लेखित है कि ग्रीनलैण्ड में हिमनदों के पिघलने की दर अपेक्षाकृत अधिक हो गयी है जिससे सागर का जलस्तर लगभग 7मी. उच्च हो गया है।

यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी द्वारा 2005 में ही क्रायोसेट का प्रक्षेपण किया गया था जिसकी अध्ययन की सफलता दर को देखते हुए मार्च 2009 में Gravity Field and Steady State Ocean Circulation Explorer(GOCE) नामक मिशन तथा नवम्बर 2009 में (SMOS) Soel Moisture and Ocean Salinity Mission भेजे जाने के बाद इस वर्ष क्रायोसेट-2 का प्रक्षेपण किया गया।

इसरो की नवीनतम गतिविधियाँ

वर्ष 2011 में भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम ने उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल कीं, जिसमें श्रीहरिकोटा से ध्रुवीय उपगह प्रमोचक राकेट की तीन सफल उडानें शामिल हैं जिन्होंने एक भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रह रिसोर्ससैट-2, एक विज्ञान उपग्रह यूथसैट, ऊष्णकटिबंधीय जलवायु के अध्ययनार्थ एक भारत-फ्रेंच उपग्रह, मेघा-ट्रॉपिक्स और भारत के संचार उपग्रह जीसैट-12 को कक्षा में स्थापित किया। एक अन्य भारतीय उन्नत संचार उपग्रह जीसैट-8 को यूरोपीय प्रमोचक राकेट एरियाने-V का उपयोग करते हुए फ्रेन्च गियाना से प्रमोचित किया। ये पाँच उपग्रह सुचारु रूप से कार्य कर रहे हैं और इन्होंने अन्तरिक्ष उपयोग तथा वैज्ञानिक अध्ययन हेतु हमारी राष्ट्रीय क्षमता में महत्वपूर्ण रूप से वृद्धि की है।

- अप्रैल 20, 2011 को प्रमोचित रिसोर्ससैट-2, भारत तथा विश्व के प्रयोक्ता समुदाय को आँकडों की निरंतरता प्रदान करने हेतु रिसोर्ससैट-1 का अनुवर्ती मिशन है। इसमें रिसोर्ससैट-1 के जैसे तीन प्रकाशीय सुदूर संवेदन नीतभार - रेखीय प्रतिबिंबन स्वत: क्रमवीक्षक-3, रेखीय प्रतिबिंबन स्वत: क्रमवीक्षक-4 तथा उन्नत विस्तृत क्षेत्र संवेदक हैं। यह उपग्रह, जहाजों की स्थिति, गति तथा अन्य सूचना प्राप्त करने के लिए अति उच्च विभेदन बैण्ड में जहाज की निगरानी हेतु स्वचालित सूचना प्रणाली नामक एक अतिरिक्त नीतभार का भी वहन करता है। रिसोर्ससैट-1 की तुलना में, रेखीय प्रतिबिंबन स्वत: क्रमवीक्षक-4 बहुस्पेक्ट्रमी प्रमार्ज को 70 कि.मी. तक बढ़ाया गया है। रिसोर्ससैट-2 में नीतभार इलेक्ट्रॉनिकी के लघुकरण सहित उचित परिवर्तन किये गये हैं।
- यूथसैट, भारत-रूसी सहयोगी प्रयास - भारत का प्रथम लघु उपग्रह है जो भौमिक ऊपरी वायुमण्डल के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु दो भारतीय उपकरणों के साथ सौर विकिरण मापन हेतु एक रूसी उपकरण का वहन करता है।
- मेघा-ट्रॉपिक्स (संस्कृत में मेघा का अर्थ है बादल और फ्रेंच में ट्रॉपिक्स का अर्थ ऊष्णकटिबंध है) संवहनी प्रणाली के काल चक्र और ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वायुमण्डल की संबंधित ऊर्जा एवं आर्द्रता अंश (बजट) में उनकी भूमिका को समझने में भारत-रूसी संयुक्त उपग्रह मिशन है। इस उपग्रह को अक्तूबर 12, 2011 को पी.एस.एल.वी.-सी18 द्वारा प्रमोचित किया गया था।
- जीसैट-12 उपग्रह को 12 विस्तारित सी बैण्ड प्रेषानुकरों के साथ 8 वर्ष की मिशन कालावधि के लिए डिजाइन किया गया है और 830 पूर्व देशांतर पर स्थापित किया गया है। नीतभार की कक्षीय जाँच पूरी की गई है और उपग्रह को प्रचालनात्मक घोषित किया गया है। जीसैट-12 दूर-चिकित्सा, दूर-शिक्षा तथा आपदा प्रबंधन सहायता के क्षेत्र में अन्तरिक्ष आधारित उपयोगों को बढ़ायेगा।
- भारत का उन्नत संचार उपग्रह, जीसैट-8 जो के.यू.बैण्ड में 24 उच्च पावर के प्रेषानुकरों और दो चैनल वाले एल1 एवं एल5 बैण्डों में प्रचालित जी.पी.एस. आधारित भू संवर्धित नौवहन (गगन) नीतभार का वहन करता है, को 550 पूर्व देशांतर के अभिप्रेत भूस्थिर कक्षीय स्थान पर स्थापित किया गया। इस प्रेषानुकर ने इन्सैट प्रणाली में क्षमता का संवर्धन किया है, जबकि गगन नीतभार उपग्रह आधारित संवर्धन प्रणाली प्रदान करता है जिसके जरिये जी.पी.एस. उपग्रह से प्राप्त अवस्थिति सूचना की परिशुद्धता में सुधार किया गया है।

- नवम्बर 2011 में इन्सैट-2ई की समाप्ति के बाद, इसरो में 8 संचार उपग्रह, 2 मौसमविज्ञानीय उपग्रह,10 भू प्रेक्षण उपग्रह तथा 1 विज्ञान उपग्रह का समूह है।
- साथ ही, यह उल्लेखनीय है कि दो उपग्रह जुगनू (आई.आई.टी. कानपुर से) और (एस.आर.एम. विश्वविद्यालय, चेन्नई से) जिन्हें भारतीय विद्यार्थियों द्वारा बनाया गया। सह-पैसेंजर के रूप में और दो विदेशी उपग्रह एक्स-सैट तथा वेसेलसैट को भी वर्ष 2011 में पी.एस.एल.वी. द्वारा सफलतापूर्वक प्रमोचित किया गया।

प्रमोचक राकेट कार्यक्रम

- दो टन भार वाली श्रेणी के उपग्रहों को भू-तुल्यकाली अन्तरण कक्षा में संचार एवं मौसमविज्ञानीय उपग्रहों के प्रमोचन हेतु स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन तथा चरण के साथ भू-तुल्यकाली प्रमोचक राकेट मार्क II की प्राप्ति और चार टन भारवाले उपग्रहों के प्रमोचन में समर्थ जी.एस.एल.वी.-मार्क III की प्राप्ति के क्रियाकलाप संतोषजनक प्रगति कर रहे हैं।
- जी.एस.एल.वी.-मार्क III के लिए एस200 ठोस बूस्टर, इसरो द्वारा अब तक सबसे भारी बूस्टर की सफलतापूर्वक स्थैतिक जाँच की गई है। जी.एस.एल.वी.-मार्क III के 110 टन भारवाला द्रव क्रोड चरण की भी पूर्ण उडान अवधि के लिए स्थैतिक जाँच सफलतापूर्वक आयोजित की गई है।
- भारत के प्रथम सूक्ष्मतरंग राडार प्रतिबिंबन उपग्रह (रिसैट-1) का वहन करने वाले पी.एस.एल.वी.-सी19 के प्रमोचन के क्रियाकलाप उन्नत-चरण में हैं। सी-बैण्ड संश्लेषी द्वारक राडार प्रतिबिंबित्र नामक सक्रिय राडार संवेदक प्रणाली का उपयोग करते हुए रिसैट-1, प्रेक्षण मिशनों की अपनी प्रकाशीय आई.आर.एस. श्रृंखला के लिए महत्वपूर्ण सूक्ष्मतरंग अनुपूरक है। इसे सतीश धवन अन्तरिक्ष केन्द्र, श्रीहरिकोटा से 2012 की दूसरी तिमाही में प्रमोचति करने की योजना बनाई गई है।
- अन्तरिक्ष तक पहुँचने की लागत को कम करने की दिशा में अर्ध-क्रायोजेनिक नोदन इंजन, वायु वसन नोदन तथा पुनरुपयोगी प्रमोचक राकेट प्रौद्योगिकी में अनुसंधान एवं विकास के क्रियाकलाप भी किये जा रहे हैं। मानव अन्तरिक्ष उडान को शुरु करने हेतु क्रांतिक प्रौद्योगिकियों के विकास ने भी प्रगति की है।

उपग्रह कार्यक्रम

- जीसैट-7 एक बहु बैण्ड उपग्रह को वर्ष 2012 के दौरान 2012 के दौरान खरीदे गये प्रमोचित्र द्वारा प्रमोचित करने की योजना बनाई गई है।
- जीसैट-10 उपग्रह, जिसका के.यू. तथा सी.बैण्ड प्रेषानुकरों की बढ़ती आवश्यकता का संवर्धन करने के लिए विचार किया गया है,
- 12 के.यू.बैण्ड प्रेषानुकर, 12 सी बैण्ड, 12 विस्तारित सी बैण्ड प्रेषानुकरों का वहन करता है। यह गगन नीतभार का भी वहन करता है।
- इन्सैट-3डी 6 चैनल प्रतिबिंबित्र तथा 19 चैनल के परिज्ञापित्र नीतभार से युक्त एक अत्याधुनिक मौसमविज्ञानीय उपग्रह है। यह उपग्रह भू-स्थिर कक्षा में 820 पूर्व देशांतर पर स्थापित किया जायेगा। इसे 2013 के दौरान खरीदे गये प्रमोचित्र द्वारा प्रमोचित करने की योजना बनाई गई है।
- जीसैट-14 उपग्रह, जिसका विस्तारित सी-बैण्ड एवं के.यू.बैण्ड संचार प्रेषानुकर क्षमता को बढ़ाने के लिए विचार किया गया है, 6 विस्तारित सी-बैण्ड, 6 के.यू.बैण्ड प्रेषानुकर एवं 2 के.ए. बैण्ड बीकन का वहन करता है और इसे 2012 में जी.एस.एल.वी.-डी5 की आगामी उडान में इसके प्रमोचन की योजना बनाई गई है।
- चन्द्रयान-2, चन्द्रयान-1 का अनुवर्ती मिशन है जिसमें एक कक्षित्र एवं रोवर तथा रूसी लैण्डर होगा। चन्द्रयान-2 को चन्द्र मृदा के नमूने एकत्र कर चन्द्र मृदा में रासायन एवं खनिज की मात्रा का स्वस्थाने अध्ययन करने के लिए डिजाइन किया गया है। इस दिशा में भारत तथा रूस ने एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किये हैं। चन्द्रयान-2 मिशन को 2014 के दौरान जी.एस.एल.वी. द्वारा प्रमोचित करने का

लक्ष्य है।

सामाजिक उपयोग

- भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम का महत्व, उपयोग-अभिमुख प्रयास एवं देश को प्राप्त लाभ है। दूर-शिक्षा तथा दूर-चिकित्सा के क्षेत्र में इन्सैट उपग्रहों द्वारा प्रदान की जा रही सामाजिक सेवाएँ वर्ष के दौरान जारी रहीं। आज, दूर-शिक्षा नेटवर्क में 55,000 से अधिक क्लास रूम हैं जो विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों के साथ जुडे हैं। दूर-चिकित्सा नेटवर्क सुविधा में 382 अस्पताल शामिल हैं, जिसमें 306 ग्रामीण अस्पताल और 16 मोबाइलं वैन 60 सूपर स्पेशैलिटी अस्पतालों से जुडे हैं, जो नागरिकों को, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करते हैं।
- ग्रामीण संसाधन केन्द्र (वी.आर.सी.) की स्थापना की गई है जो, एकल विण्डो एजेन्सी है जो प्राकृतिक संसाधन, भूमि एवं जल संसाधन प्रबंधन, दूर-चिकित्सा, दूर-शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, व्यवसायिक प्रशिक्षण, स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण कार्यक्रमों पर सूचना प्रदान करने हेतु इन्सैट एवं आई.आर.एस. उपग्रहों द्वारा सेवाएँ प्रदान करते हैं। 473 से अधिक वी.आर.सी. देश के 22 राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों में स्थापित किये जा चुके हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

- अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग अन्तरिक्ष क्रियाकलापों का अभिन्न अंग है, और इसरो ने अन्तरिक्ष एजेन्सियों एवं अन्तरिक्ष संबंधी निकायों के साथ द्विपक्षी एवं बहुपक्षी संबंधों को महत्व देना जारी रखा है जिनका उद्देश्य, नई वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक चुनौतियों को स्वीकार करना, शान्तिपूर्ण उद्देश्यों हेतु बाह्य अन्तरिक्ष के दोहन एवं उपयोग हेतु अन्तर्राष्ट्रीय कार्य ढाँचा को विनिर्दिष्ट करना, अन्तरिक्ष नीतियों का पुनर्मार्जन तथा देशों के बीच विद्यमान संबंधों को बनाना व सुदृढ़ करना है। इसरो अपने केन्द्रों में उपलब्ध विशेषज्ञता एवं सेवाओं को अन्य विकासशील देशों को अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी के उपयोग में सहायता करने के लिए प्रदान करने में भारी रुची लेता है। इसरो के अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाने में यह वर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है क्योंकि अन्य देशों के साथ संयुक्त रूप से निर्मित दो उपग्रह भारत द्वारा प्रमोचित किये गये। एक भारत-फ्रेंच संयुक्त मिशन मेघा-ट्रॉपिक्स अक्तूबर 12, 2011 को प्रमोचित किया गया तथा रूस के साथ संयुक्त रूप से निर्मित यूथसैट को अप्रैल 20, 2011 को प्रमाचित किया गया।

संगठन (Organization)

देश में अन्तरिक्ष क्रियाकलापों की शुरूआत 1962 में भारतीय राष्ट्रीय अन्तरिक्ष अनुसंधान समिति (इन्कोस्पार) की स्थापना के साथ हुई। उसी वर्ष, तिरुवनन्तपुरम के निकट थुम्बा भूमध्यरेखीय राकेट प्रमोचन केन्द्र (टर्ल्स) में काम शुरू किए गए। अगस्त 1969 में भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) की स्थापना हुई। भारत सरकार ने अन्तरिक्ष आयोग का गठन किया तथा जून 1972 में अन्तरिक्ष विभाग (अं.वि.) की स्थापना की गई और इसरो को सितम्बर 1972 में अन्तरिक्ष विभाग के अधीन लाया गया।

विक्रम साराभाई अन्तरिक्ष केन्द्र (वी.एस.एस.सी) Vikram Sarabhai Space Centre (VSSC)

तिरुवनन्तपुरम स्थित वी.एस.एस.सी उपग्रह प्रमोचक राकेट, परिज्ञापी राकेट तथा संबंधित प्रौद्योगिकी के विकास के लिये अग्रणी केन्द्र है। इस केन्द्र में वैमानिकी; विमानन; सम्मिश्र; कम्प्यूटर तथा सूचना; नियंत्रण, मार्गनिर्देशन तथा अनुकार; प्रमोचक राकेट डिजाइन; यांत्रिक अभियांत्रिकी; यंत्रावली, राकेट समेकन तथा जाँच; नोदक, बहुलक, रसायन तथा सामग्री; नोदन, नोदक एवं अन्तरिक्ष प्रथा तथा प्रणाली विश्वसनीयता के क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास कार्य किया जाता है। कार्यक्रम आयोजना तथा मूल्यांकन, प्रौद्योगिकी अंतरण तथा औद्योगिक समन्वयन, मानव संसाधन विकास, सुरक्षा तथा कार्मिक एवं सामान्य प्रशासन समूह केन्द्र की सहायता करते हैं। वी.एस.एस.सी के प्रमुख कार्यक्रमों में ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचक

राकेट (पी.एस.एल.वी), भू-तुल्यकाली उपग्रह प्रमोचक राकेट (जी.एस.एल.वी), रोहिणी परिज्ञापी राकेट, अन्तरिक्ष-कैप्सूल पुनःप्राप्ति परीक्षण, पुनरूपयोगी प्रमोचक राकेट, वायु वसन नोदन तथा उन्नत प्रमोचक राकेट प्रणालियों के क्षेत्र में क्रांतिक प्रौद्योगिकियों का विकास शामिल है।

इसरो उपग्रह केन्द्र (आईजैक) ISRO Satellite Centre (ISAC)

बेंगलूर में स्थित आईजैक उपग्रह प्रणालियों के अनुसंधान और विकास के लिए अग्रणी केन्द्र है। यह केन्द्र समयबद्ध परियोजनाओं द्वारा उपग्रह प्रणालियों की अवधारणा, डिज़ाइन, संविरचन, जाँच तथा समेकन और कक्षीय अभिचालन के कार्य के लिए जिम्मेदार है। इस केन्द्र में विभिन्न मिशन आवश्यकताओं को पूरा करने वाले अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियाँ विकसित की जाती हैं जो आईजैक को अन्तरिक्षयान प्रौद्योगिकी के अग्रणी राष्ट्रों में आगे रखती हैं।

सतीश धवन अन्तरिक्ष केन्द्र (एस.डी.एस.सी), शार Satish Dhawan Space Centre (SDSC) SHAR

श्रीहरिकोटा स्थित एस.डी.एस.सी., शार, दो प्रमोचन पैडों के साथ, इसरो का प्रमुख प्रमोचन केन्द्र है और प्रमोचन प्रचालन आयोजित करता है। केन्द्र को निम्नलिखित कार्य सौंपे गये हैं (i) इसरो के प्रमोचक राकेट कार्यक्रम के लिए ठोस नोदक बूस्टरों का उत्पादन (ii) विभिन्न उप-प्रणालियों और ठोस राकेट मोटरों को अर्ह बनाने के लिए अवसंरचना प्रदान करना और आवश्यक जाँच आयोजित करना (iii) प्रमोचन आधार अवसंरचना प्रदान करना, और (iv) उपग्रह प्रमोचक राकेट और उपग्रहों का समुच्चय, समेकन तथा प्रमोचन।

द्रव नोदन प्रणाली केन्द्र (एल.पी.एस.सी) Liquid Propulsion Systems Centre (LPSC)

एल.पी.एस.सी प्रमोचक राकेट तथा उपग्रह कार्यक्रमों के लिए द्रव राकेट इंजन, चरण तथा नियंत्रण पावर संयंत्र के डिज़ाइन, विकास व प्राप्ति के लिए जिम्मेदार इसरो का प्रमुख केन्द्र है। केन्द्र ने भू-भण्डारणीय और क्रायोजेनिक नोदन के क्षेत्र में अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियों का विकास किया है और अन्तरिक्षयान कार्यक्रमों के लिए विद्युत नोदन प्रणाली भी विकसित की है। यह केन्द्र समेकित प्रमोचक राकेट (यू.एल.वी.) और पुनरुपयोगी प्रमोचक राकेट (आर.एल.वी.) के लिए उच्च थ्रस्ट के सेमी क्रायोजेनिक इंजन का विकास भी कर रहा है।

एल.पी.एस.सी. के क्रियाकलाप केरल में तिरुवनन्तपुरम के निकट वलियमला स्थित मुख्यालय के साथ वलियमला, महेन्द्रगिरी और बेंगलूर स्थित तीन परिसरों में संगठित हैं। एल.पी.एस.सी. अन्तरिक्षयान नोदन प्रणाली के विकास के लिए जिम्मेदार है।

अन्तरिक्ष उपयोग केन्द्र (सैक) Space Applications Centre (SAC)

अहमदाबाद स्थित सैक इसरो का एक प्रमुख केन्द्र है और यह नीतभार विकास से सामाजिक उपयोग तक के विभिन्न विषयों से संबंधित कार्य करता है, इस तरह प्रौद्योगिकी, विज्ञान तथा सामाजिक उपयोग की सहक्रिया करता है। केन्द्र संचार, नौवहन, भू प्रेक्षण तथा मौसमविज्ञानीय नीतभार के विकास प्राप्ति और अर्ह बनाने तथा संबंधित आँकड़ों के संसाधन एवं भू प्रणालियों के लिए जिम्मेदार है। यह केन्द्र प्राकृतिक संसाधनों के संचार, प्रसारण, भू प्रेक्षण, मौसम और पर्यावरणीय अध्ययन आपदा मानीटरन/न्यूनीकरण आदि के क्षेत्र में भू प्रणालियों और उपयोग क्रियाकलाप के विकास का कार्य आयोजित करता है। यह सामाजिक लाभों के व्यापक विभिन्न उपयोग के लिए अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी के उपयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

यह केन्द्र संयुक्त राष्ट्र के साथ संबद्ध अन्तरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी शिक्षा केन्द्र (यू-एन. सी.एस.एस.टी.पी.) के तत्वावधान में एशिया प्रशांत क्षेत्र के विद्यार्थियों को उपग्रह संचार और मौसमविज्ञान पर नौ महीने का स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम आयोजित करता है।

राष्ट्रीय सुदूर संवेदन केन्द्र (एन.आर.एस.सी.) National Remote Sensing Centre (NRSC)

हैदराबाद स्थित एन.आर.एस.सी, सितम्बर 01, 2008 से इसरो के एक सम्पूर्ण केन्द्र के रूप में परिवर्तित हुआ है। पहले एन.आर.एस.सी. एक स्वायत्त संस्था थी जो अन्तरिक्ष विभाग (अं.वि.) के तहत राष्ट्रीय सुदूर संवेदन एजेन्सी (एन.आर.एस.ए.) के नाम से जाना जाता था। यह केन्द्र सुदूर संवेदन उपग्रह के आँकड़ा अर्जन तथा संसाधन, आँकडा विकीर्णन, हवाई सुदूर संवेदन तथा आपदा प्रबंधन हेतु निर्णय सहायता के लिए उत्तरदायी है।

एन.आर.एस.सी. ने हैदराबाद के निकट शादनगर में भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रहों तथा अन्य उपग्रहों से आँकड़े प्राप्त करने के लिए एक आँकड़ा

अभिग्रहण केन्द्र की स्थापना की है। यह केन्द्र प्रयोक्ताओं के सहयोग से सुदूर संवेदन उपयोग परियोजनाओं का कार्यान्वयन भी करता है। अन्तरिक्ष विभाग द्वारा राष्ट्रीय प्राकृतिक संसाधन प्रबंध प्रणाली (एन.एन.आर.एम.एस.) के तहत बेंगलूर, जोधपुर, खड़गपुर, देहरादून तथा नागपुर में स्थापित पाँच आर.आर.एस.एस.सी का दिसम्बर 2, 2009 को प्रादेशिक सुदूर संवेदन केन्द्र (आर.आर.एस.सी.) के रूप में पनु:नामकरण किया गया है। आर.आर.एस.सी अपने क्षेत्र विशिष्ट तथा राष्ट्रीय स्तर पर भी विभिन्न सुदूर संवेदन कार्यों को सहायता प्रदान करते हैं। आर.आर.एस.सी विभिन्न प्राकृतिक संसाधन क्षेत्रों में उपयोग परियोजना का कार्य करता है जैसे कृषी तथा मृदा, जल संसाधन, वानिकी, समुद्रविज्ञान, भूविज्ञान, पर्यावरण, तथा शहरी योजना का कार्य करता है।

विकास तथा शैक्षिक संचार यूनिट (डेकू) Development and Educational Communication Unit (DECU)

अहमदाबाद स्थित डेकू प्रणाली परिभाषा, आयोजना, कार्यान्वयन तथा उपग्रह आधारित सामाजिक उपयोगों के समाजार्थिक अनुसंधान/मूल्यांकन कार्य में लगी हुई है। डेकु के मुख्य क्रियाकलापों में निम्न शामिल हैं: दूर-शिक्षा, दूर-चिकित्सा, प्रशिक्षण तथा विकास संचार चैनल (टी.डी.सी.सी.), ग्रामीण संसाधन केन्द्र (वी.आर.सी.) और डी.एम.एस. कार्यक्रम।

इसरो दूरमिति अनुवर्तन और आदेश संचार जाल (इस्ट्रैक) ISRO Telemetry, Tracking and Command Network (ISTRAC)

इस्ट्रैक इसरो के प्रमुख प्रमोचक राकेट एवं अन्तरिक्षयान मिशनों को अन्तरिक्षयान टी.टी.सी. तथा मिशन नियंत्रण सेवाएँ प्रदान करता है। इसमें सभी प्रचालनात्मक सुदूर संवेदन तथा वैज्ञानिक उपग्रहों के मिशन प्रचालन आयोजित करना, प्रमोचक राकेट उत्थापन से लेकर उपग्रह के कक्षा में अन्त:क्षेपण तक टी.टी.सी. सेवा प्रदान करना और अन्तरिक्ष में इसकी प्राथमिक कक्षा का अनुमान लगाना तथा हार्डवेयर एवं साफ्टवेयर के विकासात्मक क्रियाकलापों का आयोजन जो कि टी.टी.सी. एवं मिशन प्रचालन सेवाएँ आबंध्य रूप से प्रदान करने हेतु इस्ट्रैक की क्षमता को बढ़ाते हैं, शामिल हैं।
इस्ट्रैक को इसरो के मानव अन्तरिक्ष उडान तथा गहन अन्तरिक्ष मिशन के लिए अन्तरिक्ष प्रचालन सहायता प्रदान करने, प्रमोचक राकेट अनुवर्तन तथा मौसमविज्ञानीय उपयोग हेतु राडार प्रणाली के विकास कार्य शुरू करने, भारतीय प्रादेशिक नौवहनात्मक उपग्रह प्रणाली के लिए भू खण्ड की स्थापना एवं प्रचालनात्मक बनाने, खोज एवं बचाव तथा आपदा प्रबंधन सेवा प्रदान करने और दूरचिकित्सा, वी.आर.सी. एवं दूर-शिक्षा जैसी अन्तरिक्ष आधारित समाज-उपयोगी सेवाएँ प्रदान करने का आदेश प्राप्त है।

मुख्य नियंत्रण सुविधा (एम.सी.एफ) Master Control Facility (MCF)

कर्नाटक में हासन और मध्यप्रदेश में भोपाल स्थित एम सी एफ इसरो के सभी भू-स्थिर उपग्रहों का मानीटरन एवं नियत्रण करता है। एम सी एफ उपग्रहों का प्रांरभिक कक्षा संवर्धन कक्षीय नीतभार की जाँचें और इन उपग्रहों की समूची कलावधि के दौरान कक्षीय प्रचालन से संबंधित कार्यों को आयोजित करती है। एम.सी.एफ. के क्रियाकलापों में निरंतर अनुवर्तन, दूरमिति तथा आदेश (टी.टी. एवं सी.) प्रचालन शामिल हैं, जिनमें किसी आकस्मिकता के मामले में ग्रहण प्रबंधन, केन्द्र रखरखाव युक्तियाँ और पुन: प्राप्ति जैसे विशेष कार्य भी शामिल हैं। एम सी एफ उपग्रह नीतभारों की प्रभावशाली उपयोगिता के लिए और विशेष प्रचालनों के दौरान सेवा में बाधाओं को कम करने हेतु प्रयोक्ता एजेन्सियों के साथ अन्योन्क्रिया करती है।

इसरो जड़त्वीय प्रणाली यूनिट (आई.आई.एस.यू) ISRO Inertial Systems Unit (IISU)

तिरुवनन्तपुरम स्थित आई.आई.एस.यू जड़त्वीय प्रणालियों तथा प्रवर्धकों एवं परिमाण, गुणवत्ता तथा समय के संबंध में विभिन्न प्रमोचक राकेटों एवं अन्तरिक्ष परियोजनाओं की माँग पूरा करने के क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास कार्य आयोजित करती है। इस यूनिट में समूचे भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम के लिए डिजाइन बनाने, उसे तैयार कर विकसित करके अर्ह बनाकर प्रदान करने की पूर्ण क्षमता है। जडत्वीय संवेदकों, प्रणालियों, प्रवर्धकों तथा यंत्रावलियों की प्रौद्योगिकी को कई बार उन्नत किया है ताकि दीर्घकालावधि, बेहतर निष्पादन व विश्वसनीयता प्रदान की जा सके।

विद्युत-प्रकाशिकी प्रणाली प्रयोगशाला (लियोस) Laboratory for Electro-Optic Systems (LEOS)

लियोस पीण्या औद्योगिक एस्टेट, बेंगलूर में स्थित है, जहाँ 1975 में प्रथम भारतीय उपग्रह आर्यभट्ट का संविरचन किया गया था। लियोस उपग्रह तथा प्रमोचक राकेट के लिए विद्युत-प्रकाशिकी संवेदकों तथा कैमरा प्रकाशिकी के डिजाइन, विकास एवं उत्पादन के लिए जिम्मेदार है। संवेदक, प्रणाली में तारा अनुवर्तक, भू संवेदक, सूर्य संवेदक, चुंबकत्व संवेदक, तापमान संवेदकों तथा संसाधन इलेक्ट्रॉनिकी शामिल है। प्रकाशिकी प्रणाली में सुदूर संवेदन कैमरा, रेडियोमापी, तारा संवेदक प्रकाशिकी, प्रकाशिकी स्यंदक, विकोडित्र, प्रकाशिकी मास्क तथा प्रकाशिक संचकन हेतु प्रकाशिकी शामिल है। लियोस के प्रौद्योगिकी विकास कार्यक्रमों में चालू एवं भावी उपग्रहों हेतु लघुकृत संवेदकों का विकास, उच्च विभेदन वाली कैमरा प्रकाशिकी, प्रकाशिक संचकन तथा एम.ई.एम.एस. युक्तियों का विकास शामिल है।

भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला (पी.आर.एल) Physical Research Laboratory (PRL)

अहमदाबाद स्थित पी.आर.एल मुख्यतः विभाग से सहायता प्राप्त स्वायत्त संस्थान है। यह खगोल शास्त्र और खगोल भौतिकी, अन्तरिक्ष और वायुमण्डलीय विज्ञानों भू विज्ञान, ग्रहीय विज्ञान एवं खोज तथा सैद्धांतिक भौतिकी के क्षेत्रों में मूल अनुसंधान में कार्यरत एक अग्रणी संस्था है। इसके क्रियाकलाप इन सभी क्षेत्रों में अनुसंधान के विस्तृत स्पेक्ट्रम का आवरण करते हैं। पी.आर.एल. द्वारा प्रचालित दो मुख्य सुविधाएँ, अवरक्त दूरबीन तथा एक सौर वेधाशाला क्रमशः माउण्ट आबु तथा उदयपुर में स्थित हैं। पी.एल.एल. का मानव संसाधन विकास घटक बडा ही सुदृढ़ है जिसमें विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों के छात्रों तथा महाविद्यालय के अध्यापकों के लिए पी.एच.डी (Ph.D) कार्यक्रम तथा विशिष्टोकृत कार्यक्रम शामिल हैं। इसे उदयपुर सौर वेधशाला (यू.एस.ओ.) का प्रबंधन कार्य भी सौंपा गया है।

राष्ट्रीय वायुमण्डलीय अनुसंधान प्रयोगशाला (एन.ए.आर.एल) National Atmospheric Research Laboratory (NARL)

तिरुपति के निकट गादंकी स्थित एन.ए.आर.एल अन्तरिक्ष विभाग द्वारा सहायता प्राप्त एक स्वायत्त सोसाइटी है। यह मध्यमण्डल-समतापमण्डल-क्षोभमण्डल राडार, लिडार, निम्न वायुमण्डलीय पवन प्रोफाइलर, डिस्ड्रोमीटर, प्रकाशिकी वर्षा मापी और स्वचालित मौसम केन्द्र जैसी सुविधाओं और संबद्ध सुविधाओं के लिये वायुमण्डलीय अनुसंधान आयोजित करने वाला केन्द्र है। एन.ए.आर.एल, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिकों के लिए वायुमण्डलीय अनुसंधान करने हेतु उपलब्ध है। उच्च गुणवत्ता वाले जलवायु आँकडे तैयार करने की दिशा में एन.ए.आर.एल. द्वारा, भारतीय जलवायु वेधशाला नेटवर्क (आई.सी.ओ.एन.) के भाग के रूप में जलवायु वेधशाला की स्थापना कर एक साधारण शुरूआत की गई है। यह वेधशाला, एयरोसेल, अनुरेख गैसों, विकीर्णन, मेघ तथा अन्य जलवायु संबंधी प्राचलों के सतत मानीटरन हेतु विविध अत्याधुनिकतम उपकरणों के साथ सज्जित है।

उत्तर-पूर्वी अन्तरिक्ष उपयोग केन्द्र (एन.ई.-सैक) North Eastern-Space Applications Centre (NE-SAC)

शिल्लांग स्थित उत्तर पूर्वी-सैक अन्तरिक्ष विभाग तथा उत्तर-पूर्वी परिषद का संयुक्त उद्यम है विकास के लिए अन्तरिक्ष विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का उपयोग करने में उत्तर- पूर्वी क्षेत्र को सहायता प्रदान करता है। इस केन्द्र को, उत्तर-पूर्वी राज्यों को अपने विकास के लिये अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी निवेश अपनाने में सहायता करने हेतु उच्च प्रौद्योगिकी अवसंरचना का विकास करने का आदेश प्राप्त है। फिलहाल, उत्तर पूर्वी-सैक, अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी निवेशों - सुदूर संवेदन, उपग्रह संचार और अन्तरिक्ष विज्ञान का उपयोग करनेवाली विनिर्दिष्ट परियोजनाओं का कार्य करते हुए विकासात्मक सहायता प्रदान कर रहा है।

सेमी-कण्डक्टर प्रयोगशाला (एस.सी.एल) Semi-Conductor Laboratory (SCL)

सेमी-कण्डक्टर काम्प्लेक्स लिमिटेड, चण्डीगढ़, संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (एम.सी.आई.टी) के अंतर्गत एक सार्वजनिक उद्यम का प्रशासनिक नियंत्रण मार्च 2005 से अन्तरिक्ष विभाग को हस्तांतरण किया गया। अन्तरिक्ष विभाग ने नवम्बर 2005 में एस.सी.एल की एक अनुसंधान एवं विकास सोसाइटी के रूप में पुनःसंरचना की। एस.सी.एल को अत्यन्त बड़े पैमाने की समेकन (वी.एल.एस.आई) युक्तियों के

डिज़ाइन और विकास तथा दूर संचार व अन्तरिक्ष क्षेत्र की प्रणालियों के विकास कार्य की जिम्मेदारी सौंपी गई है।

भारतीय अन्तरिक्ष विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.एस.टी.) Indian Institute of Space Science and Technology (IIST)

आई.आई.एस.टी. एशिया का प्रथम अन्तरिक्ष विश्वविद्यालय है जिसे भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु अन्तरिक्ष विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में उच्च गुणवत्तावाली शिक्षा प्रदान करने के लक्ष्य के साथ 2007 के दौरान तिरुवनन्तपुरम में स्थापित किया गया है। यह संस्थान, वैमानिकी तथा वांतरिक्ष इंजीनियरिंग में विशेष अध्ययन के साथ अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी में स्नातक उपाधि तथा अन्तरिक्ष संबंधी विषयों पर विशेष जोर देते हुए अनुप्रयुक्त विज्ञान में समेकित स्नातकोत्तर उपाधि प्रदान करता है।

एन्ट्रिक्स कार्पोरेशन लिमिटेड Antrix Corporation Limited

बेंगलूर स्थित एन्ट्रिक्स कार्पोरेशन लिमिटेड अन्तरिक्ष विभाग के तहत विपणन एजेन्सी है जिसे अन्तरिक्ष विभाग तथा भारतीय अन्तरिक्ष उद्योगों के संसाधनों के लिये अभिगम प्राप्त है। एन्ट्रिक्स उपग्रहों के लिये उपप्रणालियों और घटकों का विपणन करती है, प्रयोक्ता के विनिर्देशनों के अनुरूप उपग्रहों के निर्माण के लिये ठेके प्राप्त करती है, प्रमोचन सेवाएँ और अनुवर्तन सुविधाएँ प्रदान करती है और मानवशक्ति तथा साफ्टवेयर विकास हेतु प्रशिक्षण आयोजित करती है।

संचार, नौवहन तथा मौसमविज्ञानीय उपग्रह प्रणाली Communication and Meteorological Satellite System

1983 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह (इन्सैट) प्रणाली एशिया प्रशांत क्षेत्र में एक बृहत्तम घरेलू संचार उपग्रह प्रणाली है, जिसमें नौ उपग्रह प्रचालन में हैं- इन्सैट-2ई, इन्सैट-3ए, इन्सैट-3सी, इन्सैट-3ई, जीसैट-2, कल्पना-1, इन्सैट-4ए, इन्सैट-4बी तथा इन्सैट-4सी.आर. इन्सैट प्रणाली अन्तरिक्ष विभाग, दूरसंचार विभाग, भारतीय मौसमविज्ञान विभाग, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन का एक संयुक्त उद्यम है। इन्सैट प्रणाली का समग्र समन्वयन तथा प्रबंधन, इन्सैट समन्वयन समिति द्वारा किया जाता है।

भारतीय अन्तरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिक संस्थान

- भारतीय अन्तरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.एस.टी.) जिसे वि वविद्यालय का दर्जा प्राप्त है, को मानव संसाधन में क्षमता निर्माण तथा भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए स्थापित किया गया। इस संस्थान ने तिरुवनन्तपुरम में वलियमला में अपने स्थाई परिसर में कार्यारंभ कर दिया है। इस संस्थान में प्रति वर्ष लगभग 150-200 विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाता है। अगस्त 2011 में इसरो के विविध केन्द्रों/यूनिटों में इस संस्थान के प्रथम स्नातक बैच की भर्ती की गई है।

संचार, नौसंचालन और मौसमविज्ञानीय उपग्रह प्रणाली

भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह (इन्सैट) प्रणाली, 1983 में स्थापित की गई, एशिया प्रशांत क्षेत्र की एक बृहत्तम घरेलू उपग्रह प्रणाली है जिसमें दस उपग्रह प्रचालन में हैं - इन्सैट-2ई, इन्सैट-3ए, इन्सैट-3सी, इन्सैट-3ई, कल्पना-1, इन्सैट-4ए, इन्सैट-4बी, इन्सैट-4सी.आर. जीसैट-8, जीसैट-12। इन्सैट प्रणाली अंतरिक्ष विभाग, दूरसंचार विभाग, भारतीय मौसमविज्ञान विभाग, आकाशवाणी, और दूरदर्शन का संयुक्त प्रयास है। इन्सैट प्रणाली का समग्र समन्वयन और प्रबंधन इन्सैट समन्वयन समिति द्वारा किया जाता है।

सेवारत उपग्रह

इन्सैट-2ई

इन्सैट -2 श्रृंखला के अंतिम पांच उपग्रह 830 पूर्व देशांतर पर स्थित है जिसने 12 साल की सेवा संतोषजनक रूप से पूरी की है। 1999 में

प्रमोचित इन्सैट- 2ई में सत्रह सी बैंड और निम्न विस्तारित सी बैण्ड प्रेषानुकर हैं जो 36 डीबी डब्ल्यू के प्रभावी समस्थानिक विकिरण शक्ति के साथ क्षेत्रीय और वैश्विक आवरण प्रदान करते हैं। दिसम्बर 2011 में उपग्रह अपने जीवन काल के अंत में पहुँचा तथा इन्सैट-2ई के सभी प्रयोक्ताओं को अन्य उपग्रह में अंतरित किया गया।

इन्सैट-3ए

बहुउद्देशीय उपग्रह इन्सैट-3ए ने अपने, प्रचालन के 8 साल संतोषजनक रूप से पूर्ण कर लिए हैं। यह 93.50 में पूर्व देशांतर इन्सैट-4बी के साथ स्थित है। इन्सैट-3ए के नीतभार निम्नानुसार हैं:

- 12 सामान्य सी-बैंड प्रेषानुकर- (9 चैनलों द्वारा 38 डीबीडब्ल्यू के ईआरआईपी के साथ मध्य पूर्व से दक्षिण पूर्व एशिया तक विस्तृत आवरण प्रदान करते हैं, 3 चैनल 36 डीबीडब्ल्यू के ईआईआरपी के साथ भारत को आवरित करते हैं)
- 6 विस्तारित सी-बैंड प्रेषानुकर 36 डीबीडब्ल्यू के ईआईआरपी के साथ भारत को आवरित करते है
- 6 केयू-बैंड प्रेषानुकर, 48 डीबीडब्ल्यू के ईआरपी के साथ भारत को आवरित करते हैं।
- अति उच्च विभेदन रेडियोमीटर (वीएचआरआर) जिसकी प्रतिबिंबन क्षमता दृश्य में (0.55-0.75 माइक्रोन), तापीय अवरक्त (10.5-12.5 माइक्रोन) और जल वाष्प (5.7-7.1 माइक्रोन) जो क्रमश 2x2 कि.मी. और 8x8 कि.मी. चैनलों के भू-विभेदन प्रदान करता है।
- एक चार्ज युग्मित उपकरण (सीसीडी) कैमरा दृश्य (0.63-0.69 माइक्रोन), निकट अवरक्त (0.77-0.86 माइक्रोन) तथा लघुतरंग अवरक्त (1.55-1.70) बैंडों में 1x1 कि.मी. भू-विभेदन प्रदान करता है।।
- एक आँकड़ा रिले प्रेषानुकर जो मानवरहित भूमि और समुद्र आधारित स्वचालित आँकड़ा संग्रहण सह प्रसारण प्लेटफार्मों से मौसमविज्ञान, जल विज्ञान तथा समुद्रविज्ञान संबंधी आंकड़ों के रिले हेतु 400 मे.ह. अपलिंक और 4500 मे.ह. डाउनलिंक के साथ वैश्विक अभिग्राही आवरण प्रदान करने में सक्षम है।
- उपग्रह आधारित खोज एवं बचाव नीतभार जो समुद्र, वायु और भूमि के आपदा बीकनों से संकेतों के रिले करने में सक्षम है और भारत को आवरित करते हुए 406 मे.ह. अपलिंक और 4500 मे.ह. डाउनलिंक सहित वैश्विक अभिग्राही क्षमता रखता है।

इन्सैट 3सी

जनवरी 2002 में प्रमोचित, इन्सैट-3 सी को 740 पूर्व देशांतर में स्थापित किया गया है। इन्सैट-3सी नीतभारों में 37 डीबीडब्ल्यू के ईआईआरपी प्रदान करने वाले 24 सामान्य सी-बैंड प्रेषानुकर हैं, 37 डीबीडब्ल्यू के साथ 6 विस्तारित सी-बैंड प्रेषानुकर है और 42 डीबीडब्ल्यू के ईआईआरपी के साथ बीएसएस सेवाएं प्रदान करते है जो एमएसएस नीतभार इन्सैट-3बी में शामिल नीतभार के समान है। सभी प्रेषानुकर भारत का संपूर्ण आवरण उपलब्ध कराते हैं। उपग्रह निरंतर संतोषजनक सेवाएं प्रदान कर रहा है।

इन्सैट-3 ई

सितंबर 2003 में प्रमोचित, इंसैट 3-ई को 550 पूर्व देशांतर पर जीसैट-8 के साथ स्थापित किया गया है और भारत के ऊपर 37 डीबीडब्ल्यू के ई.आई.आर.पी के आवरण प्रदान करते है जिसमें 24 सामान्य सी-बैंड प्रेषानुकर है और जो भारत पर 38 डीबीडब्ल्यू के ई.आई.आर.पी के आवरण प्रदान करने वाले 12 विस्तारित सी-बैंड प्रेषानुकर का वहन करता है। उपग्रह युगपत विद्युत विसंगति के कारण कम क्षमता से कार्य कर रहा है।

कल्पना-1 कल्पना-1 एक विशिष्ट मौसमविज्ञानीय उपग्रह है। जिसका प्रमोचन सितंबर 2002 को पीएसएलवी द्वारा किया गया। यह मौसमविज्ञानीय सेवाएं प्रदान करने के लिए वीएचआरआर और डीआरटी नीतभारों को वहन करता है। यह 740 पूर्व देशांतर पर स्थित है। यद्यपि उपग्रह ने अपनी निर्धारित सात वर्ष की सेवा पूर्ण कर ली है, तथापि वह अपनी अवनत कक्षा से निरतंर संतोषजनक और महत्वपूर्ण सेवाएं प्रदान करा रहा है।

इन्सैट-4ए

दिसंबर 2005 में यूरोपियन एरियन प्रमोचन यान द्वारा प्रमोचित इन्सैट -4ए जीसैट-12 के साथ 830 पूर्व देशांतर पर स्थापित है। भारत की मुख्य भूमि का आवरण करने वाले पादचिन्ह सहित पालीगन आवरण के अंतिम छोर पर 52 डीबीडब्ल्यू के ईआईआरपी प्रदान करने हेतु 140 वॉट के टी डब्लयूटीए का नियोजन करने वाले 12 केयू बैंड 36 मे.ह. बैंड विस्तार प्रेषानुकर और भारतीय भौगोलिक सीमा, भारत के दक्षिणी-पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में भारत से पार के क्षेत्रों को सम्मिलित करतें हुए विस्तारित विकिरण प्रकार वाले आवरण के अंतिम छोर पर 39 डीबीडब्ल्यू के ई.आई.आर.पी प्रदान करने हेतु 12-सी बैंड वाले 36 मे.ह. बैंड विस्तार के प्रेषानुकर का वहन करता है।

इन्सैट-4 बी

इन्सैट-4ए के समान नीतभारों के साथ संरूपित, इन्सैट-4बी मार्च 12, 2007 को यूरोपियन एरियन-5 प्रमोचक रॉकेट द्वारा प्रमोचित किया गया। इन्सैट-4बी क्रमशः 52 डीबीडब्ल्यू और 39 डीबीडब्ल्यू के ई.आई.आर.पी प्रदान करने हेतु 12 के.यू बैंड और 12 सी-बैंड प्रेषानुकरों का वहन करता है। के.यू.बैंड के लिए 2.2.मी. व्यास के दो टीएक्स/आरएक्स दोहरे ग्रिड ऑफसेट फेड आकार वाले बीम परावर्तक और सी बैंड के लिए 2.मी व्यास का उपयोग किया गया। इन्सैट-4बी ने के.यू बैंड में भारत पर और सी-बैंड में व्यापक क्षेत्र पर उच्च शक्ति प्रेषानुकर क्षमता को संवर्धित किया है। इन्सैट-4बी को 93.50 पूर्व देशांतर पर इन्सैट-3ए के साथ सहस्थापित किया गया है। शक्ति की विसंगति के कारण उपग्रह की प्रचालन क्षमता कम हो गई है।

इन्सैट-4सीआर

इन्सैट-4सीआर को श्रीहरिकोटा से जीएसएलवी द्वारा सितंबर 2, 2007 को प्रमोचित किया गया। इन्सैट-4.सी.आर को इन्सैट-3सी और कल्पना-1 के साथ 740 पूर्व देशांतर पर 51.5 डी बी डब्ल्यू के ई.आई.आर.पी के साथ 12 उच्च शक्ति वाले के.यू.बैंड प्रेषानुकरों को सहस्थापित किया गया है। इन्सैट-4सीआर इन्सैट-4 श्रृंखला में तीसरा उपग्रह है। इन्सैट-4सीआर को डायरेक्ट टू होम (डीटीएच) दूरदर्शन सेवाएं, दृश्य चित्र प्रसारण और अंकीय उपग्रह समाचार संग्रहण उपलब्ध कराने हेतु अभिकल्पित किया गया है।

हाइलस

मेसर्स अवंति संचार लिमिटेड यू.के. के लिए ई.ए.डी.एस एस्ट्रियम और एंट्रिक्स के बीच साझेदारी में विकसित किया गया उच्च अनुकूलनीय उपग्रह (हाइलस) जोकि 2 के.यू बैंड और 8 का बैंड प्रेषानुकरों को वहन करता है। बस प्लेटफार्म लगभग 3.2. कि.वा. की शक्ति प्रदान करने की क्षमता के साथ तनन।-2 के. बस संरचना पर आधारित है और उपग्रह में 2542 कि.ग्रा. का उत्थापन भार है । 1-2 के उपग्रह बस और मुख्य संरचना तत्व आईजेक द्वारा विकसित किया गया और उन्नत संचार नीतभार प्रमुख संविदाकार ईएडीएस एस्ट्रियम द्वारा विकसित किए गए। 27 नवबंर, 2010 को एरियाने 5 वी198 प्रमोचित्र पर उपग्रह को सफलतापूर्वक प्रमोचित किया गया। पश्च प्रमोचन कक्षा युक्तिचालन के पश्चात् उसे 33.50 वा. के अंतिम स्लॉट में भेजने से पूर्व 610पू. और 310.पू, पर आवृत्ति फाइलिंग प्रचालन संचालित किए गए। 33.50 वा. स्थिति पर उपग्रह की कक्षीय जाँच सफलतापूर्वक आयोजित की गई और तत्पश्चात मार्च 2011 में उसे प्रयोक्ताओं के सुपुर्द कर दिया गया। उपग्रह का उपयोग ब्रॉडबैंड इंटरनेट अभिगम उपलब्ध कराने के लिए और पश्चिमी और केंद्रीय यूरोप के 22 हाई डेफिनिशन टेलीविजन (एचडीटीवी) के प्रसारण एवं वितरण के लिए किया जा रहा है।

जीसैट-8

जीसैट-8 एक संचार उपग्रह है 6.0 कि.वा. (एसएस ईओएल) पावर जनित्र क्षमता के साथ जो 3093 कि.ग्रा. उत्थापन द्रव्यमान एवं 1.3 क. बस के चारों ओर संरूपित है तथा इसकी मिशन कालावधि 12 वर्ष से भी अधिक है। यह उपग्रह 24 के.यू.बैंड प्रेषानुकरों का वहन करता है और भारतीय मुख्य भूमि को आवृत्त करते हुए अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह तथा द्वि चैनल गगन (जीपीएस आधारित जीईओ संवर्धित नौसंचालन) नीतभारों का आवरण करता है। 21 मई 2011 को एरियाने वी202 द्वारा उपग्रह को प्रमोचित किया गया है। कक्षा उत्थान प्रचालन

सफलतापूर्वक संचालित किए गए और 550 पूर्व देशांतर पर निर्धारित जीईओ कक्षा में उपग्रह को स्थापित किया गया। सभी प्रस्तरण सफलतापूर्वक संचालित किए गए और उपग्रह में 3 अक्ष पर स्थिर किया गया है। जून 2011 में नीतभारों का कक्षीय परीक्षण (आईओटी) किया गया। बैंगलूर के निकट कुंदनहल्ली में नए नौसंचालन नियंत्रण केंद्र से गगन नौसंचालन नीतभार का परीक्षण किया गया। तदुपरांत उपग्रह को प्रचालित घोषित किया गया।

जीसैट-12

जीसैट-12 उपग्रह को 12 विस्तारित सी बैंड एसएसपीए आधारित प्रेषानुकरों के साथ आई-1के. बस के चारों ओर संरूपित किया गया। 15 जुलाई 2011 को पीएसएलवी सी-17 द्वारा 1410 कि.ग्रा. के उत्थान भार के साथ उपग्रह को सफलतापूर्वक प्रमोचित किया गया। उपग्रह को 8 साल की मिशन कलावधि के लिए अभिकल्पित किया गया है और 830 पूर्व देशांतर में स्थापित किया गया है। नीतभार का कक्षीय परीक्षण पूर्ण कर उपग्रह को प्रचालित घोषित किया गया है।

विकासाधीन उपग्रह

इन्सैट -3 डी

6 चैनल प्रतिबिंबित्र और 19 चैनल ध्वनित्र नीतभार के साथ इन्सैट-3डी एक अत्याधुनिक मौसमविज्ञानीय उपग्रह है। उपग्रह को 965 कि.ग्रा. के शुष्क द्रव्यमान और 2100 कि.ग्रा. के उत्थान भार के साथ आई-2 के प्लेटफार्म के चारों ओर स्थापित किया गया है, जिसकी मिशन कलावधि लगभग सात साल है। उपग्रह को भू-स्थिर कक्षा में 820 पू.देशांतर पर स्थापित किया जाएगा। उपग्रह में कई नए तत्व हैं जैसे कि भू-स्थिर पृथ्वी कक्षा (जीईओ) में प्रथम बार प्रवाहित तारक संवेदक, उपग्रह के दूरसंदेश/दूरमिति कार्य को कम करने के लिए सूक्ष्म सोपान सौर व्यूह चालन कोडांतरण (एसएडीए)। मौसमविज्ञानीय नीतभारों के निष्पादन में सुधार लाने हेतु इसमें द्विवार्षिक घूर्णन और प्रतिबिंब एवं दर्पण गति पूर्ति के नए लक्षणों को भी शामिल किया गया है। सभी उप प्राणली पैकेजों, दोनों मौसमविज्ञानीय और संचार नीतभारों को कार्यान्वित किया गया है। उपग्रह का समुच्चयन, समेकन तथा जाँच प्रगति पर है। उपग्रह को 2013 की दूसरी तिमाही के दौरान प्रमोचन हेतु प्रेषण के लिए तैयार किया जाएगा।

जीसैट-7

जीसैट-7 का परिचिंतन एक बहुबैंड उपग्रह के रूप में किया गया है जोकि यूएचएफ, एस-बैंड, सी-बैंड और के.यू-बैंड नीतभारों को वहन करेगा। उपग्रह लगभग 2600 वाट की शक्ति क्षमता और 2550 कि.ग्रा. के उत्थान द्रव्यमान के साथ 2.5टन बस प्लेटफार्म मानक के नियोजन का प्रयोग करता है। सभी मुख्य ढाँचा अवयवों और नीतभार अवयवों को सुपुर्द किया गया है। 2012 की दूसरी तिमाही के दौरान प्रमोचन प्रेषण के लिए उपग्रह तैयार हो जाएगा।

जीसैट -10

जीसैट-10 इसरो के 3टन संरचना आधारित है जोकि एक 3 अक्षीय निकाय स्थायी भूस्थिर उपग्रह आधारित संचार सेवाएं/ विद्यमान सेवाओं में संवर्धन को उपलब्ध कराते है। यह गगन नीतभार के साथ 12 सामान्य सी बैंड, 6 विस्तारित सी बैंड, 12 के.यू बैंड प्रेषानुकरों का वहन करता हैं। उपग्रह का उत्थान द्रव्यमान 3400 कि.ग्रा है और यह 6.0. कि.वा. की शक्ति जनित करता है। उपग्रह को 830 पू. पर स्थापित किया जाएगा और इसकी प्रचालनात्मक अवधि 15 साल होगी। सभी समेकित जाँच पूरा होने के बाद, उपग्रह तापीय निर्वात जाँच के अधीन है। यह उपग्रह 2012 की दूसरी तिमाही के दौरान प्रमोचन हेतु तैयार होगा।

जीसैट -6

सी x एक्स और एक्स x सी प्रेषानुकरों के साथ 2200 कि.ग्रा के उत्थापन भार सहित उपग्रह को प्राथमिक रूप से संरूपित किया गया है। एस-

बैंड में अपलिंक और डाउनलिंक में उच्च जी/टी तथा प्रभावी समस्थानिक विकीर्णित ऊर्जा है जो मोबाइल उपकरण के साथ सम्पर्क करने में सक्षम है। इसे पाँच उच्च उर्जा वाले 235 वा. के प्रगामी तरंग टयूब प्रवर्धक और स्वदेश में विकसित 6मी. के उच्च लब्धि वाले सिमटने वाले ऐन्टेना का उपयोग कर, प्राप्त किया गया है। मुख्य ढाँचा संरचना तैयार है। नीतभार और मुख्यढाँचा उप प्रणालियाँ समुच्चयन समाकलन और परीक्षण गतिविधियों हेतु तैयार हैं। नोदन तंत्र का समाकलन पूर्ण किया गया। विसमाहारित मोड आईएसटी को शुरू किया गया। यूएफए के उड़ान मॉडल को तैयार किया गया है। अंतिम जाँच जारी है। उप प्रणाली स्तर की व्यापक अभिकल्पना की समीक्षा पूर्ण कर ली गई है। उपग्रह 2012 के अंत तक जीएसएलवी द्वारा प्रमोचन हेतु भेजे जाने के लिए तैयार कर लिया जाएगा।

जीसैट -11

जीसैट-11 एक उन्नत संचार उपग्रह है, जिसमें 32 के.ए.= के.यू बैंड - अग्र लिंक प्रेषानुकर और 8 केयू = के.ए. बैंड वापसी लिंक प्रेषानुकर सहित एक नई बस का नियोजन है। उपग्रह का उत्थापन द्रव्यमान 5000 कि.ग्रा. है और लगभग 14 कि. वा की ऊर्जा संचालन क्षमता है। उपप्रणाली स्तर प्रारंभिक अभिकल्पना समीक्षा पूर्ण कर ली गई है। उपग्रह स्तर के पीडीआर को शीघ्र शुरूकिए जाने की योजना है। जीसैट-11 में समाविष्ट सभी नए अवयवों के लिए अर्हता कार्यक्रम प्रारंभ किया गया है। 2013 की अंतिम तिमाही के दौरान जीसैट-11 उपग्रह को प्रक्षेपण के लिए भेजा जाएगा।

जीसैट-9

प्रयोक्ता समुदाय की केयू-बैंड प्रेषानुकर की बढ़ती माँग के कारण जीसैट-9 उपग्रह को विशिष्टरूप से उच्च शक्ति के के. यू. बैण्ड नीतभार से संरूपित किया गया है। उपग्रह में 12 केयू बैंड प्रेषानुकर उपलब्ध है, जिसमें 12 विकिरणी रूप से शीतलित 140 वा. प्रगामी तरंग नलिका प्रवर्धक है जो भारतीय मुख्यभूमि और के.यू. बैंड बीकन प्रेषित्र को आवरित करते हैं। उपग्रह का उत्थापन द्रव्यमान 2113 कि.ग्रा है और यह 2787 वाट की शक्ति उत्पन्न करता है। उपग्रह को जीएसओ में 480 पूर्व देशांतर पर स्थापित किया जाएगा।

उपग्रह के अभिन्यास का अध्ययन किया जा रहा है। जीएसएलवी-मार्क-II के उपग्रह की तैयारी हेतु प्रमोचन का 2013 की तीसरी तिमाही के लिए निर्धारित है।

जीसैट-14

जीसैट 14 उपग्रह एक संचार उपग्रह है (आई.-2के. बस पर आधारित) जो जीएलएलवी की दूसरी विकासात्मक उड़ान के युगपत नीतभार के रूप में अभिकल्पित है। यह उपग्रह 2012 के मध्य में प्रमोचन हेतु निर्धारित है। इस उपग्रह को 740 पूर्व देशांतर में स्थापित किया जाएगा और इसका मिशन काल 11 साल का होगा। जीसैट-14 में 6 राष्ट्रीय आवरण वाले के यू बैंड चैनल और भारत का आवृत्त करने वाले 6 विस्तारित सी बैंड चैनल होंगे । इसके अतिरिक्त उपग्रह में दो के.ए. बैंड बीकन होंगे जो 20 और 30 गी.ह. संकेतों का प्रसारण करेंगे जिनका प्रयोग के. ए. बैंड के लिए किया जाएगा। साथ ही, परीक्षण के तौर पर फाइबर ऑप्टिक जाइरो, सक्रिय पिक्सल सूर्य संवेदक, गोल प्रकार बोलोमीटर और क्षेत्र प्रोग्रामयोग्य गेट व्यूह (एफपीजीए) आधारित भू-संवेदक और तापीय नियंत्रण विलेपन परीक्षण आदि नई प्रौद्योगिकी हैं जिसे प्रयोग के रूप में भेजा जाना हैं।

उपग्रह का उत्थापन द्रव्यमान 2020 कि.ग्रा. के लगभग है और लगभग 2.6 कि.वा. की शक्ति को पैदा करता है। यह आयोजन किया गया है कि वर्तमान संरचना तथा पूर्व की परियोजनाओं के लिए प्राप्त किए गए कई यांत्रिक तथा वैद्युत उपकरणों का प्रयोग किया जाए। विभिन्न उप प्रणालियों से संबंधित अभिकल्पना समीक्षा पूर्ण की गई है। सभी उपप्रणालियों को तैयार करने का कार्य संतोषजनकपूर्ण रूप से चल रहा है।

उपग्रह नौसंचालन कार्यक्रम

उपग्रह नौसंचालन (सैटनव) को विभाग की एक महत्वपूर्ण गतिविधि के रूप में निर्धारित किया गया है। इसरो और भारत विमानपत्तन प्राधिकरण

ने संयुक्त रूप से जीपीएस आधारित भू-संवर्धित नौसंचालन (गगन) प्रौद्योगिकी प्रदर्शन प्रणाली को भारतीय वांतरिक्ष में प्रचालनात्मक उपग्रह आधारित संवर्धन प्रणाली के अग्रगामी प्रचालनात्मक के रूप में शुरू किया है। देश में वर्तमान में हमारे वाणिज्य तथा अन्य संस्थाओं द्वारा प्रयोग में लायी जा रही वर्तमान वैश्विक सैटनव प्रणाली के लिए पूरक व्यवस्था के अतिरिक्त गगन के प्रचालनात्मक चरण में क्रांतिक राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वदेशी तौर पर विकसित उपग्रह नौसंचालन प्रणाली है। उपर्युक्त गतिविधियों को प्रभावी ढंग से संचालित करने और क्रियान्वित करने के लिए उपग्रह नौसंचालन कार्यक्रम गठित किया गया था। सैटनव कार्यक्रम को विभिन्न इसरो केंद्रों में क्रियान्वित करने के लिए संगठनात्मक संरचना का निर्माण किया गया है और गगन टीडीएस तथा एफओपी एवं भारतीय प्रादेशिक नौवहन उपग्रह प्रणाली जैसे क्रियाकलाप इस कार्यक्रम के भाग होंगे। सैटनव कार्यक्रम की गतिविधियों के लिए आईजेक को अग्रणी केंद्र के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।

गगन

जीसैट-8 उपग्रह के सफलतापूर्वक प्रमोचन के साथ, भू-खंड का वैधीकरण (मिशन नियंत्रण केंद्र, संदर्भ स्टेशनों, अपलिंक स्टेशनों और भू-नेटवर्क) प्रगति पर है। शीघ्र ही प्रणाली की फाइन टयूनिंग पूर्ण कर ली जाएगी और प्रणाली की फाइन टयूनिंग के पश्चात् तुरंत ही प्रयोक्ता इस सेवा को उपयोग कर सकेंगे। भारतीय प्रादेशिक नौवहन उपग्रह प्रणाली (आईआरएनएसएस) भारतीय प्रादेशिक नौवहन उपग्रह प्रणाली एक स्वतंत्र क्षेत्रीय नौसंचालन उपग्रह प्रणाली है। इसकी अभिकल्पना भारत के ऊपर तथा भारत के आसपास के 1500 कि. मी. तक के क्षेत्र में दस मीटर से भी बेहतर स्थान निर्धारण परिशुद्धता उपलब्ध कराना है। इसकी अभिकल्पना गगन प्रणाली का वास्तु दृश्य 30 सभी मौसम की परिस्थितियों के अंतर्गत प्रयोक्ताओं को विविध प्लेटफार्मों से 24x7 सेवा परिशुद्ध वास्तविक समय स्थिति, नौसंचालन और समय (पीएनटी) की सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए की गई है। आईआरएनएसएस प्रणाली के मुख्य रूप से तीन घटक हैं -जैसे अंतरिक्ष खंड (अंतरिक्ष में उपग्रह समूह और सिग्नल), भू खंड और प्रयोक्ता खंड। आईआरएनएसएस समूह में 7 उपग्रह हैं। 340 पू., 830 पू और 131.50 पू के भू-स्थिर कक्षा (जीईओ) में तीन उपग्रहों को स्थापित किया जाएगा और दो उपग्रहों में से प्रत्येक को भू-तुल्यकालिक कक्षा (जीएसओ) में भूमध्यरेखा पर 550 पू और 111.50 पू, 290 झुकाव पर स्थापित किया जाएगा। आईआरएनएसएस में एल5 और एस बैंड दो प्रकार के सिग्नल होंगे और केंद्र आवृत्ति 1176.45 मे.ह. तथा एस बैंड केंद्र आवृत्ति 2492.028 मे.ह. है।

आईआरएनएसएस दो मूलभूत सेवाएं प्रदान करता है जैसे जो सामान्य नागरिक प्रयोक्ताओं को मानक स्थान निर्धारण सेवा (एसपीएस) और विशिष्ट अधिकृत प्रयोक्ताओं हेतु प्रतिबंधित सेवा (आर.एस.)।

भू-प्रेक्षण प्रणाली

भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रह प्रणाली में आज विश्व में प्रचालित सुदूर संवेदन उपग्रहों का एक बृहत्तम समूह है। वर्तमान में, कक्षा में ग्यारह प्रचालनात्मक उपग्रह हैं जो इस प्रकार हे- टी.ई.एस., रिसोर्ससैट-1, कार्टोसैट-1, कार्टोसैट-2, कार्टोसैट- 2ए, कार्टोसैट-2बी, आई.एम.एस.-1,रिसैट-2, ओशनसैट-2, रिसोर्ससैट-2 और मेघाट्रॉपिक्स। भारतीय सुदूर संवेदन (आई.आर.एस.) श्रृंखला के उपग्रह विभिन्न स्थानिक, स्पेक्ट्रमी और कालिक विभेदनों में आँकडा प्रदान करते हैं जिसे संसाधन प्रबंधन उद्देश्य के लिए प्रभावी रूप से उपयोग किया जाता है। इन कक्षीय उपग्रहों और 2012 में योजित रिसैट-1, सरल तथा इन्सैट-3डी मिशनों के साथ, भारतीय भू-प्रेक्षण प्रणाली को प्रयोक्ता समुदाय को उच्च गुणवत्तावाले विविध उपग्रह आँकडा उत्पाद और सेवा प्रदान करने के लिए और सुदृढ किया जाएगा और इस तरह राष्ट्रीय विकास के लिए कई उपयोग सुसाध्य किया जाएगा।

2011 में निष्पादित भू-प्रेक्षण मिशन

रिसोर्ससैट-2, रिसोर्ससैट-1 का अनुवर्ती उपग्रह है जो भारतीय और पूरे विश्व के प्रयोक्ता समुदाय को आँकडा की निरंतरता प्रदान करता है। इसे अप्रैल 20, 2011 को पी.एस.एल.वी.-सी 16 द्वारा 817 कि.मी. की सूर्य तुल्यकाली कक्षा में प्रमोचित किया गया था। इसमें रिसोर्ससैट-1 की तरह तीन प्रकाशिकी सुदूर संवेदन नीतभार, लिस-3, लिस-4 और एवाईफ्स हैं। इसने कॉमडेव, कनाडा से स्वचालित सूचना प्रणाली (ए.आई.

एस.) नामक एक अतिरिक्त अवसरों की घोषणा नीतभार का भी वहन किया जो जहाजों की अवस्थिति, गति और अन्य सूचना प्राप्त करने के लिए अति उच्च आवृत्ति (वी.एच.एफ.) बैण्ड में जहाज निगरानी हेतु एक परीक्षणात्मक नीतभार है। रिसोर्ससैट-1 की तुलना में, लिस-4 बहु-स्पेक्ट्रमी प्रमार्ज को 70 कि.मी., तक बढाया गया है। रिसोर्ससैट-2 में नीतभार इलेक्ट्रॉनिकी सहित उपयुक्त परिवर्तन किए गए हैं। मेघा-ट्रॉपिक्स (मेघा का अर्थ संस्कृत में बादल है और ट्रॉपिक्स का अर्थ फ्रेंच में उष्णकटिबंधी है) इसरो- सी.एन.ई.एस., का एक संयुक्त मिशन है जो संवहनी प्रणाली का जीवन चक्र और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में संबद्ध ऊर्जा में उसकी भूमिका और वायुमण्डल में आर्द्रता राशि के बारे में जानकारी देता है। इस उपग्रह का प्रमोचन भूमध्यरेखा समतल के संबंध में 200 आनति पर 867 कि.मी., की कक्षा में पी.एस.एल.वी.-सी18 द्वारा अक्तूबर 12, 2011 को किया गया था। इस उपग्रह में निम्नलिखित चार वैज्ञानिक उपकरणों को शामिल किया गया है:

- वर्षा एवं वायुमण्डलीय संरचना का सूक्ष्मतरंग विश्लेषण व खोज (मद्रास), सी.एन.ई.एस., और इसरो द्वारा संयुक्त रूप से विकसित एक प्रतिबिंबन विकिरणमापी।
- सफाइर (SAPHIR), एक छः चैनलवाला आर्द्रता ध्वनित्र।
- एस.सी.ए.आर.ए.बी., विकिरण बजट मापन हेतु एक चार चैनलवाला क्रमवीक्षक।
- जी.पी.एस-आर.ओ.एस., पृथ्वी के वायुमण्डल के तापमान और आर्द्रता के ऊर्ध्वाधर प्रोफाइल प्रदान करने के लिए जी.पी.एस.,रेडियो उपगूहन प्रणाली। सभी नीतभार संतोषप्रद रूप से कार्य कर रहे हैं और अनुसंधान एवं विश्लेषण के लिए उपयोगी वैज्ञानिक आँकड़ा प्रदान कर रहे हैं।

वर्तमान में प्रचालित भू-प्रेक्षण उपग्रह

कार्टोसैट-1 को पी.एस.एल.वी.-सी6 द्वारा सतीश धवन अन्तरिक्ष केन्द्र (एस.डी.एस.सी.) शार, श्रीहरिकोटा से 5 मई, 2005 को 617 कि.मी., की ध्रुवीय सूर्य-तुल्यकाली कक्षा में प्रमोचित किया गया था। 30 कि.मी., का प्रमार्ज और 2.5 मी., के स्थानिक विभेदन के साथ दो पैन्क्रोमेटिक कैमरा - पैन (अग्र) और पैन (पश्च) - उच्च गुणवत्तावाले प्रतिबिंब प्रदान करते हैं। इन कैमरों को नाडिर के संबंध में +260 और –50 की आनति के साथ पथ के समानान्तर अंकीय उन्नतांशी मॉडल (डी.ई.एम.) को जनित करने हेतु प्रतिबिंबों के त्रिविम युगल प्रदान करने के लिए आरोपित किया गया है। कार्टोसैट-1 के आँकड़ों को मानचित्रकला उपयोग, भू-कर मानचित्रण, डी.ई.एम., का जनन और अन्य उच्च विभेदन भू-आकाशीय उपयोगों के लिए उपयोग किया जाता है। कार्टोसैट-2 का प्रमोचन जनवरी 10, 2007 को पी.एस.एल.वी.-सी7 द्वारा किया गया जो 9.6 कि.मी., के प्रमार्ज सहित 1 मीटर स्थानिक विभेदन प्रतिबिंब से अच्छी प्रतिबिंबिकी उपलब्ध कराने में सक्षम एक पैन्क्रोमेटिक कैमरा वहन करता है। इसे 4-5 दिन के पुनरागमन के साथ 630 कि.मी., की न्यूनतम तुंगता की सूर्यतुल्यकाली ध्रुवीय कक्षा में स्थापित किया गया तथा इसे 1 दिन के पुनरागमन की कालावधि सहित 560 कि.मी., के विशिष्ट कक्षा में लाया जा सकता है। इस उपग्रह में पथ के आस-पास और समानान्तर ±450 तक की संचलिनीय क्षमता है ताकि किसी भी क्षेत्र का बारंबार प्रतिबिंबन कर सके।

यह उपग्रह मानचित्रकला उपयोगिता, भू-कर मानचित्रण तथा शहरी एवं ग्रामीण उपयोगिताओं के लिए प्रयोक्ता समुदाय को प्रचालनात्मक सेवाएँ उपलब्ध कराते हुए कुशलतापूर्वक कार्यरत है। कार्टोसैट-2ए का प्रमोचन अप्रैल 28, 2008 को पी.एस.एल.वी.-सी 9 द्वारा सतीश धवन अन्तरिक्ष केन्द्र (एस.डी.एस.सी.), शार, श्रीहरिकोटा से किया गया। यह कार्टोसैट-2 के समान है और यह कार्टोसैट-2 के समान उपयोग क्षमताओं के साथ एक उन्नत सुदूर संवेदन उपग्रह है। कार्टोसैट-2बी का प्रमोचन जुलाई 12, 2010 को पी.एस.एल.वी.-सी15 द्वारा सतीश धवन अन्तरिक्ष केन्द्र, शार, श्रीहरिकोटा से किया गया। कार्टोसैट-2बी, कार्टोसैट-2ए का अनुवर्ती उपग्रह, और 690 कि.ग्रा. भारवाला है; का संरूपण एक चक्कर में बहु दृश्यन क्षमता प्रदान करने के लिए किया गया है। इसमें भी मानचित्रकला और अन्य उपयोग हेतु दृश्य विशिष्ट स्पॉट प्रतिबिंबिकी प्रदान करनेवाला एक एकल पैन्क्रोमेटिक कैमरा है। रिसोर्ससैट-1 का प्रमोचन अक्तूबर 17, 2003 को पी.एस.एल.वी.-सी5 द्वारा किया गया। इसे 820 कि.मी., की उच्च ध्रुवीय सूर्य तुल्यकाली कक्षा में स्थापित किया गया। रिसोर्ससैट-1 निम्नलिखित तीन कैमरों का वहन करता है :

- रैखिक प्रतिबिंबन स्वतः क्रमवीक्षक (लिस्-4), जो कि 70 कि.मी., (एकल) और 23 कि.मी. (बहुस्पेक्ट्रमी) प्रमार्ज के साथ और 5.8 मी.,

के स्थानिक विभेदन के साथ दृशीय और निकट अवरक्त क्षेत्र (वी.एन.आई.आर.) में तीन स्पेक्ट्रमी बैण्डों में प्रचालित है और पाँच दिन की पुनरागमन क्षमता प्राप्त करने हेतु पथ के आस पास ल260 तक घूम सकता है।

- लिस्-3 जो कि वी.एन.आई.आर., में तीन स्पेक्ट्रमी बैण्डों और 141 कि.मी., के प्रमार्ज के साथ 23.5 मीटर के स्थानिक विभेदन के साथ लघु तरंग अवरक्त (एस.डब्ल्यू.आई.आर.) बैण्ड में प्रचालित है।
- 730 कि.मी. के प्रमार्ज के साथ एक उन्नत वाइड़ फील्ड संवेदक (एवाइफ्स) जो कि 56 मी., के स्थानिक विभेदन के साथ एस. डब्ल्यू.आई.आर., में एक बैण्ड और वी.एन.आई.आर., में तीन स्पेक्ट्रमी बैण्डों में प्रचालित है। आई एम एस-1 का प्रमोचन एस.डी.एस. सी., शार, श्रीहरिकोटा से पी.एस.एल.वी.-सी 9 द्वारा अप्रैल 28, 2008 को कार्टोसैट-2ए के साथ किया गया। इसके दो नीतभारों में से एक 151 कि.मी., प्रमार्ज और 37 मी., के स्थानिक विभेदन के साथ एक बहु स्पेक्ट्रमी (एम.एक्स) कैमरा है और दूसरा 130 कि.मी., के प्रमार्ज और 505 मी., के स्थानिक विभेदन के साथ एक 64 चैनलवाला अति स्पेक्ट्रमी कैमरा (HySi) है।
- ओशनसैट-2, ओशनसैट-1 का एक अनुवर्ती उपग्रह है और इसका प्रमोचन एस.डी.एस. सी., शार, श्रीहरिकोटा से पी.एस.एल.वी.-सी 14 द्वारा सितंबर 23, 2009 को किया गया। ओशनसैट-2 को, 1200 घंटे ल 10 मिनट के भू-मध्य रेखा पार करने के समय के साथ 720 कि.मी., की तुंगता पर ध्रुवीय सूर्य-तुल्यकाली कक्षा में स्थापित किया गया है। ओशनसैट-2 अपने साथ तीन संवेदक वहन करता है यानि समुद्री कलर मॉनीटर (ओ.सी.एम.), के यू- बैण्ड पेंसिल बीम प्रकीर्णमापी और इतालवी अंतरिक्ष एजेन्सी (ए.एस. आई.) द्वारा विकसित वायुमण्डलीय अध्ययन हेतु एक रेडियो उपगूहन ध्वनित्र (रोसा) नामक एक नीतभार।
- ओशनसैट-2 के 8 बैण्ड ओ.सी.एम., 360 मी., के स्थानिक विभेदन और 1420 कि.मी., के प्रमार्ज के साथ 2 दिन का पुनरागमन प्रदान करता है। यह 8 दिन के आवरण चक्र के साथ 1 कि.मी., के स्थानिक विभेदन और 1420 कि.मी., के प्रमार्ज के साथ वैश्विक क्षेत्र आवरण (जी.ए.सी.) भी प्रदान करता है।
- पेन्सिल बीम प्रकीर्णमापी भू-सतह को शंकुरूप में क्रमवीक्षण करेगा, 1400 कि.मी., के प्रमार्ज और 50 कि.मी.ग़50 कि.मी., के भू विभेदन सेल के साथ के.यू., बैण्ड में कार्य करता है। यह पवन की दिशा में 200 और गति में 10ऽ से बेहतर परिशुद्धता के साथ 4 से 24 मीटर/सेकेण्ड के रेन्ज में पवन सदिश प्रदान करता है। प्रकीर्णमापी के आंकड़े का उपयोग महासागर सतह पर वैश्विक पवन वेग (परिणाम और दिशा) का पता लगाने के लिए किया जा रहा है, जिसका उपयोग मौसम पूर्वानुमान, चक्रवातों और तूफानों और उनके पथ, ध्रुवीय समुद्र हिम में परिवर्तन का मानीटरन और महासागर स्थिति के पूर्वानुमान के लिए निवेश के रूप में किया जाता है। प्रकीर्णमापी अंतरिक्ष में एक अद्वितीय उपकरण है और समुद्री संबंधित उपयोगों के लिए पूरे वि व समुदाय से इसके आँकडा के लिए काफी माँग है। कक्षा-वार प्रकीर्णमापी आंकडा का डाऊनलोड, संसाधन किया जाता है और आँकडा अर्जन से 160 मिनटों के अन्दर यूरोप, अफ्रीका, यू.एस., और कुछ एशियाई देशों के प्रयोक्ताओं को राष्ट्रीय सुदूर संवेदन केन्द्र (एन.आर.एस.सी.)/इसरो वेब पोर्टल और यूमेटसैट, डर्मास्टैड की यूमेटकैस्ट प्रणाली द्वारा आँकडा उत्पाद का विकीर्णन किया जाता है।
- वायुमण्डल के तापमान और आर्द्रता के अध्ययन के लिए ए.एस.आई., इतली द्वारा डिज़ाइन किया गया और विकसित रोसा नीतभार को ओशनसैट-2 द्वारा भेज दिया गया।

रिसैट-2, राडार प्रतिबिंबन उपग्रहजो सभी मौसम की स्थितियों तथा बादलों को वेधंने की क्षमता रखता है, की प्राप्ति इसराईल अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी के सहयोग में की गई और इसका प्रमोचन अप्रैल 20, 2009 को एस.डी.एस.सी. श्रीहरिकोटा से पी.एस.एल.वी.-सी12 द्वारा किया गया। रिसैट-2 में देश के आपदा प्रबंधन की क्षमता को बढ़ाने की क्षमता है।

टी.ई.एस. प्रौद्योगिकी परीक्षण उपग्रह का प्रमोचन पी.एस.एल.वी.-सी3 द्वारा अक्तूबर 22, 2001 को किया गया। यह उपग्रह प्रौद्योगिकियों के प्रदर्शन एवं वैधीकरण के लिए अभिप्रेत है, जिसका उपयोग भावी मानचित्र कला उपग्रह मिशनों में किया जा सकेगा। टी.ई.एस. में प्रदर्शित कुछ प्रौद्योगिकियों में अभिवृत्ति और कक्षा नियंत्रण प्रणाली, उच्च आघूर्ण प्रतिक्रिया चक्र, इष्टतमी थ्रस्टर और एक एकल नोदक टंकी के साथ नयी

प्रतिक्रिया नियंत्रण प्रणाली, कम भार की उपग्रह संरचना, ठोस स्थिति रिकार्डर, एक्स-बैण्ड चरणबद्ध व्यूह एन्टेना, सुधारित उपग्रह अवस्थिति प्रणाली, लघुकृत टी.टी.सी., तथा पावर प्रणाली और दो-दर्पण-अक्षीय कैमरा प्रकाशिकी शामिल हैं।

टी.ई.एस., 1मी., के स्थानिक विभेदन के साथ एक पैन्क्रोमैटिक कैमरा वहन करता है। यह उपग्रह अपनी उद्देशित मिशन कालावधि के बाद भी अच्छी तरह से कार्य कर रहा है।

आगामी भू-प्रेक्षण मिशन

रिसैट-1

राडार प्रतिबिंबन उपग्रह (रिसैट-1) क्रमशः अपरिष्कृत, शुद्ध और उच्च स्थानिक विभेदन के साथ प्रतिबिंब प्रदान करने के लिए बहुध्रु वीकरण और बहु-विभेदन मोड (स्कैनसार, स्ट्रिप और स्पॉट मोड) में 5.35 गी.ह., पर प्रचालित एक सी-बैण्ड संश्लेषी द्वारक राडार (एस.ए.आर.) नीतभार का वहन करता है। एस.ए.आर. एक सक्रिय संवेदक होने के नाते, विद्युतचुम्बकीय स्पेक्ट्रमी के सूक्ष्मतरंग क्षेत्र में प्रचालन करते हुए, सभी मौसम में प्रतिबिंबन करने की क्षमता रखता है। एस.ए.आर. नीतभार प्रसारण/अभिग्राही (टी.आर.) माड्यूलों का उपयोग करते हुए सक्रिय चरणबद्ध व्यूह प्रौद्योगिकी पर आधारित है जो विभिन्न उपयोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए 1 मी., से 50 मी., के स्थानिक विभेदन और 10 से 240 कि.मी. के प्रमार्ज प्रदान करते हुए बहु-मोड क्षमता हासिल करने के लिए आवश्यक इलेक्ट्रॉनिकी दक्षता प्रदान करेगा। रिसैट-1 का अवरोहण मोड में स्थानीय समय 06.00 घंटा होगा। इस उपग्रह का भार लगभग 1851 कि.ग्रा., है और इसमें 4.8 कि.वा., पॉवर संभालने की क्षमता है। रिसैट-1 का प्रमोचन मार्च-अप्रैल 2012 के दौरान पी.एस.एल.वी.- सी 19 (एक्स एल) द्वारा 476 कि.मी., की कक्षा में करना निर्धारित है। 3 अक्षीय अभिवृत्ति अर्जित करने के बाद, कक्षा को सी. आर.एस., मोड में 12 दिन के आंतरिक आवर्तन के अतिरिक्त लाभ और 26 दिन के पुनरागमन के साथ 536 कि.मी., तक संवर्धित किया जाएगा। चरणबद्ध ऐन्टेना सहित कई जटिल प्रोद्योगिकियों का विकास इस स्वदेशी सूक्ष्मतरंग सुदूर संवेदन उपग्रह मिशन की विशिष्टता है। यह उपग्रह जाँच के अंतिम चरण में है और इसे प्रमोचन हेतु तैयार किया जा रहा है।

सरल (SARAL)

एर्गोस (ARGOS) तथा अल्टिका (ALTIKA) हेतु उपग्रह (सरल) इसरो-सी.एन.ई.एस., का संयुक्त मिशन है और इसका प्रमोचन लगभग 800 कि.मी., की तुंगता पर अवरोहण नोड में शाम 6 बजे के स्थानीय समय के साथ सूर्य-तुल्यकाली कक्षा में पी.एस.एल.वी. सी 20 द्वारा किया जाएगा। सी.एन.ई.एस., द्वारा प्रदत्त के.ए., बैण्ड तुंगतामापी, अल्टिका महासागर उपयोग हेतु 35.75 गीगाहर्त्स पर प्रचालन करता है। एक द्वय आवृत्तिवाले समग्र पॉवर प्रकार का सूक्ष्मतरंग रेडियोमापी (23.8 और 37 गीगाहर्त्स) को तुंगतामापी के माप पर क्षोभमण्डलीय प्रभाव को सुधारने के लिए तुंगतामापी के साथ समाहित किया गया है। उपग्रह के साथ समेकित डाप्लर ऑर्बिटोग्राफी और रेडियो अवस्थिति (डी.ओ.आर.आई. एस.) कक्षा के यथार्थ निर्धारण में सहायता करती है। एक लेज़र रेट्रोपरावर्तक व्यूह पूरे मिशन के दौरान यथार्थ कक्षा निर्धारण प्रणाली और तुंगता प्रणाली के कई बार अंशांकन करने में सहायता करता है। सरल/एर्गोस आँकड़ा संग्रहण प्रणाली, समुद्री बोया से विविध आँकडा संग्रहण करके बाद में इसे संसाधन और वितरण हेतु एर्गोस भू-खंड को प्रसारित करने के लिए वैश्विक एर्गोस आंकड़ा संग्रहण प्रणाली के विकास और प्रचालनात्मक क्रियान्वयन हेतु इसरो और सी.एन.ई.एस., का एक संयुक्त अंशदान है। इसके अतिरिक्त, एर्गोस नीतभार छोटे संदेशों को एक अभिग्राही से सज्जित आँकड़ा अभिग्रहण मंच को सीधा प्रसारित करता है। सरल नीतभार को एस.एस.बी.-1(लघु उपग्रह बस) नामक 400-450 कि.ग्रा., श्रेणी के लघु-उपग्रह बस में समायोजित किया जाएगा।

सरल, प्रचालनात्मक और अनुसंधान प्रयोक्ता समुदायों को समुद्री मौसम विज्ञान और समुद्र स्थिति के पूर्वानुमान; प्रचालनात्मक समुद्र विज्ञान; निष्ठ पूर्वानुमान; जलवायु मॉनीटरन और महासागर, भू प्रणाली एवं जलवायु अनुसंधान की सहायता के लिए आँकड़ा उत्पाद प्रदान करेगा। अन्तरिक्षयान की मुख्य ढाँचे की प्रणालियों का संविरचन किया गया है और ये जाँच के उन्नत चरण में है। इस उपग्रह का प्रमोचन 2012 की

अंतिम तिमाही के दौरान करने की योजना बनाई गई है।

भावी भू-प्रेक्षण मिशन

भारत के भावी कार्टो भू प्रेक्षण कार्यक्रम विषयवस्तु श्रृंखला के उपग्रह यानि भूमि एवं जल संसाधन के साथ-साथ सभी मौसम क्षमता के लिए रिसोर्ससैट, कार्टोसैट, रिसैट श्रृंखला :- समुद्री संसाधनों के अध्ययन के लिए ओशनसैट श्रृंखला, नीतभारों में विनिर्दिष्ट वैज्ञानिक सुधार के साथ मौसम विज्ञान एवं वायुमण्डल के लिए इन्सैट तथा मेघा-ट्रॉपिक्स की निरंतरता सुनिश्चित करेगा। पैंक्रोमेटिक मोड में 0.25 मी. के और बहु-आकाशीय मोड में 1 मी. के आकाशीय विभेदन के साथ कार्टोसैट-3, उन्नत उच्च विभेदन वाला उपग्रह आर.एस. उपयोग परियोजनाओं के लिए भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उच्च विभेदन मानचित्रण क्षमता को बढ़ायेगा। इसका उद्देश्य प्रचालनात्मक वर्कहार्स मिशनों की निरंतरता और संवर्धित सेवा प्रदान करना; भावी मिशनों की प्रौद्योगिकी में उन्नयन को अपनाना; ऑन-बोर्ड और भू-प्रणाली दोनों के लिए नयी प्रौद्योगिकियों का विकास करना और पारस्परिक लाभ प्राप्त करने के लिए अन्य अंतरिक्ष एजेन्सियों के साथ भागीदार बनना है।

अंतरिक्ष उपयोग

1- दूर शिक्षा (एडुसैट कार्यक्रम):- 'एडुसैट' भारत का पहला विषयवस्तुपरक उपग्रह है, जोकि पूरी तरह शैक्षिक सेवाओं के लिए समर्पित है, का उपयोग विस्तृत रूप में अन्योन्य क्रिया शैक्षिक सुपुर्दगी विधाओं जैसे इकतरफा टी.वी.प्रसारण, वीडियो कॉन्फरेन्सिंग, कंप्यूटर कॉन्फरेन्सिंग, वेब आधारित अनुदेश आदि के लिए व्यापक रूप में उपयोग किया जा रहा है। एडुसैट का बहुमुखी उद्देश्य रहा है - पाठ्यक्रम आधारित शिक्षा में उपयोगी होना, शिक्षक-प्रशिक्षण का प्रभावी नियोजन, गुणवत्ता संसाधन युक्त व्यक्तियों तथा नये प्रौद्योगिकी तक अभिगम उपलब्ध कराना, अंततः जिसका परिणाम है भारत के हर कोने कोने तक शिक्षा को पहुँचाना। एडुसैट ने स्कूलों, कालेजों व शिक्षा के उच्च स्तरों तक संपर्क को उपलब्ध कराया है तथा विकास संचार सहित अनौपचारिक शिक्षा को भी समर्थन दिया है।

एडुसैट कार्यक्रम को, तीन चरणों में अर्थात् पायलट, अर्ध-प्रचालनात्मक तथा प्रचालनात्मक चरणों में कार्यान्वित किया गया है। पायलट परियोजनाओं को 2004 के दौरान, 300 टर्मिनलों के साथ कर्नाटक, महाराष्ट्र व मध्य प्रदेश में आयोजित किया गया। पायलट परियोजनाओं के अनुभव को अर्ध-प्रचालनात्मक व प्रचालनात्मक चरण में, अपनाया गया। अर्ध-प्रचालनात्मक चरण के दौरान बहुतेक सभी राज्यों तथा प्रमुख राष्ट्रीय एजेन्सियों को एडुसैट कार्यक्रम के तहत शामिल किया गया। इस समय, राज्य सरकार व अन्य प्रयोक्ता एजेन्सियों द्वारा निधिसंग्रह करते हुए नेटवर्को को प्रचालनात्मक चरण के तहत विस्तृत किया जा रहा है। एडुसैट कार्यक्रम के अंतर्गत कार्यान्वित नेटवर्क में दो तरह के टर्मिनल हैं अर्थात् उपग्रह अन्योन्यक्रिया टर्मिनल तथा केवल अभिग्रहण टर्मिनल। अभी तक, देश के 25 राज्यों, तथा 3 संघ शासित राज्यों को आवृत्त करते हुए करीबन 55,000 स्कूलों तथा कालेजों में (4209 एस.आई.टी. व 51165 आर.ओ.टी.) संपर्क करते हुए कुल 80 नेटवर्को को कार्यान्वित किया गया है। चालू वर्ष में उत्तराखण्ड व झारखंड राज्यों को एडुसैट नेटवर्क द्वारा हाल ही में जोडा गया है। प्रति वर्ष करीब 15 मिलियन विद्यार्थी एडुसैट कार्यक्रम द्वारा लाभान्वित हो रहे हैं।

एडुसैट (जीसैट-3) उपग्रह को सितंबर-2010 से बंद कर दिया गया है। जिससे इसरो के दूर-शिक्षा, दूर-चिकित्सा तथा वी आर सी परियोजनाओं पर आंशिक रूप से प्रभाव पडा है। जीसैट-3 को बंद करने के बाद, दूर शिक्षा नेटवर्को के मार्ग (ट्रॉफीक) को अन्य इसरो उपग्रहों के लिए स्थानांतरित किया गया है। हमने केयू-बैंड में प्रचालित करीब 805 के स्थानांतरण को पहले ही दूर-शिक्षा नेटवर्को को जीसैट-3 से इन्सैट-4 सी.आर. तथा विस्तारित सी-बैण्ड नेटवर्को को इन्सैट-3ए तथा इन्सैट-3सी को आंशिक रूप से स्थानांतरित कर दिया गया है।

एक तकनीकी आधार सहायता प्रशिक्षण केन्द्र को गुवाहटी, असम में, उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में विविध राज्य नेटवर्क के सभी सुदूर साइटों, हब तथा शिक्षण-केन्द्र को, लगातर प्रदान करने हेतु स्थापित किया गया है। भविष्य में, ऐसे ही टी.एस.टी.सी को देश के उत्तरी भाग अर्थात् उत्तराखण्ड जम्मू व कश्मीर आदि में स्थापित करने की योजना है।

करीब 366 उपग्रह अन्योन्यक्रिया टर्मिनलों को राष्ट्रीय प्रयोक्ता जैसे आई.जी.एन.ओ.यू, सी.आई.ई.टी, ए.आई.सी.टी.ई. बी.पी/डी.एस.टी व सी.ई.सी को, उत्तम दृश्य-श्रव्य अन्योन्यक्रिया हेतु कक्षा परिधियों व पढाई प्रबंधन प्रणाली के साथ अद्यतन किया गया है। साथ ही, इन्सैट-4 सी.आर (के यू बैण्ड) में एडुसैट नेटवर्क पर प्रसारित कार्यक्रमों की उपयोगिता तथा गुणवत्ता निर्धारित करने के बारे में फीडबेक प्राप्त करने हेतु डेकू, अहमदाबाद में एक 'नेटवर्क मानीटरन सुविधा' को स्थापित किया गया है। इस समय, समग्र मानीटरन क्षमता 30 दूर-शिक्षा नेटवर्कों के लिए है फिर भी, किसी भी समय में, चयन करते हुए एक साथ 10 नेटवर्कों का मानीटरन किया जा सकता है। इसरो ने प्रयोक्ताओं को विशेष आवश्यकताओं के साथ नेटवर्क की स्थापना की है जैसे:-

क) गुजरात के अंध लोगों के संघ दृष्टिमान्द्य लोगों हेतु

ख) भारत के पुनर्वास परिषद्

ग) केरल में केन्द्रीय मानसिक रोगविज्ञान संस्थान का नेटवर्क

घ) केरल में बुद्धि मन्दो के लिए सी-डाक के साथ एक नेटवर्क।

2- दूरचिकित्साः- दूरचिकित्सा, सामाजिक लाभ हेतु अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी का एक विशिष्ट उपयोग है। दूरचिकित्सा कार्यक्रम जिसे 2001 में शुरु किया गया है, नगर तथा महानगरों के प्रमुख विशेष अस्पतालों का भारतीय उपग्रहों द्वारा सुदूर/ग्रामीण/मेडिकल कालेज अस्पतालों व मोबाइल यूनिटों के साथ जोड़ता है। दूरचिकित्सा नेटवर्क जम्मू व कश्मीर, लदाख, अंडमान व निकोबार द्वीपसमूह, लक्षद्वीप द्वीपसमूह, उत्तर पूर्वी राज्यों सहित अनेक राज्यों/क्षेत्रों तथा अन्य मुख्यभूमि राज्यों को आवृत्त करता है। केरला, कर्नाटक, छत्तीसगढ़, पंजाब, पश्चिम बंगाल, उडिसा, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, झारखंड तथा राजस्थान राज्यों के कई जन जाति जिलों को दूरचिकित्सा कार्यक्रम के तहत आवृत्त किया गया है। इस समय, इसरो के दूरचिकित्सा नेटवर्क, 306 सुदूर/ग्रामीण/जिला/मेडिकल कॉलेज अस्पताल तथा 16 मोबाइल दूरचिकित्सा यूनिटों से जोड़ते हुए 60 विशेष अस्पताल सहित, करीब 382 अस्पतालों को आवृत्त करता है। मोबाइल दूरचिकित्सा यूनिटों, नेत्र विज्ञान, हृदय विज्ञान, विकिरण विज्ञान, डयाबिटॉलजी, मेमोग्राफी, सामान्य चिकित्सा, महिला एवं शिशु स्वास्थ्य उपचार के विविध क्षेत्रों को आवृत्त करता है।

जहाँ, अंतरिक्ष विभाग, दूरचिकित्सा प्रणाली सॉफ्टवेयर, हार्डवेयर एवं संचार उपकरण के साथ-साथ उपग्रह बैंड विस्तार को प्रदान करता है वहाँ राज्य सरकारों व विशेष अस्पतालों को अपने आधारभूत संरचना, मानवशक्ति व सुविधा सहायता हेतु निधि का आबंटन करना होगा। इस संबंध में, विविध राज्य करकारों, गैर सरकारी कार्यालयों, विशेष अस्पतालों व उद्योग के साथ सहयोग में प्रौद्योगिकी विकास, मानदंड एवं लागत प्रभावी प्रणालियों का विकास किया गया है। अंतरिक्ष विभाग, एक समझौता ज्ञापन द्वारा दोनों पक्षों के बीच एक समझौता लाने हेतु राज्य सरकारों एवं विशेष अस्पतालों के साथ अन्योन्यक्रिया स्थापित करता है। जीसैट-3 (एडुसैट) को बंद करने के कारण, उपग्रह बैंडविस्तार की कमी के कारण कुछ नेटवर्क प्रचालक, आंशिक रूप से प्रभावित हुए थे। वर्ष के दौरान, दूरचिकित्सा के अंतर्गत देश भर में नोडों का प्रवसन और प्रचालनीकरण क्रियाकलाप शामिल है। अन्य उपग्रहों को मार्ग का अंतरण किया गया है तथा अभी तक 168 नोडों को पुनः प्रचालनीकृत किया गया है, जिसमें राजस्थान में अधिकाधिक नोड (38 नोड) हैं। इसरो, तकनीकी सहायता तथा दूरचिकित्सा नोडों के अनुरक्षण व प्रचालन हेतु तकनीकी सहायता भी प्रदान करता है।

इन्सैट रिपोर्टिंग प्रणाली:

इसमें सुवाह्य तथा हस्त-धारित टर्मिनलों के साथ बँटा हुआ चैनलों का उपयोग करते हुए निम्न बिट दर इक-तरफा रिपोर्टिंग सेवा शामिल है। यह अनोखा, सुदूर स्थल से प्रयोक्ता-मुख्यालय से इक-तरफा मेसेजिंग, हब के रूप में अंतरिक्ष विभाग के दिल्ली भू स्टेशन (डी.ई.एस) के साथ प्रचालित है। यह एक परीक्षात्मक सेवा है। प्रयोक्ता टर्मिनलों से लघु संदेशों को उपग्रह के जरिए हब को रिले किया गया है तथा तुरंत फैक्स या डेटा लिंक के द्वारा उसे संबंधित प्रयोक्ता मुख्यालय को प्रेषित किया जाता है। इस रिपोर्टिंग सेवा को लघु हस्त-धारित टर्मिनलों का उपयोग करते हुए प्रदान किया जाता है। स्थिति सूचना हेतु रिपोर्टिंग टर्मिनल को एक जी.पी.एस. अभिग्राही को संलग्न करने हेतु प्रावधान है।

जी-सैट-2 अपने मिशन कालावधि, समाप्त करने के कारण, एम.एस.एस सेवाएँ केवल इन्सैट 3-सी के जरिए ही संभव हो पाया। इन्सैट रिपोर्टिंग प्रणाली: इसमें सुवाह्य तथा हस्त-धारित टर्मिनलों के साथ बँटा हुआ चैनलों का उपयोग करते हुए निम्न बिट दर इक-तरफा रिपोर्टिंग सेवा शामिल है। यह अनोखा, सुदूर स्थल से प्रयोक्ता-मुख्यालय से इक-तरफा मेसेजिंग, हब के रूप में अंतरिक्ष विभाग के दिल्ली भू स्टेशन (डी.ई.एस) के साथ प्रचालित है। यह एक परीक्षात्मक सेवा है। प्रयोक्ता टर्मिनलों से लघु संदेशों को उपग्रह के जरिए हब को रिले किया गया है तथा तुरंत फैक्स या डेटा लिंक के द्वारा उसे संबंधित प्रयोक्ता मुख्यालय को प्रेषित किया जाता है। इस रिपोर्टिंग सेवा को लघु हस्त-धारित टर्मिनलों का उपयोग करते हुए प्रदान किया जाता है। स्थिति सूचना हेतु रिपोर्टिंग टर्मिनल को एक जी.पी.एस. अभिग्राही को संलग्न करने हेतु प्रावधान है। जी-सैट-2 अपने मिशन कालावधि, समाप्त करने के कारण, एम.एस.एस सेवाएँ केवल इन्सैट 3-सी के जरिए ही संभव हो पाया। जी.पी.एस. सहायता प्राप्त भू-संवर्धित नौसंचालन (गगन) भारतीय उपग्रह आधारित संवर्धित प्रणाली, गगन अंतिम प्रचालानात्मक चरण में है एवं जून 2013 तक प्रचालन तथा प्रमाणन के लिए तैयार हो जाने की संभावना है। गगन-एफ.ओ.पी. में, सभी भू-तत्व, जैसे कि 15 भारतीय नौसंचालन संदर्भ भू-केन्द्र (आई.एन.आर.ई.एस.), 2 भारतीय नौसंचालन मुख्य नियंत्रण केन्द्र (आई.एन.एम.सी.सी.) एवं 2 भारतीय नौसंचालन भू-ऊर्ध्व कड़ी केन्द्रों (आई.एन.एल.यू.एल.) की स्थापना एवं समाकलन किया गया है। वर्तमान ओ.एफ.सी. आंकड़ा संचार जाल के अतिरिक्त, लगभग सभी आई.एन.आर.ई.एस. साईट एवं आई.एन.एम.सी.सी. के बीच वीसैट कड़ी की स्थापना की गई है। नई दिल्ली में तृतीय आई.एन.एल.यू.एस. की स्थापना एवं द्वितीय ओ.एफ.सी. नेटवर्क प्रगति में है एवं मार्च 2012 तक पूर्ण किए जाने की संभावना है।

प्रारंभिक प्रणाली स्वीकृति परीक्षण का प्रमुख मील पत्थर क्रियाकलाप सभी भू-तत्वों की स्थापना एवं समाकलन के उपरांत सफलतापूर्वक आयोजित किया गया। आईजेक्र द्वारा विकसित आई.जी.एम.-एम.एल.डी.एफ. एल्गोरिथ्म का चयन तकनीकी सामंजस्य के जरिए किया गया है। आई.एन.एम.सी.सी. सॉफ्टवेयर सहित इस मॉडेल का विकास एवं समावेशन प्रगति में है। जीसैट-8 के प्रमोचन के उपरांत, गगन नौसंचालन नीतभार का कक्षीय परीक्षण. एवं परीक्षण एवं मुल्यांकन का आयोजन किया गया एवं नीतभार का समाकलन बैंगलूर आई.एन.एल.यू.एस. - पश्चिम के साथ पूरा किया गया। स्थायित्व परीक्षण जो अभी प्रगति में है, की समाप्ति के उपरांत बिना प्रमाणन के गगन संकेत प्रयोक्ताओं के लिए उपलब्ध रहेगा। गगन के अगले प्रमुख मीलपत्थर क्रियाकलाप जीसैट-10 का प्रमोचन है एवं बेंगलूरू आई.एन.एल.यू.एस.-पूर्व के साथ इसका समाकलन, जीसैट-8 के साथ नई दिल्ली आई.एन.एल.यू.एस. का समाकलन एवं जून 2012 के दौरान अंतिम प्रणाली स्वीकृति जाँच के आयोजन उपरांत जुलाई 2013 के दौरान प्रणाली प्रमाणन का अनुसरण किया जाएगा।

आपदा प्रबंधन सहायता (डी.एम.एस.) कार्यक्रम

इसरो का आपदा प्रबंधन सहायता कार्यक्रम, अंतरिक्ष एवं हवाई प्रणालियों से उत्पन्न उत्पाद एवं सेवाओं के जरिए देश में आपदा प्रबंधन के प्रति निरंतर सहायता उपलब्ध कराता है। राष्ट्रीय सुदूर संवेदी केन्द्र में स्थापित डी.एम.एस.-निर्णय सहायता केन्द्र (डी.एम.एस.- डी.एस.सी.) प्राकृतिक आपदा जैसे कि बाढ़, चक्रवात, कृषि सूखा, भू-स्खलन, भूकंप एवं दावानल का मॉनिटरन करने में व्यस्त है। वायु-अंतरिक्ष प्रणालियों से जनित सूचना निकट वास्तविक समय पर संबंधितों को निर्णय लेने में मदद देने हेतु प्रसारित किया जाता है।

बाढ़: असम, बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा एवं केरल राज्यों में सभी प्रमुख बाढ़ों का मॉनिटरन किया गया और लगभग 245 मानचित्र संबंधित विभागों को विकीर्णित किया गया। बाढ़ प्रबंधन सूचना प्रणाली (एफ.एम.आई.एस.) जिसका विकास बिहार राज्य के लिए किया गया, को सॉफ्टवेयर एवं आंकड़ा आधारित परत उपलब्ध कराने के द्वारा सहायता प्रदान किया गया। उड़ीसा के लिए एफ.एम.आई.एस. का विकास प्रगति में है। जुलाई 18, 2011 को असम के माननीय मुख्यमंत्री द्वारा असम बाढ़ संकट क्षेत्रीकरण अटलस् विमोचित किया गया। बिहार के संबंध में समरूप कार्य किया जा रहा है। गोदावरी तट के लिए लिडार आंकड़ा से 0.5 मी. कन्टूर अंतराल का प्रयोग करते हुए बाढ़ की जलमग्न मॉडल पर अनुसंधान व विकास क्रियाकलाप एवं बाढ़ चेतावनी प्रणाली के विकास के लिए प्रयास किया जा रहा है।

सूखा: देश के 13 राज्यों में कृषि सूखे की व्यापकता एवं प्रचण्डता का निर्धारण मासिक आधार पर, खरीफ मौसम के दौरान उपग्रह आंकड़ा एवं भू-सूचना का प्रयोग करते हुए जिला एवं उप-जिला स्तर में किया जाता है। एम.ओ.डी.आई.एस आंकड़ा से लघुतरंग कोण ढाल सूचक (एस.

ए.एस.आई.) प्रतिबिंबों से व्युत्पन्न फसल बुआई के लिए अनुकूल क्षेत्र प्रचालनात्मक रूप में भेजा जा रहा है। फसल बोने के लिए उत्तम क्षेत्र मौसम पूर्व कृषि परिस्थिति का प्रत्यक्ष सूचक है। दावानल: अग्नि मौसम के दौरान (फरवरी से जून तक) दिन में दो बार सही समय पर सक्रिय दावानल चेतावनी जनित की गई। यह सूचना निर्णय सहायता केन्द्र - भारतीय वन अग्नि प्रतिक्रिया तथा मुलंकन प्रणाली वेबसाईट एवं भुवन पर वेब-पोस्टिंग द्वारा पूरे देश में सभी राज्य वन विभागों के 400 नोडल अधिकारियों को भेजी गई। अग्नि चेतावनी के स्वचालित उत्पादन के लिए एवं एफ.एस.आई. को उत्पादन भेजने हेतु सॉफ्टवेयर विकास प्रगति में हैं। अग्नि क्षति मूल्यांकन एवं 4 प्रमुख भौगोलिक क्षेत्रों में अग्नि खतरा दर प्रगति कर रहा है। भू-स्खलन एवं भूकंप: सितंबर 2011 में सिक्किम भूकंप के तुरंत बाद भूकंप से हुई हानि निर्धारित करने के लिए पूर्व एवं पश्च-भूकंप उपग्रह आंकड़े प्राप्त किए गए। सितंबर 29 के उपरांत उपलब्ध मेघ मुक्त आंकड़े एवं सूक्ष्म तरंग आंकड़ों का प्रयोग करते हुए सिक्किम के आस-पास भूकंप की वजह से हुए लगभग 1196 नए भू-स्खलनों का मानचित्रण किया गया। आपातकालीन प्रबंधन हेतु राष्ट्रीय आंकड़ा आधार (एन.डी.ई.एम.): देश के लिए आपदा/आपातकालीन प्रबंधन सहायता हेतु आंकड़ों के जी.आई.एस. आधारित भंडारण के रूप में एन.डी.ई.एम. की प्राप्ति की जा रही है। एन.आर.एस.सी. शादनगर में एन.डी.ई.एम. भवन का निर्माण कार्य पूरा हो रहा है। इसरो से एवं कुछ अन्य संगठनों से पहले ही प्राप्त किए गए डेटाबेस को इंटरिम सर्वर में डाल दिया गया है।

कार्टोडेम: कार्टोसैट-1 स्टीरियों आंकडा उपयोगिता के मिशन लक्ष्यों में से एक है-कार्टोडेम। कार्टोडेम पर परियोजना 1/3 आर्क-सेक (~10 मि) अंतराल के पोस्टिंग तथा तदनुरूप आर्थो प्रतिबिंब के साथ अंकीय उन्नतांश मॉडल (डी.ई.एम) जनित करने के लिए शुरु की गयी हैं। संपूर्ण देश के लिए मुख्यतः बृहत पैमाने के मानचित्रण और भूभाग मॉडलिंग उपयोगों को प्रदान करने के लिए पूरे देश के लिए कार्टोडेम और आर्थो प्रतिबिंब जनित किया गया है। ये आंकड़ा सेट 8 मी. के ऊर्ध्वाधर उन्नतांश परिशुद्दताओं और 15 मी. के प्लानीमेट्रिक परिशुद्दता के साथ डब्ल्यू. जी.एस-84 प्रणाली में 1:25,000 पैमाने पर 7.5 के स्थलाकृतिक मानचित्र टैल्स में प्राप्त किये गये है। अनुसंधानकर्ताओं और प्रयोक्ता समुदाय के प्रयोजन हेतु 1 आर्क सेकेंड कार्टोडेम को भुवन भूपोर्टल में डाला जा चुका है।

भुवन: इसरो के भू-पोर्टल और भारतीय भू प्रेक्षण आंकड़ा आभासी सेवाओं के लिए प्रवेश द्वार, राष्ट्र के लिए भारतीय भू-प्रेक्षण आंकड़ा सीवनहीन रूप में 5.8 मी. आकाशीय विभेदन और चयनित नगरों के लिए 1 मी आकाशीय विभेदन प्रदर्शित करता है। दो साल पहले पूरा किया गया भुवन पोर्टल ने (www.bhuvan.nrsc.gov.in) डाउनलोड़ सुविधाओं के साथ बहुत सारे नये कार्य एवं सेवाएं शामिल कर लिया हैं। भुवन, एन.आर.एस.सी खुला ई.ओ. आंकड़ा अभिसंग्रहण (एन.ओ.ई.डी.ए) के जरिए प्रयोक्तओं को उपग्रह आंकड़ों का चयन, ब्राउस तथा डाउनलोड करने की सुविधाएं प्रदान करता है। इस समय, प्रयोक्ता कार्टोडेम-1 आर्क सेकेंड का उन्नतांश आंकड़ा तथा उन्नत व्यापक क्षेत्र संवेदक आंकड़ा (56 मी.) डाउनलोड कर सकते हैं। निकट भविष्य में, प्रयोक्ता समुदाय को विषयवस्तु सेवाएँ और ऑनलाइन भू संसाधन सेवाएं उपलब्ध कराने की भी योजना हैं। पिछले वर्ष हॉसिल किए गए विशिष्ट उपलब्धियों में, बहु-भाषीय क्षमता (अंग्रेजी, हिन्दी, तेलगु, और तमिल) के साथ ओपन सोर्स कंटेंट प्रबंधन प्रणाली विषयवस्तुक प्रबन्धन प्रणाली का क्रियान्वयन, एकल साइन-ऑन की ओर केन्द्रीय प्रमाणीकरण सेवा, सुधार हेतु आम जनता के साथ अन्योन्यक्रिया उपलब्ध कराने के लिए ऑन-लाइन चर्चा फोरम, स्वदेशी भुवन- 2डी, मोबाइल सुसंगतता, अंतर-प्रचालनीयता की ओर ओ.जी.सी. वेब से सेवाएं, आंध्र प्रदेश स्कूल सूचना प्रणाली के लिए ओ.जी.सी सेवाएं, भारतीय दवानल प्रतिक्रिया और मूल्यांकन प्रणाली, भारतीय भू-पोर्टल (एन.एस.डी.आई)। ऑन-लाइन आकार फाइल का जनन और प्रयोक्ता आंकडा शेयरिंग, एन.आर.एस.सी खुला ई.ओ. आंकड़ा अभिग्रहण (एन.ओ.ई.डी.ए) 102 नगरों के लिए उच्च विभेदन आंकड़ा और पाँच प्रमुख नगर शिल्लांग, दिल्ली, पुणे, चेन्नाई और हैदराबाद में करीब 2000 छात्रों आवृत्त करते हुए भुवन जागरूकता कार्यशाला का आयोजन शामिल हैं।

प्रमुख उपलब्धियाँ

ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचन यान (पीएसएलवी)

इसरो के वर्कहॉर्स प्रमोचक यान पीएसएलवी ने वर्ष 2011 में पीएसएलवी सी-16, सी-17 और सी-18 के तीन सफल प्रमोचनों से अपनी विश्वसनीयता और सर्वतोमुखी उपयोगिता सिद्ध की है। यह प्रमोचन तीन रूपांतरों में किए गए – छह एस9 ठोस स्ट्रेप ऑन मोटर युक्त सामान्य

संस्करण, क्रोड मात्र संस्करण और 6 विस्तारित लम्बाई वाली एस12 ठोस स्ट्रेप ऑन मोटर युक्त एक्सएल संस्करण। इनमें से सी17 संचार उपग्रह जीसैट-12 को अभिप्रेत कक्षा में स्थापित करने के लिए उप भू-तुल्यकाली अन्तरण कक्ष मिशन था। पीएसएलवी एकान्तर ठोस और तरल नोदन प्रणाली युक्त चार चरण वाला यान है।

पीएसएलवी16/रिसोर्ससैट-2 मिशन में सामान्य संरूप वाले पीएसएलवी यान का प्रयोग किया गया और अप्रैल 20, 2011 को इसका सफल प्रमोचन किया गया। इसने, रिसोर्ससैट-2 (1206 किग्रा) के साथ दो सहायक उपग्रह यूथसैट (92 किग्रा) और नान्यांग टेक्नीकल यूनिवर्सिटी, सिंगापुर का एक्ससैट (105 किग्रा), जिसे 98.7 डिग्री नति कोण पर 809x822 किमी सूर्यतुल्यकाली ध्रुवीय कक्षा में स्थापित किया गया - के साथ उड़ान भरी।

पीएसएलवी सी17/जीसैट-12 मिशन पीएसओएम-एक्सएल स्ट्रेप ऑन संरूप युक्त पीएसएलवी का द्वितीय मिशन था और जुलाई 15, 2011 को इसका सफल प्रमोचन किया गया। इस मिशन ने संचार उपग्रह जीसैट-12 को 17.98 डिग्री नति कोण पर 280 किमी उपभू और 21027 किमी अपभू की उप-जीटीओ कक्षा में स्थापित किया। इस मिशन में प्रमुख और अतिरिक्त ऑनबोर्ड उड़ान कम्प्यूटर इनहाउस विक्रम प्रोसेसर के साथ संरूपित किए गए थे। पीएसएलवी-सी18/मेघा-ट्रॉपिक्स मिशन अक्तूबर 12, 2011 को सफलतापूर्वक प्रमोचित सातवीं क्रोड मात्र उड़ान थी। इस मिशन में इंडो-फ्रेंच उपग्रह मेघा ट्रॉपिक्स के साथ कक्षा में तीन सहायक उपग्रह, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर के जुगनू, एसआरएम वि वविद्यालय, चेन्नई के एसआरएम-सैट और लग्जमबर्ग के वेसलसैट को स्थापित किया। इस मिशन ने कुल 1045 किग्रा पेलोड को 20.012 डिग्री नतिकोण पर 866.5 किमी की वृत्ताकार कक्षा में पहुंचाया। अपेक्षाकृत कम (820 किग्रा) नोदक युक्त परिशोधित पीएस4 चरण इस मिशन में एक बड़ा परिवर्तन था, जिसके लिए आवश्यक व्यारोध परिशोधन किये गए। पेलोड, कक्षा, नतिकोण, पीएस3 पभाव और अन्य आवश्यकताओं को देखते हुए सी18 मिशन हेतु मिशन प्रबंधन एक और बड़ी चुनौती थी। पीएसएलवी-सी19/रिसैट-1 मिशन के लिए सभी प्रमुख हार्डवेयर तैयार किए गए हैं और वर्ष 2012 की प्रथम तिमाही में इसे प्रमोचित करने का लक्ष्य रखा गया है।

भूतुल्यकाली उपग्रह प्रमोचक यान (जीएसएलवी)

जीएसएलवी ठोस, तरल और निम्नतापीय नोदन प्रणाली युक्त 3 चरण वाला रॉकेट संचार उपग्रहों के लिए भारतीय प्रमोचक यान है। वर्ष 2010 के जीएसएलवी एफ06 और जीएसएलवी डी3 मिशन की असफलता के संबंध में, वर्ष 2011 में सघन असफलता विश्लेषण अध्ययन एवं समीक्षाएं की गई। जीएसएलवी डी3 और जीएसएलवी एफ06 हेतु गठित असफलता विश्लेषण समिति की अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। जीएसएलवी-डी3 एफएसी सिफारिशों के अनुसार निम्नतापीय चरण ईंधन अभिवर्धक टर्बो पंप (एफबीटीपी) को परिशोधित किया गया और अर्हता परीक्षण किया गया। परिशोधित आक्सीकारक परिवर्धक टर्बो पंप (ओबीटीपी) का उड़ान स्वीकार्यता परीक्षण किया गया। जीएसएलवी-एफ06 मिशन के असफल होने के कारण क्रायोचरण निम्न आवरण का अत्यधिक स्थैतिक विरूपण और उसके फलस्वरूप क्रायो चरण व उड़ान के 47.34 सेकेंड से 47.72 सेकेंड तक द्वितीय चरण के पृथक्करण समतल अंतरापृष्ठ पर वैद्युत अनुयोजकों का बेमेल हो जाना था। जिससे उपकरण खण्ड से प्रथम चरण नियंत्रण विद्युत संयंत्रों तक समादेश संकेत का प्रवाह अवरूद्ध हो गया और यान नियंत्रण खोकर आखिरकार खण्डित हो गया। क्रायो चरण निम्न आवरण का पुनः डिजायन किया जा चुका है और अर्हता परीक्षण चल रहा है। जीएसएलवी संरूपों हेतु वायुगतिक अभिलक्षण को एफएसी की सिफारिशों के अनुसार अद्यतन किया गया है।

आगामी दो जीएसएलवी मिशन विकासात्मक उड़ानों के रूप में करने की योजना है। वर्ष 2012 के मध्य में 3.4 मी. नीतभार व स्वदेशी क्रायो चरण के साथ जीएसएलवी-डी5 का उड़ान परीक्षण करने का लक्ष्य रखा गया है और अप्रैल 2013 में 4 मी. पीएलएफ व स्वदेशी क्रायो चरण के साथ जीएसएलवी-डी6 की योजना है।

भू तुल्यकाली उपग्रह प्रमोचक यान (जीएसएलवी एमके III)

जीएसएलवी-एमके क्ष्क्ष्क्ष् यान, भारी उत्थापन प्रमोचक यान है जिसे इन्सैट4 वर्ग के 4.5 टन वजनी संचार उपग्रहों के प्रमोचन हेतु डिजाइन किया गया है, यह विकास के आखिरी चरणों में है। इस यान में तीन नोदन चरण हैं और यह 630 टन उत्थापन वजन के साथ 42.4 मी ऊंचा है। 200

टन वजनी ठोस नोदन युक्त दो एक जैसे बड़े ठोस स्ट्रेप ऑन अभिवर्धक 110 टन नोदनयुक्त क्रोड चरण के दोनों ओर जोड़ गए हैं। निम्नतापीय चरण आधारित सी25 एलओएक्स/ एलएच2 अगला चरण है। सीएफआरपी पेलोड ज्वालन का व्यास 5 मीटर मापा गया है: एस 200 मोटर (एसटी-02) का द्वितीय स्थैतिक परीक्षण, नोदन खण्ड उप समुच्चय के साथ एल 110 का ध्वानिक परीक्षण तथा 5 मीटर व्यास मिश्र पेलोड फायरिंग की प्राप्ति में सफलता इस वर्ष की प्रमुख महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। सील स्तरीय प्रणोद कक्ष परीक्षण हेतु प्रणोद कक्ष परीक्षण सुविधा को चालू किया गया है। सीई20 प्रणोद कक्ष परीक्षण सामग्री तैयार है और परीक्षण स्टैंड के साथ इंटरफेसिंग की गई है।

सितंबर 4, 2011 को एसटी-02 सफलतापूर्वक परीक्षण किया गया। प्रक्षेपिक कार्यनिष्पादन, प्रज्वालक विलम्ब और अंतरी प्रणोद विनिर्देश अधीन है। पश्च परीक्षण अवलोकन सभी उप प्रणालियों व अन्तरापृष्ठों का नामीय कार्यनिष्पादन दर्शाते हैं।

क्रोड आधारित आवरण, तापीय आवरण, दो क्षेत्र अनुपात 31 इंजिन, नॉजल रोधी प्रणाली, दो इलेक्ट्रो-हाइड्रोलिक प्रवर्तक व दो इलेक्ट्रो-मेकेनिकल प्रवर्तकों सहित एल 110 चरण नोदन खण्ड उप समुच्चय का राष्ट्रीय वांतरिक्ष प्रयोगशाला, बेंगलूरु में सफल ध्वानिक परीक्षण किया गया। सी25 चरण हेतु, सीई20 प्रणोद कक्ष परीक्षण सुविधा चालू की गई और मुख्य इंजिन परीक्षण सुविधा का संवर्धन पूर्ण किया गया। एल110 पृथक्करण प्रणाली का द्रव नाईट्रोजन वातावरण में कार्यकलापी पृथक्करण परीक्षण किया गया।

पुनरुपयोगी प्रमोचक यान - प्रौद्योगिकी प्रदर्शक (आरएलवी-टीडी)

दो चरण में कक्षा वाले पूर्णतः पुनरुपयोगी प्रमोचक यान को विकसित करने के लिए प्रौद्योगिकी प्रदर्शक मिशनों की श्रृंखला पर विचार किया गया है। इसी उद्देश्य से पंखयुक्त पुनरुपयोगी प्रमोचक यान प्रौद्योगिकी प्रदर्शक (आरएलवी-टीडी) का संरूप तैयार किया गया है। आरएलवी-टीडी विभिन्न तकनीकियों यथा - अतिध्वनिक उड़ान, स्वायत्त अवतरण, पावरयुक्त क्रूज उड़ान और वायु वसन नोदन का प्रयोग करते हुए अतिध्वनिक उड़ान के मूल्यांकन हेतु उड़ान परीक्षण आधार के रूप में कार्य करेगा।

इस अवधि के दौरान द्वितीय अंतःक्षेपण प्रणोद सदिश नियंत्रण प्रणाली के साथ एचएस9 मोटर का द्वितीय स्थैतिक परीक्षण, एकीकरण सुविधा का शुभारंभ और सर्व पंख धड़ जोड़ों का ढाचागत अर्हता परीक्षण आरएलवीटीडी की बड़ी उपलब्धि रही। चार राष्ट्रीय विशेषज्ञ समितियों ने विभिन्न डिजाइनों, परीक्षण और युक्तिचालन पहलुओं की समीक्षा की। इसके अलावा, यान हेतु प्रतिक्रिय नियंत्रण प्रणाली जेट अंतःक्रिया अध्ययन और वायु अभिलक्षण पूर्ण किया गया। यान और मिशन हेतु इलेवॉन व पतवार विक्षेप अध्ययन किया गया। राष्ट्रीय समिति की सिफारिशों के आधार पर डिजीटल ऑटो पायलट एफआरडी हेतु ऑनबोर्ड सार्फ्टवेयर का अद्यतन संस्करण और डाटा सेट दस्तावेज जारी किए गए। समस्त नौवहन, मार्गदर्शन व नियंत्रण हार्डवेयर, सिरामिक सर्वो त्वरणमापी और एचडीएएस तैयार किए गए। लघु फ्लश वात डाटा प्रणाली (एफएडीएस) वैद्युतिकीय तैयार किया गया तथा उन्नत यान प्रतिबिंबन प्रणाली (एवीआईएस) प्रस्तुत की गई।

समानव अंतरिक्ष उड़ान कार्यक्रम (एचएसपी)

सरकार ने पूर्व परियोजना गतिविधियों के निधि उपलब्ध कराया है। इस चरण के दौरान मानव अन्तरिक्ष उडान कार्यक्रम के लिए आवश्यक नई और क्रांतिक प्रौद्योगिकीयों का विकास का प्रस्ताव है जिसमें दल माडयूल (सी.एम.) प्रणालीयों पर्यावरणीय नियंत्रण व जीवन सहायता प्रणालियों, उडान सूट, दल पलायन प्रणाली तथा सेवा माडयूल प्रणालीयां शामिल है।

वायु श्वसन प्रौद्योगिकी (Air Breathing Technology)

पुनरुपयोगी प्रमोचक यान तकनीकी के साथ वायु श्वसन प्रौद्योगिकी अंतरिक्ष में किफायती पहुंच के लिए तकनीकी कुंजी है। आक्सीजन और ईंधन को ऑनबोर्ड साथ ले जाने वाले पारंपरिक राकेटों से भिन्न वायु वसन नोदन प्रणाली दहन हेतु वायुमण्डल की आक्सीजन का उपयोग करता है, जिससे पेलोड प्रभाजन में प्रयाप्त सुधार होता है और इस प्रकार समग्र लागत में कमी आती है।

वीएसएससी ने वायु वसन नोदन तकनीकी पर भूमि परीक्षण की श्रृंखला के माध्यम से स्थिर पराध्वनिक दहन के प्रदर्शन हेतु एक व्यवस्थित अनुसंधान व विकास कार्यक्रम शुरु किया है और उन्नत तकनीकी यान के साथ उड़ान प्रदर्शन की योजना बनाई है। एटीवी डी-02 के लिए सक्रिय स्क्रेमजेट इंजिन और उच्चदाब गैसीय ईंधन भरण प्रणाली हेतु विकास गतिविधि सुचारू ढंग से प्रगतिशील है। स्क्रेमजेट अभिलक्षण उड़ान वर्ष 2012 के पूर्वार्ध में करने का लक्ष्य रखा गया। इंजिन माडयूल का वात-तापीय-ढांचा डिजाइन पूर्ण किया गया है। इंजिन संविरचना प्रगतिशील है। जटिल एबी नोदन परीक्षण (वायु ग्रहण व दहन तंत्र) और विश्लेषण (संगणकीय तरल गतिकीय व ताप संरचना) किये गये हैं। एफकेपीएनआईटीएसआरकेपी, रूस में एसआईसी विलेपित सी/सी अग्र छोर का उपयोग करते हुए 1950 के तक उच्च तापमान स्क्रेमजेट दहन तंत्र का सफलतापूर्वक भूमि परीक्षण किया गया। माप संख्या गवाक्ष 6.0+0.5 हेतु विस्तृत स्क्रेमजेट पूर्ण इंजिन सीएफडी अनुकरण पूरा किया गया और त्वरण व इंजन प्रवाह प्रवर्तन में विवेचन योग्य परिवर्तन की पुष्टि की। गैस बॉटल/माडयूल युक्त उच्च दाब गैसीय हाइड्रोजन ईंधन भरण प्रणाली तथा एए2014 संचरना की एकीकरण नकल एलपीएससी में पूर्ण की गई। एनएएल, बेंगलूरु और एलपीएससी, महेन्द्रगिरि में एबी नोदन परीक्षण सुविधा चालू करने की दिशा में पर्याप्त प्रगति हुई है।

अंतरिक्ष कैप्सूल पुनः प्राप्ति परीक्षण-2 (एसआरई-2)

एसआरई-2 मिशन का मुख्य उद्देश्य एक पूर्णतः पुनःप्राप्ति योग्य कैप्सूल तैयार करना और सूक्ष्म गुरुत्व परीक्षण प्रयोग करने हेतु एक मंच प्रदान करना है। एसआरई कैप्सूल में चार प्रमुख हार्डवेयर हैं - वायुतापीय संरचना, एयरो तापीय संरचना अंतरिक्षयान प्लेटफार्म, मंदन व प्लवन प्रणाली और नीतभार। एसआरई-II हेतु विकसित नवीन तकनीकियों में कार्बन-कार्बन नासा टोप, स्वदेशी यूएचएफ बीकन आदि शामिल हैं। सिलिका टाइल तापीय संरक्षण प्रणाली युक्त एयरो तापीय संरचना, पेलोड का अर्हता मॉडल, सौर पटल, पैराशूट तथा प्लावक तैयार किए गए हैं। मिशन प्रबंधन यूनिट हार्डवेयर तैयार हैं और अपवर्धन चरण हेतु ऑनबोर्ड सॉफ्टवेयर इन लूप पूर्ण किए गए।

अन्तरिक्ष विज्ञान

अन्तरिक्ष विज्ञान और अनुसंधान भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम का अभिन्न अंग रहा है। अन्तरिक्ष विज्ञान अनुसंधान क्रियाकलाप, भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला(पी.आर.एल.), अन्तरिक्ष भौतिक प्रयोगशाला (एस.पी.एल.), राष्ट्रीय वायुमण्डलीय अनुसंधान प्रयोगशाला (एन.ए.आर. एल.), इसरो उपग्रह केन्द्र (आईजैक) में वैज्ञानिक विश्लेषण समूह (एस.ए.जी.) तथा अन्तरिक्ष विज्ञान एवं यंत्रीकरण सुविधा (एस.एस.आई. एफ.) में किये जाते हैं। इसरो अन्तरिक्ष विज्ञान सलाहकार समिति (एड्कॉस) की सिफारिशों के जरिये इसरो द्वारा अन्तरिक्ष विज्ञान के क्षेत्रों में विशिष्ट, राष्ट्रीय समन्वित, बहुसंस्थानिक, विज्ञान नीतभार उपकरण तथा विज्ञान मशन विकास परियोजनाओं को सहायता दी जाती है तथा उन्हें कार्यान्वित किया जाता है। एड्कॉस के जरिये अन्तरिक्ष विज्ञान अनुसंधान परियोजनाओं/कार्यक्रमों में किये जाने वाले मुख्य क्रियाकलापों का सार नीचे दिया गया है।

चन्द्रयान-1

22 अक्तूबर 2008 को प्रमोचित चन्द्रयान-1 मिशन ने 312 दिन कक्षा में पूरे कर, चन्द्रमा के 3400 से अधिक चक्कर लगाये और चन्द्रमा का भिन्न-भिन्न परिदृश्यों से अध्ययन कर उच्च विभेदन के उत्कृष्ठ गुणवत्ता वाले आँकडे प्रदान किये। 28 अगस्त, 2009 तक चन्द्रयान-1 मिशन सफलतापूर्वक कार्य करता रहा, सम्पर्क के टूटने से संचार असफल हो गया और मिशन रद्द करना पड़ा। वैज्ञानिक प्रेक्षण के प्रमुख परिणामों ने पुष्टि की है कि मिशन के लक्ष्यों को प्राप्त कर लिया गया है। चन्द्रयान-1 के रसायन, खनिज विज्ञान तथा फोटो-भू-विज्ञान मानचित्रण से संबंधित परिणाम अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं (जर्नलों) में प्रकाशित किये गये हैं।

चन्द्रयान-2

चन्द्रयान-2 मिशन में एक कक्षित्र/लैण्डर/रोवर संरूपण के होने की योजना बनाई गई है। इस मिशन को 2014 तक प्राप्त करने की संभावना है। यह भारत-रूसी सहयोग मिशन है। इस मिशन का वैज्ञानिक लक्ष्य, कक्षित्र पर रखे उपकरणों का उपयोग कर चन्द्रमा की उत्पत्ति एवं विकास की जानकारी को और बढ़ाना तथा रोबोटिक/रोवर के उपयोग से चन्द्रमा के नमूनों का स्वस्थाने विश्लेषण करना और चन्द्र रेगोलिथ विशेषताओं (सुदूर व सीधे विश्लेषण) का अध्ययन करना है।

भारतीय मंगल मिशन

इसरो 2013 के दौरान मंगल ग्रह पर मिशन भेजने की योजना बना रहा है। भारतीय मंगल कक्षित्र मिशन के लिए परियोजना रिपोर्ट भारत सरकार के अनुमोदनार्थ प्रस्तुत की गई है। मंगल मिशन का फिलहाल वैज्ञानिक लक्ष्य उस ग्रह पर जीवन, जलवायु, भूविज्ञान, उत्पत्ति, विकास तथा जीवन की दीर्घकालीनता पर केन्द्रित होगा। एड्कॉस समीक्षा समिति द्वारा वैज्ञानिक नीतभार का चयन किया गया है। उपग्रह की आधार-रेखा, सौर व्यूह तथा परावर्तित्र संरूपण को अंतिम रूप दिया गया है। एफ.एम.ओ.-इसरो मु. के साथ संचार उप-प्रणाली हेतु आवृत्ति फाइलिंग किया जा रहा है।

एस्ट्रोसैट मिशन

एस्ट्रोसैट भारत का पहला समर्पित खगोल विज्ञानीय मिशन है जो एक्स-किरण एवं पराबैंगनी स्पेक्ट्रमी बैण्डों में एक साथ आकाशीय पिण्डों, ब्रह्मणीय स्रोतों के बहु-तरंगदैर्ध्य प्रेक्षण संभव बनायेगा। वैज्ञानिक नीतभार दृशीय (3500-6000), पराबैंगनी (13000-3000), अल्प तथा अतिवेधी एक्स-किरण क्षेत्र (0.5-8 keV; 3-80 keV) का आवृत्त करता है। दृशीय, पराबैंगनी, अल्प एक्स एवं अतिवेधी एक्स क्षेत्रों पर अपना व्यापक स्पेक्ट्रमी आवरण प्रदान करने में एस्ट्रोसैट अद्वितीय है।

एस्ट्रोसैट के वैज्ञानिक उद्देश्य हैं: ब्रह्मणीय स्रोतों का बहुतरंगदैर्ध्य अध्ययन, नई क्षणिकाओं के लिए एक्स-किरण आकाश का मानीटरन, अतिवेधी एक्स-किरण तथा पराबैंगनी बैण्डों में पूरे आकाश का सर्वेक्षण, एक्स-किरण द्विआधारी, ए.जी.एन., एस.एन.आर., आकाशगंगाओं के समूह तथा तारा आयान मण्डलों के ब्राडबैण्ड स्पेक्ट्रमदर्शी अध्ययन, जानकार स्रोतों के एक्स-किरण स्रोतों तथा मानीटरन तीव्रता का आवधिक एवं अनावधिक परिवर्तनीयता का अध्ययन और विस्फोटों एवं प्रकाश बदलावों का संसूचन।

सतीश धवन अन्तरिक्ष केन्द्र, श्रीहरिकोटा से 1500 कि.ग्रा. भार वाले उपग्रह को प्रचालनात्मक पी.एस.एल.वी. द्वारा 650 कि.मी. की तुंगता पर 8-डिग्री की कक्षीय आनति पर 2012 में प्रमोचित किया जाना है। इस मिशन की उपयोगी कालावधि लगभग 5 वर्ष होने की संभावना है।

आदित्य-1

आदित्य-1; प्रथम अन्तरिक्ष आधारित सौर प्रभामण्डलीयग्राफ, प्रभामण्डल नामक सूर्य के बाहरी क्षेत्र के अध्ययनार्थ अभिप्रेत है। आदित्य-1 दृशीय एवं निकट अवरक्त बैण्डों में प्रभामण्डल द्रव्यमान निष्कासन जैसे, आभामण्डलीय चुंबकीय क्षेत्र संरचना, आभामण्डलीय चुंबकीय क्षेत्र का विकास, इत्यादि; और परिणामस्वरूप अन्तरिक्ष मौसम हेतु महत्वपूर्ण भौतिक प्राचल का अध्ययन करेगा। आदित्य के क्रियाकलाप इस प्रकार हैं : सौर आभामण्डलीयग्राफ नीतभार के विकास एवं सुपुर्दगी के लिए आई.आई.ए. के साथ समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर; आदित्य-1 की प्रकाशिकी प्रणाली के प्रारंभिक डिजाइन को अंतिम रूप दिया गया और डिजाइन दस्तावेज तैयार; प्रकाशिकी डिजाइन की प्रारंभिक डिजाइन समीक्षा पूरी की गई; संसूचन प्रणाली के चयन पर ट्रेड-ऑफ अध्ययन पूरा किया गया और पावर एवं भार का बजट तैयार करने के साथ उप-प्रणाली पैकेजों की सूची तैयार की गई। उपग्रहों का यांत्रिक पुनर्संरूपण प्रगति पर है।

ग्रहीय विज्ञान तथा अन्वेषण (प्लैनेक्स)

इसरो की अन्तरिक्ष विज्ञान सलाहकारिता समिति (एडकॉस) द्वारा प्रारंभ किया गया राष्ट्रीय ग्रहीय विज्ञान एवं अन्वेषण कार्यक्रम, प्लैनेक्स अल्प एवं दीर्घ-कालीन नीति को ग्रहीय विज्ञान तथा अन्वेषण के क्षेत्र में अनुसंधान एवं संबंधित क्रियाकलापों को शुरू करने के लिए अभिकल्पित किया गया है।

वर्ष के दौरान, प्लैनेक्स कार्यक्रम के क्रियाकलाप प्रारंभिक सौर मण्डल की प्रक्रिया को समझने हेतु उल्कापातों पर अन्वेषण करने पर; चन्द्रमा पर सतही विशेषताओं तथा सतही प्रक्रियाओं को समझने हेतु चन्द्र मिशनों से प्राप्त सुदूर संवेदन आँकडों के विश्लेषण और ग्रहीय अन्वेषण हेतु प्रयोगशाला आदिप्रारूपी उपकरणों के विकास करने पर केन्द्रित हैं।

विस्तृत भूआकृतिविज्ञान, रसायन, खनिजविज्ञान तथा भौतिक प्राचलों के जरिये विशिष्ट सतही विशेषताओं और विकास के पहलुओं को समझने के लिए चन्द्रयान-1 के नीतभारों (HySI, TMC, M3), कागुआ (एम.आई.-वी.आईएस.) तथा एल.आर.ओ. (एन.ए.सी.) मिशनों से प्राप्त प्रकाशिकी सुदूर संवेदन आँकडों का विश्लेषण किया गया है। टाईको गड्ढे की केन्द्रीय चोटी की भूआकृति तथा सम्मिश्रण के संरचना तथा बाद के परिवर्तनों को समझने के लिए उसका अध्ययन किया गया है। केन्द्रीय चोटी पर ज्वालामुखी छिद्र गुम्बद, पाइरोक्लास्टिक, लावाताल तथा पृथक शीतलन दरारें तथा फ्लो-फ्रन्ट्स् दर्शाते चैनल निर्दिष्ट किये गये हैं। M3, डिविनर एवं चन्द्र कक्षित्र लेजर तुंगतामापी आँकडों के समेकित विश्लेषण द्वारा चन्द्रमा पर विरल भू तत्वों तथा फासफोरसों की ज्वालामुखी पर अन्तर्दृष्टि प्राप्त की गई है। चन्द्रमा की अन्य घाटियों के विपरीत, ओरियेन्टेल में मारे (काले धब्बों) बसाल्ट अपेक्षाकृत कम हैं जो घाटी के अधिकंश भाग को दृष्टव्य बनाते हैं।

ओरियेन्टेल घाटी में अवशोषण विशेषताओं तथा रैखीय स्पेक्ट्रमी अमिश्रित अतिस्पेक्ट्रमी तकनीकों पर आधारित खनिजों के आधिक्य को पहचानने तथा उसका अनुमान लगाने पर अध्ययन केन्द्रित था। वर्ष 2013 में प्रमोचन के लिए निर्धारित चन्द्रयान-2 मिशन के दो नीतभार विकासाधीन हैं। एक नीतभार, एक्स-किरण सौर मानीटर क्ष किरण सौर मॉनीटर कक्षित्र के लिए है और दूसरा, अल्फा कण एक्स-किरण स्पेक्ट्रममापी रोवर के लिए। चन्द्रमा तथा ग्रहीय अन्वेषण हेतु बेतार संवेदक नेटवर्क की नई प्रौद्योगिकी विकासाधीन है। दो वार्षिक बैठकों के अलावा, प्लैनेक्स कार्यशाला एवं प्लैनेक्स पी.आई. वार्षिक समीक्षा बैठक, दो आँकडा विश्लेषण कार्यशालाएँ (दोनों सैक तथा अहमदाबाद के सहयोग में) तथा मंगल विज्ञान एवं अन्वेषण पर एक कुशाग्र सत्र का भी आयोजन किया गया। प्लैनेक्स कार्यक्रम विश्वविद्यालय एवं अनुसंधान संस्थानों से ग्रहीय विज्ञान के विषयों पर अनुसंधान परियोजनाओं का निधि-पोषण करता रहा है। इस अवधि के दौरान, आठ नई परियोजनाओं का वित्त-पोषण किया गया है और दो परियोजनाएँ प्रक्रियाधीन हैं। फिलहाल 14 चालू परियोजनाएँ हैं। मार्च 26-27, 2011 के दौरान प्लैनेक्स पी.आई. की समीक्षा बैठक हुई जिसमें सोलह पी.आई. ने भाग लिया और अपनी प्रगति प्रस्तुत की। उनके परिणाम राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय जर्नलों (18 लेख) में प्रकाशित हुए तथा राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रस्तुत किये गये।

यूथसैट

यूथसैट अप्रैल 20, 2011 से भौमिक आयनमण्डल तथा तापमण्डल पर अभिप्रेत मापन निरंतर रूप से प्रदान कर रहा है। भारत-रूसी सहयोग - यूथसैट, भारत का पहला लघु उपग्रह है जो सम्पूर्ण रूप से सूर्य तथा भूमि के ऊपरी वायुमण्डल के वैज्ञानिक अन्वेषण हेतु समर्पित है। यूथसैट पर रखे तीन वैज्ञानिक नीतभारों में से, आर.ए.बी.आई.टी. (आयनमण्डलीय आकृतिविज्ञान के लिए रेडियो बीकन) तथा LiVHySI (लिंब दृशीय अति स्पेक्ट्रमी प्रतिबिंबित्र) नामक दो नीतभार भारत के हैं जबकि तीसरा नीतभार एस.ओ.एल.आर.ए.डी. मॉस्को स्टेट वि वविद्यालय, रूस का है। LiVHySI तथा आर.ए.बी.आई.टी. नीतभारों के संयोजन का इस प्रकार चयन किया गया है कि दोनों क्रमशः तटस्थ तथा प्लाज्मा प्राचलों पर मापन प्रदान करते हुए एक दूसरे के अनुपूरक हों। ये दोनों परीक्षण अपनी तरह के पहले हैं और स्वदेशी रूप से विकसित किये गये हैं।

आयनमण्डलीय आकृतिविज्ञान के लिए रेडियो बीकन (RaBIT)

ड्ब्लूएक्स्र, एक एस.पी.एल.-वी.एस.एस.सी. उद्यम, एक ऐसा रेडियो बीकन है जो ≈818 कि.मी., की अपनी कक्षा से 150 तथा 400 मे.ह. की आवृत्तियों का उत्सर्जन करता है जिसका भूमि पर अनुवर्तन, विशिष्ट रेडियो अभिग्राही का उपयोग करते हुए तथा ऊपर उल्लिखित आवृत्तियां में प्राप्त रेडियो संकेतों के अपेक्षित चरण परिवर्तन के जरिये आयनमण्डल के कुल निहित इलेक्ट्रान का अनुमान लगाते हुए भारत के ऊपर अक्षांश (अर्थात् 760 पूर्व) के आस-पास किया जाता है। भू अभिग्राही केन्द्रों के लिए त्रिवेन्द्रम, बेंगलूर, हैदराबाद, भोपाल तथा दिल्ली का चयन किया गया है। इस प्रकार लगभग एक साथ अनुमान लगाये गये टी.ई.सी. को लेकर टोमोग्राम तैयार किया गया, जो हमें आयमण्डलीय इलेक्ट्रान घनत्व के अभिवृत्ति-तुंगता वितरण देता है। इस मामले में यह टोमोग्राम त्रिवेन्द्रम के दक्षिण में कुछ डिग्री (5-60) से लेकर दिल्ली के उत्तर में लगभग 3-40 तक, उपग्रह के उत्थापन के आधार पर आयानमण्डल को आवृत्त करता है। इस बात का उल्लेख किया जाना चाहिए कि उच्च आकाशीय विभेदन 'आयनमण्डलीय टोमोग्राफी' के अलावा, भूमि अथवा अन्तरिक्ष आधारित कोई तकनीक आयानमण्डलीय इलेक्ट्रॉन घनत्व का अभिवृत्ति-अंक्षांश वितरण प्रदान नहीं कर सकती। RaBIT टोमोग्राफी नेटवर्क मिशन में विद्यमान नेटवर्कों में सबसे लम्बा नेटवर्क है और इसलिये अद्वितीय है।

लिंब दृशीय अति स्पेक्ट्रमी प्रतिबिंबित्र (LiVHySI)

LiVHySI, एस.पी.एल.-सैक के प्रयास का एक और भारतीय नीतभार है। यह एक वेड्ज स्यंदक आधारित कैमरा है जिसमें हर 1.1 नं.मी. में 430-950 ने.मी. की तरंगदैर्घ्य रेन्ज के बीच पृथ्वी के पा वों (लिंब) के आस-पास पृथ्वी के ऊपरी वायुमण्डल में उत्सर्जित वायुदीप्ति नामक वायुमण्डलीय उत्सर्जन के प्रतिबिंबन के लिए 90X180 का दृश्य क्षेत्र है। इस संरूपण में, 80-600 कि.मी. के तुंगता क्षेत्र के पृथ्वी के पाव में LiVHySI द्वारा भौमिक वायुदीप्ति का प्रतिबिंब लिया जाता है। LiVHySI भौमिक वायुदीप्ति के प्रतिबिंब दोनों संरूपणों में लेगा, अर्थात् पृथ्वी के पा वों (लिंब) का समानांतर कक्षा तथा सामान्य कक्षा में दृश्यन। LiVHySI वि व में अपनी तरह का एक ही और अद्वितीय उपकरण है क्योंकि यह अत्यन्त उच्च स्पेक्ट्रमी विभेदन के दृशीय तथा निकट अवरक्त में सभी वायुमण्डलीय वायुदीप्ति उत्सर्जनों का एक साथ मापन करता है। इस बहु-स्पेक्ट्रमी सूचना के कारण प्राप्त प्रतिबिंब महत्वपूर्ण हो जाते हैं और पूर्व-संसाधन की आवश्यकता होती है।

लघु उपग्रह कार्यक्रम

एक्स-किरण ध्रुवीय मापी परीक्षण (पोलिक्स)

एक्स-किरण ध्रुवीयमापी परीक्षण (पोलिक्स) इसरो के "लघु उपग्रह कार्यक्रम" का भाग है जिसकी सिफारिश इसरो की अन्तरिक्ष विज्ञान सलाहकार समिति (एड्कॉस) ने की थी। थामसन् के एक्स-किरण के प्रकीर्णन के सिद्धान्त पर आधारित एक्स-किरण ध्रुवीयमापी का निर्माण रामण अनुसंधान संस्थान (आर.आर.आई.) में किया जा रहा है। फिलहाल, प्रयोगशालायी मॉडल का विकास और इंजीनियरी मॉडल का डिजाइन पूरा किया गया है। इंजीनियरी मॉडल का संविरचन प्रगति पर है।

वैज्ञानिक उद्देश्य

एक्स-किरण ध्रुवीयमापी उच्च् ऊर्जा खगोल भौतिकी का अछूता क्षेत्र है। कर्क नीहारिका ही एक मात्र एक्स-किरण स्रोत है जिसके लिए एक निश्चित् ध्रुवीकरण मापन विद्यमान् है। एक्स-किरण ध्रुवीकरण मापन निम्न के बारे में बहुमूल्य अन्तर्दृष्टि प्रदान कर सकता है:

- स्रोतों में चुंबकीय क्षेत्र का विस्तार एवं बल
- स्रोतों में रेखागणितीय विषमदैशिक
- दृष्टि की रेखा के संबंध में उनका रेखीकरण

▸ विकिरण एवं प्रकीर्णन में भाग लेनेवाले इलेक्ट्रॉनों को ऊर्जावान बनाने हेतु उत्तरदायी त्वरित्र की प्रकृति।

एस.ई.एन.एस.ई.

एस.ई.एन.एस.ई., पृथ्वी के निकट अन्तरिक्ष क्षेत्र के विद्युतचुंबकीय पर्यावरण को वेधने हेतु युगल उपग्रह मिशन है। अन्तरिक्ष मौसम संबंधी अध्ययनों हेतु लगभग 500 कि.मी. की निम्न भू कक्षा में दो लघु उपग्रहों को उच्च आनति (~80o) पर एक तथा निम्नतर आनति (~30o) पर अन्य को प्रमोचित करने का प्रस्ताव रखा गया है।

एस.ई.एन.एस.ई., इसरो की अन्तरिक्ष विज्ञान सलाहकार समिति (एड्कॉस) द्वारा संस्तुत "लघु उपग्रह कार्यक्रम" का भाग है। एस.ई.एन.एस.ई. का उद्देश्य, निम्न अक्षांशों में निकट अन्तरिक्ष पर्यावरण की आयनमण्डल-तापमण्डल प्रणाली तथा मौसम की स्थिति के निर्धारण में प्रमुख बृहत्-पैमाने के प्रेरकों द्वारा निभायी जाने वाली भूमिका को उजागर करना है। एक गैर-चुंबकीय ई.एम.आई./ई.एम.सी. जो अति निम्न आवृत्तियों (<50 कि.ह.) पर फैरेडे केज (पिंजरे) के रूप में अनुकूल सुरक्षा प्रदान करता है, को हाल ही में ई.जी.आर.एल. में तैनात किया गया है। इसमें प्रेरक चुंबकत्वमापियों के लिए अत्याधुनिक अंशांकन प्रणाली है। यह एक महत्वपूर्ण परिक्षणात्मक सुविधा है और भावी अन्तरिक्ष मिशनों की महत्वपूर्ण सम्पत्ति है और साथ ही, यह संस्थान में अन्तरिक्ष वाहित उपकरण के विकास के लिए निर्माण की जा रही अवसंरचना में बहुमूल्य वृद्धि है। एस.ई.एन.एस.ई. मिशन के लिए चयन किये गये विद्युत एवं चुंबकीय क्षेत्र प्रोब के इंजीनियरी मॉडलों की प्रयोगशाला में जाँच की जा चुकी है और उनकी आवृत्ति प्रतिक्रिया का अध्ययन किया गया है।

राष्ट्रीय अन्तरिक्ष विज्ञान संगोष्ठी (एन.एस.एस.एस.-2012)

17वीं राष्ट्रीय अन्तरिक्ष विज्ञान संगोष्ठी फरवरी 14-17, 2012 के दौरान श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति, आंध्रप्रदेश में आयोजित की गई। इस संगोष्ठी में समानान्तर सत्र, विशेष पूर्ण सत्र, अन्तर-विषयक व्याख्यान तथा एक लोकरुची के व्याख्यान शामिल थे। पाँच समानान्तर सत्र (पी.एस.) इस प्रकार हैं: अन्तरिक्ष आधारित मौसमविज्ञान, महासागर विज्ञान तथा भू मण्डल-जैवमण्डल अन्योन्यक्रिया; मध्य वायुमण्डल, युग्मन, गतिकी एवं जलवायु परिवर्तन; आयन मण्डल, चुंबकत्वमण्डल, तापमण्डल, अन्तरिक्ष मौसम तथा सूर्य-पृथ्वी संबंध; खगोलिकी एवं खगोल-भौतिकी और ग्रहीय प्रणाली सहित सौर मण्डल के पिण्ड। पूर्ण सत्र के विषय: खगोलिकी में उन्नति, मेघा-ट्रॉपिक्स तथा ध्रुवीय अनुसंधान रहे।

युवा वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों एवं अनुसंधान के विद्वानों को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से दो सर्वश्रेष्ठ मौखिक प्रस्तुतिकरण पुरस्कार एवं दो सर्वश्रेष्ठ पोस्टर प्रस्तुतिकरण पुरस्कार प्रत्येक समानान्तर सत्र को विशेष निर्णयकों के निर्णय पर दिये गये, जिसमें नकद पुरस्कार तथा एक प्रमाण-पत्र दिया गया।

39वीं कॉसपार वैज्ञानिक सभा (कॉसपार -2012)

अन्तरिक्ष अनुसंधान समिति (कॉसपार) एक अन्तर-विषयक वैज्ञानिक संगठन है, जिसका सरोकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अंतरिक्ष यानों, राकेटों तथा बलून के साथ आयोजित सभी प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान में वृद्धि करने और उसकी प्रगति करने से है। कॉसपार वैज्ञानिक सभा, विश्व के अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों की सबसे बडी सभा है। यह द्विवार्षिक होती है जो विश्व के भिन्न-भिन्न देशों में आयोजित की जाती है।

इस सभा में अन्तर-विषयक सत्र, पूर्ण सत्र तथा समानन्तर सत्र शामिल हैं। इस सभा में निम्न भी शामिल हैं - वैज्ञानिक परिणामों की प्रस्तुति के पोस्टर सत्र, भिन्न-भिन्न अन्तरिक्ष एजेन्सियों तथा कॉस्पार विद्यार्थी कार्यक्रम की अन्तरिक्ष प्रदर्शनी, जो अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष शिक्षा बोर्ड के सदस्यों द्वारा विकसित की गई और उसे उनका समर्थन प्राप्त था, वि वभर के अन्तरिक्ष उद्योग जगत, शैक्षणिक संस्थान एवं सरकारी निकायों के सदस्यों के बारे में जानना और उनसे मिलना।

39वीं कॉसपार वैज्ञानिक सभा (कॉसपार-2012) का 14-22 जुलाई 2012 के दौरान भारत के नारायण मूर्ति उत्कृष्टता केन्द्र, मैसूर में होना निर्धारित है। यह कॉस्पार सभा भारत में तीन दशकों के बाद आयोजित की जायेगी। इस सभा में भारत तथा विश्व के भिन्न-भिन्न देशों से 3000

से अधिक भागीदारों के भाग लेने की संभावना है। इस सभा के सफल आयोजन के लिए लॉक-कॉस्पार-2012 का गठन अध्यक्ष, इसरो तथा अध्यक्ष के रूप में प्रो.यू.आर.राव के साथ गठन किया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से ज्ञान तथा संसाधान की आदान-प्रदान करते हुए भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम ने एक नया सीमोल्लंघन कर लिया है। देश में अन्तरिक्ष कार्यक्रम, अन्तरिक्ष एजेन्सियों तथा अन्तरिक्ष से संबंधित निकायों के साथ द्विपक्षी तथा बहुपक्षीय समन्वयी संबंध बना रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के जरीए, इसरो, नए वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी चुनौतियों को लेने, अन्तरिक्ष नीतियों के शोधन तथा शान्तिपूर्ण उद्देश के लिए बाह्य अन्तरिक्ष के दोहन व उपयोगिता के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ढाँचे कार्य को पुनःभाषित करना जारी है। अन्तर्राष्ट्रीय फेयरिंग राष्ट्रों के बीच प्रौद्योगिकीय उन्नति के साथ तथा दूसरे लोगों में इसके प्रति जागरुकता, हाल ही में वि व में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का कार्यक्षेत्र बहुत ही विस्तृत तथा व्यापक बन गया है तथा इसरो ऐसे अवसरो का उपयोग करने के लिए तत्पर है।

मेघा-ट्रॉपिक्स

जलवायु तथा मौसम प्रणाली को समझने में सुधार हेतु, इसरो ने संयुक्त रूप से सीएनईएस के साथ कार्य किया तथा उपरोक्त के लिए एक विशिष्ट पर्यवेक्षणीय प्रणाली के रूप में कार्य करने हेतु मेघा-ट्रॉपिक्स उपग्रह का विकास किया। उपग्रह में जा रहे चार उपकरण में से, दो उपकरणों का विकास सीएनईएस द्वारा किया गया; सीएनईएस तथा इसरो द्वारा विकसित एक उपकरण का विकास किया गया है तथा एक उपकरण को इटली से खरीदा गया है। उपग्रहों के निर्माण तथा प्रमोचन के आलावा, इसरो उपग्रह का प्रचालन कर रहा है तथा निरंतर वैज्ञानिक यंत्रो से आँकडा अभिग्रहण कर रहा है। मेघा-ट्रॉपिक्स तथा अन्य समकालीन उपग्रहों के साथ प्राप्त आँकडे, अच्छे मौसम पूर्वानुमान केवल भारत के लिए ही नहीं बल्कि समूचे उष्णकटिबंधी क्षेत्र में स्थित राष्ट्र के लिए भी वर्तमान मौसम की भिन्नताओं में सुधार करने हेतु सहायक होगा। भारत तथा फ्रान्स के वैज्ञानिक समुदाय के अलावा, इस उपग्रह से ऑस्ट्रेलिया, ब्राजिल, इटली, जापान, कोरिया गणराज्य, नाइगेर, स्वीडन, यू.के. तथा यू.एस. अमरीका भी आँकडे की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेघाट्रॉपिक्स वैश्विक वर्षण मापन (जीपीएम) के लिए तारामंडल के आठ उपग्रहों में से एक उपग्रह होगा। यह उपग्रह, वैश्विक वैज्ञानिक समुदाय के लिए भारत तथा फ्रान्स का संयुक्त योगदान माना जाता है; जो समूचे वि व में मानवजाति के दैनिक जीवन तथा विशिष्ठ रूप से उष्णकटिबंधी क्षेत्र के रहन-सहन को प्रभावित करता है, के जलवायु तथा मौसम प्रणाली पर अनुसंधान चल रहा है। यूथसैट उपग्रहः वायुमंडलीय संघटक तथा अन्तरिक्ष मौसम के लिए, इसरो के केन्द्रों तथा रूस के मास्को राज्य विश्वविद्यालय के युवा वेज्ञानिकों ने संयुक्त रूप से यूथसैट नामक उपग्रह का विकास किया। यूथसैट इसरो एक तथा मास्को राज्य विश्वविद्यालय से दो वैज्ञानिक नीतभारों का वहन करता है। भारतीय नीतभारः (i) वायुमंडलीय संघटक के अध्ययन हेतु लिंब दृष्टिरत आति स्पेक्ट्रमि प्रतिबिंबित्र (एलआईवीएचवाईएसआई) तथा (ii) अन्तरिक्ष मौसम अध्ययन के लिए आयन मंडलीय स्थलाकृति (आरएबीआईटी)। सौर फ्लेयर क्रियाकलाप के अध्ययन के लिए सौर विकिरण प्रयोग (सोलराड) तथा एक्स किरण के प्रस्फोट, उर्जा इलेक्ट्रॉन, प्रोटान तथा वाई किरण संसूचन के लिए यह एक रूसी नीतभार है। वैधता/अंशांकन की समाप्ति के बाद, आँकडे को प्रयोक्ताओं को वितरित किया जाएगा। फ्रान्स के साथ संयुक्त रूप से निर्मित सरल तथा रूस के साथ संयुक्त रूप से निर्मित चन्द्रयान-2 के प्रमोचन हेतु इसरो इस समय तैयार हो रहा है।

सरल उपग्रह

मौसम ऑाकडा केन्द्रों (एआरजीओएस) तथा समुद्र सतह से आँकडा संग्रहण करने के लिए एक आँकडा संग्रहण मंच तथा समुद्र सतह तुंगतामापी (के ए-बैण्ड तुगतामापी) के अध्ययन हेतु रडारा तुंगतामापी का वहन करनेवाली एआरजीओएस तथा एएलटीआईकेए (सरल) के लिए सीएनईएस उपकरण के लिए तथा इसरो पीएसएलवी का प्रयोग करते मंच तथा प्रचालन के लिए उत्तरदायी है। 2012 में प्रमोचन के लिए दोनों एजेन्सी उपग्रह को तैयार करने में कार्यरत हैं। वैज्ञानिक समुदाय ने सरल से प्राप्त आँकडे के उपयोग में अपनी रूचि दिखाई है। पहले 82 परियोजनाएँ पहचानी गई हैं जिसमें फ्रान्स की 16 परियोजनाएँ तथा अन्य शहरों से 30 परियोजनाएँ शामिल हैं।

चन्द्रयान -2

भारत और रूस, एक संयुक्त मानव रहित चन्द्र मिशन चन्द्रयान-2 को आपसे में सहयोग दे रहे हैं। भारत, प्रमोचन, चन्द्र कक्ष मॉड्यूलर तथा रोवर के लिए जिम्मेदार है, जबकि रूस, चन्द्र लैंडर मॉड्यूल इस वर्ष महत्वपूर्ण प्रगति की हुई है, जहाँ दोनों पक्षों ने "कक्षित्र- लैंडर रोवर अन्तरापृष्ठ तथा मिशन प्रचालन" पर चर्चा की गई। कक्षित्र तथा रोवर पर भारतीय उपकरणों को अंतिम रूप दिया गया, कक्षित्र का प्राथमिक डिजाइन समीक्षा रोवर को पूरी की गई है। 2014 के दौरान, दोनों देश कक्षित्र, रोवर तथा उपकरणों की तैयारी में जुटे हैं। इसरो तथा केनेडियन अन्तरिक्ष एजेन्सी (सीएसए), दोनों पराबैंगनी प्रतिबिंबिन दूरबीन के विकास पर कार्यरत हैं, जिसे इसरो के बहु तरंगदैर्ध्य खगोलीय उपग्रह एस्ट्रोसेट पर भेजने की योजना है। विदेश मंत्रालय के माध्यम से इसरो इस समय (दक्षिण पूर्वी एशियन राष्ट्र संघ) के सचिवालय के साथ कार्य कर रहा है ताकि भारत-एशियन सहकारिता के सभी 10 राष्ट्रों को आपदा प्रबन्धन सहायता में भारतीय सुदूर संवेदन आँकडे उपलब्ध हों। इसरो, सार्क राष्ट्रों दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहकारिता संघ के साथ भी गंभीर तडित झांझा पूर्वानुमान की सहायता हेतु मौसम केन्द्रों के एक नेटवर्क की स्थापना के लिए कार्यरत है।

इसरो ने क्षेत्र के लाभ के लिए उपग्रह सुदूर संवेदन आँकडा तथा विशेषज्ञों की भागीदारी के ज़रीए एशिय-प्रशांत क्षेत्र (स्टार) कार्यक्रम के लिए उपग्रह प्रौद्योगिकी तथा सेन्टिल एशिया परियोजना सहित एशिया प्रशांत प्रादेशिक अन्तरिक्ष एजेन्सी फोरम (एपीआरएसएएफ) के क्रियाकलापों को योगदान जारी रखा। क्षमता निर्माण के क्षेत्र में, इसरो ने अपनी सुविधाओं, एशिया तथा प्रशांत क्षेत्र (सीएसएसटीईएपी) में अन्तरिक्ष विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी शिक्षण के लिए संयुक्त राष्ट्र (मून) द्वारा मान्यता प्राप्त केन्द्र के ज़रीए अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी के उपयोग में विशेषज्ञता तथा सेवाएँ जारी रहीं। उपलब्धियां

1962:– भारतीय राष्ट्रीय अन्तरिक्ष अनुसंधान समिति का गठन और थुम्बा भूमध्यरेखीय राकेट प्रमोचन केन्द्र (टर्ल्स) की स्थापना का कार्य शुरु।

1963:– टर्ल्स से प्रथम परिज्ञापी राकेट का प्रमोचन (नवम्बर 21, 1963)

1965:– थुम्बा में अन्तरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी केन्द्र (एस.एस.टी.सी.) की स्थापना।

1967:– अहमदाबाद में उपग्रह दूरसंचार भू-केन्द्र की स्थापना।

1968:– टर्ल्स, संयुक्त राष्ट्र संघ को समर्पित (फरवरी 2, 1968)।

1969:– भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) की स्थापना (अगस्त 15, 1969)।

1972:– अंन्तरिक्ष आयोग और अन्तरिक्ष विभाग की स्थापना। इसरो को अन्तरिक्ष विभाग के अन्तर्गत लाया गया। (जून 1, 1972)।

1972-76:– वायुयानित सुदूर संवेदन परीक्षणों का आयोजन।

1975:– इसरो का एक सरकारी संगठन के रूप में गठन (अप्रैल 1, 1975)। प्रथम भारतीय उपग्रह आर्यभट का प्रमोचन किया गया (अप्रैल 19, 1975)।

1975-76:– उपग्रह शैक्षिक दूरदर्शन परीक्षण (साइट) का आयोजन।

1977-79:– उपग्रह दूरसंचार परीक्षण परियोजना (स्टेप) आयोजित की गई।

1979:– भू-प्रेक्षण हेतु एक प्रायोगिक उपग्रह, भास्कर-1 का प्रमोचन (जून 7, 1979)। रोहिणी प्रौद्योगिकी नीतभार सहित एस.एल.वी.-3 की प्रथम प्रायोगिक उड़ान (अगस्त 10, 1979)। उपग्रह को कक्षा में स्थापित नहीं किया जा सका।

1980:– एस.एल.वी-3 की द्वितीय प्रायोगिक उड़ान। रोहिणी उपग्रह की कक्षा में सफलतापूर्वक स्थापना (जुलाई 18, 1980)।

1981:– एस.एल.वी.-3 की प्रथम विकासात्मक उड़ान। आर.एस-डी1 उपग्रह कक्षा में स्थापित (मई 31, 1981)। एक प्रायोगिक भू-स्थिर संचार उपग्रह, एप्पल को सफलतापूर्वक प्रमोचित किया गया (जून 19, 1981)। भास्कर-।। उपग्रह का प्रमोचन (नवम्बर 20, 1981)।

1982:– इन्सैट-1ए उपग्रह का प्रमोचन (अप्रैल 10, 1982)। सितम्बर 6, 1982 को इसे निष्क्रिय बना दिया गया।

1983:– एस.एल.वी.-3 की द्वितीय विकासात्मक उड़ान। आर.एस.-डी2 उपग्रह कक्षा में स्थापित (अप्रैल 17, 1983)। इन्सैट-1बी, उपग्रह का प्रमोचन (अगस्त 30, 1983)।

1984:– भारत-सोवियत मानवयुक्त अन्तरिक्ष मिशन (अप्रैल 1984)।

1987:– ए.एस.एल.वी. की श्रोस-1 उपग्रह सहित प्रथम विकासात्मक उड़ान (मार्च 24, 1987)। उपग्रह को कक्षा में स्थापित नहीं किया जा सका।

1988:– प्रथम प्रचालनात्मक भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रह, आई.आर.एस.1ए का प्रमोचन (मार्च 17, 1988)। ए.एस.एल.वी. की श्रोस-2 सहित द्वितीय विकासात्मक उड़ान (जुलाई 13, 1988)। उपग्रह को कक्षा में स्थापित नहीं किया जा सका। इन्सैट-1सी उपग्रह का प्रमोचन (जुलाई 22, 1988)। नवम्बर 1989 में उपग्रह को निष्क्रिय किया गया।

1990:– इन्सैट-1डी का प्रमोचन (जून 12, 1990)।

1991:– द्वितीय प्रचालनात्मक सुदूर संवेदन उपग्रह, आई.आर.एस-1बी का प्रमोचन (अगस्त 29, 1991)।

1992:– ए.एस.एल.वी. की श्रोस-सी सहित तृतीय विकासात्मक उड़ान (मई 20, 1992)। उपग्रह कक्षा में स्थापित। स्वदेशी रूप में निर्मित दूसरी पीढ़ी के इन्सैट श्रृंखला के प्रथम उपग्रह, इन्सैट-2ए का प्रमोचन (जुलाई 10, 1992)।

1993:– इन्सैट-2 श्रृंखला के द्वितीय उपग्रह, इन्सैट-2बी का प्रमोचन (जुलाई 23, 1993)। पी.एस.एल.वी का आई.आर.एस.-1ई सहित प्रथम विकासात्मक उड़ान (सितम्बर 20, 1993)। उपग्रह कक्षा में स्थापित नहीं किया जा सका।

1994:– ए.एस.एल.वी. की श्रोस-सी2 सहित चतुर्थ विकासात्मक उड़ान (मई 4, 1994)। उपग्रह कक्षा में स्थापित। पी.एस.एल.वी की आई.आर.एस.-पी2 सहित द्वितीय विकासात्मक उड़ान (अक्तूबर 15, 1994)। उपग्रह ध्रुवीय सूर्य-तुल्यकाली कक्षा में सफलतापूर्वक स्थापित।

1995:– इन्सैट-2 श्रृंखला के तृतीय उपग्रह, इन्सैट-2सी का प्रमोचन (दिसम्बर 7, 1995)। तृतीय प्रचालनात्मक भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रह आई.आर.एस.-1सी का प्रमोचन (दिसम्बर 28, 1995)।

1996:– पी.एस.एल.वी की आई.आर.एस.-पी3 सहित तृतीय विकासात्मक उड़ान (मार्च 21, 1996)। उपग्रह की ध्रुवीय सूर्यतुल्यकाली कक्षा में स्थापना।

1997:– इन्सैट श्रृंखला में चतुर्थ उपग्रह इन्सैट-2डी को प्रमोचित किया गया (जून 4, 1997)। यह अक्तूबर 4, 1997 को निष्क्रिय हो गया। (एक कक्षीय उपग्रह अरबसैट-1सी, जिसे बाद में इन्सैट-2डीटी कहा गया है, को इन्सैट प्रणाली के आंशिक संवर्धन के लिए नवम्बर 1997 में प्राप्त किया गया)। आई.आर.एस.-1डी सहित पी.एस.एल.वी. का प्रथम प्रचालनात्मक प्रमोचन (सितम्बर 29, 1997)। उपग्रह कक्षा में स्थापित।

1998:– अरबसैट से प्राप्त किये गये इन्सैट-2डीटी की तैयारी के साथ इन्सैट प्रणाली की क्षमता का विस्तार किया गया (जनवरी, 1998)।

1999:– इन्सैट-2 श्रृंखला में अंतिम, बहुउद्देशीय उपग्रह, इन्सैट-2ई, को एरियाने द्वारा कौरू, फ्रेंच गियाना से प्रमोचित किया गया (अप्रैल 3, 1999)। ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचक राकेट (पी.एस.एल.वी.-सी2) द्वारा भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रह, आई.आर.एस.-पी4 (ओशनसैट-1) को कोरिया के किटसैट-3 उपग्रह तथा जर्मनी के डी.एल.आर.-टबसैट के साथ श्रीहरिकोटा से प्रमोचित किया गया (मई 26, 1999)।

2000:– इन्सैट-3बी, इन्सैट-3 श्रृंखला की तीसरी पीढ़ी के प्रथम उपग्रह को एरियाने द्वारा कौरू, फ्रेंच गियाना से प्रमोचित किया गया (मार्च 22, 2000)।

2001:– जीसैट-1 प्रयोगात्मक उपग्रह के साथ भूतुल्यकाली उपग्रह प्रमोचक राकेट (जी.एस.एल.वी) की सफल जाँच उड़ान (अप्रैल 18, 2001)। भारत के टी.ई.एस., बेल्जियम के प्रोबा और जर्मनी के बर्ड-तीनों उपग्रहों को ध्रुवीय सूर्य-तुल्यकाली कक्षा में स्थापित करते हुए पी.एस.एल.वी.-सी3 का सफल प्रमोचन (अक्तूबर 22, 2001)।

2002:– एरियाने द्वारा इन्सैट-3सी का कौरू, फ्रेंच गियाना से सफलतापूर्वक प्रमोचन (जनवरी 24, 2002)। एस.डी.एस.सी., शार से इसरो के पी.एस.एल.वी. द्वारा कल्पना-1 का सफलतापूर्वक प्रमोचन (सितम्बर 12, 2002)।

2003:– कौरु, फ्रेंच गियाना से एरियाने द्वारा इन्सैट-3ए का सफल प्रमोचन (अप्रैल 10, 2003)। एस.डी.एस.सी., शार से जीसैट-2 सहित जी.एस.एल.वी. की दूसरी विकासात्मक जाँच उड़ान (जी.एस.एल.वी.-डी2) का सफल प्रमोचन (मई 8, 2003)। एरियाने द्वारा कौरु फ्रेंच गियाना से इन्सैट-3ई का सफल प्रमोचन (सितम्बर 28, 2003)। एस.डी.एस.सी., शार से इसरो के पी.एस.एल.वी.-सी5 द्वारा रिसोर्ससैट-1 का सफल प्रमोचन (अक्तूबर 17, 2003)।

2004:– एस.डी.एस.सी. शार से जी.एस.एल.वी. (जी.एस.एल.वी.-एफ 01) की सफल प्रथम प्रचालनात्मक उड़ान। एडुसैट जी.टी.ओ. में स्थापित (सितम्बर 20, 2004)।

2005:– एस.डी.एस.सी. शार में हाल ही में स्थापित द्वितीय प्रमोचन पैड से पी.एस.एल.वी.-सी6 द्वारा कार्टोसैट-1 एवं हैमसैट का सफल प्रमोचन (मई 5, 2005)। कौरू, फ्रेंच गियाना से एरियाने द्वारा इन्सैट-4ए का सफल प्रमोचन (दिसम्बर 22, 2005)।

2006:– एस.डी.एस.सी शार से इन्सैट-4सी के साथ जी.एस.एल.वी (जी.एस.एल.वी.-एफ 02) की द्वितीय प्रचालनात्मक उड़ान (जुलाई 10, 2006)। उपग्रह को कक्षा में स्थापित नहीं किया जा सका।

2007:– पी.एस.एल.वी.-सी7 द्वारा चार उपग्रहों का सफलतापूर्वक प्रमोचन - भारत के कार्टोसैट-2 और अन्तरिक्ष कैप्सूल पुनःप्राप्ति परीक्षण (एस.आर.ई.-1) तथा इण्डोनेशिया का लापान टबसैट और अर्जेन्टीना का फायिनसैट-1 (जनवरी 10, 2007)। एस.आर.ई.-1 को, पृथ्वी के वायुमण्डल में पुनः प्रवेश करने और श्रीहरिकोटा के लगभग 140 कि.मी. पूर्व में बंगाल की खाडी में उतरने हेतु युक्तिचालित करने के बाद उसकी सफलतापूर्वक पुनःप्राप्ति (जनवरी 22, 2007)। मार्च 12, 2007 को कौरू, फ्रेंच गियाना से एरियाने प्रमोचक राकेट द्वारा इन्सैट-4बी का सफल प्रमोचन। एन्ट्रिक्स कार्पोरेशन के साथ एक वाणिज्यिक ठेके के तहत अप्रैल 23, 2007 को पी.एस.एल.वी-सी8 द्वारा सफलतापूर्वक एजिले उपग्रह का प्रमोचन।

सितम्बर 2, 2007 को एस.डी.एस.सी.-शार से इन्सैट-4सी.आर के साथ जी.एस.एल.वी. (जी.एस.एल.वी.-एफ04) का सफल प्रमोचन।

2008:– एन्ट्रिक्स कार्पोरेशन के साथ वाणिज्यिक ठेके के तहत जनवरी 21, 2008 को पी.एस.एल.वी.-सी10 द्वारा टेक्सार उपग्रह का सफलतापूर्वक प्रमोचन।

एन्ट्रिक्स कार्पोरेशन के साथ वाणिज्यिक ठेके के तहत, अप्रैल 28, 2008 को पी.एस.एल.वी.-सी9 द्वारा दस उपग्रहों का सफलतापूर्वक प्रमोचन - भारत का कार्टोसैट-2ए, भारतीय लघु उपग्रह-1 (आई.एम.एस.-1) और अन्तर्राष्ट्रीय ग्राहकों के लिए आठ नैनो उपग्रह। अक्तूबर 22, 2008 को पी.एस.एल.वी.-सी11 द्वारा चन्द्रयान-1 का उपग्रह सफलतापूर्वक प्रमोचन। दिसम्बर 21, 2008 को यूरोपीय एरियाने-5 प्रमोचक राकेट द्वारा वाणिज्यिक आधार पर एन्ट्रिक्स/इसरो और ई.ए.डी.एस. एस्ट्रियम द्वारा निर्मित डब्ल्यू.2एम उपग्रह का सफलतापूर्वक प्रमोचन।

2009:– अप्रैल 20, 2009 को पी.एस.एल.वी.-सी12 द्वारा रिसैट-2 व अनुसैट का सफलतापूर्वक प्रमोचन।

एन्ट्रिक्स कार्पोरेशन के साथ वाणिज्यिक ठेके के तहत (सितम्बर 23, 2009) पी.एस.एल.वी.-सी14 द्वारा ओशनसैट-2 व छः नैनो उपग्रहों का सफलतापूर्वक प्रमोचन।

2010:– स्वदेशी क्रायोजनिक ऊपरीचरण सहित जी.एस.एल.वी.-मार्क II (जी.एस.एल.वी.-डी3) का प्रथम प्रमोचन,जी.एस.एल.वी.-डी3 द्वारा वहन किए जाने वाले जीसैट-4 को कक्षा में स्थापित नहीं किया जा सका (अप्रैल 15, 2010) जुलाई 12, 2010 को पी.एस.एल.वी. के सत्रहवें

प्रमोचन से (पी.एस.एल.वी.-सी15) भारत में कार्टोसैट-2बी तथा स्टुडसैट, अल्जीरिया अलसैट-2बी, कनाडा का एन.एल.एस.-1 तथा एन.एल.एस.-2 का सफलतपूर्वक प्रमोचित किया गया।

नवम्बर 27, 2010 को यूरोपीयन एरियाने-5 प्रमोचक राकेट द्वारा वाणिज्यिक आधार पर एन्ट्रिक्स/इसरो और ई.ए.डी.एस. एन्ट्रिक्स द्वारा निर्मित हैलास उपग्रह का सफलतापूर्वक प्रमोचन। जीसैट-5पी उपग्रह सहित जी.एस.एल.वी. के सातवें प्रमोचन द्वारा उपग्रह को कक्षा में स्थापित नहीं किया जा सका। (दिसम्बर 25, 2010)

2011:– फरवरी 20, 2011 को पी.एस.एल.वी. के आठारहवें प्रमोचन (पी.एस.एल.वी.-सी16) द्वारा भारत के रिसोर्ससैट-2, यूथसैट और सिंगापुर तकनीकी विश्वविद्यालय के एक्स-सैट का सफलतापूर्वक प्रमोचन किया गया। मई 21, 2011 को कौरू, फ्रेंच गियना से एरियाने प्रमोचित्र द्वारा जीसैट-8 संचार उपग्रह प्रमोचित। जुलाई 15, 2011 को पी.एस.एल.वी.-सी17 ने अपनी लगातार अठारहवीं सफल उड़ान में जीसैट-12 संचार उपग्रह का प्रमोचन किया। सितम्बर 4, 2011 को जी.एस.एल.वी. मार्क III में उपयोग किये जाने वाले एस.200 बूस्टर की द्वितीय सफल स्थैतिक जाँच। अक्तूबर 12, 2011 को पी.एस.एल.वी.-सी18 द्वारा मेघा-ट्रॉपिक्स और तीन सह पैसेंजर उपग्रहों - आई.आई.टी., कानपुर का जुगनू, एस.आर.एम. विश्वविद्यालय, चेन्नई का एस.आर.एम. सैट और लक्समबर्ग के वेसेलसैट-1 का प्रमोचन किया गया।

परिवर्णी शब्द

ए.ए.आर.एस.	:	एशियाई सुदूर संवेदन संघ
AARS	:	Asian Association for Remote Sensing
एडकॉस	:	अन्तरिक्ष विज्ञान की सलाहकार समिति (इसरो द्वारा गठित)
ADCOS	:	Advisory Committee on Space Sciences (constituted by ISRO)
ए.ई.आर.बी.	:	परमाणु ऊर्जा नियामक बोर्ड
AERB	:	Atomic Energy Regulatory Board
ए.एफ.टी.एन.	:	वैमानिकीय स्थायी दूरसंचार नेटवर्क
AFTN	:	Aeronautical Fixed Telecommun-ication Network
ए.जी.एन.	:	सक्रिय मंदाकिनीय केन्द्रक
AGN	:	Active Galactic Nuclear
ए.आई.बी.बी.	:	त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम
AIBP	:	Accelerated Irrigation Benefit Programme
ए.एम.वी.	:	वायुमण्डलीय गति वेक्टर
AMV	:	Atmospheric Motion Vector
ए.एल.टी.आई.के.ए.	:	के.बैण्ड में तुंगतामापी
ALTIKA	:	Altimeter in Ka band
ए.एम.सी.	:	उन्नत मिशन कम्प्यूटर
AMC	:	Advanced Mission Computer
ए.ओ.सी.एस.	:	अभिवृत्ति और कक्षा नियंत्रण प्रणाली
AOCS	:	Attitude and Orbit Control System
ए.ओ.डी.	:	एयरसोल प्रकाशिकी गहनता
AOD	:	Aerosol Optical Depth

ए.पी.ई.पी.	:	अमोनियम परक्लोरेट प्रायोगिक संयंत्र
APEP	:	Ammonium Perchlorate Experim-ental Plant
ए.पी.पी.एल.ई.	:	एरियाने नीतभार पैसेंजर परीक्षण
APPLE	:	Ariane Passenger Payload Experiment
ए.पी.आई.ओ.	:	सहायक लोक सूचना अधिकारी
APIO	:	Assistant Public Information Officer
ए.एस.एल.वी.	:	संवर्धित उपग्रह प्रमोचन यान
ASLV	:	Augmented Satellite Launch Vehicle
ए.एस.आई.सी.	:	उपयोग विशिष्ट समेकित परिपथ
ASIC	:	Application Specific Integrated Circuit
ए.टी.एस.	:	उन्नत दूरमिति प्रणाली
ATS	:	Advanced Telemetry System
एवाईफ्स	:	उन्नत वाईड फील्ड संवेदक
AWiFS	:	Advanced Wide Field Sensor
बी.बी.एम.बी.	:	भाकरा बीईएएस प्रबंधन बोर्ड
BBMB	:	Bhakra Beas Management Board
सी.ए.टी.वी.ए.सी.	:	समेकित समुच्चय तथा जाँच निर्वात चेम्बर
CATVAC	:	Comprehensive Assembly and Test Vacuum Chamber
सी.ए.डब्ल्यू.एस.ई.एस.	:	सूर्य-भूमि प्रणाली का जलवायु और मौसम
CAWSES	:	Climate and Weather of Sun-Earth System
सी.एफ.आर.पी.	:	कार्बन फाइबर प्रबलित प्लास्टिक
CFRP	:	Carbon Fibre Reinforced Plastic
सी.एन.टी.	:	कार्बन लघु ट्यूब
CNT	:	Carbon Nano Tube
कोसपार	:	अन्तरिक्ष अनुसंधान समिति
COSPAR	:	Committee on Space Research
सी.आर.एस. मोड	:	स्थूल विभेदन क्रमवीक्षण एस.ए.आर. मोड
CRS mode	:	Coarse Resolution ScanSAR mode
सी.यू.एस.पी.	:	क्रायोजेनिक ऊपरी चरण परियोजना
CUSP	:	Cryogenic Upper Stage Project
सी.डब्ल्यू.डी.एस.	:	चक्रवात चेतावनी प्रसार प्रणाली
CWDS	:	Cyclone Warning Dissemination System
सी.जेड.टी.	:	कैडमियम-ज़िंक-टल्यूराइड
CZT	:	Cadmium-Zinc-Telluride
डी.डी.डब्ल्यू.एस.	:	अंकीय आपदा चेतावनी प्रणाली
DDWS	:	Digital Disaster Warning System

डेकू	: विकास तथा शैक्षिक संचार यूनिट
DECU	: Development and Educational Communication Unit
डी.एम.एस.ए.आर.	: आपदा प्रबंधन संश्लेषी द्वारक राडार
DMSAR	: Disaster Management Synthetic Aperture Radar
डी.डब्ल्यू.आर.	: डाप्लर मौसम राडार
DWR	: Doppler Weather Radars
ई.बी.डब्ल्यू.	: इलेक्ट्रों बीम वेल्डिंग
EBW	: Electro Beam Welding
ई.ई.डी.	: इलेक्ट्रो अन्वेषक उपकरण
EED	: Electro Explosive Device
एफ.ए.एस.ए.एल.	: अन्तरिक्ष कृषि मौसमविज्ञान तथा भूमिआधारित पर्यवेक्षणों का उपयोग करते हुए कृषि पैदावार का पूर्वानुमान
FASAL	: Forecasting Agricultural output using Space Agro-meteorology and Land-based observations
जी.ए.जी.ए.एन.	: जीपीएस अनुदानित तथा जीईओ संवर्धित नौसंचालन
GAGAN	: GPS Aided Geo Augmented Navigation
जी.ई.ओ.एस.ए.आर.	: भूस्थिर भू कक्षा खोज एवं बचाव
GEOSAR	: Geostationary Earth Orbit Search And Rescue
एच.ई.एक्स.	: उच्च शक्ति एक्स-किरण स्पेक्ट्रममापी
HEX	: High Energy X-Ray Spectrometer
आई.एम.एस-1	: भारतीय लघु उपग्रह-1
IMS-1	: Indian Mini Satellite-1
आई.एम.डी.पी.एस.	: इन्सैट मौसमविज्ञानीय आँकड़ा संसाधन प्रणाली
IMDPS	: INSAT Meteorological Data Processing System
इनकोइस	: भारतीय राष्ट्रीय महासागर सूचना सेवा केन्द्र
INCOIS	: Indian National Centre for Ocean Information Services
एल.ए.एक्स.पी.सी.	: बृहत् क्षेत्र के एक्स-किरण अनुपातिक काऊन्टर
LAXPC	: Large Area X-ray Proportional Counters
लियोस	: विद्युत प्रकाशिकी तंत्र प्रयोगशाला
LEOS	: Laboratory for Electro Optic Systems
लिडार	: प्रकाश संसूचन एवं रेंजिंग
LIDAR	: Light Detection and Ranging
एल.एच2	: द्रव हाइड्रोजन
LH2	: Liquid Hydrogen
एल.ओ.एक्स.	: द्रव ऑक्सीजन
LOX	: Liquid Oxygen
एम3	: चन्द्र खनिज विज्ञान मानचित्रिक
M3	: Moon Mineralogy Mapper

एम.ए.डी.आर.ए.एस.	:	सूक्ष्म तरंग विश्लेषण तथा वर्षा और वायुमण्डलीय संरचनाओं का संसूचन
MADRAS	:	Microwave Analysis and Detection of Rain and Atmospheric Structures
एम.एस.एम.आर.	:	बहु-आवृत्ति क्रमवीक्षण सूक्ष्मतरंग रेडियोमीटर
MSMR	:	Multifrequency Scanning Micro-wave Radiometer
एम.एस.एस.	:	मोबाइल उपग्रह सेवा
MSS	:	Mobile Satellite Service
एन.ए.एल.	:	राष्ट्रीय अंतरिक्ष प्रयोगशाला
NAL	:	Nationla Aerospace Laboratory
एन.ए.आर.एल.	:	राष्ट्रीय वायुमण्डलीय अनुसंधान प्रयोगशाला
NARL	:	National Atmospheric Research Laboratory
एन.एच.एन.	:	निकेल हाइड्रोजिन नाइट्रेट
NHN	:	Nickel Hydrazine Nitrate
एन.पी.आर.आर.आर.	:	कृषि संबंधित जल निकाय के मरम्मत, नवीकरण तथा पुर्नस्थापना की राष्ट्रीय परियोजना
NPRRR	:	National Project for Repair, Renovation & Restoration of Water bodies directly linked to Agriculture
ओ.सी.एम.	:	समुद्री कलर मानीटर
OCM	:	Ocean Colour Monitor
पैन	:	पेन्क्रोमेटिक कैमरा (आई.आर.एस. का)
PAN	:	Panchromatic Camera (of IRS)
राडम	:	विकिरण डोस मानीटर
RADOM	:	Radiation Dose Monitor
आर.ओ.एस.	:	रेडियो उपगूहन प्रणाली
ROS	:	Radio Occultation System
आर.एस.आर.एम.	:	पुर्नउपयोगी ठोस राकेट मोटर
RSRM	:	Reusable Solid Rocket Motor
सरल (SARAL)	:	एरगोस एवं आल्टिका सहित उपग्रह (Satellite with ARgos and ALtika)
एस.बी.ए.एस. (SBAS)	:	उपग्रह आधारित संवर्धन प्रणाली (Satellite Based Augmentation System)
स्क्रैमजैट (SCRAMJET)	:	पराध्वानिक दहन रामजेट (Supersonic Combustion Ramjet)
टी.एम.सी. (TMC)	:	भू भाग मानचित्रण त्रिविम कैमरा (Terrain Mapping stereo Camera)
टी.डब्ल्यू.टी.ए. (TWTA)	:	प्रगामी तरंग ट्यूब प्रवर्धक (Travelling Wave Tube Amplifier)
यू.वी.आई.टी. (UVIT)	:	पराबैंगनी प्रतिबिंबन दूरबीन (Ultraviolet Imaging Telescope)
वी.एल.पी.टी. VLPT	:	अत्यंत निम्न पावर ट्रान्समीटर (Very Low Power Transmitter)
वी.पी.एन. VPN	:	आभासी प्राइवेट नेटवर्क (Virtual Private Network)
डब्ल्यू.आर.आई.एस. (WRIS)	:	जल संसाधन सूचना प्रणाली Water Resource Information System
डब्ल्यू.वी.डब्ल्यू. (WVW)	:	जल वाष्प पवन (Water Vapor Wind)

3. जैव प्रौद्योगिकी (Bio Technology)

राष्ट्रीय जैव प्रौद्योगिकी विकास रणनीति (National Biotech Development Strategy)

जिस गति से भारत में जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास के लिए कार्य किए जा रहे हैं तथा जिस प्रकार भारत ने इस दिशा में प्रगति की है, उसके आलोक में एक ऐसी विकासोन्मुखी रणनीति की आवश्यकता है जो न केवल समन्वित हो बल्कि शिक्षा और सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता में ही योगदान दे सके। एक और बात जो महत्वपूर्ण है वह यह है कि विगत दशकों में जैव प्रौद्योगिकी की पहचान तीव्र विकास के लिए उत्तरदायी प्रौद्योगिकी के रूप में की गई है। यह सही है कि जैव प्रौद्योगिकी स्वास्थ्य तथा पोषण और सतत पर्यावरणीय विकास के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी है। जीव विज्ञान तथा चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्रों में तेजी से हो रहे विकास ने जैव प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहित किया है। जहां तक भारत में इस प्रौद्योगिकी के विकास का प्रश्न है, भारतीय जैव प्रौद्योगिकी को विश्व स्तर पर पहचान मिल गई है, इस कारण इस क्षेत्र में निवेश की संभावनाएं भी बढ़ गई हैं। इसी पृष्ठभूमि में भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय जैव प्रौद्योगिकी विकास रणनीति का प्रस्ताव किया गया है। इस रणनीति के तहत यह माना गया है कि भारत जैसे विकासशील देश के लिए जैव प्रौद्योगिकी कृषि, स्वास्थ्य, औद्योगिक प्रसंस्करण तथा सतत पर्यावरण विकास की दृष्टि से क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती है। दूसरी ओर, भारत के लिए यह प्रौद्योगिकी इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसके माध्यम से रोजगार सृजन, उद्यमशीलता के विकास की संभावनाओं में वृद्धि, बौद्धिक संपदा का विस्तार तथा औद्योगिक उत्पादन की दर में वृद्धि की जा सकती है।

रणनीति में यह कहा गया है कि भारत में 2010 तक जैव प्रौद्योगिकी व्यवसाय के 5 अरब डालर का हो जाने की आशा है। साथ ही, इस क्षेत्र में लगभग 10 लाख रोजगार के अवसरों का सृजन भी किया जा सकेगा। वस्तुत: जैव प्रौद्योगिकी से दवाओं के निर्माण का बाजार भी लगभग 2 अरब डालर का हो जाएगा।

रणनीति में यह भी उल्लेख है कि भारत की पहचान एक ऐसे देश के रूप में की गई है जहां जैव विविधता की प्रचुरता है। ऐसी स्थिति में देश में उपलब्ध जैव संसाधनों को आर्थिक परिसंपत्तियों में रूपांतरित करने के लिए जैव प्रौद्योगिकी का व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जा सकता है।

तेजी से बढ़ती हुई मानव तथा पशुधन जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कृषि उत्पादन में विविधता तथा वृद्धि अनिवार्य है। साथ ही, प्रति व्यक्ति भूमि तथा जल संसाधनों में होने वाली कमी भी एक बड़ी चुनौती है।

रणनीति में कहा गया है कि जैव प्रौद्योगिकी देश में लगभग 110 मिलियन कृषक परिवारों को जीविका सुरक्षा प्रदान करने में पूरी तरह सक्षम है। औद्योगिक क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका के विस्तार के लिए एक ओर जहां निवेश तथा अवसंरचनात्मक सुविधाओं की पर्याप्तता अनिवार्य है, वहीं दूसरी ओर, इस प्रौद्योगिकी से निर्मित उत्पादों की कम कीमत पर उपलब्धता भी अनिवार्य है। इस पृष्ठभूमि में ऐसी नीतियों का निर्धारण अपेक्षित है जो नवाचारों तथा प्रौद्योगिकी प्रसार के बीच संतुलन बना सकें। इसी प्रकार, देश में कई सामाजिक चुनौतियां भी विद्यमान हैं जिनका सामना तभी किया जा सकता है जब उपलब्ध जैव संसाधनों का अनुकूलतम अनुप्रयोग हो तथा उन्हें संरक्षित भी किया जा सके।

रणनीति के प्रमुख तथ्य

1. सरकार तथा उद्योग के बीच साझेदारी।
2. जैव प्रौद्योगिकी पार्कों की स्थापना।
3. मानव संसाधन विकास तथा शैक्षणिक संस्थान- उद्योग अन्तरापृष्ठ (Interface) का निर्माण।
4. कृषि तथा खाद्य, औद्योगिक, चिकित्सकीय जैव प्रौद्योगिकी, जैव अभियांत्रिकी, नैनो-जैव प्रौद्योगिकी, जैव तकनीक, अनुसंधान सेवाओं का विस्तार तथा जैव संसाधनों के संरक्षण तकनीक का विकास एवं प्रसार।
5. एक राष्ट्रीय कार्य बल का गठन ताकि जैव विज्ञान के क्षेत्र में स्नातक तथा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम का निरूपण किया जा सके।
6. विश्वविद्यालय प्रणाली में जीव विज्ञान तथा जैव प्रौद्योगिकी से संबंधित अनुसंधान और विकास को उच्च प्राथमिकता।
7. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की अवसंरचनाओं का निर्माण।
8. विश्वविद्यालयों तथा औद्योगिक इकाइयों के एक नेटवर्क का निर्माण ताकि संसाधनों का सही उपयोग संभव हो सके। इस नेटवर्क को बायो-एजु-ग्रिड (Bio-edu-grid) की संज्ञा दी गई है।
9. अनुबंध अनुसंधान संगठन (Contract Research Organisation), अनुबंध विनिर्माण संगठन (Contract Manufacturing Organisation) जैसी संकल्पनाओं का तेजी से विकास।
10. उत्पादों की सुरक्षा तथा विद्यमान मानकों का सुदृढ़ीकरण।
11. प्रभावशाली नियमों तथा विनियमों का निर्धारण।
12. जैविक उत्पादों के आयात-निर्यात को तार्किक बनाने का प्रयास।
13. एक राष्ट्रीय जैव प्रौद्योगिकी विनियामक प्राधिकरण का गठन।
14. जैव प्रौद्योगिकी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका सुनिश्चित करने का प्रयास।

राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तावित रणनीति में अनुसंधान संस्थानों, शिक्षण संस्थानों, नागरिक समाज के संगठनों तथा औद्योगिक इकाइयों के समेकन को प्राथमिकता दी गई है। इसका उद्देश्य जैव प्रौद्योगिकी का व्यावसायीकरण तथा भारतीय तकनीकों का वैश्विक विस्तार करना है।

भारत में जैव प्रौद्योगिकी (Biotechnology in India)

राष्ट्र विकास के संदर्भ में भारत जैसे विकासशील देश में यह अत्यन्त आवश्यक है कि जैव प्रौद्योगिकी जैसी प्रौद्योगिकियों का अधिकाधिक उपयोग किया जाये। इस क्रम में वर्ष 1982 में राष्ट्रीय जैव प्रौद्योगिकी बोर्ड (National Biotechnology Board, NBB) का गठन किया गया था। लेकिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय के अधीन जैव प्रौद्योगिकी विभाग ने वर्ष 1986 से कार्य करना आरंभ किया था। विभाग के उद्देश्यों में निम्नांकित अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं:

1. जैव प्रौद्योगिकी से संबंधित सभी कार्यक्रमों का आयोजन, संचालन तथा समेकन।
2. जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अवसंरचनाओं का निर्माण और विकास।
3. जैव प्रौद्योगिकी से संबद्ध सभी कार्यक्रमों की निरंतरता बनाये रखने के लिए दक्षता उन्नयन को प्रोत्साहन।
4. सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए नई तकनीकों का प्रयोग।
5. फसल संवर्द्धन के लिए विशेष कार्यक्रमों का निरूपण।

इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपनी स्थापना के उपरांत विभाग एक वैज्ञानिक सलाहकार परिषद् (Scientific Advisory Council) तथा एक स्थाई सलाहकार परिषद् (Standing Advisory Council) के सहयोग से कार्य करता है। विभाग द्वारा जन्तु-जैव प्रौद्योगिकी,

जैवरासायनिक अभियांत्रिकी, जैवसूचना विज्ञान, औद्योगिक जैव प्रौद्योगिकी, आण्विक जैव प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों के विकास के लिए एक कार्य बल का गठन भी किया गया है। इसके अतिरिक्त, विभाग द्वारा इन क्षेत्रों में मानव संसाधन विकास को भी प्रोत्साहित किया जाता है। इसी क्रम में कई राष्ट्र-स्तरीय संस्थानों की स्थापना भी गई है।

आनुवांशिकी और जैव प्रौद्योगिकी (Genetics & Biotechnology)

जीन आनुवांशिकता की आधारिक इकाई है जो नाभिकीय अम्लों का एक अनुक्रम है तथा इसके द्वारा आवश्यक सूचनाओं का हस्तांतरण किया जाता है। सामान्यत: एक जीन में स्थायित्व होता है लेकिन इसमें प्राकृतिक अथवा कृत्रिम रूप से परिवर्तन लाये जा सकते हैं। जिस नाभिक अम्ल के एक भाग को जीन की संज्ञा दी गई है उसे डीऑक्सीराइबो न्यूक्लिक एसिड अथवा डी.एन.ए. (Deoxyribonucleic Acid, DNA) कहते हैं। डी.एन.ए. रासायनिक रूप से न्यूक्लियोटाइड का ही बहुलक (Polymer) है। वर्ष 1953 में वाटसन तथा क्रिक (Watson and Crick) ने डी.एन.ए. की द्विकुंडलनी (Double helical) संरचना की व्याख्या की थी।

डी.एन.ए. की संरचना (Structure of DNA)

डी.एन.ए. की द्विकुंडलनी संरचना की व्याख्या एक्स-रे डिफ्रैक्सन विधि (X-ray Diffraction Method) के आधार पर की गई है। इसके दोनों रज्जुओं को सामूहिक रूप से बैक बोन (Back bone) कहते हैं। ये दोनों रज्जु एक दूसरे से पार्श्व कड़ियों (Side chains) द्वारा जुड़े होते हैं। इन कड़ियों का निर्माण हाइड्रोजन बंधों (Hydrogen Bonds) द्वारा होता है। बैकबोन का निर्माण शर्करा (कार्बन के पांच परमाणु वाला डीऑक्सीराइबोज) तथा फॉस्फेट से जबकि पार्श्व कड़ियों का निर्माण नाइट्रोजन के क्षारों से होता है। प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड में दो प्रकार के नाइट्रोजन के क्षार उपस्थित होते हैं- दो प्यूरीन तथा दो पाइरीमिडीन। एडिनीन और गुआनीन प्यूरीन तथा साइटोसीन और थायमीन पाइरीमिडीन के उदाहरण हैं। उल्लेखनीय है कि आर.एन.ए. में थायमीन के स्थान पर यूरासिल नामक क्षार उपस्थित होता है।

डी.एन.ए. के रज्जुओं का कुडलनीकरण दाहिने हाथ की दिशा में होता है। इस द्वि कुंडलनी संरचना का औसत व्यास 20 एंगस्ट्रम होता है। प्रत्येक 34 एंगस्ट्रम की दूरी पर इस संरचना में एक मोड़ होता है तथा प्रत्येक मोड़ तक न्यूक्लियोटाइडों की संख्या दस होती है। दूसरे शब्दों में, नाइट्रोजन के क्षार 3.4 एंगस्ट्रम की दूरी पर अवस्थित होते हैं।

आनुवांशिक अभियांत्रिकी (Genetic Engineering)

कृत्रिम रूप से किसी जीव की आनुवांशिक संरचना में उपस्थित जीनों में किये जाने वाले किसी भी प्रकार के परिवर्तन को आनुवांशिक अभियांत्रिकी कहते हैं। ऐसी अभियांत्रिकी का उद्देश्य जीन संरचना में इच्छानुसार परिवर्तन करना है। इस तकनीक का उपयोग कई क्षेत्रों में किया जाता है जिनमें हारमोन एवं एन्जाइम संश्लेषण, इन्टरफेरॉन का निर्माण तथा रोगों के उपचार के तरीकों का विकास महत्वपूर्ण हैं। इसे कई अवसरों पर डी.एन.ए. पुनर्संयोजी तकनीक (Recombinant DNA Technology) भी कहा गया है।

सूक्ष्म जीवों, पौधों अथवा जन्तुओं की कोशिकाओं से डी.एन.ए. का पृथकीकरण किया जाता है। इसके उपरांत, उसमें उपस्थित नाइट्रोजन के क्षारों के अनुक्रम में परिवर्तन कर उसे किसी जीव की कोशिका में प्रवेश कराया जाता है तथा जीव की प्रतिक्रिया के आधार पर अध्ययन किया जाता है।

आनुवांशिक अभियांत्रिकी के अनुप्रयोग (Applications of Genetic Engineering)

जैसा कि हम जानते हैं, आनुवांशिक अभियांत्रिकी को डी.एन.ए. पुनर्संयोजी तकनीक भी कहा जाता है। यह किसी जीव की आनुवांशिक संरचना में किसी भी प्रकार कृत्रिम परिवर्तन की तकनीक है। कई अवसरों पर जीन अथवा आनुवांशिक अभियांत्रिकी को जैव प्रौद्योगिकी का पर्याय भी कहा जाता है। हाल के वर्षों में आनुवांशिक अभियांत्रिकी के अनुप्रयोगों का व्यापक विस्तार हुआ है। व्यावसायिक दृष्टि से इसका अनुप्रयोग चिकित्सा, कृषि तथा उद्योग में किया जा रहा है। इस तकनीक के कुछ महत्वपूर्ण अनुप्रयोगों

का संक्षिप्त उल्लेख यहां किया गया है:

हारमोन संश्लेषण (Synthesis of Hormones)

1. **इन्सुलिन (Insulin):-** इन्सुलिन नामक हारमोन का स्राव प्राकृतिक रूप से अग्नाशय (Pancreas) में पाई जाने वाली लैंगरहैंस की द्वीपिकाओं (Islets of Langerhans) से होता है। इसका कार्य रक्त में शर्करा की मात्रा को कम करना है। इसके लिए इसके द्वारा शर्करा (ग्लूकोज) को ग्लाइकोजेन में परिवर्तित किया जाता है। रासायनिक रूप से इन्सुलिन में दो पॉलिपेप्टाइड श्रृंखलाएं होती हैं। जैव प्रौद्योगिकीय विधि से इन्सुलिन का निर्माण चिकित्सकीय प्रोटीन के रूप में मानव जीन अनुक्रम में परिवर्तन कर बनाया जाने वाला पहला प्रोटीन है। इस कृत्रिम इन्सुलिन को ह्यूमुलिन (Humulin) कहते हैं। वर्ष 1982 में इसे व्यावसायिक रूप से प्रयोग में लाया गया था।

2. **सोमैटोट्रॉपिन (Somatotropin):-** प्राकृतिक रूप से सोमैटोट्रॉपिन अथवा सामैटोट्रॉपिक हारमोन अथवा वृद्धि हारमोन का स्राव पीयूष ग्रंथि (Pituitary Gland) द्वारा होता है। जीन क्लोनिंग विधि द्वारा इसे कृत्रिम तरीके से भी बनाया गया है। इसमें कुल 191 अमीनो अम्ल पाये जाते हैं। इसके स्राव में कमी से बौनापन होता है। न्यूमार्क, 1991 (Newmark, 1991) के अनुसार, इश्चेरिशिया कोलाई (Escherichia coli) नामक जीवाणु की एक कोशिका से लगभग 100,000 हारमोन अणु प्राप्त किये जा सकते हैं।

3. **सोमैटोस्टैटिन (Somatostatin):-** इस हारमोन का संश्लेषण मस्तिष्क में पाई जाने वाली हाइपोथैलामस नामक संरचना से होता है। ईटाकुरा एवं अन्य (Itakura et.al.) ने 1977 में कहा था कि ई. कोलाई नामक जीवाणु की कोशिका से निर्मित पहला पॉलिपेप्टाइड वस्तुत: एक युग्म पेप्टाइड था जो वृद्धि हारमोन, इन्सुलिन तथा ग्लूकागॉन जैसे हारमोन के स्राव के लिए उत्तरदायी है।

4. **बीटा-एण्डॉरफिन (b-endorphin):-** यह एक वृद्धि हारमोन है जो ई. कोलाई नामक जीवाणु में अभिव्यक्त होता है। रासायनिक रूप से इसमें कुल 30 अमीनो अम्ल पाये जाते हैं।

5. **इन्टरफेरॉन (Interferon):-** रासायनिक रूप से ये ग्लाइकोप्रोटीन होते हैं जिनका मुख्य कार्य शरीर को विषाणुओं के संक्रमण से बचाना है। ये शरीर की प्राकृतिक प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ बनाने के लिए भी उत्तरदायी हैं। नये अध्ययनों से यह भी स्पष्ट है कि इनमें कैंसर को नियंत्रित करने की भी क्षमता होती है। मानव शरीर में तीन प्रकार के इन्टफेरॉन की पहचान की गई है:
   (a) अल्फा इन्टरफेरॉन (α-IFN) अथवा ल्यूकोसाइट इन्टरफेरॉन
   (b) बीटा इन्टरफेरॉन (β-IFN) अथवा फाइब्रोब्लास्ट इन्टरफेरॉन
   (c) गामा इन्टरफेरॉन (γ-IFN) अथवा इम्यून इंटरफेरॉन

इनमें से ई. कोलाई नामक जीवाणु से अल्फा तथा बीटा इन्टरफेरॉन का निर्माण जीन अभियांत्रिकी विधियों द्वारा किया जा चुका है।

6. **लिम्फोकाईनिन (Lymphokinin):-** लसिकाणुओं (Lymphocytes) द्वारा इनका निर्माण किया जाता है। रासायनिक रूप से ये प्रोटीन होते हैं। लसिकाणु एक प्रकार के श्वेत रक्त कण हैं जिनका मुख्य कार्य शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली का सुदृढ़ीकरण है। इनमें कैंसर जैसे रोगों का विरोध करने तथा प्रतिरक्षा प्रणाली के पुनरूद्धार की भी क्षमता होती है। इस संबंध में इन्टरल्यूकिन II (Interleukin- II) का उदाहरण उल्लेखनीय है। इसका निर्माण जीन अभियांत्रिकी विधियों द्वारा किया जा सकता है।

टीके (Vaccines)

मानव अथवा जन्तुओं में संक्रमण का विरोध करने की क्षमता विकसित करने के उद्देश्य से मृत जीवों अथवा जीवित लेकिन निष्क्रिय सूक्ष्म जीवों से प्राप्त रासायनिक पदार्थों को टीका कहते हैं। इन टीकों की सफलता उनकी प्रकृति पर निर्भर करती है। हाल के वर्षों में डी.एन.ए. पुनर्संयोजी तकनीक की सहायता से कई प्रकार के टीकों का निर्माण किया गया है।

1. **यकृत शोथ बी विषाणु (Hepatitis B Virus):-** मानव में विषाणु-जनित रोगों में यकृत शोथ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तकनीकी रूप से इस विषाणु में तीन प्रकार के प्रतिजीनी प्रोटीन की पहचान की गई है। इन्हें हिपेटाइटिस बी सरफेस एन्टीजेन (HBsAg), वायरल कोर एन्टीजेन (HBcAg) तथा ई-एन्टीजेन (HBeAg)। इस प्रकार का टीका भारत द्वारा इस तकनीक के पहले प्रयोग से बनाया

गया था। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् भी डीएनस पुनर्सयोजी तकनीक से टीकों के निर्माण को प्रोत्साहित कर रहा है। भारत में प्रधानमंत्री द्वारा निर्देशित एक विज्ञान मिशन का कार्यान्वयन किया जा रहा है जिसके अन्तर्गत हैजा तपेदिक तथा रेबीज जैसे रोगों के लिए टीकों के निर्माण को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

2. **रेबीज़ विषाणु (Rabies Virus):-** रेबीज से संक्रमित कोशिकाओं में पाये जाने वाले विषाणु प्रोटीन से एम.आर.एन.ए. प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं। ई-कोलाई नामक जीवाणु से विषाणु के ग्लाइकोप्रोटीन आवरण को प्राप्त कर लिया गया है।
3. **पोलियो विषाणु (Polio Virus):-** हांलाकि पोलियो विषाणु की आनुवांशिक संरचना का विस्तृत अध्ययन किया जा चुका है लेकिन अब तक जीन अभियांत्रिकी की विधियों से इसके टीके का निर्माण संभव नहीं हो सका है।

हाइब्रिडोमा तकनीक (Hybridoma Technology)

इस तकनीक द्वारा अति विशिष्ट गुणों वाले तथा असाधारण शुद्धता वाले मोनोक्लोनल प्रतिरक्षियों (Monoclonal Antibodies) का निर्माण किया जाता है। ये प्रतिरक्षी अत्यन्त प्रभावकारी तरीके से विषाणुओं के संक्रमण का विरोध करने में सक्षम हैं। इसी कारण इनके अनुप्रयोगों की संख्या अत्यधिक है। हाइब्रिडोमा तकनीक में एक ऐसी कोशिका का निर्माण किया जाता है जिसमें प्रतिरक्षी निर्माण करने वाली कोशिका तथा एक मायलोमा कोशिका का संकरण होता है। मायलोमा कोशिका अस्थि मज्जा में पाई जाती है तथा इसका निर्माण रक्त निर्माण के क्रम में होता है। प्रायोगिक तौर पर यह देखा गया है कि किसी स्तनपायी के शरीर में लगभग 100 मिलियन प्रतिरक्षियों का निर्माण होता है।

- **वैक्सीफ्लू-एस** (Vaxiflu-s): भारत में निर्मित (Vaxiflu-s) एक इंफ्लूएंजा। (H1N1) निरोधक टीका है। अहमदाबाद स्थित जाइडस-कैडिला कंपनी के टीका प्रौद्योगिकी केन्द्र में इसका निर्माण किया गया है। इस टीके के प्रयोग से व्यक्ति एक वर्ष तक H1N1 विषाणु के विरूद्ध प्रतिरोधक बना रहता है। इसका निर्माण मुर्गी के अण्डे से किया गया है।
- **तपेदिक का जीनोम मानचित्रण:-** अप्रैल, 2010 में भारतीय वैज्ञानिकों ने तपेदिक के जीवाणु का प्रथम विस्तृत जीनोम मानचित्रण विकसित करने में सफलता प्राप्त हुई। उल्लेखनीय है कि तपेदिक नामक रोग Microbeaum Tuberculosis द्वारा होता है।

वर्ष 1984 में सीजर मिलस्टीन (Cesar Milstein) तथा जार्ज कोहलर (George Kohler) ने यह सिद्ध किया कि बी-लसिकाणु (B-lymphocyte) तथा मायलोमा कोशिका के संकरण से मोनोक्लोनल प्रतिरक्षी का निर्माण होता है।

संकरण से बनने वाली नई कोशिका में एक ओर जहां प्रतिरक्षी निर्माण की क्षमता बनी रहती है वहीं दूसरी ओर, यह कोशिका विभाजन भी करने में सक्षम होती है। हाइब्रिडोमा तकनीक के अनुप्रयोगों में निम्नांकित प्रमुख हैं :

1. रक्त समूहों, कैंसर, गर्भावस्था तथा एलर्जी की पहचान करने में।
2. अंग प्रत्यारोपण।
3. ट्यूमर के उपचार में।
4. इन्टरफेरॉन के शुद्धिकरण में।

पॉलीमरेज चेन रिएक्शन (Polymerase Chain Reaction, PCR)

किसी जीव के जीनोम के संवर्द्धन के लिए प्रयुक्त यह तकनीक अत्यन्त प्रभावकारी है। इस तकनीक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि डी.एन.ए. की पूरी लंबाई तक क्षारों के अनुक्रम पर इसकी निर्भरता होती है। इसके अन्तर्गत तीन प्रक्रियाएं शामिल हैं। ये प्रक्रियाएं हैं - विगुणन (Denaturation), तापानुशीतन (Annealing) तथा विस्तारण (Extension)।

डी.एन.ए. के जिस अणु का प्रयोग इस विधि में किया जाता है उसे टार्गेट डी.एन.ए. (Target DNA or t-DNA) कहा जाता है। डी.एन.ए. के अणु को 95-98 डिग्री सेल्सियस तापक्रम तक 30 सेकेंड की अवधि तक गर्म किया जाता है जिससे उसकी द्विकुंडलनी

संरचना में दोनों रज्जु एक-दूसरे से पृथक हो जाते हैं। इससे दो रज्जुओं का निर्माण होने के बावजूद उनकी पूरकता बनी रहती है।

पृथकीकरण के बाद पॉलिमरेज (Polymerase) नामक एन्जाइम की सहायता से प्रत्येक रज्जु की प्रतिलिपि बनाई जाती है। तकनीकी रूप से यहां यह उल्लेख आवश्यक है कि केवल पॉलिमरेज से यह कार्य संभव नहीं होता क्योंकि डी.एन.ए. की एक श्रृंखला का निर्माण बिना न्यूक्लियोटाइड के अनुक्रम की सहायता के नहीं हो सकता। इसी कारण प्राइमेज (Primase) नामक एक अन्य एन्जाइम आवश्यक होता है।

डी.एन.ए. के रज्जुओं के पृथकीकरण को विगुणन कहते हैं जबकि पॉलिमरेज की सहायता से पूरक रज्जुओं के निर्माण की विधि को तापानुशीतन कहते हैं। इस विधि में अणु को 55 डिग्री सेल्सियस तापक्रम तक ठंढा किया जाता है। प्रक्रिया के अंतिम चरण, जिसे विस्तारण कहते हैं, में एक के बाद एक प्रतिलिपि बनाई जाती है जो अन्ततः डी.एन.ए. की प्रतिलिपि का निर्माण करती है।

डी.एन.ए. फिंगरप्रिंटिंग (DNA Finger printing)

मानव प्रजाति के सदस्यों की पहचान और उनमें व्याप्त भिन्नता की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त होने वाली तकनीक जिसे डी.एन.ए. फिंगरप्रिंटिंग कहते हैं, आरंभिक विधियों में से एक है। इसका उपयोग वयस्कों, बच्चों तथा अजन्मे बच्चों में आनुवांशिक रोगों की पहचान के लिए भी किया जाता है। हांलाकि इसका सबसे महत्वपूर्ण उपयोग अपराधियों की पहचान में है।

उल्लेखनीय है कि सभी जीव डी.एन.ए. के क्षार अनुक्रम के आधार पर एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। वास्तव में डी.एन.ए. फिंगरप्रिंटिंग किन्हीं दो व्यक्तियों के क्षार अनुक्रमों के तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया है। इसमें निम्नांकित चरण होते हैं :

1. **पृथकीकरण** (Isolation):- डी.एन.ए. का प्रतिदर्श (सैम्पल) शरीर की कोशिकाओं अथवा उत्तकों से प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए रक्त, बाल, त्वचा अथवा वीर्य की केवल थोड़ी सी मात्रा आवश्यक है।
2. **प्रच्छालन** (Washing):- पृथक किये गये डी.एन.ए. को प्रतिदर्श अथवा टी-डी.एन.ए. (Target DNA) कहते हैं। प्रोटिनेज (Proteinase) नामक एन्जाइम की सहायता से इसे प्रच्छालित किया जाता है। ऐसा करने से उसकी भौतिक अशुद्धियां दूर हो जाती हैं।
3. **शुद्धिकरण** (Purification):- प्रच्छालित प्रतिदर्श को क्लोरोफार्म और फेनॉल के मिश्रण में रखा जाता है ताकि इसकी रासायनिक अशुद्धियां दूर हो जाएं।
4. **कर्तन, आकारन तथा वर्गीकरण** (Cutting, Sizing & Sorting):- पृथक किये गये डी.एन.ए. के प्रतिदर्श में किसी विशिष्ट स्थान को काटने के लिए रेस्ट्रिक्शन एन्डोन्यूक्लिएज (Res-triction Endonuclease) नामक एन्जाइम का प्रयोग किया जाता है। टुकड़ों को उनके आकार के आधार पर छन्नी तकनीक (Seiving Technique) की सहायता से क्रमबद्ध कर लिया जाता है। इसे इलेक्ट्रोफोरेसिस (Electrophoresis) भी कहते हैं।
5. **अभिरंजन** (Staining):- अलग किये गये टुकड़ों को रंगने के लिए ईथीडियम ब्रोमाइड (Ethidium Bromide) का प्रयोग होता है।
6. **अवलोकन** (Viewing):- पराबैंगनी प्रकाश का प्रयोग कर अभिरंजित टुकड़ों का अवलोकन किया जाता है।
7. **हस्तांतरण** (Transfer):- डी.एन.ए. के ऐसे टुकड़ों को नायलॉन की एक झिल्ली पर हस्तांतरित किया जाता है।
8. **परीक्षण** (Probing):- नायलॉन की झिल्ली पर रेडियोधर्मी अभिरंजित पदार्थ का प्रयोग करने पर एक विशिष्ट प्रतिमान प्राप्त होता है। उल्लेखनीय है कि कोई भी परीक्षण वाली वस्तु नायलॉन झिल्ली पर किसी एक अथवा दो स्थान पर ही चिपकती है।
9. **फिंगरप्रिंटिंग** (Fingerprinting):- इस प्रक्रिया द्वारा प्राप्त झिल्ली को एक्स-किरणों की सहायता से एक प्लेट पर चित्रित किया जाता है। इसी चित्रण को डी.एन.ए. फिंगरप्रिंट कहते हैं।

डी.एन.ए. फिंगरप्रिंटिंग के अनुप्रयोग (Uses of DNA Finger printing)

1. संदिग्ध व्यक्तियों को उनके जैव साक्ष्यों से संबद्ध करने के लिए यह तकनीक अत्यन्त उपयोगी है।

2. पितृत्व की पहचान में।
3. जन्म के पूर्व तथा उपरांत नवजात शिशुओं में आनुवांशिक रोगों की पहचान में। इन रोगों में सिस्टिक फाइब्रोसिस, हीमोफीलिया, हन्टिंगटन रोग प्रमुख हैं।
4. इसका प्रयोग जीन परामर्शियों द्वारा भावी माता-पिता को सूचना उपलब्ध कराने के लिए किया जाता है ताकि वे एक रोगयुक्त शिशु को जन्म देने के भयानक परिणामों से बच सकें।
5. व्यक्तिगत पहचान के लिए।

जैव उपचार (Bioremediation)

तकनीकी रूप से जैव उपचार वह प्रक्रिया है जिसमें सूक्ष्म जीवों, जिन्हें सामान्यत: जैव उत्प्रेरक भी कहा जाता है द्वारा हानिकारक पदार्थों का अपक्षय कराया जाता है। अत: जैव उपचार के तहत उन नियंत्रित पर्यावरणीय दशाओं का निर्माण किया जाता है जिनमें सूक्ष्म जीवों को ऐसे अपघटन के लिए कार्यकुशल बनाया जा सके। हाल के वर्षों में जैव उपचार प्रदूषण निवारण की अत्यन्त उपयोगी तकनीक के रूप में उभरा है। इस तकनीक में जीन अभियांत्रिकी द्वारा रूपान्तरित सूक्ष्म जीवों का प्रयोग किया जाता है।

अनुप्रयोग (Applications)

1. **बायोगैस (Biogas):-** मिथेन और कार्बनडायक्साइड के सम्मिश्रण को बायोगैस कहते हैं। इसका उपयोग शुष्क अवायवीय कम्पोस्टिंग (Dry Anaerobic Composting, DRANCO) नामक विधि में किया जाता है जिसमें अपशिष्टों के अपघटन से बायोगैस का निर्माण होता है। इसका उपयोग ऊर्जा के रूप में किया जाता है। साथ ही, इस विधि में ह्यूमस जैसे पदार्थ का भी निर्माण होता है जो उर्वरा शक्ति बढ़ाने में कारगर है। इस विधि में आर्किबैक्टिरिया (Archaebacteria) नामक जीवाणु का प्रयोग किया जाता है।
2. **पूतीभवन का प्रतिरोधन (Prevention of Eutrophication):-** जैव उपचार की सहायता से प्रदूषित जल से नाइट्रेट को बाहर किया जाता है जिससे अंतत: पूतीभवन का प्रतिरोध होता है। इस कार्य में मिथाइलोफिलस मिथाइलोट्रोफस (Methylophilus methylotrophus) नामक जीवाणु का प्रयोग किया जाता है।
3. **जैव फिल्म (Biofilms):-** किसी ठोस सतह पर सूक्ष्म जीवों के समुदायों के एकत्रीकरण को जैव फिल्म कहते हैं। जल अभिक्रिया संयंत्रों से निकलने वाली गैसें दूषित जल में प्रदूषकों का अपघटन करती हैं।
4. **हानिकारक रसायनों का निष्कासन (Removal of Toxic Chemicals):-** हानिकारक रसायन विशेषकर क्लोरिनयुक्त मिश्रण को दूषित जल से हटाने के लिए स्युडोमोनास सिपेसिया (Pseudomonas cepacia) नामक जीवाणु प्रयोग में लाया जाता है।

पराजीनी तकनीक (Transgenesis)

किसी बाह्य जीन को किसी जीव, पौधे अथवा जन्तु की आनुवांशिक संरचना में प्रत्यारोपित करने की तकनीक को ट्रांसजेनेसिस कहते हैं। ऐसे बाह्य जीन को ट्रांस जीन तथा इससे निर्मित प्रजाति को ट्रांसजेनिक प्रजाति अथवा पराजीनी प्रजाति कहते हैं। दूसरे शब्दों में, ऐसी प्रजातियां जीन अभियांत्रिकी द्वारा विकसित की जाती हैं। इस विधि में किसी एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति में जीन का हस्तांतरण किया जाता है जिसका उद्देश्य इच्छित अभिलक्षणों को अभिव्यक्त करना है। इस तकनीक के विकास ने पौधों और जन्तुओं की नई उच्च गुणवत्ता वाली प्रजातियों के विकास की संभावनाएं बढ़ा दी हैं। किसी प्रजाति के सभी जीन गुणसूत्र पर उपस्थित डी.एन.ए. के एक विशिष्ट भाग से नियंत्रित होते हैं जिसे प्रवर्तक अनुक्रम (Promoter Sequence) कहते हैं। ट्रांस जीन के विकास के लिए मूल प्रवर्तक अनुक्रम को परिवर्तित कर दिया जाता है। पौधों की ट्रांसजेनिक प्रजातियों के संदर्भ में वांछित जीन का प्रत्यारोपण कर पौधों की गुणवत्ता, उत्पादकता आदि में वृद्धि की जाती है। कई प्रजातियों में रोगों का प्रतिरोध करने की क्षमता भी विकसित की जाती है। कृषि संबंधी महत्वपूर्ण गुण की पहचान तथा उसकी अवस्थिति का ज्ञान प्राप्त करने का कार्य ट्रांसजेनेसिस की प्रक्रिया में सबसे दुष्कर है।

एक बार जीन की पहचान हो जाने के बाद उसे प्रवर्तक अनुक्रम के साथ ही प्रत्यारोपित कर दिया जाता है। प्रयोगों से यह देखा गया है कि सबसे सामान्य प्रवर्तक अनुक्रम सी.ए.एम.व्ही. -35 एस (CaMV 35 S - Cauliflower Mosaic Virus) है। पौधों में उच्च स्तरीय अभिव्यक्ति के लिए क्लोन किये गये जीन का उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त, चयनित अंकक जीन (Selectable Marker Gene) को निर्मित जीन के साथ जोड़ा जाता है ताकि पौधों की कोशिकाएं अथवा उत्तकों की पहचान की जा सके जो सफलतापूर्वक ट्रांसजीन के साथ मिल गई हों। चयनित अंकक जीन प्रोटीन का संकेत निर्धारित करते हैं जो पौधों के लिए विषैले अभिकर्ताओं का प्रतिरोध करते हैं। इन अभिकर्ताओं में शाकनाशक (Herbicides) तथा प्रतिजैविकी (Antibiotics) प्रमुख हैं। प्रत्यारोपित डी.एन.ए. के अस्तित्व के कारण कोशिका तथा जीव में होने वाला परिवर्तन आनुवांशिक होता है। पौधों का रूपान्तरण निम्नलिखित किन्हीं दो विधियों से संभव होता है:

1. बायोलिस्टिक प्रक्रिया अथवा जीन गन विधि
2. ऐग्रो बैक्टीरियम विधि

बायोलिस्टिक प्रक्रिया में सूक्ष्म अन्त:क्षेपण (Micro-injection) का प्रयोग किया जाता है जिसके द्वारा वांछित जीन का प्रत्यारोपण होता है। दूसरी ओर, एक ही स्थान पर जीन का प्रत्यारोपण ऐग्रो बैक्टीरियम विधि से संभव होता है। अत: यह बायोलिस्टिक विधि से अपेक्षाकृत अधिक कार्यक्षेम है। ट्रांसजेनिक पशुओं के संबंध में अच्छी नस्ल विकसित करने के लिए निम्नांकित प्रयास किये जाते हैं:

1. बाह्य जीन की पहचान तथा बनावट
2. डी.एन.ए. का निषेचित अंडे में सूक्ष्म अन्त:क्षेपण
3. इन कोशिकाओं का माता के शरीर में प्रत्यारोपण
4. भ्रूण का विकास
5. जीन की नियमित अभिव्यक्ति का प्रदर्शन

वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो गया है कि ट्रांसजेनिक तकनीक पर्यावरण मित्र है तथा इससे उन्नत किस्म की प्रजातियां विकसित कर उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। जहां तक पौध प्रजातियों का प्रश्न है, बीटी कपास, बीटी गोभी, जीएम सरसों जैसी नस्लों का विकास किया जा चुका है। इसी प्रकार, कई ट्रांसजेनिक जन्तुओं की प्रजातियां भी विकसित कर ली गई हैं। इनमें रीसस बन्दर की प्रजाति एण्डी. (ANDi, Inserted DNA spelt backwards) महत्वपूर्ण है।

उद्योग में जैव प्रौद्योगिकी (Biotechnology in Industry)

जैव प्रौद्योगिकी बाजार में 500-600 मिलियन डालर से भी अधिक का निवेश किया गया है। आगामी दो से तीन वर्षों में इस व्यापार के लगभग दस गुणा होने की आशा है। हालांकि भारत का योगदान इस क्षेत्र में अभी 1 प्रतिशत है। सभी क्षेत्रों में से स्वास्थ्य जैव प्रौद्योगिकी सबसे महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। परन्तु खाद्यान्न और पेय उद्योग में भी इसने अप्रत्याशित सफलता अर्जित की है। विगत वर्षों में कम मीठे तथा शर्करा रहित पदार्थों की मांग में वृद्धि हुई है जिसने जैव प्रौद्योगिकी के इस क्षेत्र का विस्तार कर दिया है। उल्लेखनीय है कि जैव तकनीकों का प्रयोग कर एक कैलोरी की कम मात्रा वाले मीठे पदार्थ एस्पार्टेम (Aspartame) का निर्माण किया गया है। इसी प्रकार, थॉमैटोकोकस डेनिएलि (Thau-matococcus danielli) नामक पौधे से थॉमेटिन (Thaumatin) नामक पदार्थ बनाया गया है जिसे अब तक निर्मित ऐसे सभी पदार्थों में सबसे मीठा कहा गया है।

स्वास्थ्य उद्योग में टीकों के निर्माण की दृष्टि से जैव तकनीकों का प्रयोग अत्यन्त कारगर सिद्ध हुआ है। भारत ने यकृत शोथ बी (Hepatitis B) के टीके बायोवैक तथा शैनवैक का भी निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त, हॉल्ट नामक एक जैवकीटनाशक का निर्माण भी इस तकनीक द्वारा किया गया है। भारत के जैव प्रौद्योगिकी विभाग ने इस क्षेत्र में अब तक लगभग 1000 करोड़ रुपए का निवेश किया है तथा 2 करोड़ रुपए की लागत वाली भारतीय जीनोम परियोजना का आरंभ भी किया गया है।

हाल ही में भारतीय उद्योग महासंघ ने कनाडा के जैव प्रौद्योगिकी उद्योग संगठन के साथ एक समझौता किया है जिसका मूल उद्देश्य

भारतीय जैव तकनीकों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर और सुदृढ़ बनाना है ताकि साझेदारी और निवेश के अतिरिक्त अवसरों का सृजन किया जा सके।

आनुवांशिक रूप से रूपान्तरित फसलें (Genetically Modified Crops)

बंगलौर-स्थित भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (Indian National Science Academy, INSA) द्वारा हाल ही में दी गई एक रिपोर्ट के अनुसार, आनुवांशिक रूप से रूपान्तरित फसलों के संदर्भ में नीचे लिखे गये आयामों पर विशेष बल दिया है:

1. आनुवांशिक रूपान्तरण की सहायता से उपज बढ़ाने के लिए तकनीकों का प्रयोग।
2. कीटों, जैविक तथा अजैविक दबाव के विरूद्ध कई प्रकार के पदार्थों का निर्माण।
3. सीमावर्ती भूमि के प्रयोग में वृद्धि, पर्यावरण संबंधी प्रभाव की न्यूनता।
4. पर्याप्त खाद्य पदार्थ की उपलब्धता के लिए जागरूकता में वृद्धि।
5. सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के मध्य साझेदारी हेतु अनुसंधान संस्थानों को प्रोत्साहन।
6. ट्रांसजेनिक पौधे तथा पशुओं का मूल्यांकन करने के साधनों का विकास।

जहां तक भारत का प्रश्न है, हाल के वर्षों में कमोबेश सम्पूर्ण देश में जीन क्रांति का वर्चस्व है। वैज्ञानिकों द्वारा आनुवांशिक रूप से प्रवर्द्धित प्रजातियों के विकास के लिए गहन अनुसंधान कार्य किये जा रहे हैं। इस क्षेत्र में अत्याधुनिक विकास के रूप में बीटी कपास प्रजाति विकसित की गई है। सन् 1929 में बैसिलस थिरूजिएन्सिस नामक जीवाणु की खोज दक्षिण पूर्वी जर्मनी में थिरून्जिया नामक स्थान की मृदा में की गई थी। वैज्ञानिक प्रयोगों से यह स्पष्ट हुआ है कि जीवाणु की आनुवांशिक संरचना में पाये जाने वाले जीन पशुओं के पाचन तंत्र को प्रभावित नहीं करते हैं, लेकिन इसके विपरीत ये जीन कीटों के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं। इस कारण बीटी कपास के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई।

बी०टी० (बेसिलस थूरिजिएन्सिम -Bt) मृदा में पाया जाना वाला एक ग्राम निगेटिव जीवाणु है। इसमें पाया जाने वाले एक विशेष जीन (Cry1AC) को यदि किसी पादप प्रजाति में प्रवेश करा दिया जाय तो वह एक विष उत्पन्न करता है जो पौधों के लिए हानिकारक कीटों को रोकता है परिणामस्वरूप फसल उत्पादन में वृद्धि होती है।

बी.टी. कॉटन (Bt Cotton)

कपास की परंपरागत फसल में बॉल कृमि नामक कीड़ा लग जाता है। यह कृमि पत्तियों से अपना पोषण प्राप्त करता है जिससे फसल उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

कपास की परपंरागत प्रजाति में बेसिलस थूरिंजिएन्सिस नामक जीवाणु के एक जीन (Cry1AC) को जीन अभियांत्रिकी के द्वारा प्रवेश करा कर कपास की एक नई प्रजाति का विकास किया गया है जिसे बी.टी. कॉटन की संज्ञा दी गई है। यह फसल बॉल कृतिम के विरूद्ध प्रतिरोधक क्षमता प्राप्त कर लेती है। इस कारण जब बॉल कृमि ऐसी फसल को खाता है तो विष के प्रभाव से स्वयं नष्ट हो जाता है परिणामस्वरूप फ़सल उत्पादन में वृद्धि दर्ज की जाती है।

बी.टी. बैंगन (Bt. Brinjal)

बी.टी. कॉटन के ही समान बी.टी. बैंगन भी जीन अभियांत्रिकी द्वारा निर्मित फसल है जिसमें बी.टी. कॉटन के ही समान तकनीक प्रयुक्त होती है। इस फसल ने बैंगन में लेपिडोप्टेरॉन कीटों जैसे ब्रिंजलफ्रूट, शूट बोटर (Leucinodes Orbonalis) एवं फ्रूट बोटर (Helicoverpa Armigera) के विरूद्ध प्रतिरोधक क्षमता विकसित करती है जब बैंगन पर पलने वाले उक्त कीड़े बैंगन को खाते हैं तो इन कीड़ों में विष के प्रभाव से पाचन क्रिया नष्ट हो जाती है जिससे फसल की रक्षा होती है। भारत में बी.टी. बैंगन की खेती को GEAC ने अक्टूबर, 2009 में अनुमति दी थी। परन्तु विरोध होने पर फरवरी, 2010 में केंद्र सरकार ने इस पर रोक लगा दी है।

ट्रांसजेनिक प्रजातियों तथा आनुवांशिक रूप से परिवर्द्धित पौधों के विकास का कार्य सदैव विवादास्पद रहा है। मुख्य रूप से इसके तीन कारण हैं। प्रथम, फसलों की ऐसी प्रजातियां अन्य फसलों को आनुवांशिक रूप से कुप्रभावित कर सकती हैं, द्वितीय, जो जीन आरंभिक चरणों में कीटों का विनाश करते हैं, वे कीटों की उत्परिवर्तित प्रजातियों के विकास में सहायक सिद्ध हो सकते हैं, तथा तृतीय, आनुवांशिक रूप से प्रवर्द्धित फसलों की प्रजातियों को भोज्य पदार्थों के रूप में उपयोग करने से मानव में एलर्जी जैसे प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं। इन विवादों पर अधिकांश वैज्ञानिकों ने विचार व्यक्त करते हुए यह स्पष्ट किया है कि इन प्रजातियों से उतनी हानि नहीं है जितनी आशंका व्यक्त की गई है।

भारत सरकार द्वारा गठित जीन अभियांत्रिकी स्वीकृति समिति (Genetic Engineering Approval Committee, GEAC) ने बीटी प्रजातियों के उत्पादन के संबंध में विशिष्ट मार्गदर्शन दिया है। समिति के अनुसार, भारत के अधिकांश किसानों को जीन अभियांत्रिकी द्वारा विकसित प्रजातियों का पर्याप्त ज्ञान नहीं है। इस कारण समिति ने छोटे किसानों द्वारा बीटी कपास के उत्पादन को स्वीकृति प्रदान नहीं की है। तकनीकी दृष्टिकोण से यह आशंका व्यक्त की गई है कि भारत की जलवायवीय तथा कृषि-संबंधी परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में बीटी कपास प्रजाति के सफल होने की संभावना नहीं है। इन प्रजातियों का प्रतिरोध करने के लिए कीटों में प्रतिरोधक क्षमता का शीघ्र विकास होने की भी आशंका है। इस संबंध में मॉनसैन्टो (Monsanto) नामक कंपनी, जिसने बीटी कपास तकनीक का विकास किया था, ने यह स्पष्ट निर्देश दिये हैं कि किसानों को अपने कुल उत्पादन क्षेत्र के 20 प्रतिशत भाग को गैर-बीटी कपास के उत्पादन हेतु सुरक्षित रखना चाहिए।

निम्नतापी जैविकी (Cryobiology)

निम्न तापी जैविकी जीवों पर हिमायन तथा निम्न तापमान के प्रभाव के साथ संबंधित है। वर्तमान में, निम्नतापी जैविकी संबंधी तकनीक निर्जीव वस्तुओं के लिए भी प्रयुक्त होने लगी है। निम्नतापी जैविकी में निम्नतापी शल्यचिकित्सा, भ्रूण तथा युग्मक संरक्षण, उत्तक संरक्षण तथा प्रत्यारोपण, रक्त पदार्थ संरक्षण तथा निम्नतापी परिवहन सम्मिलत होते हैं। क्रायोजेनिक्स इंन्टरनेशनल, 1999 के अनुसार, मानव का वर्तमान चिकित्सा पद्धति से उपचार नहीं होने की स्थिति में हिमायन करने की प्रक्रिया को क्रायोनिक्स कहते हैं। व्यापक दृष्टिकोण से, निम्न तापी जैविकी अथवा Cryobiology का सबंध कार्यान्तरण विधियों, वनस्पति पदार्थों तथा कम तापमान (-196°C) पर, निम्नतापी संरक्षकों की उपस्थिति में तरल नाईट्रोजन द्वारा संचित किए हुए पशुओं की प्रतिक्रियाओं से भी है। सबसे अधिक प्रयोग में लाया जाने वाला कृत्रिम निम्नतापी संरक्षक है, डाइमिथाईल सल्फॉक्साइड (Dimethylsulphoxide)।

▸ निम्नतापी शल्य चिकित्सा के विभिन्न चरण
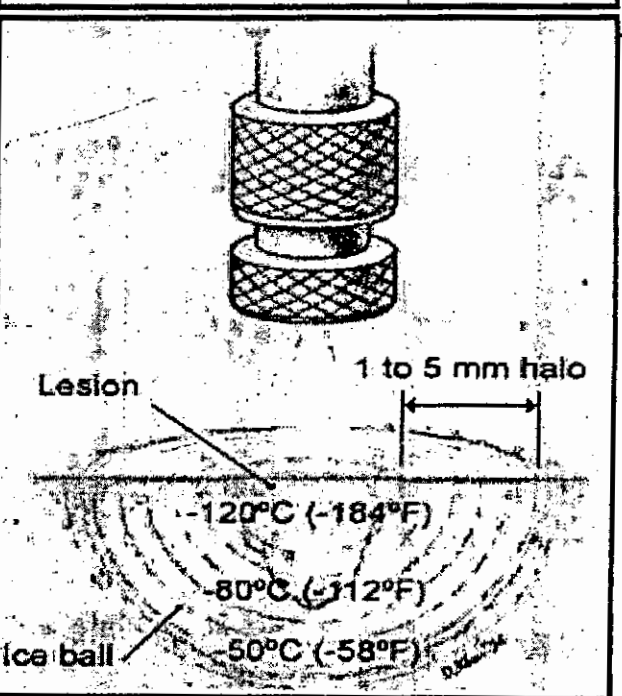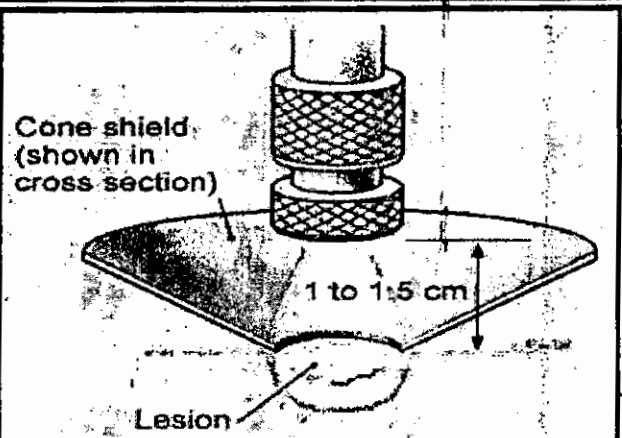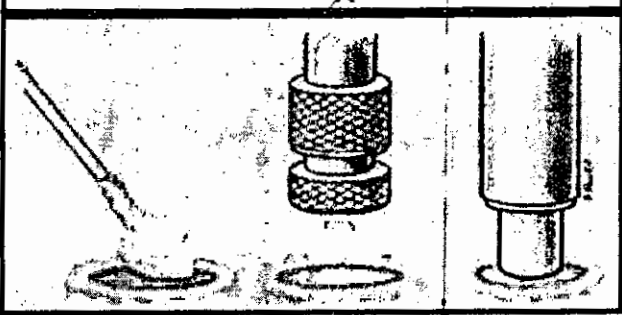
निम्नतापी शल्यचिकित्सा (Cryosurgery)

इसके अन्तर्गत कई प्रकार के उत्तकों को अत्यन्त न्यून तापमान पर नष्ट किया जाता है। कम तापमान, एक विशेष घोल क्रायोजेन का प्रयोग करके प्राप्त किया जाता है। कफलिक, 1994 के अनुसार, उपचार के तीन मुख्य उद्देश्य सुधार, उपचार अथवा लघुकरण हैं। अधिकांशत:, डिपस्टिक तकनीक का निम्नतापी शल्य चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। इस तकनीक के अन्तर्गत एक रूई युक्त प्रयोगक को तरल नाईट्रोजन में डुबाकर, घाव पर लगाया जाता है, जब तक पर्याप्त परिशमन घटित न हो जाए। इसके अतिरिक्त, खुली सामग्री भी घाव पर Cryogen छिड़कने के लिए प्रयुक्त की जा सकती है। ठोस रूप में कार्बनडायक्साइड का भी प्रयोग त्वचा पर Acetone का मिश्रण लगा कर किया जाता है। ऐसा उपचार Slush therapy कहलाता है।

निम्नतापी संरक्षण (Cryopres-ervation)

यह तकनीक सर्वप्रथम वर्ष 1972 में चूहे के भ्रूण तथा युग्मक के संरक्षण, 1976 में बकरी तथा 1983 में मनुष्य के भ्रूण तथा युग्मक के संरक्षण हेतु प्रयुक्त की गई थी। यह पाया गया है, कि बहुत से बीज, पौधे तथा निम्न श्रेणी के पशु निम्न तापमान पर जीवित रह सकते हैं। परन्तु अधिकतर मानव, पशुओं तथा पौधों की कोशिकाएं जीवित नहीं रह सकतीं। विशेषकर पौधों में उनकी विशेषताएँ, जैसे बड़ा आकार, अधिक बड़ी रिक्तिकाएं तथा जल का बाहुल्य समस्या उत्पन्न कर देती हैं। कोशिकाओं तथा ऊतकों को निम्न ताप पर नष्ट होने से बचाने के लिए निम्नतापी संरक्षक प्रयुक्त किए जाते हैं। ये निम्नतापी संरक्षक रासायनिक पदार्थ होते हैं, जैसे ग्लाईकॉल, शर्करा, अल्कोहल, पोलीविनाईल पाईरोलिडोन, पोलीएथीलीन ग्लाईकोल (PEG), पाली एथिलीन आक्साईड (PEO), ग्लिसरीन, सुक्रोज तथा प्रोलीन। ये रासायनिक पदार्थ निम्नतापी विनाश की दर को घटा देते हैं।

जर्मप्लाज्म बैंक (Germplasm Bank)

जर्मप्लाज्म बैंक जीन संसाधनों के भंडार है, जहाँ ऐसे संसाधन लंबी अवधि के लिए तरल नाईट्रोजन का प्रयोग करके सुरक्षित रखे जाते हैं। ये संसाधन राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर आवश्यकता पड़ने पर उपलब्ध किए जा सकते है। यह परामर्श दिया गया है, कि ऐसे जर्मप्लाज्म बैंकों को किसी अन्तर्राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान से संबद्ध कर दिया जाना चाहिए ताकि महत्वपूर्ण पौधों के रोग रहित जर्मप्लाज्म का भंडारण, वितरण तथा विनिमय सुनिश्चित किया जा सके।

जैव उर्वरक (Biofertilizers)

प्राकृतिक रूप से बनने वाले उर्वरक जो पौधों के विकास में सहायता करते हैं, जैव उर्वरक कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में, ऐसे जैव-उर्वरक जैविक मूल के होते हैं। वर्ष 1982 में सुब्बाराव ने जैव उर्वरकों को जीवाणु संचरक (Microbial Inoculants) की संज्ञा देने का सुझाव दिया था। पौधों की जड़ों में सूक्ष्म जीव पाए जाते हैं, जो जैव उर्वरक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। सर्वाधिक प्रचलित जैव उर्वरकों में जीवाणु तथा सांइनोबैक्टेरिया सम्मिलित हैं, जो नाईट्रोजन स्थरीकरण को प्रोत्साहन देते हैं। कुछ जैव उर्वरक जैसे Azotobakterin के उपयोग से उत्पादन में 10 से 20 प्रतिशत की बढ़ोतरी पाई गई है। कुछ जैव उर्वरक जैसे, ध्वसस, भारी धातुओं के विरूद्ध सहनशीलता प्रदर्शित करते हैं।

जैव उर्वरक से लाभ (Advantages from Biofertilizers)

1. कम मूल्य के कारण छोटे तथा मध्यम वर्गीय कृषकों द्वारा सुगमता से प्रयोग।
2. प्रदूषण मुक्त।
3. कुछ जैव-उर्वरकों से वृद्धि को प्रोत्साहित करने वाले पदार्थों का स्राव।
4. मृदा की उर्वरता में वृद्धि।
5. भौतिक तथा रासायनिक गुण जैसे भूमि में सीलन, जल-अवरोधन क्षमता आदि का विकास।

6. कुछ Mycorrhizas द्वारा उप-पाचक उत्पन्न करने का कार्य।

शैवालीकरण (Algalization)

शैवालीकरण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वेंकटरमण द्वारा वर्ष 1961 में किया गया था। शैवालीकरण, जैव उर्वरक के रूप में व्यापक स्तर पर नील हरित शैवाल के संवर्द्धन की प्रक्रिया है। यद्यपि यह संकल्पना का प्रादुर्भाव भारत में हुआ था, तथापि इस तकनीक को वास्तविक रूप से जापान में विकसित किया गया। वर्ष 1990 में भारत सरकार के जैव प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा शैवालीकरण हेतु उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल तथा नई दिल्ली में एक विशेष कार्यक्रम क्रियान्वित किया गया था। इस परियोजना के तहत कार्यरत वैज्ञानिकों के अनुसार, शैवालों की प्रकृति पर्यावरण-मित्रा की होती है जिसके फलस्वरूप उन्हें जैव उर्वरक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। इनके प्रयोग से विशेषत: धान की उपज में 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की वृद्धि पाई गई है।

सामान्य जैव उर्वरक

एजोला (Azolla) एजोस्पीरिलियम (Azbspirillium) माइकोराइजा (Mycorrihiza) नील हरित शैवाल (Blue Green Algae) राइजोबियम (Rhizobium) फ्रैंकिया (Frankia) स्यूडोमोनास स्ट्रायटा (Pseudomonas striata) बैसिलस पॉलीमिक्सा (Bacillus polymyxa) बैसिलस मेगाटेरियम (Bacillus megaterium) एनाबिना एजोली (Anabaena azollae)

जैव उर्वरक के रूप में माइकोराइजा (Mycorrhizas as Biofertilizers)

माइकोराइजा, कवक तथा बीज वाले कई पौधों की जड़ों के मध्य के सहजीवी संबंधों से उत्पन्न होते हैं। लेकिन वैज्ञानिकों ने इस संबंध में प्रायोगिक साक्ष्य प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त नहीं की है। माइकोराइजा द्वारा जड़ों की आयु तथा उनकी जल एवं खनिज अवशोषण क्षमता में वृद्धि करने में विशिष्ट योगदान दिया जाता है।

माइकोराइजा की कई प्रजातियों में खनिजों का उत्पादन करने की भी क्षमता विद्यमान होती है जिसके कारण वे जड़ों की संवृद्धि में भी सहायक होते हैं। जैव उर्वरकों के रूप में माइकोराइजा का उपयोग मृदा की उर्वरता तथा पौधों में पोषण स्तर में वृद्धि करने के उद्देश्य से किया जाता है।

जैव संवेदक (Biosensors)

जैव संवेदक एक उपकरण है, जो जैव संकेतों का संश्लेषण कर इन्हें विद्युत तरंगों में परिवर्तित कर देता है। इस उपकरण में एक जैविक तथा एक भौतिक भाग होता है। भौतिक भाग अथवा संवेदक कार्बन इलेक्ट्रोड, आक्सीजन इलेक्ट्रोड, आयन-संवेदनशील इलेक्ट्रोड अथवा थर्मिस्टर हो सकते हैं। दूसरी ओर, जैविक अंश एन्जाइम, हार्मोन, न्युक्लिक एसिड अथवा पूरी कोशिका हो सकती है। 1987 में, सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका में, एक जैव संवेदक विकसित किया गया था, जिसका उद्देश्य रक्त में शर्करा की मात्रा की माप करना था। भारत में, कराईकुडी-स्थित केन्द्रीय विद्युत-रसायन अनुसंधान संस्थान (Central Electrochemical Research Institute, CECRI) में एक शर्करा संवेदक विकसित किया गया है।

जैव संवेदक कई प्रकार के हो सकते हैं:

1. **एम्पेरोमेट्रिक (Amperometric)**:- इसमें एन्जाइम इलेक्ट्रोड अथवा रसायनिक रूप से परिवर्तित इलेक्ट्रोड प्रयुक्त होते हैं। ऐसे संवेदकों के सर्वश्रेष्ठ उदाहरणों में ऑक्सीजन तथा पेरॉक्साइड-आधारित संवेदकों के सर्वश्रेष्ठ उदाहरणों में ऑक्सीजन तथा पेरॉक्साइड संवेदकों को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार के संवेदक ऑक्सीकरण-अपचयन सिद्धांत पर कार्य करते हैं।
2. **जैव सजातीय संवेदक (Bioaffinity Sensors)**:- इस प्रकार के संवेदकों द्वारा चयनात्मकता के उच्च स्तर की प्रस्तुतीकरण की जाती है। इन संवेदकों के निर्माण की संकल्पना अपेक्षाकृत नई है।
3. **वैद्युत रासायनिक (Electrochemical)**:- क्षेत्र प्रभाव ट्रांसमीटर अथवा प्रकाश उत्सर्जन डायोड का प्रयोग करने वाले संवेदकों को

वैद्युत रासायनिक संवेदक कहते हैं। इनमें आयन-संवेदनशीलता, एन्जाइम-संवेदनशीलता अथवा प्रतिजीवी-संवेदनशीलता का गुण विद्यमान होता है।

4. **थर्मिस्टर (Thermistor):-** अत्यन्त उच्च संवेदन के साथ प्रतिजन-प्रतिजीवी प्रक्रिया का उपयोग करने वाले संवेदक थर्मिस्टर कहलाते हैं। इस संवेदकों में सामान्यत: ऐसे एन्जाइम का प्रयोग किया जाता है जिनका स्थायीकरण किया गया हो।

अनुप्रयोग (Applications)

1. जैव संवेदक का प्रयोग शर्करा संश्लेषक के रूप में किया जाता है।
2. कुछ रसायनों की उत्परिवर्तनशीलता का पता लगाने के लिए जैव संवेदक प्रयोग में लाये जाते हैं।
3. पर्यावरण प्रदूषण, विशेषकर जल-प्रदूषण पर नियंत्राण।
4. खाद्य पदार्थों के रंग तथा स्वाद की पहचान एवं माप।

जीन चिकित्सा (Gene Therapy)

जीन रोगोपचार आवश्यक रूप से एक ऐसी विधि है, जिसमें किसी रोग के विस्तार को रोकने अथवा उपचार करने के लिए कुछ जीनों की अभिव्यक्ति बदल दी जाती है। 1980 के मध्य इस तकनीक का मुख्य आधार एकल-जीन के दोषों को सुधारना था। इन रोगों में सिस्टिक फाइब्रोसिस (Cystic Fibrosis), हीमोपफीलिया (Hempophilia), Duchmenne's पेशीय रोग तथा सिकल सेल अल्परक्तता (Sickle Cell Anemia)। परन्तु 1980 के अंत तथा 1990 के आरंभ में जीन चिकित्सा (Gene Therapy) का दृष्टिकोण कुछ अर्जित रोगों तक विस्तृत हो गया। जीन रोगोपचार में एक अतिरिक्त जीन का प्रत्यारोपण किया जाता है। सोमैटिक जीन रोगोपचार में प्राप्तकर्ता के जीनोम का परिवर्तन किया जाता है। परन्तु यह दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित नहीं होता। दूसरी ओर, जर्मलाइन रोगोपचार में जीन के बदलने का उद्देश्य पितृत्व विकास को प्रश्रय देना है। श्रंउमे पसेवद (1998) के अनुसार, संवाहकों, जिसे वेक्टर (Vectors) अथवा जीन वाहक (Gene Carrier) कहते हैं, द्वारा चिकित्सकीय जीन को रोगियों की कोशिकाओं में डालने में बाधाएँ आती हैं। एक बार जीन के कोशिका में पहुंच जाने के उपरांत, इसे सही ढंग से निष्पादित करने की आवश्यकता है, क्योंकि शरीर द्वारा अस्वीकार किये जाने की आशंका के आलोक में जीन अभिव्यक्ति को नियंत्रित करने की आवश्यकता है। पसेवद ने भी स्पष्ट किया कि विषाणुओं ने इन्कैप्सूलेटिंग (Encapsulating) तथा अपूर्ण जीन को मानव कोशिकाओं में प्रत्यारोपित करने की विधि ढूँढ ली गई है।

सूक्ष्म अन्त:क्षेपण (Microinjection)

यह बाह्य डी.एन.ए. को एक जीवित कोशिका में माइक्रोपिपेट द्वारा प्रत्यारोपित करने की तकनीक है। यह कार्य अणुवीक्षण यंत्र के माध्यम से किया जाता है। टीके द्वारा लगाया गया डी.एन.ए., अन्तत: कोशिका के परमाणु युक्त डी.एन.ए. के साथ समन्वित हो जाता है। यह तकनीक ट्रांसजेनिक प्रकार के जीनों को विकसित करने के लिए भी प्रयोग में लाई जाती है।

मैजिक बुलेट (Magic Bullet)

यह एक औषधि वितरण प्रणाली है, जिसमें एक कोशिका जिस पर उचित उपचार का अणु भरा हुआ है, रोगी के शरीर में टीके के रूप में लगा दिया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह अणु परिसंचरण तंत्र प्रणाली द्वारा चलता रहता है, और अभीष्ट स्थान पर पहुंच जाता है।

उत्तक संवर्द्धन (Tissue Culture)

वर्ष 1963 में व्हाइट (White) ने प्रयोगों के आधार पर स्पष्ट किया था कि उपयुक्त परिस्थितियों में बहुकोशीय जीवों में स्वतंत्र रूप से विकसित होने की क्षमता विद्यमान होती है। उत्तक संवर्द्धन एक ऐसी तकनीक है, जिसमें किसी एक प्रकार की फसल, उसमें होने वाले रोग तथा अन्य प्रतिजनों का प्रतिरोध करने की क्षमता विकसित की जाती है। विकसित करने के लिए कोशिकाओं का

प्रयोगशाला में संवर्द्धन किया जाता है। इसलिए इस तकनीक का बहुत अधिक प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है, जैसे कृषि, उद्यान कृषि, वानिकी तथा उद्योग। आधुनिक अनुसंधान के कारण उत्तक संवर्द्धन की भूमिका का विस्तार कई विशिष्ट क्षेत्रों में हो गया है। इन क्षेत्रों में टमाटर में नमक सहने की शक्ति का विकास, हिम-विरोधी तम्बाकू के पौधे तथा शाकनाशक-प्रतिरोधी शस्य फसलों का विकास प्रमुख है। अन्य उपयोगिताओं में निम्न प्रमुख हैं:

1. संकर प्रजातियों का सुधार।
2. युग्मकीय विभिन्नताओं का सुनिश्चितीकरण।
3. अप्रभावी जीनों की आरंभिक अभिव्यक्ति।
4. आवर्णी बीजों का उत्पादन।
5. रोग प्रतिरोधी पौधों का उत्पादन।
6. तनाव विरोधी पौधों का उत्पादन।
7. वृक्षों की संवृद्धि

उत्तक संवर्धन की सहायता से पौधों में प्राथमिक उत्पादन होता है। यह जीन की दृष्टि से निर्मित C-3 पौधों तथा इनका C-4 में परिवर्तन होने से संभव होता है। उत्तक संवर्द्धन तकनीक शारीरिक संकरण (Somatic Hybridization) के लिए भी प्रयोग में लाई जा रही है। यह पाया गया है, कि जब कोशिकाएं अपनी दीवारों से छील कर उतार दी जाती हैं, और निकट संपर्क में आती हैं, तो वे एक दूसरे के साथ जुड़ने के लिए प्रवृत्त होती हैं। इस तकनीक का प्रभावशाली प्रयोग जीन संबंधी पदार्थों में समन्वय की स्थापना के लिए Petunia तथा Nicotiana नामक पौधों में किया गया है।

क्लोन एवं स्टेम कोशिकाएं (Clone & Stem Cells)

हाल के वर्षों में मानव के क्लोन के निर्माण से संबंधित अनुसंधानों को विशेष महत्व दिया गया है। किसी क्लोन का निर्माण वस्तुत: नाभिक स्थानान्तरण तकनीक पर आधारित होता है। यद्यपि इस तकनीक द्वारा कई जन्तुओं के क्लोन का निर्माण किया गया है, तथापि मानव भ्रूण के संदर्भ में इस तकनीक को सफलता प्राप्त करने का दावा किया था लेकिन इस दावे को अस्वीकार कर दिया गया। अमेरिका के कई वैज्ञानिकों ने स्पष्ट किया है कि मानव क्लोन का निर्माण भ्रूण को स्टेम कोशिकाओं की आपूर्ति कर किया जा सकता है। दिसंबर, 2001 में जोस सिबेली ने 71 अंडों पर तीन चरणों में अनुसंधान किये थे लेकिन इनमें से केवल एक प्रयोग के तहत मानव भ्रूण के क्लोन के निर्माण की दिशा में सकारात्मक संकेत प्राप्त हुये। अपने प्रयोग के दौरान, सिबेली ने त्वचा की कोशिकाओं के केन्द्रकों को बाहर निकाल कर उन्हें केन्द्रिका विहीन 19 अंडों में प्रत्यारोपित किया। इनमें से केवल तीन में विभाजन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई।

वैज्ञानिकों के अनुसार, स्टेम कोशिकाओं के प्रभावी स्रोत के रूप में विकास करने के लिए भ्रूणों का ब्लास्टोसिस्ट चरण तक विकसित होना अनिवार्य है। इस चरण में विभाजित कोशिकाओं की संख्या लगभग 100 होती है। लेकिन सिबेली द्वारा किये गये प्रयोगों में ऐसा कोई भी भ्रूण इस चरण तक सफलतापूर्वक विकास नहीं कर सका।

स्टेम कोशिकाएं वस्तुत: ऐसी कोशिकाएं हैं जिनमें अन्य किसी भी प्रकार की कोशिकाओं के रूप में परिवर्तित होने की क्षमता विद्यमान होती है। इस कारण न केवल क्लोन बल्कि नए अंगों के निर्माण में भी इनकी भूमिका अतिविशिष्ट है। इसके बावजूद हाल के वर्षों में यह तकनीक विवादास्पद हो गई है। इसका मुख्य कारण यह है कि इससे भ्रूण हत्या की आशंका होती है।

जहां तक क्लोन की तकनीक का प्रश्न है, तीन प्रकार की पद्धतियां प्रचलन में हैं- (1) डीएनए पुनर्संयोजी तकनीक अथवा डीएनए क्लोनिंग, (2) प्रजनक क्लोनिंग तथा (3) चिकित्सकीय क्लोनिंग।

डीएनए पुनर्संयोजी तकनीक को ही आणविक अथवा जीन क्लोनिंग भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत डीएनए के एक इच्छित टुकड़े को किसी जीव की आनुवांशिक संरचना से बाहर निकाल कर उसे स्व प्रजनन करने वाले आनुवांशिक पदार्थ जैसे किसी जीवाणु के

प्लाज्मिड (जीवाणु की जीन संरचना) में डाल दिया जाता है। इसके उपरांत उसे किसी अन्य जीव की आनुवांशिक सरचना में प्रत्यारोपित कर दिया जाता है। 1970 के दशक में विकसित यह तकनीक वर्तमान में आणविक जैविकी का एक अभिन्न अंग है। अधिकांशत: जीवाणु कोशिकाओं का उपयोग इस तकनीक में किया जाता है लेकिन कई अवसरों पर यीस्ट तथा स्तनधारियों की कोशिकाओं को भी प्रयोग में लाया जाता है।

जैसा कि हम जानते हैं, प्रजनक क्लोनिंग तकनीक से "डॉली" नामक भेड़ का विकास किया गया था जिसकी 6 वर्ष की आयु मे मृत्यु हो गई थी। इसी प्रकार हाल ही में रीसस बन्दर के क्लोन का भी विकास किया गया है जिसे "टेट्रा" कहा गया है।

तकनीकी रूप से प्रजनक क्लोनिंग वह पद्धति है जिसमें एक ऐसी संतति का विकास किया जाता है जिसमें पहले से विद्यमान जन्तु की भांति ही समान नाभिकीय डीएनए उपस्थित होता है। इस पद्धति में कायिक कोशिका नाभिक हस्तांतरण (Somatic Cell Nuclear Transfer SCNT) नामक प्रक्रिया प्रयोग में लाई जाती है। दाता कोशिका के केन्द्रक को बाहर निकालकर उसे उस अंडे की कोशिका में रखा जाता है जिसका केन्द्रक बाहर निकाल लिया गया हो। इस नई प्रजनक कोशिका को रासायनिक एजेंट अथवा विद्युत धारा के प्रभाव में रखा जाता है ताकि कोशिका विभाजन हो सके। एक खास चरण तक विकसित होने के बाद उसे माता के गर्भाशय में प्रत्यारोपित कर दिया जाता है जहां जन्म तक उसका विकास होता है।

तीसरे प्रकार की क्लोनिंग जिसे चिकित्सकीय अथवा भ्रूण क्लोनिंग भी कहते हैं, का प्रयोग स्टेम कोशिकाओं के विकास के लिए किया जाता है ताकि नए अंगों अथवा उत्तकों का विकास किया जा सके। यह पद्धति जैव चिकित्सकीय अनुसंधान में व्यापक स्तर पर प्रयोग में लाई जाती है।

जहां तक क्लोनिंग के समक्ष विद्यमान चुनौतियों का प्रश्न है, विशेषकर प्रजनक क्लोनिंग अत्यन्त मंहगी तकनीक है तथा इसकी कार्यकुशलता भी संदिग्ध है। वस्तुत: लगभग 90 प्रतिशत ऐसे प्रयोगों में इच्छित संतति का विकास नहीं हो पाता।

नैनोटेक्नोलॉजी (Nanotechnology)

विशिष्ट गुणों वाली युक्तियों के निर्माण हेतु परमाणुओं तथा अणुओं के भौतिक गुणों का उपयोग करने वाली तकनीक को नैनो तकनीक कहते हैं। विज्ञान की विभिन्न विधाओं, यथा, रसायन विज्ञान, भौतिकी, जैविकी तथा इलेक्ट्रॉनिक्स के विशेषज्ञों द्वारा परमाणविक स्तर पर परिशुद्धता के साथ तकनीकों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है। इस नई तकनीक के प्रादुर्भाव से प्रोटीन के अणुओं के व्यवहार का ज्ञान प्राप्त करने में व्यापक सफलता मिली है।

प्रोटीन वस्तुत: अमीनो अम्ल से निर्मित जटिल पदार्थ होते हैं। यद्यपि जैव प्रौद्योगिकी के तहत प्रोटीन अभियांत्रिकी पर पूर्व से ही ध्यान दिया जाता रहा है, तथापि नैनो तकनीक ने प्रोटीन अणुओं के संकुचन तथा विस्तारण सहित उनके अन्य व्यवहारों को समझने में विशेष योगदान दिया है। नैनो तकनीक का प्रयोग वैसे तो कई क्षेत्रों में किया जाता है, लेकिन जैव प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत आनुवांशिकी का क्षेत्र इस संदर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस तकनीक का प्रयोग कर मानव जीनोम के अध्ययन की विधि का सरलीकरण किया जा सका है। इसके आधार पर मानव जीनों का मानचित्रीकरण भी सरल बनाया जा सका है।

हाल के अनुसंधानों में डी.एन.ए. की पहचान, उसकी संवेदनशीलता, चयनात्मकता तथा उसके उपयोग पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। उत्तर पश्चिमी नैनोतकनीक संस्था द्वारा किये गये अनुसंधानों में स्पष्ट किया गया है कि एन्थ्रेक्स जैसे जैव हथियारों की पहचान करने में भी इस तकनीक ने सफलता अर्जित की है। एक कृत्रिम डी.एन.ए. अनुक्रम का निर्माण कर पॉलीमेरेज चेन रिएक्शन जैसी परम्परागत तकनीकों के प्रतिस्थापन के प्रयास भी किये जा रहे हैं।

नैनोटेक्नोलॉजी शब्द नैनो और टेक्नोलाजी शब्दों के मेल से बना है। नैनो शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के नैनोज शब्द से हुई है जिसका अर्थ है बौना। अत: नैनो तकनीक का अर्थ एक ऐसी तकनीक से है जो किसी पदार्थ के सूक्ष्मतम कणों का अध्ययन करती है। एक नैनोमीटर मीटर का एक अरबवां भाग है।

नैनो टेक्नोलॉजी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम नोरिया तानिगुशि (Norio Taniguchi) ने किया था लेकिन वर्ष 1959 में रिचर्ड फिनमैन

(Richard Feynman) ने यह स्पष्ट किया कि प्रत्येक परमाणु के परिचालन से वैज्ञानिक क्रांति लाई जा सकती है। वर्ष 1980 में ऐरिक ड्रेक्स्लर (Eric Drexler) ने इस प्रौद्योगिकी के विभिन्न आयामों का विस्तृत अध्ययन किया। नैनो तकनीक ने हमें सटीक तथा कम खर्च वाली उत्पादन प्रक्रियाएं उपलब्ध कराई है जिससे नये उत्पादों का निर्माण संभव हुआ है। इस प्रौद्योगिकी के तहत एक ओर तो विभिन्न कणों के आकार को छोटा बनाया गया है वहीं दूसरी ओर, संगणता की क्षमता का भी विस्तार हुआ है।

विकास के संदर्भ में जनवरी 2000 में अमेरिका द्वारा राष्ट्रीय नैनो प्रौद्योगिकी परियोजना क्रियान्वित की गई थी। इस परियोजना की कुल लागत 500 मिलियन डालर है। इस क्रांतिकारी प्रौद्योगिकी के लाभ अनन्त हैं। कई महत्वपूर्ण लाभों का उल्लेख यहां किया गया है:

1. सघन हरित कृषि के माध्यम से अधिक उत्पादन। हरित गृह कृषि एक ऐसी विधि है जिसमे नियंत्रित दशाओं में कृषि की जाती है। इससे बेहतर आगम-निर्गम संबंध भी सुनिश्चित होता है। नैनो प्रौद्योगिकी से पर्यावरण की दशाओं को कम लागत पर नियंत्रित किया जा सकता है।
2. नैनो प्रौद्योगिकी हानिकारक परमाणु पुनर्चक्रण में सक्षम है जिससे रासायनिक प्रदूषण की आशंका कम होती है। वैज्ञानिकों के अनुसार, नेनो प्रौद्योगिकी से निर्मित प्लास्टिक हानिकारक नहीं है तथा बिना मध्यवर्ती उत्पादों के निर्माण के ही कई अन्य पदार्थों का निर्माण किया जा सकता है जिससे पर्यावरण का कम क्षति होती है।
3. कई अवसरों पर इस प्रौद्योगिकी से ऐसे पदार्थों का निर्माण किया जाता है जो अपनी उच्च गुणवत्ता के कारण बेहतर आय सृजित करते हैं। इससे न केवल उद्योगों को लाभ होता है बल्कि ऊर्जा का संरक्षण भी किया जा सकेता है।
4. नैनो प्रौद्योगिकी से कम्प्यूटर नियंत्रित आणविक उपकरणों का निर्माण किया जा सकता है। इन उपकरणों को नैनोबोट (Nanobots) अथवा कोशिका यंत्र (Cell Machines) कहते हैं। कोशिका यंत्रों का अनुप्रयोग विषाणुओं के विरूद्ध प्रतिजीवियों के रूप में किया जाता है। साथ ही, इनसे रक्त परिसंचरण प्रणाली में किसी अवरोध को दूर करने में भी सहायता मिलती है।

कम लागत की आवश्यकताओं ने स्व-उत्पादित विनिर्माण प्रणाली में अभिरुचि विकसित की है। इसका अध्ययन 1940 के दशक में वॉन न्यूमैन (Von Newmann) द्वारा किया गया था। इन प्रणालियों द्वारा अपने प्रतिरूपों तथा नये उत्पादों का निर्माण किया जा सकता है। यदि हम किसी ऐसे डिजाइन के आधार पर निर्माण करें तो इस पर आने वाली लागत अत्यन्त कम हो जायेगी। स्पष्टत: आगामी वर्षों में इस प्रौद्योगिकी के माध्यम से परमाणुओं तथा अणुओं के व्यवस्थित क्रम भी विकसित किये जा सकेंगे।

हाल के वर्षों में वैज्ञानिकों ने इस प्रौद्योगिकी द्वारा कार्बन के एक नये प्रतिरूप की खोज की है जो सामान्य तापमान पर स्थिर रहता है। इस प्रतिरूप को नैनोस्क्रॉल (Nanoscroll) कहा गया है। नैनोस्क्रॉल वस्तुत: कार्बन के नैनोट्यूब से बेहतर कार्य कर सकते हैं। नैनो ट्यूब शुद्ध कार्बन की चादरें हैं जो नलिकानुमा होती हैं। कार्बन की सतहें हाइड्रोजन का अधिशोषण (Adsorption) कर सकती हैं। इसके फलस्वरूप नैनोस्क्रॉल का प्रदूषण-मुक्त हाइड्रोजन कारों के निर्माण में प्रयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, वायुयानों तथा कारों के हल्के पदार्थों का निर्माण भी इससे किया जा सकता है।

जैव प्रौद्योगिकी से कृषि विकास (Developing Agriculture through Biotechnology)

भारत में कृषि अब केवल जीविका का साधन मात्र नहीं है बल्कि इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय कई विशिष्ट परियोजनाओं का क्रियान्वयन कर फसल उत्पादन में वृद्धि की जा रही है। वास्तव में जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से कृषि क्षेत्र में व्याप्त जैविक तथा अजैविक, दोनों ही प्रकार की समस्याओं का निराकरण भी संभव हो सका है।

विभिन्न प्रकार के खर-पतवारों तथा कीटों द्वारा जैविक तनाव उत्पन्न होते हैं। इनके प्रभाव के कारण उत्पादन में अंतत: ह्रास होता है। ऐसे जैविक तनावों को कम करने के लिए नये पदार्थों के निर्माण की आवश्यकता होती है। इस कार्य में अत्यधिक निवेश अनिवार्य है। जैसा कि सर्वविदित है, हानिकारक पदार्थों के उपयोग से कई प्रकार की स्वास्थ्य और पर्यावरण संबंधी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। ऐसी स्थिति में जैव प्रौद्योगिकी अत्यन्त कारगर सिद्ध हो सकती है। जैव प्रौद्योगिकी ने कई प्रभावकारी, विश्वसनीय, सुरक्षित तथा पर्यावरण -मित्र प्रक्रियाओं का विकास किया है।

आधरिक रूप से डी.एन.ए. पुनर्संयोजी तकनीक ने ऐसी प्रक्रियाएं विकसित की हैं। इनके तहत प्रजातियों में नाटकीय परिवर्तन लाने के लिए उपापचयी मार्गों को परिचालित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, प्रजातियों पर पड़ने वाले जैविक तनावों को कम करने में पराजीनी तकनीक ने भी विशिष्ट योगदान दिया है। एक अनुमान के अनुसार, सम्पूर्ण विश्व में लगभग 50 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर पराजीनी तकनीक से विकसित फसलों की कृषि की जाती है। इनमें से 90 प्रतिशत प्रजातियां ऐसी हैं जिनमें कीटनाशकों अथवा खर-पतवार का नाश करने की क्षमता विद्यमान है। तकनीकी दृष्टिकोण से यहां यह उल्लेख समीचीन होगा कि विषाणुओं के संक्रमण का विरोध करने के लिए प्रजातियों का विकास जीन परिचालन (Gene Manipulation) विधि द्वारा किया जाता है। इसके लिए विषाणु के आवरण के प्रोटीन का प्रयोग होता है।

अजैविक तनावों के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि ऐसे तनाव खनिजों तथा जल की कमी से अथवा मृदा की खराब स्थिति से उत्पन्न होते हैं। भारत जैसे देश में पोषक तत्वों और मृदा स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अनुत्पादक क्षेत्रों का निरंतर विस्तार हो रहा है। इस विस्तार को रोकने तथा फसलों की उत्पादकता में वृद्धि के लिए जैव प्रौद्योगिकी की सहायता ली जा रही है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के राष्ट्रीय फसल जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान केन्द्र के वी.एल. चोपड़ा के शब्दों में, 'अजैविक तनावों के कारण प्रभावित क्षेत्रों में व्यावसायिक कृषि की संभावना कम है जिसका मुख्य कारण यह है कि निजी क्षेत्र, जिनके पास बौद्धिक संपदा अधिकार संरक्षित है, को इन क्षेत्रों से पर्याप्त लाभ प्राप्त नहीं होता। इस कारण वे ऐसे कार्यों में पर्याप्त निवेश नहीं करतीं।' जैव प्रौद्योगिकी के तहत विभिन्न तकनीकों का प्रयोग फसलों की व्यावसायिक व्यवहार्यता की वृद्धि के लिए भी किया जाता है। विशेष रूप से आर्थिक उदारीकरण के काल में यह आवश्यक है कि उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों का विकास किया जाये। केवल गुणवत्ता में वृद्धि के बाद ही भारत वैश्विक स्तर पर निर्यात बाजारों का लाभ प्राप्त कर सकता है। साथ ही, प्रौद्योगिकीय रूप से उन्नत फसलों के विकास से प्रतिस्पधात्मक कीमतों का निर्धारण भी संभव है। इस पृष्ठभूमि में यह अनिवार्य है कि नये गुणों वाली फसल प्रजातियों का विकास किया जाये। उदाहरणस्वरूप, बीटी कपास, जीएम सरसों आदि।

इसके अतिरिक्त, जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से फसलों तथा उत्पादों को लंबी अवधि तक संरक्षित रखने के कार्य में भी व्यापक सफलता प्राप्त हुई है। इसके कारण भी उनकी व्यावसायिक व्यवहार्यता में वृद्धि होगी। हाल के वर्षों में केन्द्रक के स्थानान्तरण के बदले हरितलवक (Chloroplast) रूपान्तरण की प्रक्रिया पर विशेष बल दिया गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार, हरितलवक रूपान्तरण की प्रक्रिया के कई लाभ हैं। प्रत्येक हरितलवक किसी पौधे में एक छोटे कारखाने के रूप में कार्य करता है तथा इस तकनीक के माध्यम से जीन की बेहतर अभिव्यक्ति भी की जा सकती है।

संश्लेषित जैविकी (Synthetic Biology)

संश्लेषित जैविकी जैव अभियांत्रिकी का वह पक्ष है जिसमें जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान तथा अभियांत्रिकी का व्यवहारिक उपयोग किया जाता है। इस शब्दावली का प्रयोग 1994 में Waclowsky सेंप ने किया था इसे कई अवसरों पर जीव विज्ञान में संश्लेषित रसायन शास्त्र का विस्तार कहा गया है। जबकि अभियांत्रिकी जैविकी को एक प्रौद्योगिकी के रूप में मान्यता दी गई है।

अतः स्पष्ट है कि यह जैव प्रौद्योगिकी का ही विस्तृत रूप है जिसमें न केवल नई प्रजातियों का विकास बल्कि कई अन्य महत्वपूर्ण कार्यों को भी शामिल किया गया है जैसे मानव स्वास्थ्य के लिए आवश्यक दवाओं और टीकों का निर्माण, कम्प्यूटर प्रणालियों के लिए डी.एन.ए. चिप का निर्माण, विभिन्न जीवाणु कोशिकाओं में रासायनिक परिवर्तन लाकर उनकी उपयोगिता में वृद्धि, कई उपयोगी पदार्थों का निर्माण जैसे सिल्क प्रोटीन, कीटरोधी प्रजातियों का विकास कर विशेषकर कृषि उत्पादकता में वृद्धि, विभिन्न उत्पादों को संश्लेषित कर औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन।

इन उपयोगिताओं के बावजूद संश्लेषित जैविक एक विवादास्पद विज्ञान है। अधिकांशतः यह कहा गया है कि संश्लेषित जैविकी जैव सुरक्षा और जैव नैतिकता का विरोध करती है। दूसरी ओर यह कई अवसरों पर जैव संसाधनों के अनुचित उपयोग को भी बढ़ावा देती है। अतः इसका विनियमन प्रभावी रूप से किया जाना चाहिए।

जीन हस्ताक्षर (Genetic Signature)

कोशिकाओं में उपस्थित डी.एन.ए. में एडनीन, थायमीन, गुआनिन, साइटोसिस जैसे नाइट्रोजन के क्षार पाए जाते हैं। इन्हीं क्षारों के विशिष्ट अनुक्रमों से प्रोटीन संश्लेषण होता है। इन अनुक्रमों को जीन कहते हैं। इसके विपरीत डी.एन.ए. में उपस्थित कई अन्य प्रकार के अनुक्रम प्रोटीन संश्लेषण के लिए उत्तरदायी नहीं होते तथा व्यक्ति विशिष्ट होते हैं। इन्हीं अनुक्रमों को सामुहिक रूप से जीन हस्ताक्षर अथवा जीन फिंगर प्रिंट कहा जाता है।

किसी व्यक्ति के जीन हस्ताक्षर का निर्माण उसके माता-पिता से प्राप्त जीनों अथवा क्षार अनुक्रमों से होता है।

उपयोगिताएं

1. मातृत्व अथवा पितृत्व की पहचान में सहायक।
2. नए रोगों की पहचान में सहायक।

उल्लेखनीय है कि ऐसे विशिष्ट रोगों की पहचान के लिए जीन चिन्हकों का प्रयोग किया जाता है।

इन चिन्हकों की सहायता से अंगप्रत्यारोपण के लिए अंगदाता के जीन हस्ताक्षर का विश्लेषण करना सरल होता है। हाल ही में किए गए एक प्रयोग से यह स्पष्ट किया गया है कि Tr-DNA(Trans Renal DNA) की उपस्थिति कई विशिष्ट रोगों की पहचान में सहायक होती है जो विशेषकर वृक्क से संबंधित होते हैं।

डी.एन.ए. पितृत्व परीक्षण (DNA Paternity Test)

यह परीक्षण वस्तुतः जीन हस्ताक्षर अथवा जीन फिंगर प्रिंट का प्रयोग है जिसके आधार पर किसी व्यक्ति के माता-पिता की आनुवांशिक पहचान की जाती है। दूसरे शब्दों में पितृत्व परीक्षण किसी बच्चे के जैविक पिता की पहचान करने वाली तकनीक है।

उल्लेखनीय है कि इस तकनीक के पूर्व कई अन्य तकनीकों से जैविक पिता की पहचान की जाती रही है जैसे- ABO रक्त समूह टाइपिंग, विशिष्ट प्रोटीन अथवा इंजाइमों का परीक्षण अथवा विश्लेषण, HLA (Human Leulocyle Antigen का प्रयोग। इन परीक्षणों के लिए PCR (Poly mersa Chain Reaction पद्धति का भी प्रयोग किया जाता रहा है जिसमें डी.एन.ए. अनुक्रमों की प्रतिनिधि बनाई जाती है। इन सभी तकनीकों का अधिक सटीक तकनीक के रूप में डी.एन.ए. पितृत्व की पहचान है क्योंकि इसकी सफलता दर 99.0 प्रतिशत है।

ऐसे परीक्षण के लिए डी.एन.ए. प्रोफाइलिंग नामक विधि का प्रयोग किया जाता है जिसमें व्यक्ति की संपूर्ण डी.एन.ए. संरचना का चित्रण किया गया है अनुसंधानों से यह स्पष्ट किया गया है कि किसी व्यक्ति में माता और पिता से लगभग समान मात्रा में आनुवंशिक पदार्थ हस्तांतरित होते हैं। इन्ही पदार्थों से व्यक्ति के विशिष्ट डी.एन.ए. अनुक्रमों का निर्माण होता है। इन पदार्थों को समान्यतः नाभिकीय आनुवांशिक पदार्थ कहा गया है। इस आधार पर व्यक्ति और उसके माता पिता के अनुक्रमों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि ल गुणसूत्र से हस्तांतरित अनुक्रमों से पितृत्व की पहचान सबसे सटीक होती है। इसी प्रकार मातृत्व परीक्षण को सर्वाधिक सटीक तब माना जाता है जब माता की जीन संरचना में से Mitochondria के डी.एन.ए.अनुक्रम का हस्तांतरण बच्चे की जीन संरचना में होता है।

इस परीक्षण का उपयोग यौन अपराधों की जाँच से संबंधित है। यह माना गया है कि पितृत्व परीक्षण किसी व्यक्ति के एकान्तता के अधिकार का उल्लंघन हो सकता है। दूसरे शब्दों में इसे संविधान के एक्ट 21 का उल्लंघन माना जा सकता है। इसी प्रकार यह भी आशंका है कि इससे संविधान के अनुच्छेद 20(3) का उल्लंघन होता है। जिसमें स्वयं के विरूद्ध साक्षी होने से सुरक्षा का प्रावधान है। इस सबंधन में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि "यदि कोई वस्तु या पदार्थ जो किसी व्यक्ति के स्वामित्व में है तथा उसे प्राप्त किए बिना जाँच की प्रक्रिया पूर्ण नहीं होती तथा अंतिम निष्कर्ष तक नहीं पहुँचा जा सकेगा तो भारतीय साक्ष्य कानून 1872 के तहत ऐसी वस्तु अथवा पदार्थ की प्राप्ति की जा सकती है। इस स्थिति को एक्ट 20(3) और 4 का उल्लंघन नहीं माना जाएगा"।

राष्ट्र विकास में जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका (Role of Biotechnology in National Development)

भारत जैसे विकासशील देशों में नई तकनीकों के प्रादुर्भाव एवं विकास ने उनकी संवृद्धि तथा सुदृढ़ीकरण में विशिष्ट भूमिका निभाई है। विशेष रूप से 1990 के दशक में उदारीकरण एवं भूमंडलीकरण की प्रक्रियाओं के प्रारंभ ने ऐसी तकनीकों के महत्व में अप्रत्याशित वृद्धि कर दी है। यद्यपि विकास के मार्ग को प्रशस्त बनाने के लिए कमोबेश सभी वैज्ञानिक विधाओं तथा तकनीकों की अनिवार्यता है, तथापि विस्तार एवं प्रभाव के दृष्टिकोण से जैव प्रौद्योगिकी का विशेष महत्व है। वस्तुत: भारत के संदर्भ में इस प्रौद्योगिकी ने सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय क्षेत्रों को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सभी विकासोन्मुखी कार्यक्रमों को त्वरित गति प्रदान करने में अपनी सक्षमता सिद्ध की है। सामाजिक दृष्टिकोण से जैव प्रौद्योगिकी ने मुख्यत: स्वास्थ्य के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया है। मूलत: जैव प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत डी.एन.ए. पुनर्संयोजी तकनीक के प्रयोग से न केवल नये टीकों का निर्माण करने में सफलता प्राप्त हुई है, बल्कि कृत्रिम इन्सुलीन एवं अन्य हारमोनों के निर्माण ने कई रोगों के उपचार को भी सरल बनाया है। इसी क्रम में डी.एन.ए. के टीकों का निर्माण भी किया गया है, जिसके फलस्वरूप परंपरागत टीकों पर मानव प्रजाति की निर्भरता में कमी आई है। साथ ही, ऐसे टीकों को लंबी अवधि तक सुरक्षित रखने के कार्य में भी सहायता प्राप्त हुई है।

हाल ही में विकसित नैनोतकनीक ने मानव जीनोम के अध्ययन के नये मार्ग प्रशस्त किये हैं जिसके आधार पर मानव को रोग-मुक्त बनाये रखने की संकल्पना के सुदृढ़ीकरण में व्यापक सफलता प्राप्त होने की संभावना है। जैव प्रौद्योगिकी के एक अभिन्न अंग के रूप में निम्नतापी जैविकी ने स्वास्थ्य के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किये हैं। इसके तहत निम्नतापी शल्य चिकित्सा, संरक्षण तथा स्लश चिकित्सा का विशेष महत्व है।

इसके अतिरिक्त, जैव सूचना के क्षेत्र के प्रादुर्भाव के कारण मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों को भी बल प्रदान किया जा सका है, जो जैव प्रौद्योगिकी के उत्तरोतर विकास में भी सहायक सिद्ध होगी।

आर्थिक दृष्टिकोण से जैव प्रौद्योगिकी का निकट संबंध कृषि तथा उद्योग से पूर्णत: स्थापित है। कृषि के क्षेत्र में नई प्रजातियों के विकास के लिए प्रयुक्त ट्रांसजेनिक तथा जीन अभियांत्रिकी तकनीकों का विशेष महत्व है। हाल के वर्षों में बीटी फसलों की संकल्पना ने इस क्षेत्रा में विकास की संभावनाओं को प्रबलता प्रदान की है। जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से उत्पादकता के दृष्टिकोण से उन्नत प्रजातियों के विकास के साथ-साथ कीट प्रतिरोधी प्रजातियों का भी विकास संभव हुआ है, जिसने भारत जैसे कृषि प्रधान देश में विभिन्न कार्यक्रमों को दृढ़ता प्रदान की है। इस कार्य में उत्तक संवर्द्धन तथा जैव उर्वरकों की तकनीक का प्रयोग भी विशिष्ट है। जहां तक उद्योग का प्रश्न है, मूल रूप से जीवाणुओं तथा सूक्ष्म जीवों का प्रयोग कर चीनी से अधिक मीठे पदार्थों के निर्माण को बेहतर बनाया जा सका है। ऐसे पदार्थों का उपयोग विशेष रूप से यूरोपीय देश में किया जा रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार, थॉमेटिन नामक पदार्थ को सुक्रोज से 3000 गुणा अधिक मीठा पाया गया है।

पर्यावरणीय क्षेत्र में प्रदूषण को कम करने तथा जैव विविधता संरक्षण में भी जैव प्रौद्योगिकी की विशेष भूमिका है। जीन संरक्षण के माध्यम से विलुप्त होने वाले जीवों का संरक्षण संभव हो रहा है। साथ ही, जैव उपचार जैसी तकनीकों को सुदृढ़ बनाकर पर्यावरणीय प्रदूषण कम करने में व्यापक सफलता अर्जित की जा सकी है। इसी प्रकार, जैव संवेदकों के प्रयोग ने भी पर्यावरण संरक्षण में विशेष योगदान दिया है।

प्रक्षेपास्त्र विकास (Missile Development)

भारत में अंतरिक्ष कार्यक्रम के रूप में वर्ष 1967 में प्रक्षेपास्त्र तकनीक का विकास शुरू किया गया था, लेकिन अंतरिक्ष-सह-प्रक्षेपास्त्र तकनीक का पहला सफल परीक्षण एक दो-चरण और ठोस प्रणोदक का प्रयोग करने वाले साउंडिंग रॉकेट रोहिणी 560 के प्रक्षेपण के साथ किया गया। इस रॉकेट को 100 किलोग्राम के भार सहित 334 किलोमीटर की ऊँचाई तक प्रक्षेपित किया गया था। वास्तविक रूप में इस क्षेत्र में विकास का कार्य रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन (Defence Research and Development Organisation, DRDO) द्वारा वर्ष 1983 में आरंभ किया गया था। इसके अन्तर्गत समन्वित निर्देशित प्रक्षेपास्त्र विकास कार्यक्रम (Integrated Guided Missile Development Programme, IGMDP) की शुरूआत की गई। कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नांकित प्रक्षेपास्त्रों के विकास के लिए प्रयास आरंभ किये गये:

1. **पृथ्वी (Prithvi)**:- सतह से सतह तक मार करने वाले परमाणु शक्ति सम्पन्न इस प्रक्षेपास्त्र का पहला परीक्षण 1988 में किया गया था। इसकी मारक क्षमता 40-250 किलोमीटर है। पृथ्वी का विकास संवर्द्धित उपग्रह प्रमोचक यान (Augmented Satellite Launch Vehicle, ASLV) की तकनीक पर किया गया है, तथा इसमें कम्प्यूटर प्रणाली के अतिरिक्त एक विमान संचालन प्रणाली का भी उपयोग किया गया है।

2. **अग्नि (Agni)**:- सतह से सतह तक मार करने वाले इस परमाणु शक्ति सम्पन्न प्रक्षेपास्त्र के तीन चरण हैं : अग्नि I, II तथा III। यह प्रक्षेपास्त्र पुर्नप्रवेश तकनीक (Reentry Technique) पर आधारित है जिसका तात्पर्य यह है कि पहले चरण में यह वायुमंडलीय सीमा में बाहर जाकर पुन: उसमें प्रवेश करता है जिससे उसकी तीक्ष्णता तथा विध्वंसकारी कार्यों में निपुणता आ जाती है। इसकी अधिकतम मारक क्षमता 3500 किलोमीटर है। इस प्रक्षेपास्त्र की एक विशेषता यह भी है कि इसमें वैश्विक अवस्थान प्रणाली (Global Positioning System, GPS) प्रयुक्त हुई है। साथ ही यह 5000 डिग्री सेल्सियस तक के तापान्तर को सहन कर सकता है क्योंकि इसमें कार्बन-कार्बन सम्मिश्र (Carbon-Carbon Composite) का प्रयोग किया गया है।

   (i) **अग्नि-I**: यह मध्यम दूरी की बैलिस्टिक मिसाइल है। अग्नि-I में ठोस प्रणोदन वर्धक का प्रयोग किया है साथ ही ऊपरी स्तर पर द्रव्य प्रणोदक वर्धक का प्रयोग किया गया है जो पुनर्प्रवेश संरचना नियंत्रण एवं निर्देशन के लिए उपयोगी।

   (ii) **अग्नि-II**: यह 2000 किमी. से अधिक मारक क्षमता वाली प्रदर्शन और दोहरे मार्गदर्शन वाली मिसाइल हैं उपर्युक्त बहुस्तरीय नियंत्रण कौशल और उड़ान परीक्षण के साथ दिशानिर्देशन का अभिकल्पन और विकास, पुनर्प्रवेशन प्रौद्योगिकी इसे विशिष्ट बनाती है।

3. **आकाश (Akash)**:- सतह से हवा में मार करने वाला मध्यम दूरी का यह प्रक्षेपास्त्र एक साथ 3-5 लक्ष्यों पर निगरानी रखने में सक्षम है। यह वाहक में रैम राकेट प्रणोदन और वर्धन के लिए उच्च उर्जित ठोस प्रणोदक का प्रयोग करता है। प्रणोदक प्रणाली पारंपरिक तरल, ठोस राकेट के मुकाबले न्यूनतम द्रव्यमान से ऊर्जा का उच्चस्तर उपलब्ध कराती है, जिससे मिसाइल के न्यूनतम वजन में बेहतर प्रदर्शन होता है इसमें निर्देशन की दोहरी पद्यति है, प्रारम्भ में युद्धार्थ रडज़र (राजेन्द्र) से कमांड पद्यति पर और

बाद में उच्च लक्ष्योमेदता के लिए विकसित विशिष्ट साफ्टवेयर के माध्यम से रडार लक्ष्य स्थानक निर्देशन पर। यह प्रणाली उच्च गतिशील है और कमांड निर्देशन उपलब्ध कराते हुए कई उड़ान परीक्षणों से गुजरी है। इसमें एक अति विशिष्ट रडार प्रणाली राजेन्द्र का प्रयोग किया गया है। इसकी तुलना अमेरिका के पैट्रियॉट नामक प्रक्षेपास्त्र से की जाती है। इसकी मारक क्षमता 25 किलोमीटर है।

4. **त्रिशूल (Trishul):-** सतह से हवा में मार करने वाला यह प्रक्षेपास्त्र 5.5 किलोमीटर उच्च शक्ति वाले खंडित विस्फोटकों की सुपुर्दगी की क्षमता रखता है। इस प्रक्षेपास्त्र का नौसैनिक प्रतिरूप समुद्र में चौकसी के कार्य में भी सक्षम है। यह इस्पात प्रवाह प्रकोष्ठ (Maraging steel flow chamber) में उच्च ऊर्जित प्रणोदक का प्रयोग कर दोहरे आधात प्रणोदक काल का प्रयोग करता है और कमांड निर्देशन पर कार्य करता है प्रारंभ में के-बैंड एकत्र करता है और फिर खोजी रडार को स्थानांतरित करता है। इसमें सभी ज्ञात जैमर के खिलाफ आवश्यक रूप से इलेक्ट्रानिक जवाबी उपाय होते हैं।

   त्वरित प्रतिक्रिया समय, उच्च आवृत्ति परिचालन, उच्च युद्ध कौशल, उच्च प्रहार क्षमता और तीनों सेनाओं के लिए बहुभूमिका से लैस कलात्मक (State of the art) प्रणाली है जो सशस्त्र बलों के लिए प्रचुर लाभ उपलब्ध कराती है। एक रडार तथा ऊँचाई मापी यंत्र की सहायता से यह समुद्र से 2 से 5 मीटर की ऊँचाई पर उड़ान भरने में भी सक्षम है। लक्ष्य की पहचान के लिए इसमें अवरक्त विकिरणों की निर्देशन प्रणाली (Infrared Guiding System) का प्रयोग किया गया है। वर्ष 2006 में यह परियोजना बंद कर दी गई है।

5. **नाग (Nag):-** यह एक कवच-रोधी हथियार है जिसे 4 किलोमीटर तक निर्देशित किया जा सकता है।

6. **धनुष (Dhanush):-** पृथ्वी के नौकायन संस्करण को धनुष की संज्ञा दी गई है। इसका पहला परीक्षण वर्ष 2000 में भारतीय पोत आई.एन.एस. सुभद्रा से किया गया था।

7. **सागरिका (Sagarika):-** भारतीय वैमानिकी विकास संस्थापन (Aeronautical Development Establishment, ADE) द्वारा 300 किलोमीटर की मारक क्षमता वाले इस क्रूज प्रक्षेपास्त्र का विकास किया जायेगा। यह आशा व्यक्त की गई है कि रूस की सहायता से विकसित की जाने वाली परमाणु शक्ति सम्पन्न पनडुब्बियों में इसका प्रयोग किया जायेगा।

8. **सूर्या (Surya):-** भारत द्वारा 5000 किलोमीटर की न्यूनतम मारक क्षमता वाले सूर्या नामक प्रक्षेपास्त्र का विकास किया जा रहा है। इसके एक चरण में द्रव प्रणोदक का प्रयोग किया जायेगा जो निम्नतापी ईंजन अथवा क्रायोजेनिक ईंजन तकनीक पर आधारित होगा। सूर्या के तीन संस्करण विकसित किये जाएंगे तथा तीसरे संस्करण की मारक क्षमता 20,000 किलोमीटर होगी। सूर्या ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचक यान (Polar Satellite Launch Vehicle, PSLV) की तकनीक पर आधारित होगा।

9. **बराक-** इजराइल से प्राप्त बराक मिसाइल प्रणाली एक प्रक्षेपास्त्ररोधी प्रणाली है। इसकी मारक क्षमता 12 किमी. तक है। यह ध्वनि वसे दोगुनी रफ्तार से आक्रमण करने में सक्षम है। यह प्रणाली युद्धपोतो को पनडुब्बियों से छोड़े जाने वाले प्रक्षेपास्त्रों से बचाती है। लम्बवत लांचर से छोड़ी जाने वाली यह मिसाइल 3600 तक घूम सकती है।

प्रक्षेपास्त्रों के विकास के क्रम में भारत द्वारा नई तकनीकों, विशेषकर स्क्रैमजेट ईंजन तकनीक का भी विकास किया जा रहा है। इस तकनीक द्वारा सुपर सॉनिक विमानों में ज्वलनशीलता को अधिक कार्यकुशल बनाया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त भारत द्वारा एक हाइपर सॉनिक प्रक्षेपास्त्र प्रणाली (अवतार) का भी विकास किया जा रहा है। अवतार की विशेषता यह होगी कि यह सामान्य वायुयानों की तरह क्षैतिज उड़ान भरने में सक्षम है तथा इसे एक अंतरिक्ष शटल की भांति एक से अधिक बार प्रयोग में लाया जा सकेगा। इसकी गति मैक-7 होगी जो ध्वनि की गति से सात गुणा अधिक है। इसे 30,000-40,000 किलोमीटर की दूरी तक प्रक्षेपित किया जा सकेगा। रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन के अनुसार, इस प्रकार के हथियार के निर्माण के लिए वायुगतिकी (Aerodynamics) तथा रैमजेट और स्क्रैमजेट ईंजनों का विस्तृत अध्ययन अनिवार्य है।

प्रक्षेपास्त्र तकनीक के नये आयाम (Recent Aspects of Missile Technique)

समन्वित निर्देशित प्रक्षेपास्त्र विकास कार्यक्रम में मिसाइल अथवा प्रक्षेपास्त्र तकनीक के विकास के अन्तर्गत जून 2001 में PJ-10

नामक प्रक्षेपास्त्र का सफल परीक्षण किया गया था। 280 किलोमीटर की मारक क्षमता वाले इस प्रक्षेपास्त्र को पनडुब्बियों से प्रक्षेपित किया जा सकता है तथा यह 300 सेकेंडों में अपने लक्ष्य तक पहुँचने की क्षमता रखता है। इस प्रक्षेपास्त्र को पृथ्वी की सतह या समुद्र में स्थापित किसी प्लेटफार्म से भी प्रक्षेपित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह अधिकांश यान आधारित प्रक्षेपास्त्रों तथा प्रक्षेपास्त्र रोधी हथियारों के विरूद्ध कार्य कर सकता है। भारत तथा रूस के मध्य हुये एक सामरिक समझौते के तहत उन्नत तकनीकी यान परियोजना (Advanced Technology Vehicle Project) का क्रियान्वयन किया गया है। इस क्रम में एक क्रूज प्रक्षेपास्त्र ब्रह्मॉस (BRAHMOS) का विकास किया गया है। इसका नाम भारत की ब्रह्मपुत्र और रूस की मॉस्को नदी के नाम पर रखा गया है।

भारत रूस की संयुक्त परियोजना ब्रह्मोस एक सुपर सोनिक क्रूज मिसाइल है और इसका प्रयोग जहाजों एवं जमीनी लक्ष्यों के खिलाफ किया जा सकता है। इसकी मारक क्षमता 300 किमी. है। जहाजों, पनडुब्बियों और हवाई जहाज एवं जमीनी वाहनों में तैनाती के लिए इस मिसाइल की बनावट बेजोड़ है।

प्रक्षेपास्त्र तकनीक नियंत्रण प्रणाली (Missile Technique Control Regime, MTCR)

राष्ट्रों का एक गैर-संधि संघ जो प्रक्षेपास्त्रों तथा ऐसी तकनीक को सीमित करने के उद्देश्य से बनाया गया है। इस संघ के प्रावधानों के अनुसार, सदस्य राष्ट्र को यह निर्देश दिया गया है कि वे प्रक्षेपास्त्रों का व्यक्तिगत स्तर पर आयात अथवा निर्यात नहीं करेंगे। लेकिन इन प्रावधानों में शांतिपूर्ण और अंतरिक्ष से संबंधित कार्यों के लिए प्रक्षेपास्त्रों के उपयोग को उचित ठहराया गया है। तकनीकी रूप से इस प्रणाली ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक केन्द्रीकृत संस्थागत ढांचे का निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त, इसके माध्यम से परमाणु हथियारों के वैश्विक प्रसार को भी रोकने की व्यवस्था की गई है।

आयुध कारखाना बोर्ड (Ordnance Factories Board)

राज्याध्यक्ष समिति की सिफारिशों के आधार पर बोर्ड का गठन वर्ष 1979 में रक्षा उत्पादन और आपूर्ति विभाग के अधीन किया गया है जिसका मुख्य उद्देश्य रक्षा संबंधी उपकरणों (हार्डवेयर) का निर्माण है। वर्तमान में भारत में बोर्ड के अधीन कुल 39 आयुध कारखाने कार्यरत हैं। बिहार के नालंदा जिले में एक नये आयुध कारखाने का निर्माण किया जा रहा है। इन कारखानों में महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश में दस-दस, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु में 6-6, पश्चिम बंगाल में 4 तथा आंध्र प्रदेश, उड़ीसा और चंडीगढ़ में 1-1 कारखाने अवस्थित हैं। हाल ही में बोर्ड के अधीन अम्बाझारी (नागपुर)-स्थित आयुध कारखाना स्टाफ कॉलेज तथा नागपुर और कानपुर में अवस्थित एक-एक अस्पतालों को ISO 9000 प्रमाणन प्रदान किया गया है जो उनकी गुणवत्ता का परिचायक है।

रक्षा उपक्रम

हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (एच.ए.एल.)

यह रक्षा सार्वजनिक क्षेत्र का एक 'नवरत्न' उपक्रम है। एयरोस्पेस क्षेत्र में रणनीतिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने तथा रक्षा सेवाओं को पूरा सहयोग प्रदान करने के लिए कंपनी प्रतिबद्ध है। इसके कोर व्यवसाय में शामिल हैं-डिजाइन, फिक्स विंग एयरक्राफ्ट तथा हेलीकाप्टर (लड़ाकू, प्रशिक्षण तथा परिवहन) का विकास और उत्पादन, उनकी सहायक सामग्रियां, लाइफसाइकल ग्राहक सेवा, एयरोस्पेस उत्पादों की मरम्मत तथा ढांचे का निर्माण तथा स्पेस लांच व्हीकल और सेटेलाइट के लिए एकीकृत प्रणाली का उत्पादन।

भारत इलेक्ट्रॉनिक लिमिटेड (बीईएल)-

बेल रडार तथा सोनार, संचार उपकरण, ऑप्टो इलेक्ट्रॉनिक्स, इलेक्ट्रॉनिक वारफेयर, टेंक इलेक्ट्रॉनिक्स तथा रणनीतिक भागों के क्षेत्र में मजबूत उपस्थिति के साथ बहु-प्रौद्योगिक, बहु-उत्पादन कंपनी है। यह कंपनी सुरक्षा बलों सहित इंडिया रेडियों, दूरदर्शन, बी.एस.एन.एल, एम.टी.एन.एल, वी.एस.एन.एल, एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया जैसे सरकारी संस्थानों को इलेक्ट्रानिक उपकरण की आपूर्ति करती है।

भारत अर्थ मवर्स लिमिटेड (बी.ई.एम.एल.लि.)

यह कंपनी खनन और निर्माण उपकरणों, रक्षा उत्पादों, रेलवे तथा मेट्रो उत्पादों की डिजाइन, निर्माण विपणन तथा बिक्री बाद सहयोग के क्षेत्र में सक्रिय है। कंपनी अपने व्यापार विभाग के जरिए तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजारों के लिए अपनी प्रौद्योगिकी तथा गैर कंपनी उत्पादों हिस्सों, एकत्रीकरण तथा कमोडिटियों के माध्यम से ई-इंजीनियरिंग समाधान मुहैया कराती है।

मझगांव डॉक लिमिटेड

मझगांव डॉक लिमिटेड(एस.डी.एल.) ने चरणबद्ध विस्तार/ विकास कार्यक्रमों को करके आज देश का एक प्रमुख जलायान निर्माता के रूप में उभरा है जो युद्धपोतों, वाणिज्यिक जलयानों एवं पनडुब्बियों को बनाने में सक्षम है। यहाँ स्टिल्थ फ्रिग्रेटों, प्रक्षेपास्त्र विध्वंसक एवं स्कॉर्पिन श्रेणी की पनडुब्बियां बनाई जा रही हैं।

गोवा शिपयार्ड (जी.एस.एल.)

गोवा शिपयार्ड लिमिटेड जो एक मिनी रत्न श्रेणी एक कंपनी है भारतीय नौसेना, भारतीय तट रक्षक बल और अन्य के लिए मध्य आकार के अत्याधुनिक यानों का निर्माण करने वाले प्रमुख शिपयार्डो में से एक है। कंपनी ने क्षति नियंत्रण सिमुलेटर (डीसीएस) के निर्माण, समुद्र प्रशिक्षण सुविधा में उत्तरजीविता, स्टर्न गियर प्रणाली का विपणन एवं ग्लास प्रवलित प्लास्टिक नौका का निर्माण एवं तट आधारित परीक्षण सुविधा के निर्माण क्षेत्र में अपने कार्यों का विस्तार किया है।

मार्डन रीच शिपबिल्डर्स एंड इंजीनियर्स लिमिटेड (जी.आर.एस.ई.)

गार्डन रीच शिपबिल्डर्स एंव इंजीनियर्स लिमिटेड, जिसे मिनी रत्न श्रेणीख्प्ए का दर्जा प्राप्त है, को अग्रणी पोत निर्माता यार्ड एवं उच्च मूल्य, उच्च प्रौद्योगिकी, जटिल इंजीनियरी सामान के उत्पादनकर्ता के रूप में जाना जाता है। कंपनी अग्रणी अंतर्राष्ट्रीय पोत निर्माता, पोत मरम्मतकर्ता एवं जलयान में लगाए जाने वाले मशीनरी एवं प्रणालियों की विनिर्माता है। समग्र पोत निर्माण, कुल उत्पादन मूल्य का 85 प्रतिशत है जबकि इंजीनियरिंग एवं इंजन डिवीजन शेष 15 प्रतिशत का योगदान देता है।

रडार तकनीक (Radar Technique)

रडार का अर्थ रेडियो डिटेक्शन एण्ड रेन्जिंग है। माइक्रोवेव ऊर्जा का संप्रेषण स्पंदों के रूप में एक संश्लेषित रंध्रीय रडार (Synthetic Aperture Radar) द्वारा किया जाता है जिसकी सहायता से एन्टिना तक वापस आने वाली ऊर्जा की शक्ति तथा समय अवरोध की जानकारी प्राप्त की जाती है। इस प्रकार एक रडार प्रणाली से वायुमंडलीय वस्तु अथवा पिंड की विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है। एक दूरबीन की तुलना में रडार प्रणाली अधिक सटीक है। वस्तुत: रडार और दूरबीन में कई गुण एक समान होते हैं। इन दोनों की दृश्य क्षमता सीमित होती है तथा उन्हें संदर्भ समन्वय प्रणाली (Reference Coordination System) की आवश्यकता होती है। इसी के माध्यम से दोनों वस्तुओं अथवा पिंडों की जानकारी प्राप्त करते हैं।

हांलाकि रडार प्रणाली से संबंधित सिद्धांतों की जानकारी पहले भी उपलब्ध थी लेकिन इलेक्ट्रॉनिक्स के क्षेत्र में हुये क्रांतिकारी परिवर्तनों ने इस प्रणाली के अवयवों तथा संकल्पनाओं में भी व्यापक सुधार किये हैं। वस्तुत: द्वितीय विश्व युद्ध ने रडार प्रणाली के विकास को नया आयाम दिया था। वर्तमान रडार प्रणालियों का उपयोग सतही या वायुमंडलीय वस्तुओं अथवा पिंडों की पहचान तथा उनकी दूरी, दिशा, ऊँचाई तथा गति से संबंधित सटीक सूचना प्राप्त करने में किया जाता है। इसके अतिरिक्त, निर्देशित प्रक्षेपास्त्रों तथा बंदूक प्रणालियों के मार्गदर्शन में भी रडार का उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। साथ ही, लंबी दूरी वाले स्थानों पर चौकसी विमान या जलयान संचालन सूचना तथा मौसम पूर्वानुमान के क्षेत्र में भी रडार का उपयोग किया जा रहा है। भारत में रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन के अलावे बंगलौर स्थित इलेक्ट्रॉनिक तथा रडार विकास संस्थापन (Electronic and Radar Development Establishment, ERDE) तथा हैदराबाद स्थित इलेक्ट्रॉनिक अनुसंधान विकास प्रयोगशाला (Electronic Research Development Laboratory, ERDL) द्वारा विभिन्न प्रकार की रडार प्रणालियों का विकास किया जाता है। उदाहरण के लिए, राजेन्द्र नामक रडार का प्रयोग आकाश नामक प्रक्षेपास्त्र में किया गया है। इसी प्रकार रानी, रश्मि, अपर्णा आदि रडार प्रणालियां संचालन संबंधी कार्यों के लिए प्रयुक्त होती हैं। साथ ही, भारत ने कम ऊँचाई

पर उड़ने वाले विमानों की जानकारी प्राप्त करने के लिए अत्याधुनिक इन्द्र नामक रडार प्रणाली का विकास भी किया है।

रडार प्रणाली इलेक्ट्रॉनिक्स के सिद्धांत पर कार्य करती है जो ध्वनि तरंगों के परावर्तन के सिद्धांत के समान है। रेडियो आवृति के रूप में ऊर्जा का संप्रेषण किया जाता है। इसका परावर्तन परावर्तक वस्तु अथवा पिंड से रडार सेट तक होता है। इस परावर्तित ऊर्जा को प्रतिध्वनि कहते हैं। रडार प्रणाली द्वारा ऐसी प्रतिध्वनि के आधार पर वस्तु अथवा पिंड की अवस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

उपयोगिता के आधार पर रडार प्रणालियां कई प्रकार की होती हैं-

1. विमान वाहित प्रणाली (Airborne Radar)
2. डॉप्लर ऊँचाई मापक (Doppler Altimeters)
3. मौसम पूर्वनुमान और चेतावनी (Weather Forecast & Warning)
4. भूपृष्ठ मानचित्रीकरण (Terrain Mapping)
5. मित्र तथा दुश्मन की पहचान (Identification of friend or foe)
6. सतह आधारित (Ground based)
7. चौकसी (Surveillance)
8. ऊँचाई मापक (Height Finding)
9. प्रक्षेपास्त्र निर्देशन (Missile Guidance)

उल्लेखनीय है कि पहले अन्तर्राष्ट्रीय रडार सम्मेलन का आयोजन भारत में अक्तूबर 1983 में किया गया था। इस सम्मेलन में रडार प्रणाली की उपयोगिता के विस्तार के विषय पर गहन चर्चा की गई। इसके बाद दिसम्बर 1999 में पुन: ऐसे ही एक सम्मेलन में अनुसंधान और विकास कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया गया था। साथ ही, रडार की नई तकनीकों के विकास को भी प्रोत्साहित करने के विषय पर चर्चा की गई।

मुख्य युद्ध टैंक, अर्जुन (Main Battle Tank, Arjun)

भारत को एक अत्याधुनिक मुख्य युद्ध टैंक के विकास में सफलता प्राप्त हुई है। इसके प्रमुख अभिलक्षणों में उच्च क्षमता, गतिशीलता तथा उच्च स्तरीय सुरक्षा महत्वपूर्ण हैं। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसमें शक्ति-भार अनुपात अनुकूलतम स्तर पर है जिससे इसका कार्य निष्पादन उच्च स्तरीय है। इसका विकास रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन (Defence Research and Development Organisation, DRDO) और अवाडी-स्थित लड़ाकू वाहन अनुसंधान और विकास संस्थापन (Combat Vehicle Research and Development Establishment, CVRDE) द्वारा किया गया है। अर्जुन की एक अन्य विशेषता यह है कि चालक अंधेरे में भी अपने लक्ष्य को देख सकता है। इसका कारण इसमें थर्मल इमेजरी (Thermal Imagery) नामक युक्ति का प्रयोग है। 58.5 टन भार वाला यह टैंक लगभग 35 डिग्री की ढ़ाल पर सरलतापूर्व चल सकता है तथा अन्य टैंकों के विपरीत चलते समय भी इसकी मारक क्षमता विद्‌यमान रहती है। चालक की सुरक्षा के लिए इसके भीतरी भाग को अत्यन्त सुदृढ़ बनाया गया है। इस युक्ति को कंचन कहते हैं।

हल्का लड़ाकू विमान (Light Combat Aircraft)

स्वदेशी तकनीक से निर्मित हल्के लड़ाकू विमान के निर्माण से भारतीय वायुसेना की कार्यकुशलता में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। यह विमान सभी प्रकार की मौसमी दशाओं में कार्य करने में पूर्णत: सक्षम है। साथ ही, यह हवा से हवा, हवा से सतह और हवा से समुद्र की ओर वार करने में सक्षम है। वस्तुत: स्वदेशी तकनीक से निर्मित यह भारत का पहला सैन्य उपकरण है। इस परियोजना को 1983 में संकल्पित किया गया था लेकिन बड़े पैमाने पर वर्ष 1993 से इस पर कार्य आरंभ किया गया। यान के ढ़ाँचे का 40 प्रतिशत से अधिक भाग अल्युमिनियम, लिथियम और टिटैनियम के मिश्र धातु से निर्मित है जबकि इसके पंखों तथा हवाई ब्रेकों का निर्माण

कार्बन सम्मिश्र से किया गया है। यह तकनीक ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचक यान से विकसित की गई है। आर्थिक दृष्टिकोण से सबसे कम कीमत वाले इस बहुमुखी लड़ाकू विमान की तुलना अमरीका के एफ-16, स्वीडन के जे.ए.एस.-9 तथा ब्रिटेन के टायफून से की जा सकती है।

विमान के पंखों के लिए डेल्टा विंग कन्फ्यूगिरेशन तकनीक प्रयुक्त हुई है जिसके तहत उर्ध्वाकार पंखों का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें उन्नत डिजिटल कॉकपिट, डिजिटल उड़ान प्रणाली तथा बहुआयामी रडार प्रणाली का भी उपयोग किया गया है। विमान की प्रायोगिक उड़ान में 1980 में किये गये भारत-अमरीका समझौते के तहत प्राप्त 11 GE-404 इंजनों में से एक इंजन का प्रयोग किया गया था। ध्यातव्य है कि वर्ष 1998 में भारत द्वारा परमाणु परीक्षण करने पर इस समझौते को रद्द कर दिया गया था। आगामी वर्षों में GE-404 इंजनों के स्थान पर कावेरी नामक इंजन का प्रयोग किया जायेगा। इस इंजन के आतंरिक भाग को काबिनी की संज्ञा दी गई है। इंजन पर कावेरी सम्पूर्ण अधिकार डिजिटल नियंत्रण इकाई (Kaveri Full Authority Digital Control Unit, KADCU) द्वारा निगरानी रखा जायेगा। इस विमान को पूर्ण रूप से वर्ष 2012 तक विकसित कर लिये जाने की संभावना है।

हेलीकॉप्टर ध्रुव (Advanced Light Helicopter-DRUV)

DRDO द्वारा विकसित हेलीकॉप्टर एक बहुउद्देशीय हेलीकाप्टर है। इसकी अधिकतम गति 250 किमी./घंटा है। इसके द्वारा जहाँ एक सामरिक उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। वहीं आपदा में सहायता भी उपलब्ध कराई जाती है।

सोनार प्रणाली (SONAR System)

सोनार का विस्तृत रूप साउंड नेविगेशन एण्ड रेंजिंग है। उच्च आवृत्ति वाले ध्वनि तरंगों की सहायता से जलमग्न वस्तुओं या पिंडों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना इस प्रणाली का मुख्य कार्य है। इसके अतिरिक्त समुद्र तल के मानचित्रीकरण तथा मछलियों की स्थानिक जानकारी प्राप्त करने का कार्य भी इसके द्वारा किया जा सकता है। रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन के निर्देशन में कई विशिष्ट सोनार प्रणालियां विकसित की गई हैं, जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं:

1. **उन्नत आवरण आरोपित सिंहावलोकन सोनार (Advanced Panoramic Sonar- Hull Mounted, APSOH)**:- यह एक पोत आधारित सोनार प्रणाली है जिसका विकास सक्रिय परास मापन (Active Ranging), निष्क्रिय श्रव्य सीमा (Passive Audio Limit), स्वमार्ग अवलोकन, लक्ष्य निर्धारण और वर्गीकरण के लिए किया गया है। इस सोनार प्रणाली के अन्य प्रतिरूपों का भी विकास करने में सफलता मिली है जिसे परिवर्तनीय गहराई सोनार प्रणाली कहते हैं। इसका मुख्य कार्य अतिरिक्त ट्रांसड्यूसरों (ऊर्जा के एक रूप को दूसरे रूप में रूपान्तरित करने वाली युक्ति) की सहायता से जलमग्न वस्तुओं एवं पिंडों के विभिन्न आयामों की जानकारी प्राप्त करना है।

2. **पंचेन्द्रिया (Panchendriya)**:- यह एक पनडुब्बी आधारित समन्वित सोनार प्रणाली है जिसे एक या दो रूपों में प्रयोग में लाया जा सकता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह 6 लक्ष्यों पर एक ही समय में निगरानी रखने में सक्षम है। इसमें एक सक्रिय सोनार, एक परास मापी सोनार तथा एक चौकसी सोनार प्रणाली का प्रयोग किया गया है। साथ ही, जलमग्न संचार व्यवस्था भी प्रयुक्त हुई है। इसे एक शक्तिशाली अग्नि नियंत्रण प्रणाली, पेरीस्कोप, रडार प्रणाली तथा हथियार नियंत्रक के साथ भी संबद्ध किया जा सकता है।

3. **हंसा (Hansa)**:- आवरण आरोपित सिंहावलोकन सोनार प्रणाली का यह एक अन्य प्रतिरूप है जिसमें दो बैंड वाली मध्यम दूरी की सोनार प्रणाली कार्य करती है। लघु तथा दीर्घ दूरियों तक चौकसी का कार्य करने के लिए इस सोनार द्वारा बहुसंप्रेषणीय तकनीक का उपयोग किया जाता है।

आई.एन.एस. सागरध्वनि (INS Sagardhwani)

इस युद्धपोत को चलित प्रयोगशाला की भी संज्ञा दी गई है। इसकी असाधारण क्षमताओं में प्रतिध्वनि ध्वनिकों (Echo Sounders)

उपग्रह संचालकों (Satellite Navigators), वैश्विक अवस्थान प्रणाली (Global Positioning System, GPS), डॉप्लर गति लॉग (Doppler Speed Log), संचालक कम्प्यूटर (Navigation Computer) तथा चुंबकीय एवं गायरो कंपास का प्रयोग किया गया है। सागरध्वनि द्वारा असैनिक और सैन्य उपयोगिताओं हेतु पर्यावरणीय सूचनाओं का संकलन किया जाता है। इस युद्धपोत में तीन विशिष्ट साफ्टवेयरों की सहायता से विभिन्न योजनाओं को मूर्त रूप प्रदान किया जाता है। सरप्लान (Surplan) नामक साफ्टवेयर की सहायता से पोत की जल यात्राओं की योजना का प्रारूप, ऑल्टेप (Oltap) से संचालन नियंत्रण और प्रोफाइल (Profile) से भूवैज्ञानिक और सामुद्रिक अध्ययन से संबंधित सूचनाओं का संकलन किया जाता है। इन साफ्टवेयरों की उपलब्धता के कारण सूचनाओं को चित्र के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। भारत सरकार के अनुसार, सागरध्वनि को सामुद्रिक विकास विभाग द्वारा समुद्री संसाधनों के सर्वेक्षण के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इससे सागर सम्पदा, सागर कन्या जैसे जलयानों को इस कार्य में सहायता मिलती है।

आई.एन.एस. मुम्बई और आई.एन.एस. किर्च (INS Mumbai & INS Kirch)

इन दो युद्धपोतों को 22 जनवरी 2001 को राष्ट्र को समर्पित किया गया था। इन दोनों में आई.एन.एस. मुम्बई निर्देशित प्रक्षेपास्त्र विध्वंसक है, जबकि आइ.एन.एस. किर्च को निर्देशित प्रक्षेपास्त्र कोरबिट कहते हैं। मुम्बई में 16 सतह से सतह तक मार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों, 100 मि.मी. की बंदूकों, 30 मि.मी. वाली गेटलिंग बंदूकों, टारपिडो तथा पनडुब्बी रॉकेटों के अतिरिक्त संवेदन सुविधा भी उपलब्ध है। इस पोत में खोज तथा आक्रमण की आशंकाओं से बचने के लिए विशेष प्रकार की तकनीकों का प्रयोग किया गया है जिसे गुप्त तकनीक (Stealth Technique) कहते हैं।

आई.एन.एस. अरिहंत

यह भारत की पहली परमाणु पनडुब्बी है। इसको शामिल करने से भारत विश्व का छठा देश है जिसको परमाणु पनडुब्बी निर्मित करने की क्षमता प्राप्त है। इस परियोजना का वर्ष 1984 में कार्य प्रारंभ किया गया था। यह 6000 टन क्षमता वाली पनडुब्बी है। सतह पर इसकी चाल 22-28 किमी./घंटा एवं पानी के अन्दर 44 किमी./घंटा है।

काली 5000 (KALI: Kilo Ampere Linear Injector)

यह भाभा एटोमिक रिसर्च सेंटर द्वारा विकसित की जा रही बीम प्रणाली है। इससे शक्तिशाली माइक्रोवेव तरंगें उत्सर्जित होगी जो विभिन्न सामरिक प्रणालियों की इलेक्ट्रानिक सूचनाओं को नष्ट करने में सक्षम होंगी।

निशांत और लक्ष्य (Nishant & Lakshya)

भारत ने निशांत नामक चालक विहीन विमान के विकास में सफलता प्राप्त कर ली है तथा इसका सफल परीक्षण भी किया जा चुका है। 45 किलोग्राम आयुध की भार वहन क्षमता वाले इस विमान के निर्माण का उद्देश्य लंबी दूरी वाले लक्ष्यों की टोह लेना है। इन तकनीकों के विकास में अन्य देशों की तुलना में भारत के प्रयास निश्चित रूप से सराहनीय हैं।

इसी क्रम में भारत ने लक्ष्य नामक चालक-रहित विमान का विकास भी किया है जो वैमानिकी विकास संस्थापना की एक उपलब्धि है। इन दोनों ही विमानों के विकास से युद्ध क्षेत्र में चौकसी करने तथा लक्ष्यों की टोह लेने में सहायता मिलती है।

पिनाका (Pinaka)

दुश्मन की सेना वाले क्षेत्रों तथा संचार प्रणालियों को ध्वस्त करने के उद्देश्य से पिनाक नामक बहुनाल रॉकेट प्रक्षेपक (Multibarrel Rocket Launcher) का विकास किया गया है। हालांकि इस परियोजना को 1980 के दशक में ही विकसित किया गया था लेकिन निकट भविष्य में इसके राष्ट्र को समर्पित किये जाने की संभावना है। 12 ठोस प्रणोदक वाले रॉकेटों के प्रमोचन का कार्य इस चलित प्रणाली द्वारा किया जा सकता है। इसका विकास शस्त्रीकरण अनुसंधान एवं विकास संस्थापन (Armament Research and Development

Establishment) द्वारा किया गया है। इस प्रणाली में पांच मिनट के अंतराल पर रॉकेटों का प्रक्षेपण किया जा सकता है।

इन्टरसेप्टर मिसाइल (Interceptar Missile)

एडवान्स ऐयर डिफेन्स की संकलपना के तहत भारत द्वारा अंतः वायुमंडलीय और बाह्य वायुमंडलीय इन्टरसेप्टर प्रक्षेपास्त्रों का चौथा सफल परीक्षण किया गया है जिसमें ठोस प्रणोदक प्रयोग में लाया गया था तथा इसकी क्षमता 30km तक की ऊचाई पर किसी प्रक्षेपास्त्रों के नष्ट करने की है। दूसरी ओर बाह्य वायुमंडलीय प्रक्षेपास्त्रों में ठोस प्रणोदक वाले दो चरण बनाए गए थे जो 80km की ऊचाई तक मार करने में सक्षम है।

इन्टरसेप्टर प्रक्षेपास्त्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इसमें मिसाइलों की स्थिति की जानकारी प्राप्त करने वाली स्वचालित तकनीक कार्य करती है। दूसरी ओर इसमें जड़त्व नौ वहन प्रणाली कार्य करती है। इस प्रणाली में दो मुख्य युक्तियाँ होती हैं-

1. **Accelerometer गति पर नियंत्रण के लिए**
2. **Gyroscope दिशा पर नियंत्रण के लिए।**

इसके अतिरिक्त एक इलेक्ट्रो ऑप्टिकल (वैद्युत प्रकाशकीय) प्रणाली भी लगाई गयी है जिसमें प्रकाश के पुंज पर उच्च आवृति वाले सूचना संकेतों को अंकित किया गया है जिसे एक फोटो डिटेक्टर और ट्रांसड्यूसर का प्रयोग करने वाले संग्राहक को सौपा जाता है। फोटो डिटेक्टर द्वारा प्रकाशीय पुंज की पहचान की जाती है जबकि ट्रांसड्यूसर द्वारा प्रकाश संकेतों को पुनः वैद्युत संकेतों में परिवर्तित कर दिया जाता है।

इस परीक्षण के बाद यह स्पष्ट है कि भारत हाइपरसोनिक इन्टरसेप्टर प्रक्षेपास्त्रों के विकास में सफल हो गया है।

प्रहार (Prahaar Missile)

DRDO सतह से सतह पर मार करने में सक्षम प्रहार मिसाइल का सफल परीक्षण 21 जुलाई 2011 को चाँदीपुर परीक्षण रेंज से किया। इस मिसाइल की मारक क्षमता 150 किमी० है। प्रहार विभिन्न प्रकार के वारहेड ले जा सकने में सक्षम मिसाइल है। यह संयुक्त राज्य अमेरिका की ATACMS (American TACtical Missile System) मिसाइल के समान है। यह मिसाइल पिनाका मल्टी बैरल राकेट (pinaka Multibrrel rocket) एवं मध्यम दूरी की मिसाइल पृथवी के मध्य उत्पन्न रिक्तता को पूर्ण करेगी। उल्लेखनीय है कि पिनाका की मारक क्षमता 40 किमी० एवं पृथ्वी मिसाइल की मारक क्षमता 250-350 किमी० है। 7.3 मी० लम्बी, 1280 किग्रा० भार एवं 420 मिमी० व्यास वाली यह मिसाइल 150 किमी० दूर स्थित लक्ष्य को भेदने से पहले 35 किमी० ऊपर जाती है। इस मिसाइल में ठोस ईधन को प्रयुक्त किया गया है। जिस कारण यह तरल ईधन प्रयुक्त कर सकने वाली मिसाइलों की तुलना में अधिक तीव्रता एवं सटीकता के साथ लक्ष्यों को भेदने में सक्षम है।

परीक्षण के दौरान 150 किमी० की दूरी को 250 सेकण्ड में पूरा करके कम से कम 10 मीटर की उच्च स्तर की सटीकता के साथ 'प्रहार मिसाइल' ने अपने लक्ष्य को सफलता पूर्वक भेदा।

यह परीक्षण इस रूप में भी महत्वपूर्ण है कि यह भारत की सुरक्षा प्रणाली में न्यूनतम निवारण क्षमता को सुदृढ़ता प्रदान करेगा।

भारत में ऊर्जा नीति (Energy Policy in India)

न्यूनतम में लागत पर ऊर्जा की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित करने, ऊर्जा आपूर्ति में आत्मनिर्भरता हासिल करने तथा गैर-न्यायसंगत तरीके से ऊर्जा स्रोतों के प्रयोग से पर्यावरण पर पड़ने वाले कुप्रभावों को रोकने के उद्देश्य से भारत सरकार ने ऊर्जा नीति बनाई है। इस ऊर्जा नीति को अल्पावधि, मध्यावधि और दीर्घावधि उपायों के अंतर्गत विभाजित किया गया है-

अल्पावधि नीतियाँ व उपाय

1. देश में उपलब्ध ऊर्जा क्षमता का सर्वोत्तम उपयोग करना।
2. ऊर्जा के परंपरागत स्रोतों के प्रयोग में वृद्धि करना।
3. ऊर्जा के सभी रूपों के अंतिम उपभोग, उत्पादन और परिवहन में तकनीकी हानियों को घटाने के लिए पहल करना।
4. ऊर्जा का संरक्षण और उचित प्रबंधन करना।
5. ग्रामीण समुदायों को ऊर्जा आवश्यकताओं को पूर्ण करने हेतु ऊर्जा के पुनः प्रयोग किए जा सकने वाले गैर परंपरागत स्रोतों का विकास करना।
6. ऊर्जा उपभोग में व्याप्त असमानताओं को कम करने हेतु ग्रामीण और शहरी परिवारों की मूलभूत ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक कदम उठाना।
7. ऊर्जा के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न स्तरों पर कार्यरत तकनीकी कर्मियों को उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

मध्यावधि नीतियाँ

1. कोयला, लिग्नाइट, प्राकृतिक गैस और विद्युत के द्वारा पेट्रोलियम उत्पादों के प्रतिस्थापन की दिशा में पहल करना ताकि तेल आयातों की मात्रा सीमित हो सके।
2. पुनः प्रयोग में लाए जा सकने वाले ऊर्जा स्रोतों के क्षेत्र में किए जाने वाले अनुसंधान और विकास कार्यों को प्रोत्साहन देना।
3. जल विद्युत क्षमता के तीव्र विकास के लिए प्रारम्भिक उपाय करना।
4. ऊर्जा क्षेत्र में आत्मनिर्भरता लाने के लिए विशेष कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना।
5. सम्पूर्ण ऊर्जा रणनीति के साथ विभिन्न उपक्षेत्रों में उपयुक्त संगठनात्मक परिवर्तनों की पहल करना।

दीर्घावधि नीतियाँ व उपाय

1. पुनः प्रयोग में लाए जा सकने वाले ऊर्जा संसाधनों पर आधारित एक ऊर्जा आपूर्ति प्रणाली को संवर्धित करना।

2. ऊर्जा के उत्पादन, पारेषण और अंतिम उपभोग की ऐसी तकनीकों को प्रोत्साहित करना जो पर्यावरणीय रूप से लाभकारी और लागत प्रभावी हों।

समेकित ऊर्जा नीति (Integrated Energy Policy)

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने देश के लिए समेकित ऊर्जा नीति को 26 दिसम्बर, 2008 को मंजूरी प्रदान की। समेकित ऊर्जा नीति का उद्देश्य आगामी 25 वर्षों में 9 प्रतिशत विकास दर के लिए आवश्यक ऊर्जा उपलब्धता की योजना बनाना और नए स्रोतों की तलाश करना है। समेकित ऊर्जा नीति की आवश्यकता इसलिए महसूस की जा रही थी, क्योंकि वर्तमान में पेट्रोलियम, गैस, कोयला, परमाणु ऊर्जा एवं गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों के लिए अलग-अलग मन्त्रालय हैं, जो अपनी नीतियां अलग-अलग बनाते हैं। इस कारण ऊर्जा संसाधन के सम्पूर्ण दोहन में आने वाली समस्या को देखते हुए वर्ष 2006 में योजना आयोग के सदस्य किरीट पारिख की अध्यक्षता में एक समित गठित कर उसे एक समेकित ऊर्जा नीति बनाने का कार्य सौंपा गया। योजना आयोग द्वारा तैयार की गई नई समेकित ऊर्जा नीति का मुख्य लक्ष्य देश भर में ऊर्जा सेवाओं की मांग को कम लागत पर विश्वसनीय व स्वच्छ ऊर्जा उपलब्ध कराना है। इस नई ऊर्जा नीति की कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. निर्धारित अवधि में टिकाऊ विकास प्राप्त करने के लिए ऊर्जा सुरक्षा के लिए एक 'रोडमैप' तैयार करना।
2. ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु देश में उपलब्ध ऊर्जा संसाधनों के दोहन के अतिरिक्त देश से बाहर भी ऊर्जा की सम्भावनाओं की खोजपर विशेष बल।
3. विदेशों में परमाणु ईंधन का रणनीतिक भण्डार स्थापित करने के साथ ऊर्जा सम्पदा का अधिग्रहण करना ताकि ऊर्जा सुरक्षा को अधिक से अधिक सुनिश्चित किया जा सके।
4. सार्वजनिक क्षेत्र की ऊर्जा कम्पनियों की स्वायत्तता से दक्षता बढ़ा सकें।
5. ऊर्जा बाजार को और अधिक प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए बाजार द्वारा निर्धारित मूल्य को लागू करना, पारदर्शिता के साथ संसाधन आवंटन और लक्षित सब्सिडी वितरण वर्द्धमान दक्षता भी नीति का लक्ष्य है।
6. समेकित ऊर्जा नीति के कार्यान्वयन की स्थिति की समीक्षा हेतु मंत्रिमण्डलीय सचिव की अध्यक्षता में एक निगरानी समिति गठित की जाएगी।
7. संवर्द्धित आपूर्ति में निवेश बढ़ाने हेतु उचित ऊर्जा मूल्य का उल्लेख।

राष्ट्रीय विद्युत नीति, 2005

केन्द्र सरकार द्वारा फरवरी, 2005 में विद्युत अधिनियम, 2003 में परिकल्पित राष्ट्रीय विद्युत नीति को तैयार कर 12 फरवरी, 2005 को जारी किया गया। इस विद्युत नीति में विद्युत ऊर्जा क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा बढ़ाने, गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले विद्युत उपभोक्ता को लक्षित सब्सिडी, निजी निवेश आकर्षित करने तथा ग्रामीण विद्युतीकरण संबंधी दिशा निर्देश का उल्लेख है। ग्रामीण क्षेत्रों में 24 घंटे बिजली आपूर्ति सम्भव बनाने के लिए इस नीति में विश्वसनीय ग्रामीण विद्युतीकरण प्रणाली निर्मित करने का प्रावधान है। इसके तहत प्रत्येक गांव में एक वितरण ट्रांसफर्मर स्थापित किया जाएगा।

उद्देश्य

1. अगले पांच वर्षों में सभी घरों में बिजली उपलब्ध कराना।
2. 2012 तक बिजली की मांग की उपलब्धता को पूरा करना। ऊर्जा और व्यस्ततम समय की कमियों को दूर करना तथा विशेष रिजर्व उपलब्ध कराना।
3. विश्वसनीय और विनिर्दिष्ट मानकों वाली बेहतर बिजली की तर्कसंगत दरों पर सक्षम तरीके से आपूर्ति।

4. बिजली की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 2012 तक 1000 यूनिट से अधिक बढ़ाना।
5. वर्ष 2012 तक 1 यूनिट प्रति घर प्रतिदिन की न्यूनतम जीवन के लिए अनिवार्य खपत को पात्रता के रूप में लागू करना।
6. बिजली क्षेत्र की वित्तीय सुदृढ़ता और वाणिज्यिक सक्षमता में वृद्धि करना।
7. उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण।

अल्ट्रा मेगा विद्युत परियोजनाएं (Ultra Mega Power Projects)

संयुक्त राज्य अमेरिका के सहयोग से भारत सरकार ने कोयला आधारित अल्ट्रा मेगा विद्युत परियोजना के विकास के लिए पहल शुरू की है, जिसमें से प्रत्येक परियोजना की क्षमता 4000 मेगावाट अथवा उससे अधिक है। मूलत: केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण द्वारा प्रस्तावित यूएमपीपी के लिए नौ राज्यों को चुना गया है। इन नौ राज्यों के निम्नलिखित स्थानों पर अल्ट्रा मेगा पावर परियोजना स्थापित होनी है- सासन (मध्य प्रदेश), मुंद्रा (गुजरात), कृष्णपट्टनम (आंध्र प्रदेश), तिलैया (झारखंड), गिरयी (महाराष्ट्र), तादरी (कर्नाटक), साल्का खमेरिया, सरगुजा (छत्तीसगढ़) सुन्दरगढ़ (उड़ीसा), येच्चूर और मरक्कनम (तमिनाडु)।

आंध्र प्रदेश के अल्ट्रा मेगा पावर प्रोजेक्ट के लिए न्यूनीपल्ली में स्थल का चुनाव किया गया है और आंध्र प्रदेश सरकार ने इसे अनुमोदित कर दिया है।

गैर परपंरागत ऊर्जा स्रोत (Non–Conventional Energy Sources)

बायोगैस (Biogas)

यह गैस जीवों के उत्सर्जित पदार्थों (मुख्यत: मवेशियों के गोबर) से प्राप्त की जाती है। इस गैस में 55 से 65 प्रतिशत तक मीथेन, 35 से 40 प्रतिशत कार्बन डाई ऑक्साइड तथा अन्य गैसों की कुछ मात्रा होती है। इसके निर्माण के लिए एकत्रित अवशिष्ट पदार्थों को कम ताप पर विशेष प्रकार से निर्मित डाइजेस्टर में चलाकर माइक्रोब प्राप्त किए जाते हैं, जिनसे ऊर्जा मिलती हैं। चूँकि भारत में मवेशियों की संख्या विश्व में सर्वाधिक है। अत: यहाँ बायोगैस के विकास की बहुत संभावना है। बायोगैस से ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त बहुत उत्तम गुणवत्ता की कार्बनिक खाद भी प्राप्त होती है तथा ग्रामीण इलाकों में पर्यावरण की सफाई में भी सहयोग मिलता है। इसका प्रमुख उपयोग ग्रामीण इलाकों में भोजन पकाने के ईंधन के रूप में तथा प्रकाश की व्यवस्था करने में किया जा रहा है।

राष्ट्रीय बायोगैस विकास कार्यक्रम (National Biogas Development Programme)

बायोगैस संयंत्रों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से इस कार्यक्रम को 1981–82 में प्रारंभ किया गया। इस कार्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य हैं–

1. ग्रामीण इलाकों में स्वच्छ तथा सस्ते ऊर्जा स्त्रोत उपलब्ध कराना।
2. रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग में पूरक के रूप में समृद्ध जैविक खाद तैयार करना।
3. सफाई व स्वच्छता की स्थिति सुधारना और स्त्रियों को उबाऊ काम से मुक्ति दिलाना।

इस कार्यक्रम के अंतर्गत तीन प्रकार के डिजाइनों वाले बायोगैस संयंत्र बनाए जा रहे हैं। ये हैं–खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड के तैरते हुए ड्रम वाला संयंत्र, रबडयुक्त नाइलोन के कपड़े से बना संयंत्र तथा थैलानुमा डाइजेस्टर संयंत्र। इन संयंत्रो को स्थापित करने से पूर्व इतनी सावधानी रखनी पड़ती है कि संयंत्र के 15 मीटर की परिधि में कोई पेयजल स्त्रोत नहीं होना चाहिए।

अनुसंधान एवं विकास तथा प्रौद्योगिकी में सुधार के द्वारा ऐसे का डिजाइन तैयार किया जा रहा है जिनका उपयोग कम तापमान पर किया जा सके और या शीत जलवायु वाले इलाकों को भी इसके उपयोग का लाभ पहुंचाया जा सके। संयंत्रों में जल की आवश्यकता को भी कम किया जा रहा है तथा रख रखाव को भी और अधिक आसान बनाने के प्रयास जारी हैं। अधिक से अधिक लोगों तक इसका लाभ पहुंचाने के लिए और छोटे बायोगैस संयंत्र का डिजाइन तैयार किया जा रहा है।

बायोमास ऊर्जा (Biomass Energy)

देश के ग्रामीण इलाकों में ईंधन का प्रमुख स्त्रोत लकड़ी तथा उसके बाद कृषि अवशिष्ट पदार्थ है। ये सभी बायोमास के अंतर्गत आते हैं तथा इन्हें जलाने से ऊर्जा की प्राप्ति होती हैं अर्थात् बायोमास जैव ऊर्जा का एक स्रोत हैं। बायोमास को सीधे ही अकुशल रूप में जलाने की सामान्य पद्धति से कम ऊर्जा की प्राप्ति होती हैं तथा प्रदूषण फैलाने से मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः बायोमास के अधिक कुशल व वैज्ञानिक तकनीक से जैवाण्विक संवर्द्धन द्वारा मीथेन निर्माण कर अथवा यीस्ट फर्मेंटेशन द्वारा इथेनॉल का निर्माण कर ऊर्जा प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

इसके अंतर्गत दो प्रमुख घटक हैं- बायोमास ब्रिकेटिंग और बायोमास गैसीकरण। ब्रिकेटिंग कार्यक्रम के तहत कृषि, वन एवं औद्योगिक अवशिष्टों से बायोमास पिंड का निर्माण होता है। अनुमान है देश में प्रतिवर्ष लगभग 14.5 करोड़ टन फालतू कृषि अवशिष्ट उपलब्ध हैं, जिसे पिंडों में परिवर्तित करके लगभग 19,500 मेगावाट ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है। बायोमास गैसीकरण कार्यक्रम के तहत औद्योगिक उपयोगों के लिए ताप ऊर्जा उत्पन्न करने, पानी की पंपिंग और विद्युत पैदा करने के लिए बायोमास गैसीफायर के तीन किलोवाट से 500 किलोवाट तक की क्षमता वाले 12 डिजाइन तैयार किए गए हैं। इन गैसीफायरों में लकड़ी के टुकड़े, नारियल के खोलों आदि बायोमास का प्रयोग किया जाता है। 500 किलोवाट क्षमता का एक गैसीफायर पश्चिम बंगाल के सुंदरवन द्वीप में कार्यरत है। तमिलनाडु के कुन्नूर स्थित फैक्टरी में चाय की पत्तियों को सुखाने के लिए तथा कर्नाटक के तुम्कुर जिले के एक गांव में विद्युतीकरण के लिए गैसीफायर का उपयोग किया जा रहा है।

सौर ऊर्जा (Solar Energy)

सूर्य, ऊर्जा का सबसे अधिक प्रत्यक्ष एवं विशाल स्रोत है। यह पृथ्वी पर वायु प्रवाह तथा जल चक्र की निरंतरता बनाए रखने के लिए आवश्यक शक्ति प्रदान करता है तथा समस्त जीवन को संपोषित करता है। पौधे सौर ऊर्जा का उपयोग करते हुए प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा अपना भोजन तैयार करते हैं और इसी भोजन के द्वारा इस पृथ्वी पर मानव तथा अन्य जंतुओं का संपोषण होता है। सूर्य के क्रोड में हाइड्रोजन के नाभिक अत्यधिक तीव्र गति से गतिशील रहते हैं। जब ये नाभिक परस्पर संलयित होकर अधिक द्रव्यमान वाले तत्वों के नाभिक बनाते हैं, तब अत्यधिक परिमाण में ऊर्जा विमोचित होती है। यही वह सौर ऊर्जा है जो सूर्य से विकिरण द्वारा फोटॉन के रूप में पृथ्वी पर हमें प्राप्त होती है। पृथ्वी के वायुमंडल की ऊपरी सतह का प्रत्येक वर्ग मीटर लगभग 1.36 जूल सौर ऊर्जा प्रति सेकेण्ड प्राप्त करता है।

सौर तापीय ऊर्जा (Solar Thermal Energy)

सौर ऊर्जा को तापीय ऊर्जा में बदलने के लिए सौर संग्राहकों एवं रिसीवरों का प्रयोग किया जाता है। सौर ताप यंत्रों को तीन वर्गों में बांटा गया हैं ये हैं- 1. निम्न ग्रेड यंत्र ($<100^0$C) 2. मध्यम ग्रेड यंत्र (100^0C-300^0C) 3. उच्च ग्रेड यंत्र ($>300^0$C)। सौर संग्राहकों और उन्नत डिजाइन वाले रिसिवरों के मदद से सौर ऊर्जा द्वारा 1000 डिग्री सेल्सियस तक के तापमान पर वाष्प उत्पन्न की जा सकती है। सौर ताप यंत्रों का प्रयोग पानी गरम करने, भोजन पकाने, पानी को लवणमुक्त करने, स्थान गरम करने औद्योगिक ताप प्रक्रिया एवं विद्युत उत्पादन उपयोगों हेतु वाष्प उत्पन्न करने तथा रेफ्रीजरेशन प्रणालियों के परिचालन आदि के लिए किया जाता है निम्न ग्रेड सौर ताप यंत्रों जैसे सौर वाटर हीटर, सोलर कुकर, सौर ड्रायर आदि का भारत द्वारा स्वदेशी तकनीक से 50 लीटर प्रतिदिन से लेकर 20000 लीटर प्रतिदिन तक की सौर जल उष्मन क्षमता वाले सौर ताप यंत्रों का देश में विकास किया जा चुका है तथा इनका घरेलू, वाणिज्यक और औद्योगिक उपयोग किया जा रहा है। राजस्थान के जोधपुर जिले में मथानिया गांव में 140 मेगावाट की एक समन्वित सौर संयुक्त चक्र बिजली सहित 35 मेगावाट की पहली सौर ताप ऊर्जा प्रणाली की स्थापना की गई। खाना बनाने के लिए विश्व की सबसे बड़ी सौर वाष्प प्रणाली आंध्र प्रदेश में तिरूमला में स्थापित की गई है, जिससे 15,000 लोगों का भोजन एक साथ बनाया जा सकता है। सौर तापीय ऊर्जा के उपयोग को प्रोत्साहन देने के लिए किए जाने वाले कुछ कार्य निम्न हैं-

1. इमारतों में सौर अनुकूल वास्तुकला का प्रयोग करने का प्रयास करना।
2. शीत जलवायु क्षेत्रों में सब्जियों, फूलों आदि के उत्पादन के लिए ग्रीन हाउस प्रौद्योगिकी का विकास करना।

3. प्रमुख शहरों में आदित्य सौर दुकान का खोला जाना ताकि सौर ताप उपकरणों की ब्रिक्री, उनके रख-रखाव व मरम्मत तथा सूचना के वितरण का कार्य किया जा सके।

सौर ऊर्जा केन्द्र (Solar Energy cencre)

यह दिल्ली के समीप हरियाण में ग्वाल पहाड़ी पर स्थित है, जो भारत में सौर ऊर्जा अनुसंधान विकास एवं प्रोत्साहन के प्रति समर्पित शीर्ष संस्थान है। यह केन्द्र सौर ऊर्जा उत्पादों के परीक्षण और प्रमाणीकरण के लिए राष्ट्रीय संस्था के रूप में कार्य करता है तथा विकासशील देशों के समूह (जी-15) के बीच सौर ऊर्जा के क्षेत्र में सहयोग के लिए समन्वय करने के साथ ही अंतरराष्ट्रीय गतिविधियों में भाग लेता है।

सौर फोटोवोल्टाइक ऊर्जा

सौर ऊर्जा को फोटोवोल्टाइक सोलर सेलों द्वारा सीधे विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है। ये फोटोवोल्टाइक सेल अति ऊर्जा विशुद्ध पॉली क्रिस्टलाइन सिलिकॉन से बनाए जाते हैं। सिलिका पृथ्वी की पर्पटी में बड़ी मात्रा में पाया जाने वाला तत्व हैं, परन्तु पॉली क्रिस्टलाइन सिलिकॉन की पूंजीगत लागत अधिक होने से यह अपेक्षाकृत महंगी तकनीक है। अत: पूंजीगत लागत खर्च को कम करने के उद्देश्य से थिन फिल्म एमाफस सिलिकॉन (TFAS: Thin Film Amorphous silicon) के प्रयोग हेतु अनुसंधान किया जा रहा है। सौर फोटोवोल्टाइक प्रौद्योगिकी का आधारभूत सिद्धांत प्रकाश विद्युत प्रभाव है। इस प्रौद्योगिकी में विद्युत उत्पादन के लिए टरबाइन आदि चालक पुर्जो के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती। एकल सिलिकॉन क्रिस्टल सौर सेलों पर आधारित कई यंत्रों के निर्माण किए गए हैं। इनका प्रमुख उपयोग सौर लालटेन, घर एवं सड़क पर प्रकाश व्यवस्था सौर पंप, सामुदायिक प्रकाश व्यवस्था, रेल सिग्नल, अपतटीय प्लेटफार्मों के दूरसंचार उपकरणों के लिए विद्युत ऊर्जा, ग्रामीण दूरभाष प्रणालियों, रेडियों, टेलीविजन, प्रतिरक्षा के क्षेत्र में सौर फोटोवोल्टाइक ऊर्जा उपलब्ध कराने के लिए किया जाता है।

सौर्य तालाब (Solar Pond)

यह सौर ऊर्जा प्राप्त करने की एक नई तकनीक है। इसमें सौर्य तालाब एक विशाल ऊर्जा संग्राहक का कार्य करता है और इसके साथ समन्वित ताप संग्रहीत होता है। इस तकनीक के अंतर्गत सौर्य तालाब के जल को सघन बनाने के लिए उसमें नमक मिलाते हैं ताकि सौर ऊर्जा से जल अधिक गर्म हो सके। इस प्रक्रिया में सौर ऊर्जा सौर्य तालाब में जल के अनेक सतहों पर संग्रहीत हो जाती है तथा इसका तापमान 85°C तक पहुँच जाता है। इस प्रकार तालब को गर्म होने में दो से तीन महीने का समय लग जाता है। भारत में सौर्य तालाब परियोजना की शुरूआत जुलाई 1987 में हुई तथा पहला सौर्य तालाब गुजरात के कच्छ में भुज सोलर पौण्ड परियोजना के नाम से बनाया गया। सौर्य ऊर्जा के उपयोग को बढ़ावा देने हेतु भारत सरकार ने जवाहरलाल नेहरू नेशनल सोलर मिशन प्रारम्भ किया है।

पवन ऊर्जा (Wind Energy)

यह एक प्रकार की गतिज ऊर्जा है, जिसके वेग से टरबाईनों को चलाकर विद्युत ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। भारत में पवन ऊर्जा की बहुत बड़ी क्षमता अनुमानित है, विशेषकर तटीय तथा पर्वतीय राज्यों में। गुजरात तथा तमिलनाडु राज्य पवन ऊर्जा के माध्यम से विद्युत उत्पादन करने वाले प्रमुख राज्य हैं। पवन ऊर्जा के माध्यम से विद्युत उत्पादन करने वाले प्रमुख राज्य हैं। पवन ऊर्जा के लिए वायु की आदर्श गति 8 मीटर प्रति सेकंड से लेकर 23 मीटर प्रति सेकंड है, क्योंकि इस सीमा के अंदर ही पवन चक्कियां गतिमान हो सकती हैं। भारत में वायु गति का राष्ट्रीय औसत 9.4 मीटर प्रति सेकंड है।

भारत में निम्नतम 45,000 मेगावाट पवन ऊर्जा की क्षमता का अनुमान लगाया गया है। वर्तमान में भारत कुल 5,340 मेगावाट पवन ऊर्जा की स्थापित क्षमता के साथ विश्व में जर्मनी, अमरीका, डेनमार्क और स्पेन के बाद पांचवे स्थान पर है।

ऊर्जा टावर प्रोजेक्ट

यह एक पूर्णत: नवीन ऊर्जा साधन है। यह प्रौद्योगिकी लगभग 1.2 किमी. की उंचाई पर शुष्क क्षेत्रों की शुष्क व गर्म वायुमंडलीय पवन

का प्रयोग करती है। जल के एक महीने स्प्रे द्वारा कृत्रिम कूलिंग की जाती है तथा पवन के नीचे की ओर बहाव को एक अनुलम्ब सुरंग से गुजार कर टरबाइन चलाई जाती है। इस प्रक्रिया से पारिस्थितिकी अनुकूल विद्युत का उत्पादन होता है। यह परियोजना अभी परीक्षण स्तर पर है, जिसे सूचना प्रौद्योगिकी पूर्वानुमान एवं मूल्यांकन परिषद ने भविष्य के लिए प्रारंभ किया है।

सामुद्रिक ऊर्जा

समुद्र ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। यह ऊर्जा स्त्रोत अभी परीक्षण के स्तर पर है। सामान्यत: समुद्र से ऊर्जा प्राप्त करने की तीन प्रणालियाँ हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित हैं-

1. **तरंग ऊर्जा:-** यह ऊर्जा समुद्र की लहरों से उत्पन्न तरंगों के दबाव पर आधारित है। तरंगों के भीतर अल्पावधि के ऊर्जा संचय से ऊर्जा उत्पादन की संभावना बनती है। इस प्रणाली के तहत समुद्र के अंदर एक चैम्बर लगाया जाता है, जिसमें तरंगों की गति से टरबाइन को चलाकर और पानी एवं हवा के परस्पर दबाव से विद्युत उत्पन्न की जाती है। यह एक बहुत महंगी प्रणाली है। तरंग ऊर्जा पर आधारित देश का पहला संयंत्र केरल में तिरूअनंतपुरम के समीप बिझिन्जम में स्थापित किया गया है, जिसकी अधिकतम क्षमता 150 मेगावाट है। स्वीडन की एक संस्था सी पॉवर एबी द्वारा विकसित नवीन प्रोद्योगिकी, जिसमें एक स्थान पर स्थित प्लेटफार्म पर लहरों के प्रवाह का सामना करने से ऊर्जा का उत्पादन होता है, के सिद्धान्त पर आधारित 1.मेगावाट क्षमता का एक ऊर्जा संयंत्र अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में लगाया जा रहा है।
2. **ज्वारीय ऊर्जा:-** समुद्र का जलस्तर एक निश्चित अंतराल पर प्रतिदिन दो बार उपर उठता और नीचे गिरता है। समुद्री जल स्तर के बारी-बारी से उपर उठने और नीचे उतरने की इस घटना को क्रमश: ज्वार और भाटा कहते हैं। ज्वार-भाटे पृथ्वी, चंद्रमा तथा सूर्य की पारस्परिक गुरूत्वाकर्षण क्रिया से उत्पन्न होते हैं। अत्यधिक ज्वारीय विस्तार वाले तटीय क्षेत्रों में ज्वारीय बल उपयोग जल विद्युत के उत्पादन के स्रोत के रूप में किया जा सकता है। भारत में पश्चिमी तट पर गुजरात में कच्छ एवं खंभात की खाड़ी तथा पूर्वी तट पर सुंदरवन क्षेत्र ज्वारीय ऊर्जा के लिए सर्वोत्तम क्षेत्र है। कच्छ की खाड़ी में गैर परंपरागत ऊर्जा स्त्रोत विभाग द्वारा 900 मेगावाट क्षमता का एक ज्वारीय विद्युत संयंत्र लगाया जा रहा है। देश में ज्वार ऊर्जा से विद्युत उत्पादन की कुल संभावित क्षमता लगभग 9000 मेगावाट है, जिसमें सबसे अधिक 7000 मेगावाट की अनुमानित क्षमता अकेले खम्भात की खाड़ी में मौजूद है। ज्वारीय ऊर्जा पर आधारित देश का 3.75 मेगावाट का पहला विद्युत गृह पश्चिम बंगाल के सुंदरवन क्षेत्र में दुर्गाद्वानी क्रीक में स्थापित करने की योजना है।
3. **ओशन थर्मल एनर्जी कन्वर्जन** (OTEC: Ocean Thermal Energy Conversion):- तापमान समुद्री जल का एक महत्वपूर्ण गुण है। समुद्री जल में गहराई के अनुसार तापमान में भिन्नता रहती है तथा गहराई बढ़ने के साथ-साथ तापमान में कमी आती है। इसके अंतर्गत समुद्री जल के इन्हीं विभिन्न स्तरों के बीच के तापान्तरों का उपयोग करके विद्युत का उत्पादन करने का प्रयास किया जाता है। भारत में ओटेक प्रणाली से विद्युत उत्पादन पर तमिलनाडु एवं अंडमान निकोबार द्वीप समूह में गहन अनुसंधान एवं विकास कार्य किए जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त तमिलनाडु में 100 मेगावाट की 6 परियोजनाएं शुरू की हैं। भारत तीन तरफ से समुद्र से घिरा हुआ है। अत: यहाँ समुद्र ताप ऊर्जा की बहुत बड़ी क्षमता उपलब्ध है, जो अनुमानत: लगभग 5000 मेगावाट तक हो सकती है।

भूतापीय ऊर्जा (Geo-Thermal Energy)

भूतापीय ऊर्जा से प्राप्त ऊर्जा का एक संभाव्य स्त्रोत है। भूगर्भ से गर्म जल का स्त्रोत निकलता है, जिससे ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। भूतापीय ऊर्जा प्रणाली के अंतर्गत भूगर्भीय ताप एवं जल की अभिक्रिया से गर्म वाष्प उत्पन्न करके ऊर्जा उत्पादन का प्रयास किया जा रहा है। भूगर्भ में निहित ताप से ऊर्जा के दोहन के लिए उन्नत प्रौद्योगिकी के विकास पर अनुसंधान कार्य चल रहा है।

हाइड्रोजन ऊर्जा कार्यक्रम (Hydrogen Energy Programme)

इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य है किसी स्थान या समय पर अधिशेष ऊर्जा का उपयोग कर हाइड्रोजन गैस पैदा करना तथा बाद में इस हाइड्रोजन का उपयोग ईंधन के तौर पर करना। अन्य ईंधनों की अपेक्षा हाइड्रोजन से प्राप्त प्रति इकाई क्षमता अधिक होती है

तथा इसके प्रयोग से किसी प्रकार का प्रदूषण भी नहीं फैलता। हाइड्रोजन ऊर्जा का सर्वाधिक शक्तिशाली स्त्रोत है, जिससे सस्ता ईंधन उपलब्ध कराया जा सकता है। भारत में 1983 में हाइड्रोजन ऊर्जा तकनीकी सलाहकार समिति के गठन के द्वारा हाइड्रोजन ऊर्जा के विकास में सकारात्मक शुरूआत की गई। देश में स्वच्छ ईंधन और अनेक उपयोगों के लिए ऊर्जा भंडारण माध्यम के रूप में हाइड्रोजन के प्रयोग पर कार्य हो रहा है।

सूचना प्रौद्योगिकी, पूर्वानुमान एवं मूल्यांकन परिषद द्वारा एक हाइड्रोजन टेक्नोलॉजी सेल की स्थापना की गई है, जो परिस्थितिकी अनुकूल हाइड्रोजन ऊर्जा प्रौद्योगिकियों को प्रोत्साहन देता है। इससे वायुमंडल में कार्बन उत्सर्जन समाप्त किया जा सकेगा तथा उन्नत तकनीकियों के उपयोग से हाइड्रोजन ईंधन की बचत की जा सकेगी।

संपीड़ित प्राकृतिक गैस (CNG: Compressed Natural Gas)

संपीड़ित प्राकृतिक गैस धरती के भीतर पाए जाने वाले हाइड्रोकार्बन का मिश्रण है और इसमें 80 से 90 प्रतिशत मात्रा मीथेन गैस की होती है। सीएनजी को वाहनों के ईंधन के रूप में इस्तेमाल करने के लिए 200 से 250 किग्रा. प्रति वर्ग सेमी. तक दबाया या कंप्रेस किया जाता है। यह गैस रंगहीन, गंधहीन, हवा से हल्की तथा पर्यावरण की दृष्टि से सबसे कम प्रदूषण पैदा करती है। सीएनजी को जलाने के लिए 540^0C से अधिक तापमान की आवश्यकता होती है, जबकि पेट्रोल मात्र 232 से 282^0C पर जलता है। अर्थात् दिन का तापमान असाधारण रूप से बढ़ जाने के बाद भी सीएनजी के अनियंत्रित होकर जलने का कोई खतरा नहीं है। उल्लेखनीय है कि सीएनजी एक गैस है, जबकि एलपीजी एक तरल पदार्थ है। इस कारण इसका परिवहन करना आसान है।

सीएनजी में कार्बन का सिर्फ एक यौगिक मीथेन उपस्थित है और यह गैस पेट्रोल एवं डीज़ल की तुलना में कार्बन मोनो आक्साइड को 70 प्रतिशत, नाइट्रोजन आक्साइड को 87 प्रतिशत और जैविक गैसों को लगभग 89 प्रतिशत कम उत्सर्जित करती है।

'अल्ट्रा लो सल्फर डीज़ल' (Ultra Law Sulphur Diseal)

वायु प्रदूषण कम करने के लिए सी.एन.जी. की तुलना में अल्ट्रा लो सल्फर डीजल को बेहतर विकल्प साबित हो सकता है। वर्तमान में बाजार में उपलब्ध डीजल में सल्फर की मात्रा 0.5 प्रतिशत है जबकि अल्ट्रा लो सल्फर डीजल में सल्फर की मात्रा 0.005 प्रतिशत है। उल्लेखनीय है कि यदि डीजल में सल्फर की मात्रा 0.02 प्रतिशत से कम हो तो उसे क्लीन या शुद्ध डीजल कहा जाता है।

गैसोहोल (Gasohal)

गन्ने के रस से तैयार किया गया यह ईंधन का एक सस्ता विकल्प है। गैसोहोन के अंतर्गत गन्ने के रस द्वारा प्राप्त सामान्य अल्कोहल को पेट्रोल में मिलकार भारत में पेट्रोल के अत्यधिक व्यय तथा पेट्रोलियम प्रदूषण की वृद्धि को रोका जा सकता है। गैसोहोल ईंधन को वाहनों के इंजन में बिना किसी अतिरिक्त परिवर्तन के उपयोग में लाया जा सकता है। चेन्नई की मैसूर शुगर कंपनी ने अल्कोहल एवं पेट्रोल को 25:75 के अनुपात में सम्मिश्रण से पेट्रोल की ऊर्जा क्षमता बढ़ाने में सफलता पायी है। गैसोहोल ईंधन के विकास से पेट्रोल द्वारा होने वाले कार्बन व कार्बन मोनो ऑक्साइड के उत्सर्जन को रोका जा सकता है तथा सीमित पेट्रोलियम संसाधनों की कुछ मात्रा में बचत भी की जा सकती है।

शहरी तथा औद्योगिक कचरे से ऊर्जा

भारत सरकार द्वारा प्रायोजित की गई अनुसंधान परियोजनाओं से नगरपालिका जल-मल अवशिष्ट, सब्जी मंडी के कचरे, चमड़ा उद्योग, आसवनशालाओं, चीनी मिलों, लुग्दी व कागज उद्योग आदि के कचरे के विधायन और उपचार की संभावनाओं और महत्व को देखते हुए देश में कचरा प्रबंध प्रणालियों में सुधार के रूप में उचित प्रौद्योगिकियों के उपयोग को प्रोत्साहन देने के लिए जून, 1995 में शहरी, नगरपालिका और औद्योगिक कचरे से ऊर्जा प्राप्ति का राष्ट्रीय कार्यक्रम आरम्भ किया गया। इस कार्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य हैं-

1. ऊर्जा प्राप्ति के लिए कचरे के उपयोग को विकसित करना तथा इसका प्रदर्शन करना।
2. कचरे से ऊर्जा प्राप्ति के लिए प्रौद्योगिकियों को अपनाकर कचरा प्रबंध प्रणालियों में सुधार करना।
3. शहरी, नगरपालिका और औद्योगिक क्षेत्रों के कचरे के उपयोग वाली परियोजनाओं की स्थापना को प्रोत्साहन देना।
4. कचरे से ऊर्जा प्राप्ति के लिए वित्तीय प्रोत्साहनों सहित अनुकूल स्थितियों का निर्माण करना।

जैव ईंधन (Bio–Fuel)

जैव ईंधन वनस्पति तेल है जिसे परंपरागत डीजल में मिलाकर ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। यह महुआ, करंजा, कुसुम, धूपा, उन्डी, सिमरौबा, साल, जजोबा, तुम्बा, नहोर, कोकुम, रबड़, चेउरा, जंगली खुबानी, तूंग, नीम, आम और रतनजोत आदि पौधों के बीजों के से निकाला जाता है, जिन्हें बंजर और खुरदुरी जमीनों पर भी उगाया जा सकता है। डीजल को जैव डीजल में मिश्रित करने के क्षेत्रीय परीक्षणों के लिए प्रारंभिक कदम उठाने शुरू कर दिए गए हैं। अनुसंधान और विकास अध्ययनों से पता चला है कि जैव डीजल मिश्रित ईंधन से वाहनों के ईंधन की आयु बढ़ती है और इससे अपेक्षाकृत कम प्रदूषण होता है। जैव ईंधन के उत्पादन हेतु एक सयंत्र आंध्र प्रदेश में स्थापित किया गया है।

परमाणु ऊर्जा (Atomic Energy)

भारत में परमाणु ऊर्जा के विकास का आरंभ वर्ष 1945 में ही हो गया था जब सर दोराब जी टाटा न्यास द्वारा टाटा आधारिक अनुसंधान संस्थान (Tata Institute of Fundamental Research, TIFR) की स्थापना की गई थी। संस्थान ने भारत में परमाणु ऊर्जा के विकास की संभावनाओं की खोज की दिशा में कार्य प्रारंभ किये। अतः इसे भारतीय परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम का उद्गम बिन्दु भी कहा जाता है। इस दिशा में वास्तविक प्रयास वर्ष 1948 में आरंभ किया गया था जब परमाणु ऊर्जा विधेयक अधिनियमित किया गया था। इसके बाद 10 अगस्त 1948 को भारत में परमाणु ऊर्जा के विकास से संबंधित सरकारी नीति के निर्धारण और क्रियान्वयन के उद्देश्य से परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना की गई। इस दिशा में अगला कदम 1956 में परमाणु ऊर्जा विभाग की स्थापना था जिसके उद्देश्यों में अन्य तथ्यों के साथ निम्न को भी शामिल किया गया :

1. परमाणु ऊर्जा के विकास के लिए आधुनिकतम तकनीकों का प्रयोग।
2. प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग द्वारा भूमंडलीय आर्थिक प्रतिस्पर्धा में परमाणु ऊर्जा का उत्पादन।
3. परमाणु रिएक्टरों की संस्थापना और रेडियोधर्मी तत्वों का सुरक्षित उपयोग।
4. भारत की प्रतिरक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परमाणु ऊर्जा का विकास और उत्पादन।
5. आर्थिक विकास में परमाणु ऊर्जा की भूमिका का निरूपण।
6. समस्थानिक और विकिरण तकनीक पर आधारित कार्यक्रमों का क्रियान्वयन।
7. परमाणु ऊर्जा और विज्ञान के अन्य सीमांतीय क्षेत्रों में आधारिक अनुसंधानों को प्रोत्साहन।

वास्तव में भारत ने परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम का व्यापक स्तर पर विस्तार अपने आप को आत्मनिर्भर बनाने के लिए किया है। इसके लिए इस कार्यक्रम में न केवल परमाणु रिएक्टरों की स्थापना बल्कि भारी जल के उत्पादन, रडियो समस्थानिकों के अनुप्रयोग और खनिज अन्वेषण और उनके प्रसंस्करण जैसे कार्यों को भी शामिल किया है। ऐसे कार्यों की विशेषता यह है कि भारत ने स्वदेशी तकनीकों के विकास को प्राथमिकता दी है।

डा. भाभा द्वारा निरूपित कार्यक्रम में तीन चरण हैं। पहले चरण में यूरेनियम आधारित, दूसरे चरण में प्लूटोनियम तथा तीसरे चरण में थोरियम आधारित रिएक्टरों की स्थापना संकल्पित की गई। यूरेनियम आधारित रिएक्टरों में भारी अथवा सामान्य जल का प्रयोग किया जाता है जबकि प्लूटोनियम अथवा थोरियम आधारित रिएक्टरों में द्रवीभूत सोडियम जैसे शीतलक प्रयोग में लाये जाएंगे। कार्यक्रम के

दूसरे चरण का आरंभ वर्ष 2004 में कलपाक्कम में देश के पहले द्रुत प्रजनक रिएक्टर (Fast Breeder Reactor, FBR) की आधारशिला रखने के साथ आरंभ किया गया है। उल्लेखनीय है कि वर्तमान में कामिनी नामक रिएक्टर को केवल अनुसंधान कार्यों के लिए ही प्रयोग में लाया जा रहा है। इस नये संयंत्र में तकनीकी पक्षों के अध्ययन का कार्य भारतीय विद्युत निगम (Bhartiya Vidyut Nigam, BHAVINI) द्वारा किया जा रहा है। भारत सरकार ने हाल ही में यह घोषणा की है कि वर्ष 2012 तक 12,000 तथा वर्ष 2050 तक 200,000 मेगावाट परमाणु ऊर्जा के उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित है। ऐसी नीतियों का उद्देश्य निश्चित रूप से ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करने में परमाणु ऊर्जा की भूमिका का विस्तार करना है। वर्तमान में भारत की कुल ऊर्जा उत्पादन क्षमता का लगभग 3 प्रतिशत परमाणु ऊर्जा से प्राप्त होता है। हांलाकि अन्य एशियाई देशों की तुलना में यह अत्यन्त कम है लेकिन सरकार ने आशा व्यक्त की है कि आगामी वर्षों में इस क्षेत्र में तीव्र प्रगति होगी। वर्तमान में कार्य करने वाले कुल 20 रिएक्टरों में 2 क्वथन.जल रिएक्टर तथा 18 भारी जल रिएक्टर शामिल हैं। इन रिएक्टरों की ऊर्जा उत्पादन क्षमता 4,780 मेगावाट है। रूस के सहयोग से 1000-1000 मेगावाट की क्षमता वाले 4 सामान्य जल रिएक्टरों की स्थापना तमिलनाडु के तिरूनल्वेली जिले में कूडनकुलम में की जा रही है।

इस बीच, 12 सितम्बर, 2005 से तारापुर स्थित परमाणु संयंत्र की चौथी इकाई ने कार्य करना आरंभ कर दिया है। भारतीय परमाणु ऊर्जा निगम के अनुसार, यह भारत की अब तक की सबसे बड़ी इकाई है तथा इसकी ऊर्जा उत्पादन क्षमता 540 मेगावाट है। इस संयंत्र से उत्पादित होने वाली ऊर्जा की बिक्री महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ तथा गोवा के अतिरिक्त, दमन और दीव को की जायेगी।

परमाणु रिएक्टर (Atomic Reactor)

परमाणु रिएक्टर सामान्यत: ताप ऊर्जा उत्पादित करने वाला स्रोत होता है जो विद्युत उत्पादन के लिए टर्बाइन को गतिशील बनाने के लिए आवश्यक है। मानक रिएक्टर (क्वथन जल (Boiling Water) अथवा भारी जल (Deuterium Oxide D2O) रिएक्टर में यूरेनियम 235 का प्रयोग श्रृंखलाबद्ध अभिक्रिया बनाये रखने के लिए ईंधन के रूप में किया जाता है। उल्लेखनीय है कि इसकी उपलब्धता प्रकृति में सदैव यूरेनियम 238 के साथ होती है। वस्तुत: यूरेनियम के इस सम्मिश्रण में यूरेनियम-238ए 99.3 प्रतिशत तथा शेष यूरेनियम 235 पाया जाता है। ईंधन के रूप में इसका प्रयोग करने के पूर्व इस सम्मिश्रण का संवर्द्धन किया जाता है जिसके अन्तर्गत यूरेनियम 235 की मात्रा को बढ़ाकर 2.35 प्रतिशत अथवा 3 प्रतिशत तक किया जाता है। ऐसे यूरेनियम को संवर्द्धित यूरेनियम (Enriched Uranium) कहते हैं।

समान्यत: परमाणु रिएक्टर नाभिकीय विखंडन (Nuclear Fission) के सिद्धांत पर कार्य करता है। श्रृंखलाबद्ध अभिक्रिया के दौरान जब धीमी गति वाला न्यूट्रॉन (थर्मल न्यूट्रॉन) यूरेनियम 235 के परमाणु से टकराता है तब इसके नाभिक के विखंडन से 2 या 3 न्यूट्रॉन तथा ताप ऊर्जा विमुक्त होती है। इन न्यूट्रॉनों को भारी जल अथवा सामान्य जल से धीमा किया जात है जिसे मंदन (Thermalisation) कहते हैं। यह अभिक्रिया निरंतर चलती रहती है। तकनीकी रूप से यू-235 द्वारा न्यूट्रॉनों का अवशोषण किया जाता है जिससे यू-236 का निर्माण होता है। इस परमाणु का नाभिक विखंडित होकर पुन: न्यूट्रॉनों को विमुक्त करता हैं। श्रृंखलाबद्ध अभिक्रिया से उत्पन्न ताप से वाष्प का निर्माण किया जाता है जो टर्बाइन को गतिशील बनाकर ऊर्जा का उत्पादन करता है।

परमाणु/नाभिकीय विखंडन (Nuclear Fission)

जब किसी अस्थायी भारी नाभिक (जैसे यूरेनियम-235, प्लूटोनियम-239 और यूरेनियम -233) पर उच्च ऊर्जा वाले न्यूट्रान की बौछार की जाती है, तब यह भारी नाभिक दो हल्के नाभिकों में विभक्त हो जाता है तथा इस अभिक्रया में विशाल मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न होती है। खण्डित होता हुआ नाभिक दो या तीन न्यूट्रॉन तथा साथ में बहुत कम तरंगदैर्ध्य का प्रकाश भी उत्सर्जित करता है। इस प्रकाश को प्राय X किरणें तथा संपूर्ण प्रक्रिया को 'नाभिकीय विखण्डन' कहते हैं। इस प्रक्रिया को निम्न समीकरण से प्रदर्शित किया जा सकता है।

परमाणु/नाभिकीय संलयन (Nuclear Fusion)

जब दो बहुत हल्के नाभिक एक दूसरे में विलीन होकर एक ऐसा नाभिक बनाते हैं जिनका भार दो विलीन होने वाले नाभिकों के

संयुक्त भार से कम होता है और भार की इस क्षति के कारण असीमित ऊर्जा विमोचित होती है तो इस संपूर्ण प्रक्रिया को 'नाभिकीय संलयन' कहते हैं। सूर्य से निकलने वाली ऊर्जा का कारण नाभिकीय संलयन ही है। हाइड्रोजन के आइसोटोप ड्यूटीरियम के नाभिक सूर्य के अंतरंग में परस्पर टकराते हैं तथा हीलियम उत्पन्न करते हैं। इस अभिक्रिया में उत्पन्न असीमित ऊर्जा सूर्य को प्रदीप्त करती है। जिससे अंतत: विभिन्न तरंगदैर्ध्य के प्रकाश का विकिरण होता है। इन तरंदैर्ध्य में सम्मिलित अवरक्त तरंगदैर्ध्य के प्रकाश से पृथ्वी गर्म होती है। इस संलयन अभिक्रिया में नाभिकों का उच्च वेग से टकराना आवययक है तथा इस उच्च वेग के लिए अत्यधिक उच्च तापमान (107-108 डिग्री K) होना चाहिए।

संलयन अभिक्रिया का उपयोग अभी मात्र हाइड्रोजन बमों के निर्माण में ही व्यापक रूप से कियां जा सका है। इस कार्य के लिए हाइड्रोजन के आइसोटोपों के नाभिकों का संलयन कराया जाता है। इस प्रक्रिया के लिए ड्यूटेरियम एवं टीटियम आइसोटोपों के निभिकों को लगभग 107 डिग्री ज्ञ तक गर्म करना पड़ता है। इस ताप पर केवल धन आवेश वाले नाभिक शेष रह जाते हैं, जिन्हें प्लाज्मा कहते हैं। वैज्ञानिक इस प्रयास में लगे हैं कि प्रयोगशाला में इतना उच्च ताप उत्पन्न कर सकें ताकि सूर्य के समान संलयन अभिक्रियायें प्रेरित की जा सकें। परन्तु इन अभिक्रियाओं को केवल कुछ क्षणों के लिए ही संपन्न करने में सफलता मिल सकी है।
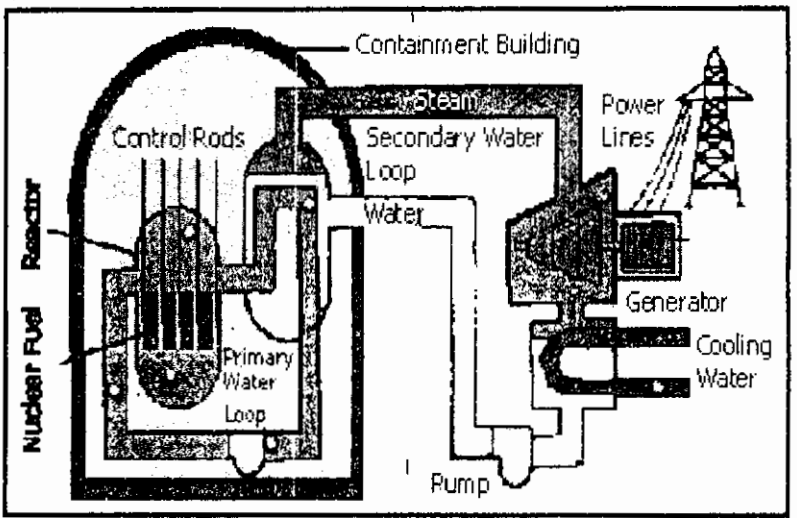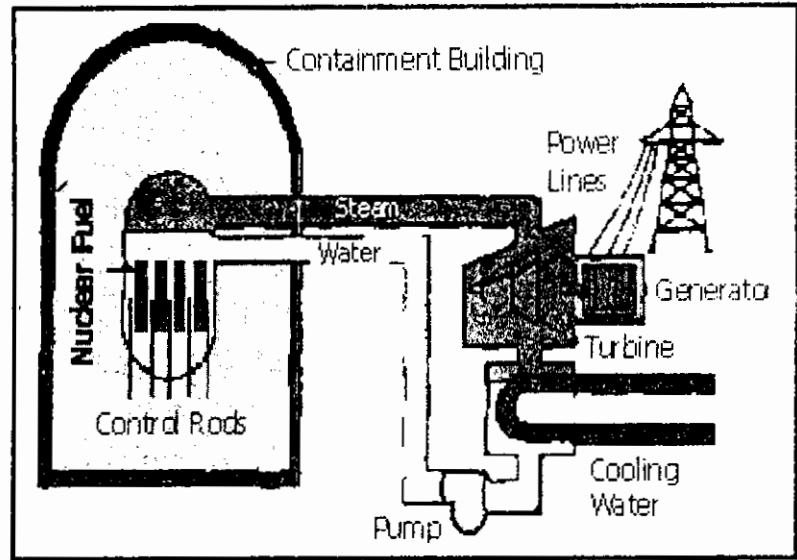
द्रुत प्रजनक रिएक्टर (Fast Breeder Reactor)

नाम के अनुरूप इस प्रकार के रिएक्टर ईंधन का प्रजनन करते हैं। तात्विक रूप से ईंधन, शीतलक और नियंत्रण अथवा अवशोषक छड़ें शामिल होती हैं। श्रृंखलाबद्ध अभिक्रिया रिएक्टर के अभयंतर (Core) में होती है जहां ईंधन में 12 से 30 प्रतिशत तक विखंड्य सामग्री (Fissile Material) मिलाई जाती है। ऐसे रिएक्टरों में कैडमियम अथवा ग्रेफाइट की छड़ों का प्रयोग किया जाता है जो अतिरिक्त न्यूट्रॉनों का अवशोषण करते हैं। अभिक्रिया के समय इन छड़ों को हटा लिया जाता है ताकि न्यूट्रॉनों का अवशोषण होता रहे और अभिक्रिया भी चलती रहे।

ऐसे रिएक्टरों से कई प्रकार के लाभ हैं। इनमें निम्नांकित उल्लेखनीय हैं:

1. द्रुत प्रजनक रिएक्टर में अन्य प्रकार के रिएक्टरों की तुलना में अधिक ऊर्जा मुक्त होती है।
2. इसमें प्रयुक्त ईंधन में एक उर्वरक सामग्री होती है, जो अभिक्रिया के दौरान उत्पन्न होती है। एक बार विखंडित कर उपभोग होने के उपरांत उत्पन्न होने वाले ईंधन का विखंडित ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।

कामिनी (KAMINI : KAlpakkam MINI Reactor)

भारत में कामिनी एक आदि प्रारूप द्रुत प्रजनक रिएक्टर (Prototype Fast Breeder Reactor) है, जिसका निर्माण तमिलनाडु के कलपाक्कम में किया गया है। कामिनी में प्लूटोनियम-239 तथा यूरेनियम कार्बाइड ईंधन के अनोखे सम्मिश्रण का प्रयोग होता है। इसका प्रयोग विश्व में पहली बार किया गया है। कामिनी फ्रांस के रैप्सडी (Rhapsody) नामक रिएक्टर के डिजाइन पर निर्मित है। इस रिएक्टर में द्रवीभूत सोडियम का प्रयोग शीतलक के रूप में तथा कैडमियम छड़ों का न्यूट्रॉन अवशोषक के रूप में किया जाता है। चूँकि द्रुत प्रजनक रिएक्टरों में तीव्र गति वाले न्यूट्रॉनों की आवश्यकता होती है अत: इनमें मंदक का प्रयोग नहीं होता।

कामिनी को शून्य-शक्ति रिएक्टर (Zero-Power Reactor) भी कहते हैं क्योंकि इसे प्राप्त होने वाली 40 मेगावाट ऊर्जा की खपत अनुसंधान कार्यों में हो जाती है तथा व्यावसायिक ऊर्जा का उत्पादन नहीं होता।

परमाणु अपशिष्ट प्रबंधन (Nuclear Waste Management)

खनन से ऊर्जा उत्पादन तक के चरणों में परमाणु अपशिष्टों का निर्माण होता है। यह एक सिद्ध तथ्य है कि सभी परमाणु अपशिष्टों की रेडियोधर्मिता समय के साथ-साथ घटती जाती है। लोगों और पर्यावरण की सुरक्षा के लिए उनका सुरक्षित समापन और प्रबंधन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यद्यपि अपशिष्ट में सभी रेडियो नाभिक का जीवनकाल आधा होता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक रेडियो नाभिक की रेडियोधर्मिता आधी होने में कुछ समय लगता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस प्रकार के अपशिष्टों के समापन का आधारभूत लक्ष्य लोगों और पर्यावरण का बचाव करना है। अत: यह आवश्यक है कि रेडियोनाभिकों को अपशिष्टों से अलग कर किसी सुरक्षित स्थान पर जाकर उनका निस्तारण किया जाये। रेडियोधर्मी अपशिष्टों के तीन प्रकार हैं:

1. **निम्न स्तरीय अपशिष्ट** (Low Level Waste):- कागज, चिथड़े, औजार आदि जो औद्योगिक संस्थापनों, अस्पतालों और परमाणु ऊर्जा संयंत्रों से मुक्त होते हैं, अधिक रेडियोधर्मी नहीं होते। अत: उनके परिरक्षण की आवश्यकता भी नहीं होती। ऐसे अपशिष्टों को निम्न स्तरीय अपशिष्ट कहते हैं।
2. **मध्यम स्तरीय अपशिष्ट** (Medium Level Waste):- ये ईंधन के पुनर्चक्रण के बाद उत्पन्न होते हैं तथा अधिकांशत: इनमें रेजीन और रासायनिक कचरा शामिल होता है। अत्यधिक रेडियोधर्मिता के कारण इन अपशिष्टों के परिरक्षण अथवा ठोस अवस्था में निस्तारण अनिवार्य है।
3. **उच्च स्तरीय अपशिष्ट** (High Level Waste):- परमाणु रिएक्टरों के उत्पादन का अभ्यंतर उच्च स्तरीय अपशिष्टों का उत्पादन करता है, जिसमें लगभग 95 प्रतिशत तक रेडियोधर्मिता होती है। इस कारण इनका निस्तारण अनिवार्य है।

उच्च स्तरीय अपशिष्टों का प्रबंधन और ईंधन पुनर्प्रसंस्करण (Management of High Level Waste & Fuel Reprocessing))

ज्वलित ईंधन में उच्च स्तरीय अपशिष्टों की प्रचुरता होती है, जो पुनर्प्रसंस्करण के अभाव में मानव और पर्यावरण पर व्यापक प्रभाव डालते हैं। वस्तुत: ज्वलित ईंधन में कुछ अंश यूरेनियम-235 तथा प्लूटोनियम के शेष रह जाते हैं। ईंधन पुनर्प्रसंस्करण के लिए भारत को बंद ईंधन चक्र (Closed Fuel Cycle) की अवधारणा का अनुसरण करना चाहिए। सर्वप्रथम भारत में ट्रॉम्बे में गर्म कोशिकीय तकनीक (Hot Cell Technique) पर आधारित पुनर्प्रसंस्करण संयंत्र स्थापित किया गया था। दूसरी ओर, कलपाक्कम स्थित पुनर्प्रसंस्करण संयंत्र में भारत थोरियम छड़ों की सहायता से यू-235 को अलग करने में सफल हो गया है। जैसा कि ऊपर वर्णित है, निम्न स्तरीय तथा मध्यम स्तरीय अपशिष्ट का विषय गंभीर नहीं है क्योंकि उनका समापन पर्यावरण मित्र ढंग से किया जाना संभव है। परन्तु परा यूरेनियम तथा विखंड्य सामग्री में उच्च स्तरीय अपशिष्ट की श्रेणी को कांचित करना अनिवार्य है। कांचन (Vitrification) एक प्रक्रिया है जिसमें अपशिष्ट को बोरोसिलिकेट के सांचे में गतिहीन कर लगभग 1.3 मीटर ऊँचे लोहे के घन में रखकर समापन के लिए मैदान में गहरे गड्ढे में डाल दिया जाता है। ईंधन के पुनर्प्रसंस्करण के दौरान प्लूटोनियम, जो यद्यपि प्रयुक्त ईंधन का लगभग 1 प्रतिशत होता है, मिश्रित ऑक्साइड से उसे पुन: प्रसंस्कृत किया जाता है। मिश्रित ऑक्साइड ईंधन असेम्बली तथा निर्माण संयंत्र

तारापुर में स्थापित किया गया है। इस प्रौद्योगिकी के आधार पर दो अपशिष्ट निश्चलन संयंत्र ट्रांबे और तारापुर में काम कर रहे हैं। सीमेंट मैट्रिक्स में अपशिष्ट को दबा देने की एक सुविधा कलपक्कम में प्रारंभ की गई है। बार्क जूल मेल्टर प्रौद्योगिकी के आधार पर तारापुर में उच्च-स्तरीय अपशिष्ट को निरस्त करने के लिए एक आधुनिक (उन्नत) वीट्रिफिकेशन प्रणाली का निर्माण कर रहा है। भारत विश्व के उन 6 देशों में शामिल हो गया है जिन्होंने जूल हीटेड सिरैमिक मिक्सर बना लिया है और उच्च स्तरीय अपशिष्ट के वीट्रिफिकेशन के लिए ऐसे संयंत्र लगाए है। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन की अपशिष्ट प्रबंधन समिति के अनुसार, परमाणु ऊर्जा एजेंसी ने देश को परमाणु अपशिष्ट प्रबंधन संबंधी निम्नलिखित पहलुओं पर बल देने का सुझाव दिया है:

1. उच्च स्तरीय रेडियोधर्मी अपशिष्ट पदार्थ के दीर्घकालीन प्रबंधन की रणनीति का निर्धारण।
2. जैवमंडल को जोखिम से बचाने के लिए अपशिष्टों के भूवैज्ञानिक निस्तारण को प्राथमिकता।
3. नीतिपूरक तथा पर्यावरणीय मामलों पर बल।
4. निस्तारित अपशिष्टों पर पूर्ण और पर्याप्त निगरानी।

भारत के अनुसंधान रिएक्टर (Indian Research Reactors)

1. **अप्सरा (Apsara):-** स्वीमिंग पूल के आकार का अप्सरा नामक रिएक्टर वर्ष 1956 में स्थापित किया गया था। इस रिएक्टर ने 4 अगस्त, 1957 से कार्य करना आरंभ किया है। इसमें यूरेनियम-अल्युमिनियम मिश्रधातु से निर्मित वक्र प्लेटों का प्रयोग ईंधन के रूप मे किया जाता है। ईंधन का कुल भार 3 किलोग्राम तथा रिएक्टर की ऊर्जा उत्पादन की अधिकतम क्षमता 1 मेगावाट है। इस रिएक्टर में सामान्य जल का प्रयोग मंदक और शीतलक के रूप में किया जाता है, जबकि कैडमियम का प्रयोग नियंत्रक छड़ों के रूप में होता है। अप्सरा के मुख्य उद्देश्यों में परिरक्षण परीक्षण, आधारभूत अनुसंधान तथा समस्थानिकों का उत्पादन सम्मिलित है।

2. **सायरस (CIRUS = Canada–India Reactor Utility Service):-** टैंक के प्रकार का यह रिएक्टर कनाडा के सहयोग से निर्मित है। 10 जुलाई, 1960 से इसने कार्य करना आरंभ किया है। इसमें ईंधन के रूप में प्राकृतिक यूरेनियम, मंदक के रूप में भारी जल तथा शीतलक के रूप में सामान्य जल प्रयुक्त होता है। नियंत्रक छड़ों के रूप में बोरोन-कैडमियम का प्रयोग किया जाता है। इसने यूरेनियम-233 और प्लूटोनियम-239 का उत्पादन करने में सफलता प्राप्त की है जो इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसकी उत्पादन क्षमता 40 मेगावाट है। 31 दिसम्बर, 2010 से इसे बंद कर दिया गया है।

3. **जरलीना (ZERLINA):-** जीरो एनर्जी लैटिस इन्वेस्टिगेटिंग असेम्बली नामक यह रिएक्टर 14 जनवरी, 1961 से कार्य कर रहा है। संजाल अध्ययन (Lattice Studies) के उद्देश्य से रिएक्टर में प्राकृतिक यूरेनियम ईंधन के रूप में तथा भारी जल मंदक और शीतलक के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त, कैडमियम का प्रयोग नियंत्रक छड़ों के रूप में किया जाता है। इसकी ऊर्जा उत्पादन क्षमता केवल 100 वाट है।

4. **ध्रुव (Dhruva):-** टैंक के प्रकार का यह रिएक्टर 8 अगस्त, 1985 से कार्य कर रहा है। इसकी ऊर्जा उत्पादन क्षमता 100 मेगावाट है। इसमें प्राकृतिक यूरेनियम का प्रयोग ईंधन के रूप में, भारी जल का मंदक और शीतलक तथा कैडमियम का नियंत्रक छड़ों के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके निर्माण का उद्देश्य आधारभूत अनुसंधान, समस्थानिकों का उत्पादन, प्रशिक्षण तथा रिएक्टर तकनीक का विकास है।

5. **पूर्णिमा-1 (Purnima-I):-** यह भी टैंक के प्रकार का ही एक रिएक्टर है जो 18 मई, 1972 से कार्य कर रहा है। इसमें प्लूटोनियम का ईंधन के रूप में और वायु का शीतलक के रूप में प्रयोग किया जाता है। केवल 1 वाट के ऊर्जा उत्पादन के साथ यह रिएक्टर मंदक का प्रयोग नहीं करता है। लेकिन नियंत्रक छड़ के रूप में मॉलिब्डेनम का प्रयोग करता है। इसका एकमात्र लक्ष्य U-233 द्रुत रिएक्टरों की भौतिकी का अध्ययन है।

6. **पूर्णिमा-2 (Purnima-II):-** यह भी टैंक के प्रकार का ही रिएक्टर है जिसने 10 मई, 1974 से कार्य करना आरंभ किया है। इसकी उत्पादन क्षमता 10 मेगावाट है तथा इसमें ईंधन के रूप में U-233 और मंदक तथा शीतलक के रूप में सामान्य जल का प्रयोग किया जाता है। कैडमियम की छड़ों का प्रयोग यह नियंत्रक छड़ों के रूप में करता है।

7. **पूर्णिमा-3 (Purnima-III):**- टैंक के प्रकार वाले इस रिएक्टर की उत्पादन क्षमता एक वाट है। इसने 9 नवम्बर, 1990 से कार्य आरंभ किया है। इसका ईंधन यूरेनियम-237 और अल्युमिनियम है। सामान्य जल का प्रयोग मंदक और शीतलक के रूप में तथा कैडमियम छड़ों का प्रयोग नियंत्रक छड़ों के रूप में किया जाता है।

कुडनकुलम परियोजना (The Koodankulam Project)

रूस की सहायता से तमिलनाडु के तिरूनल्वेली जिले में कूडनकुलम में 1000-1000 मेगावाट ऊर्जा उत्पादन करने की क्षमता वाले 4 सामान्य जल रिएक्टरों की स्थापना की जा रही है। रिएक्टर VVER (जल शीतलन, जल संचालित ऊर्जा रिएक्टर का रूसी परिवर्णी शब्द है) प्रकार का है और यह विश्व का सबसे सुरक्षित रिएक्टर होगा। वर्तमान में विश्व स्तर पर कुल 19 परमाणु रिएक्टर इस प्रकार के हैं। जहां तक सुरक्षा का प्रश्न है, भारतीय परमाणु ऊर्जा निगम ने संतोष व्यक्त किया है कि इन रिएक्टरों में आदि प्रारूप बुल्गेरियन रिएक्टरों की तुलना में कई अतिरिक्त सुरक्षा उपाय किये गये हैं। वास्तव में जापान और जर्मनी के बाद परमाणु रिएक्टरों की सुरक्षा के संबंध में रूस का स्थान है। अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी ने रिएक्टर का अध्ययन कर कुल 35 सुधार सुझाये हैं। स्थापित होने वाले रिएक्टरों में ऐसे सभी 35 सुधार किये जाएंगे।

रिएक्टरों का नियोजन भारत के परमाणु ऊर्जा निगम लिमिटेड और रूस के Atomstroyexport नामक एजेंसी के बीच करार किया गया है। परियोजना के लिए भारत और रूस के बीच द्विपक्षीय समझौता 20 नवम्बर, 1988 में ही किया गया था। इसके अनुसार, रूस संवर्द्धित यूरेनियम की आपूर्ति करेगा जो ईंधन के रूप में प्रयुक्त होगा। सामान्य जल का प्रयोग मंदक और शीतलक, दोनों ही रूपों में किया जायेगा। आरंभिक चरणों में यह करार किया गया था कि प्रयुक्त ईंधन भारत द्वारा रूस को वापस भेजा जायेगा जहां उसका प्रसंस्करण होगा। साथ ही, अपशिष्टों को भारत को लौटा दिया जायेगा। नई योजना के तहत आने वाली लागत को कम करने के लिए यह तय किया गया है कि भारत में ही ईंधन का प्रसंस्करण किया जायेगा।

टोकामैक (Tokamak)

चुम्बकीय बल के प्रयोग द्वारा गर्म और सघन प्लाज्मा को संग्रहित करने के लिए प्रयुक्त उपकरण टोकामैक कहलाता है। इसका विकास रूसी भौतिक वैज्ञानिक टैम (Tamm) और सकारोव (Sakharov) द्वारा 1950 में किया गया था। रूसी भाषा में टोकामैक Toroidal Chamber Magnetic का संक्षिप्त रूप है। यह उस अवधारणा पर आधारित है जिसमें परिवर्तनशील चुम्बकीय स्थान एक अभिप्रेरित विद्युत क्षेत्र की उत्पत्ति होता है। इससे प्लाज्मा करेंट का साधन उपलब्ध होता है। अन्त में यह करेंट टोकामैक की आंतरिक त्रिज्या के साथ चुम्बकीय स्थान का निर्माण करता है। उन्नत टोकामैक परीक्षण इस दृष्टि से किया जाता है कि प्लाज्मा की ज्यामितीय तथा रूपरेखा जिसमें करेंट घनत्व तथा ताप शामिल किये जाएं और नियंत्रण रखा जा सके। दूसरे शब्दों में, टोकामैक परीक्षण का लक्ष्य प्लाज्मा के व्यवहार को नियंत्रित करना है। इस कारण टोकामैक की अवधारणा को ताप नाभिकीय सलयन रिएक्टर के लिए सर्वाधिक उन्नत माना जाता है। संलयन ऊर्जा संयंत्र का मुख्य उद्देश्य नाभिकीय संलयन से उत्सर्जित ऊर्जा का प्रयोग करना है।

यद्यपि कम लागत पर संलयन की प्रक्रिया से ऊर्जा प्राप्त करना दुष्कर है, लेकिन आगामी वर्षों में यह एक महत्वपूर्ण संसाधन बन जायेगा। उच्च
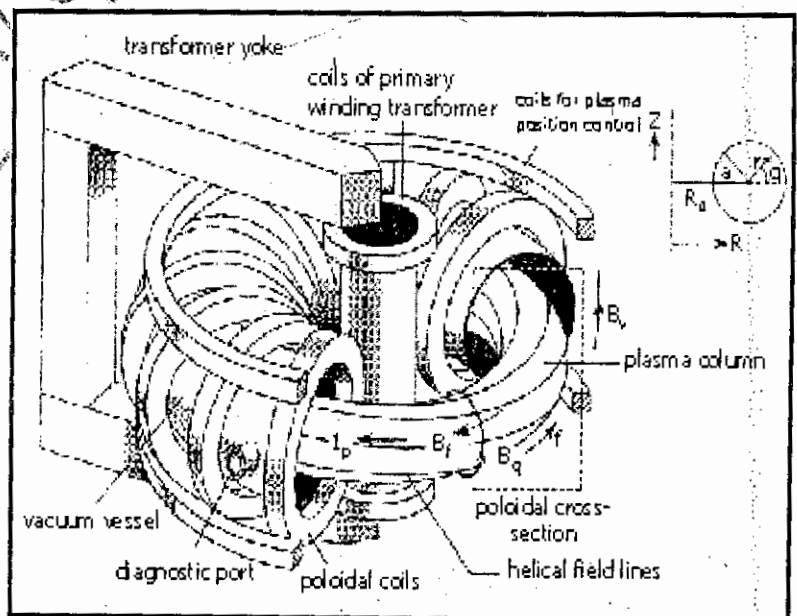
तापमान पर प्लाज्मा को गर्म करना भी एक कठिन कार्य है। इस कार्य निष्पादन की दो प्रक्रियाएं हैं - पहली प्रक्रिया को ओमिक हीटिंग (Ohmic Heating) कहते हैं जिसमें प्लाज्मा में विद्युत धारा प्रवाहित की जाती है जो इसके तापमान में वृद्धि करती है। दूसरी प्रक्रिया में प्लाज्मा को संपीडित कर उसके तापमान को बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। संपीडन से तापमान और दाब दोनों ही प्रभावित होते हैं। इस प्रक्रिया को Enerjetic Particle Injection कहते हैं।

भारत ने भी इस दिशा में अनुसंधान कार्य आरंभ किये हैं। वस्तुत: 1989 में ही गांधीनगर स्थित इंस्टीच्यूट ऑफ प्लाज्मा रिसर्च द्वारा आदित्य नामक टोकामैक विकसित किया गया था। आदित्य की विशेषता यह है कि यह 5 मिलियन डिग्री सेल्सियस तक तापक्र पर प्लाज्मा की उत्पत्ति कर सकता है। वर्तमान में संस्थान द्वारा अतिचालक का प्रयोग कर एक नये टोकामैक का निर्माण किया जा रहा है जिसे सुपर कंडक्टिंग स्टीडी स्टेट टोकामैक (Superconducting Steady State Tokamak, SST-I) की संज्ञा दी गई है। इसमें एक चुम्बक का प्रयोग किया जायेगा जिसमें अतिचालकता के गुण विद्यमान होंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय तापनाभिकीय प्रायोगिक रिएक्टर (International Thermonuclear Experimental Reactor, ITER):

यह एक अन्तर्राष्ट्रीय टोकामैक है जिसमें हाइड्रोजन के समस्थानिकों, ड्यूटेरियम तथा ट्रिटियम के नाभिकों का संलयन कराया जाएगा। ऐसे संलयन के बाद हीलियम (अल्फा कण) तथा एक उच्च ऊर्जा वाले न्यूट्रॉन का निर्माण होगा। उल्लेखनीय है कि इन दोनों नाभिकों के संलयन से यूरेनियम-235 की अपेक्षा तीन गुणा अधिक ऊर्जा उत्पादित होती है।

संलयन के लिए उत्प्रेरक ऊर्जा की मात्रा के अत्यधिक होने के कारण यह है कि दोनों ही नाभिकों में धन आवेशित प्रोटोन शक्तिशाली रूप से विकर्षण दर्शाते हैं। वैज्ञानिक रूप से यह कहा गया है कि प्रतिक्रिया की दर बनाए रखने के लिए नाभिकों को 1 फेम्टोमीटर (1×10–15 मीटर) के अन्दर होना चाहिए। ऐसी स्थिति में नाभिकीय बल तथा वैद्युत स्थैतिक बल आपस में संतुलित हो जाते हैं जो नाभिकों के संलयन के लिए अनिवार्य है। ड्यूटेरियम तथा ट्रिटियम के नाभिकों के संलयन के लिए 100,0000 डिग्री केल्विन तापमान आवश्यक होता है। प्लाज्मा को गर्म करने के लिए ओमिक हीटिंग (Ohmic heating) नामक प्रक्रिया प्रयोग में लाई जाती है। इसके बाद तापमान को और अधिक बढ़ाने के लिए अत्यधिक ऊर्जा वाले उदासीन कणों के पुंज अथवा रेडियो आवृतियों अथवा माइक्रोवेव का प्रयोग किया जाएगा।

इस रिएक्टर से 500 मेगावाट ऊर्जा 1000 सेकेंड की अवधि में लगातार उत्पादित करने का लक्ष्य है। इस परियोजना को सर्वप्रथम 1985 में यूरोपीय संघ (यूराटामे के माध्यम से) तथा अमेरिका द्वारा संयुक्त रूप से संकल्पित किया गया था। वर्ष 2001 में इसमें रूस तथा जापान, 2003 में कनाडा, चीन तथा दक्षिण कोरिया तथा 6 दिसम्बर 2005 को भारत भी शामिल हो गया। लेकिन बाद में कनाडा इससे बाहर हो गया। परियोजना पर लगभग 13 अरब डालर के व्यय की संभावना है तथा इसका निर्माण कार्य 20 वर्षों की अवधि में पूरा होगा। परियोजना के शेष 10 वर्षों में ऊर्जा उत्पादित की जाएगी। फ्रांस के कैडेरेकी (Cadarache) में स्थापित होने वाले इस रिएक्टर के परिसर का निर्माण 2008 से शुरू होगा जबकि टोकामैक का निर्माण 2010 से आरंभ किया जाएगा।

रेडियो समस्थानिकों के अनुप्रयोग (Applications of Radioisotopes)

अनुसंधान रिएक्टरों से उत्पन्न तथा ईंधन प्रसंस्करण के उपरांत पाये जाने वाले रेडियो समस्थानिकों का प्रयोग चिकित्सा, कृषि उद्योग तथा कई अन्य क्षेत्रों में किया जाता है-

चिकित्सा (Medicine)

रोगों की पहचान अथवा निदान के लिए समस्थानिकों और विकिरण तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। नाभिकीय चिकित्सा और रेडियो इम्यूनोएसे केन्द्रों की स्थापना की जा रही है जिनपर निगरानी रखने का कार्य परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा किया जायेगा। ये केन्द्र गामा कैमरों के प्रयोग के साथ-साथ ऐसे समस्थानिकों का गहन अध्ययन भी करेंगे। इस क्षेत्र में भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के अधीन कार्यरत विकिरण औषधि केन्द्र (Radiation Medicine Centre, RMC) द्वारा उत्कृष्ट कार्य कर रहा है। इसके उद्देश्यों में

निम्नांकित प्रमुख हैं :

1. नाभिकीय चिकित्सा संबंधी अनुसंधान और विकास कार्यक्रमों पर विशेष बल।
2. रोगों के निदान और उपचार में रेडियो समस्थानिकों तथा विकिरण तकनीक के प्रभावपूर्ण प्रयोग पर विशेष बल।
3. रोगियों से संबंधित सेवाओं का आरंभ।
4. विशेष शिक्षा और प्रशिक्षण की उपलब्धता द्वारा नाभिकीय चिकित्सा में मानव संसाधन विकास पर बल।

इस प्रकार डिब्रूगढ़ और बंगलौर स्थित केन्द्रों से ऐसी सेवाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं। वर्तमान में देश भर में लगभग 500 ऐसी प्रयोगशालाएं कार्य करती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, परमाणु ऊर्जा विभाग के अधीन विकिरण एवं रेडियो समस्थानिक बोर्ड का मानक विश्व के अन्य किसी भी स्थान के समरूप हैं। बोर्ड की रिपोर्ट के अनुसार, कोलकाता क्षेत्रीय केन्द्र में लगभग 5000 से अधिक रोगी प्रतिवर्ष स्कैनिंग में 4 डमट रैखिक त्वरित तकनीक द्वारा लाभान्वित होते हैं। बोर्ड विकिरण बन्ध्याकरण सुविधा भी प्रदान करता है। कैंसर अनुसंधान एवं चिकित्सा के क्षेत्र में रेडियो समस्थानिकों का प्रयोग अत्यन्त लोकप्रिय हो गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी समर्थित समन्वित अनुसंधान कार्यक्रम (Coordinated Research Project, CRP) वर्तमान में भारत तथा अन्य विकासशील देशों में चलाये जाते हैं। इसके अधीन दिसम्बर 1993 से एक विशेष कार्यक्रम का निरूपण किया गया है जो स्तन कैंसर के रूढ़िगत प्रबंधन के लिए प्रदीपन और जीव प्रभाव प्रारूपों के लिए कार्यरत है।

कई अत्यन्त सामान्य रेडियो समस्थानिकों का प्रयोग नाभिकीय चिकित्सा में किया जाता है, जिसमें कोबाल्ट-60, टेक्नीशियम-99, आयोडीन-131, क्रोमियम-53, फास्फोरस- 32, आयरन-59, सीजियम-137 आदि। दिल्ली स्थित नाभिकीय चिकित्सा एवं संबद्ध विज्ञान संस्थान 1960 अपने उद्भव के साथ ही मुख्य रूप से गामा कैमरों पर कार्य कर रहा है। हाल ही में एक नई विकिरण तकनीक उपकरण का विकास किया गया है जिसे रक्त सूचक (Blood Indicator) कहा गया है।

कृषि (Agriculture)

चिकित्सा रेडियो समस्थानिकों की भांति कृषि क्षेत्र में भी अधिक उत्पादन तथा फसलों की नई प्रजातियों के विकास के लिए भी रेडियो समस्थानिकों का प्रयोग किया जाता है। रेडियो समस्थानिकों का प्रयोग खाद्य पदार्थ के प्रदीपन तथा फलों को पकाने में भी किया जाता है। भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के फसल सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत दलहन, तिलहन तथा जूट की कई उन्नत प्रजातियों का विकास किया गया है। वस्तुतः केन्द्र द्वारा विकसित की गई विकिरण तकनीक व्यावसायिक क्षेत्र में प्रवेश कर गई है। पौधों के पोषण में रेडियो समस्थानिकों पर आधारित नई खोजों से उर्वरकों की प्रभावशीलता बढ़ गई है। नाभिकीय नमी घनत्व पैमाने द्वारा मृदा की नमी का अनुश्रवण कर जल संसाधन अनुकूलतम उपयोग किया जा सकता है। रेडियो समस्थानिकों का प्रयोग नाइट्रोजन के जैविक स्थिरीकरण तथा कीटनाशकों के कुशल प्रयोग में भी किया जाता है। खाद्य परिरक्षण के लिए विकिरण तकनीक अब एक महत्वपूर्ण साधन है। भारत सरकार द्वारा खाद्य परिरक्षण को 1998 में वैधानिक मान्यता प्रदान की गई थी। इसके बाद से प्रमुख खाद्य पदार्थों को परिरक्षित किया जाने लगा है। मुख्य रूप से ऐसे खाद्य पदार्थों में समुद्री उत्पाद शामिल हैं।

तकनीकी रूप से खाद्य परिरक्षण में गामा किरणें अथवा एक्स-किरणें अथवा त्वरित इलेक्ट्रॉनों का प्रयोग होता है। प्रदीपन के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले दो सबसे महत्वपूर्ण रेडियो समस्थानिक कोबाल्ट-60 और सीजियम-137 हैं। खाद्य प्रदीपन यदि नियंत्रित रूप में किया जाये तो खाद्य पदार्थ रेडियोधर्मी नहीं बनते। परिरक्षित खाद्य पदार्थ रेडियोधर्मी खाद्य पदार्थ से इस रूप में भिन्न होता है कि खाद्य पदार्थ जो निरंतर कुछ विकिरणों से प्रसंस्कृत होते हैं, परिरक्षित खाद्य पदार्थ कहलाते हैं जबकि रेडियोधर्मिता के साथ किसी आकस्मिक अनावरण द्वारा खाद्य पदार्थ प्रदूषित हो जाता है। वैज्ञानिक यह सिद्ध कर चुके हैं कि परिरक्षित पदार्थों में पौष्टिकता बनी रहती है।

उद्योग (Industry)

रेडियो समस्थानिक तथा विकिरण तकनीक का प्रयोग उद्योगों तथा जल संसाधनों के प्रबंधन में भी किया जाता है। इस प्रकार के

समस्थानिक भारत में अनुसंधान रिएक्टरों द्वारा उत्पादित किये जाते हैं तथा पदार्थों की क्रिस्टलीय संरचना और नाभिकीय अन्वेषण की जानकारी प्राप्त करने में प्रयुक्त होते हैं। औद्योगिक क्षेत्र में प्रयोग में लाये जाने वाले रेडियो समस्थानिकों में कोबाल्ट-60 और ईरिडियम-192 सबसे महत्वपूर्ण हैं।

भारत में रेडियो समस्थानिकों की आपूर्ति विकिरण और रेडियो समस्थानिक तकनीकी बोर्ड है। बोर्ड के अनुसार, कई ऐसे क्षेत्रों में इस तकनीक का प्रयोग किया जा रहा है:

1. सुपरकम्प्यूटर में प्रयुक्त समानान्तर संगणन तथा प्रसंस्करण तकनीक।
2. अतिशुद्ध पदार्थों की विशेषताओं की पहचान।
3. अवयव प्रतीकों के लिए स्फुरणग्राफी तकनीक (Scientigraphic Technique)।
4. गंदे जल के कचरे का निस्तारण।
5. समुद्री जल और पृष्ठीय जल की लवणता की जांच।
6. बाँधों, नहरों और सुरंगों का निस्पंदन (Seepage) अध्ययन।

पर्यावरण (Environment)

पर्यावरण संरक्षण विश्व की सर्वोच्च प्राथमिकता है। इस बात को ध्यान में रखते हुये संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम और अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी ने संयुक्त रूप से एक पांच वर्षीय अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम की पहल 1978 में ही की थी। इसे उद्देश्यों में निम्नांकित प्रमुख थे :

1. शुद्ध पेय जल की जांच।
2. समुद्री प्रदूषण तथा हानिकारक शैवाल वृद्धि का प्रबंधन।
3. स्पष्ट एवं ऊर्जा दक्षता उत्पादन प्रक्रिया।

अत्यधिक रुचि प्रदर्शित करते हुये भारत ने इस कार्यक्रम में सक्रिय भागीदारी दिखाई तथा जनशक्ति, पर्यावरण बचाव से संबंधित विभिन्न आंकड़ों का संग्रहण, अपशिष्ट संरक्षा प्रबंधन तथा समन्वित अनुसंधान में योगदान दिया। इसके अतिरिक्त, भारत ने अपशिष्ट प्रबंधन के लिए ढांचा विकसित किया तथा आपसी हित के लिए भूमंडलीय सहयोग के लिए प्रयास कर रहा है।

भारत की नाभिकीय नीति (Nuclear Policy of India)

भारतीय राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार बोर्ड ने सरकार को 1992 में नाभिकीय नीति का प्रारूप सौंपा था। सरकार ने नाभिकीय नीति में कई महत्वपूर्ण तथ्यों को शामिल किया है। प्रस्तावित नीति के प्रमुख तथ्यों का उल्लेख नीचे किया गया है:

1. भारत का मुख्य लक्ष्य शांतिपूर्ण और लोकतांत्रिक विधियों द्वारा आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक और तकनीक विकास करना है।
2. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत द्वारा स्थिरता के संभावित जोखिम के विरूद्ध शांति और सुरक्षा के लिए प्रयास किये जाएंगे।
3. भारत द्वारा वैश्विक स्तर पर निशस्त्रीकरण का अनुपालन नहीं होने की स्थिति में नाभिकीय न्यूनतम निवारण क्षमता बनाये रखने के प्रयास किये जाएंगे।
4. भारतीय परमाणु कार्यक्रम का लक्ष्य अन्य देशों द्वारा इस प्रकार के हथियारों के संभावित प्रयोग को रोकना होगा।
5. भारत अपनी शांति और स्थिरता के लिए किसी भी प्रकार के खतरे से पिनटने के लिए तैयार रहेगा।
6. भारत प्रभावपूर्ण निगरानी और पूर्व चेतावनी की क्षमताओं को बनाये रखेगा।
7. जब तक किसी अन्य देश द्वारा भारत पर परमाणु हथियारों का प्रयोग न किया जाये तब तक भारत देश विशेष के विरूद्ध परमाणु

हथियारों का प्रयोग नहीं करेगा।

8. परमाणु निवारण संबंधी भारतीय सिद्धांत विश्वसनीय, प्रभावशाली तथा दृढ़ बने रहेंगे।
9. नाभिकीय संरक्षा पर विशेष बल दिया जायेगा।
10. सूचना और संचार तंत्र को सुदृढ़ बनाकर पूर्व चेतावनी प्रणाली का विकास किया जायेगा।
11. भारत अपनी गुप्तचर प्रणालियों को सुदृढ़ बनायेगा।
12. भारत दोहरी सक्षम वितरण प्रणाली को सुनिश्चित करेगा।
13. तकनीकी उन्नतियों को बनाये रखने के लिए उन्नत अनुसंधानों पर बल दिया जायेगा।
14. हथियारों को नियंत्रित करने के उपायों को राष्ट्रीय सुरक्षा नीति का अंग बनाया जायेगा।

हाल ही में भारत ने अमेरिका के साथ हुये अपने समझौते में यह स्पष्ट किया है कि वह अपने परमाणु ऊर्जा कार्यक्रमों को सैनिक और असैनिक श्रेणियों में चरणबद्ध रूप से विभक्त करेगा। इस संदर्भ में विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से भारत की नाभिकीय नीति के संबंध में कई पहलुओं का उल्लेख किया जा सकता है।

परमाणु ऊर्जा का शांतिपूर्ण उपयोग नीति की सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती है। भारत ने वैश्विक शांति और सुरक्षा के लिए पारस्परिक सहयोग की भावना के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की है। साथ ही, ऊर्जा की निरंतर बढ़ती मांगों के अनुरूप ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करने के संदर्भ में प्रयास भी किये जा रहे हैं। दूसरी ओर, निगरानी और पूर्व सूचना प्रणालियों के सुदृढ़ीकरण पर विशेष ज़ोर देने की बात कही गई है। भारत ने नीति के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया है कि गुप्तचर और कमान नियंत्रण प्रणालियों को सुदृढ़ बनाकर ही राष्ट्रीय सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है। हाल के वर्षों में इस दिशा में कई नई तकनीकें भी विकसित की गई हैं जिनमें अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकसित कई तकनीकें भी शामिल हैं। भारत द्वारा अंतरिक्ष-आधारित संचार प्रणाली को सुदृढ़ बनाया जाना इस दिशा में किया गया एक सराहनीय प्रयास है। विकासोन्मुखी तथा सामरिक पहलुओं के संदर्भ में नये परमाणु संयंत्रों की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित है। इसे नीति का एक सकारात्मक पक्ष कहा जा सकता है। लेकिन इसके साथ-साथ भारत ने कहा है कि अपनी न्यूनतम निवारण क्षमता बनाये रखते हुये वह अन्य देशों के साथ मिलकर ऐसे हथियारों के प्रयोग को रोकने के लिए हर संभव प्रयास भी करेगा।

सबसे बड़ी बात यह है कि अपनी इस नीति में भारत ने 'पहले पहले नहीं करने' के सिद्धांत की व्याख्या की है। इससे स्पष्ट है कि भारत की नाभिकीय नीति एक ओर शांतिवादिता का प्रतीक है तथा दूसरी ओर यह भारत के सशक्त होने का प्रमाण भी है।

लार्ज हैड्रन कोलाइडर

परमाणु में उपस्थित कणों विशेषकर प्रोटोन तथा उसमें उपस्थित दो अप क्वार्क और एक डाउन क्वार्क से निर्मित हैड्रोन की टकराहट से उत्सर्जित होने वाली कणिकाओं और ऊर्जा के व्यवहार का अध्ययन करने वाली यह अंतर्राष्ट्रीय परियोजना है जिसका प्रचालन इ.यू. की एजेंसी सर्न द्वारा किया जा रहा है।

इस परियोजना में शक्तिशाली चुम्बकीय क्षेत्र का प्रयोग करने वाले एक 29 किमी. सुरंग में परमाण्विक कणों की दो पुंजो को टकराया गया। यह टकराव उनकी अधिकतम गति पर चार स्थानों पर हुआ। इससे उत्पन्न होने वाली अन्य कणिकाओं से ऊर्जा व्यवहार का अध्ययन इस परियोजना का मूल उद्देश्य है। यह अध्ययन Big Bang Theory और ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की उपस्थिति के संदर्भ में किया जा रहा है। यह आशा की गई है कि इस परियोजना की सफलता के बाद कणिका भौतिकी के क्षेत्र में अनुसंधान की नई संभावनाएँ उत्पन्न होंगी।

6. सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology)

दूरसंचार क्षेत्र की वर्तमान स्थिति (Present State of Telecom Sector)

विगत दो दशकों में दूरसंचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। इस संवृद्धि दर को बनाये रखने के लिए सेवा प्रदान करने वाले दो विभागों को एकीकृत कर दिया गया है। ये विभाग हैं: दूरसंचार सेवा विभाग (Department of Telecom Services, DTS) तथा दूरसंचार संचालन विभाग (Department of Telecom Operations, DTO)।

दूरसंचार के क्षेत्र में सरकार ने अत्यावश्यक मुद्दों पर विशेष बल देने का निर्णय किया है। साथ ही, निजी क्षेत्र की अधिकाधिक भागीदारी सुनिश्चित करने का भी प्रयास किया है। इससे निश्चित रूप से निवेशकों को विश्वास में लिया जा सकेगा जो अन्ततः दूरसंचार के क्षेत्र में आवश्यक अवसंरचनाओं को भी सुदृढ़ बनायेगा।

त्वरित सामाजिक-आर्थिक विकास की कुँजी के रूप में दूर संचार के विकास हेतु प्रयास किये जा रहे हैं। हांलाकि भारत में टेली घनत्व का विस्तार हुआ है लेकिन अब भी चीन और ब्राजील की तुलना में कमी बनी हुई है। चीन और ब्राजील में टेली घनत्व लगभग 40 है जबकि भारत में यह केवल 6.6 है। टेली घनत्व में वृद्धि के लिए भारी मात्रा में निवेश आवश्यक है। निवेश के प्रमुख स्रोत के रूप में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment, FDI) का उल्लेख समीचीन है। हाल ही में दूरसंचार के क्षेत्र में ऐसे निवेश की सीमा 49 प्रतिशत से बढ़ाकर 74 प्रतिशत कर दी गई है।

इसके अतिरिक्त, दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण (Telecom Regulatory Authority, TRAI) ने वैश्विक प्रतिस्पर्धा के मद्देनजर कई महत्वपूर्ण सुझाव भी दिये हैं। सेल्युलर फोन के लिए विनियामकों की स्थापना की गई है। साथ ही, प्राधिकरण ने विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में टेलीफोन नेटवर्क के विस्तार के लिए सेवा उत्तरदायित्व के सार्वभौमिकीकरण का सुझाव दिया है।

अब तक का सबसे महत्वपूर्ण प्रयास ब्रॉडबैंड नीति की घोषणा कर किया गया है। इसके पूर्व इंटरनेट टेलीफोनी की सुविधा भी प्राधिकरण के निर्देशन में उपलब्ध कराई गई है।

दूरसंचार हेतु उपयोगी माध्यम

वस्तुतः संचार का ही विस्तृत रूप दूरसंचार है। जब संचार किन्ही दो काफी दूर स्थित स्थानों के मध्य संचालित होता है तो यह 'दूरसंचार' कहलाता है, यह दूरी सैकड़ों या हजारों किमी. हो सकती है। दूरसंचार के लिए जिन संचार माध्यमों का उपयोग किया जाता है, उनमें प्रमुख हैं-

1. कॉपर केबल (Copper Cable)
2. प्रकाश तंतु (Optical Fibre)
3. रेडियों और माइक्रोवेव तरंगे

4. उपग्रह संचार प्रणाली

5. जलगर्भीय संचार प्रणाली

कॉपर केबल:- यह सबसे दूरसंचार माध्यम है। इसमें विधुत पल्स के माध्यम से संदेशों का संचरण होता है तथा इसकी क्षमता बहुत सीमित होती है। वास्तव में संचार प्रणाली ध्वनि, विद्युत एवं प्रकाश के मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित होती है। इसके तहत ध्वनि तरंगों को विद्युत अथवा प्रकाश तरंगों में परिवर्तित कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रेषित किया जाता है, फिर इच्छित स्थानों पर इन विद्युत अथवा प्रकाश तरंगों को पुन: ध्वनि तरंगों में परिवर्तित कर लिया जाता है। कॉपर केबल में माध्यम में विद्युत तरंगों का प्रयोग होता है।

प्रकाश तंतु:- संचार के क्षेत्र में 'प्रकाश तरंगों' का प्रयोग प्रारंभ होने से प्रकाशीय संचार की आधुनिक प्रौद्योगिकी का विकास संभव हुआ है। इसके अंतर्गत प्रकाश तंतु संचार प्रणाली का प्रयोग करके मनुष्य की आवाज, टेलीविजन के चित्रों तथा कम्प्यूटर के आंकड़ों को सरलता व सुविधापूर्वक संचालित एवं संग्रहित किया जा सकता है। इस आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने वाला भारत विकासशील देशों में प्रथम देश है।

प्रकाश तंतु या ऑप्टिकल फाइबर एक प्रकार की 'सिलिका' से बनी पतली बेलनाकार नलिकाएं होती हैं, जो प्रकाश के पूर्ण आंतरिक परावर्तन के सिद्धान्तों पर कार्य करती है, जिससे विद्युत ऊर्जा के विपरीत इन प्रकाश तंतुओं में प्रकाश ऊर्जा का किसी प्रकार का क्षय नहीं होता है। प्रकाश तंतु एवं शक्तिशाली प्रकाश पुंज (लेजर किरणें) से बनी केबल का प्रयोग करके 'प्रकाश तंतु दूरसंचार सेवा' की शुरूआत की गई।

रेडियो और माइक्रोवेव तरंगें:- रेडियों संचार माध्यम का प्रयोग मुख्यत: समाचार, संगीत और दूसरे संदेशों को दूरस्थ स्थानों तक भेजने के लिए किया जाता है। इस प्रक्रम में 'रेडियो तरंगों' का प्रयोग किया जाता है। यह एक प्रकार की 'विद्युत चुम्बकीय तरंगें' होती हैं। जो मूलरूप से एक विशेष परिपथ में उत्पन्न की जाती हैं। इन तरंगों को रेडियों सेटों में एरियल के माध्यम से ग्रहण किया जाता है तथा शक्तिशाली बनाने के लिए कई बार एम्पलीफाई किया जाता है। रेडियों संचार के लिए दो प्रकार के यंत्रों की आवश्यकता होती है-1 संचारक-रेडियों तरंगों को उत्पन्न कर रेडियों सेट तक भेजता है तथा ध्वनि संदेशों को विद्युत धारा में परिवर्तित करके कैरियर तरंगों के साथ भेजता है। 2. संग्राहक ये रेडियों सेट होता है, जो रेडियों तरंगों को ध्वनि तरंगों में परिवर्तित करके वास्तविक आवाज पैदा करता है। उल्लेखनीय है कि रेडियों प्रसारण में प्रयोग होने वाली तरंगों की आवृति 150 किलो हर्ट्ज से 30,000 मेगा हर्ट्ज तक होती है।

जिन तरंगों का तरंगदैर्ध्य बहुत कम होता है उन्हें सूक्ष्म तरंग कहते है। इन तरंगों की आवृति स्पेक्ट्रम 1 गीगा हर्ट्ज से 1,000 गीगा हर्ट्ज तक लेते हैं। इन सूक्ष्म तरंग बैंडों में विद्युत चुम्बकीय तरंग स्पेक्ट्रम का केवल वह भी भाग लेते हैं जो दूर संचार में उपयोगी होता है। वर्तमान में रेडियों तरंगों का प्रयोग मुख्यत: चलन्त संचार प्रणाली, जैसे सेलुलर फोन, पेजर आदि तथा ग्रामीण इलाकों में दूरदराज के गांवों को टेलीफोन सुविधा प्रदान करने के लिए एम.एम.आर.आर. सिस्टम का उपयोग किया जाता है।

उपग्रह संचार प्रणाली:- विश्व संचार परिदृश्य में कृत्रिम उपग्रहों के अविष्कार ने पूरे विश्व में एक संचार क्रांति ला दी है। भारत जैसी भौगोलिक संरचना वाले देशों में दूरस्थ एवं दुर्गम क्षेत्रों तक संचार माध्यम हेतु केबल लाइन ले जा पाना एक दुष्कर कार्य है, अत: ऐसी जगहों पर दूरसंचार की सुविधा उपलब्ध कराने में उपग्रह संचार प्रणाली की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

उपग्रह के माध्यम से संचार में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला उपकरण 'ट्रांसपोंडर' है। यह ट्रांसपोंडर विद्युत चुंबकीय तरंगों को प्राप्त करता है तथा उनका प्रसंस्करण करके आवृति परिवर्तन करता है। इसके पश्चात ट्रांसपोंडर का कार्य इन डाउन लिंक तरंगों को पृथ्वी दिशा में संचालित करना है। उल्लेखनीय है कि तकनीकी कारणों से अप लिंक तरंगों की आवृत्ति क्षमता को डाउन लिंक तरंगों की आवृत्ति क्षमता से कम होना चाहिए।

भारत में उपयोग वाले ट्रांसपोंडर तीन प्रकार के हैं-

1. निम्न आवृत्ति का एस ट्रांसपोंडर (S Band Transponder)

2. मध्यम आवृत्ति का सी-ट्रांसपोंडर (C Bank Transponder)

3. उच्च आवृत्ति का केयू-बैंड ट्रांसपोंडर (KU Band Transponder)

एक तथा सी-बैंड का उपयोग सभी भू-स्थैतिक उपग्रह में हुआ है। केयू-ट्रासपोंडर का उपयोग इनसेट-2 सी से आरम्भ हुआ है। केयू बैंड ट्रांसपोंडर का मुख्य उपयोग है, उपग्रह के माध्यम से समाचार एकत्र करना तथा दूरदराज के इलाकों में व्यावसायिक संचार सुविधा उपलब्ध करानी हैं। उपग्रह के माध्यम से अब सचल संचार सेवाएं भी उपलब्ध कराई जाती है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी सेवा देने के लिए कम ऊँचाई (500किमी) के उपग्रहों का फुट प्रिंट अर्थात् संचार की दृष्टि से उपग्रह द्वारा घेरा गया क्षेत्र अपेक्षाकृत कम होता है। अत: पूरे विश्व को ऐसी सेवा के दायरे में लाने के लिए बहुत सारे उपग्रहों का उपयोग करना पड़ता है। ऐसी पहली परियोजना इरीडियम है, जो अमेरिकन कम्पनी मोटरोला तथा उसकी सहयोगी कम्पनी द्वारा शुरू की गई है।

भारत द्वारा उपग्रह आधारित मोबाइल संचार प्रणाली तथा व्यापारिक संचार प्रणाली की कार्य क्षमता की कार्य में पर्याप्त वृद्धि करने के उद्देश्य से मार्च, 2000 में इनसेट-3बी संचार उपग्रह का प्रक्षेपण किया है। इनसेट-3बी में उपग्रह प्रसारण और दूरसंचार के लिए विशेष तौर पर कुछ अतिरिक्त उपकरण जैसे-12सी-बैंड ट्रांसपोंडर 3केयू- बैंड ट्रांसपोंडर तथा एक मोबाइल ट्रांसपोंडर लगाए गए हैं।

जलगर्भीय संचार प्रणाली (Underwater Communication System)

अंतर्राष्ट्रीय संचार क्षेत्र में उपग्रहों पर निर्भरता को कुछ कम करने के उद्देश्य से भारत ने 18 अक्टूबर, 1994 को हिंद महासागर में प्रथम 'जलगर्भीय संचार प्रणाली' की शुरूआत की है। इस प्रणाली से तात्पर्य है समुद्र में जल के नीचे से प्रकाश तंतु केबल (अप्टिकल फाइबर केबल) को बिछाकर एक सशक्त अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार प्रणाली का विकास करना। इसके अंतर्गत हिन्द महासागर के समुद्रतल में ऑप्टिकल फाइबर केबल को बिछाकर भारत की प्रथम जलगर्भीय संचार प्रणाली को तैयार किया गया है तथा इसे तीन महाद्वीपों (एशिया, यूरोप एवं अफ्रीका) के 13 राष्ट्रों को एक साथ जोड़ने वाली विश्व की सबसे लंबी भूगर्भीय संचार प्रणाली से जोड़ा गया है। समुद्रतल में 18,190 किमी. तक फैलाव वाली तथा केवल सिंगापुर से मर्सिली (फ्रांस) के मध्य स्थित इस प्रणाली में अत्याधुनिक ऑप्टिकल फाइबर तकनीक का प्रयोग किया जाता है। इस प्रणाली की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसके द्वारा सुदूर देशों में आसानी से संदेशों का आदान प्रदान करने के साथ-साथ कंप्यूटरों के आंकड़ों, छाया चित्रों व वीडियों चित्रों का भी आपस में आदान-प्रदान किया जा सकता है। इन अतिरिक्त सुविधाओं के लिए दक्षिण-पूर्व एशिया, मध्य एशिया एवं पश्चिमी यूरोप-2 (एस.एम.वी.-2) नामक प्रणाली का उपयोग किया जाता है।

जलगर्भीय संचार प्रणाली में प्रयुक्त आधुनिक ऑप्टिकल फाइबर प्रौद्योगिकी के तहत अधिक सूचनाओं का परीक्षण प्रत्येक फाइबर युगल में 5 मेगा बाइट प्रति सेकेण्ड की गति से किया जा सकेगा, जिसकी आयु 25 वर्ष होगी। वर्तमान में विश्व के लगभग सभी देशों में जलगर्भीय संचार प्रणाली के माध्यम से प्रत्यक्ष डायलिंग की सुविधा उपलब्ध कराई जा चुकी है। जलगर्भीय संचार प्रणाली का दूरसंचार के क्षेत्र में सस्ती और बहुपयोगी तकनीके होने के कारण सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक नये युग की शुरूआत हुई है।

राष्ट्रीय दूरसंचार नीति (National Telecom Policy)

इस बात को महसूस करते हुये कि वर्ष 1994 की राष्ट्रीय दूरसंचार नीति से पर्याप्त सफलता नहीं मिल पाई, भारत सरकार ने वर्ष 1999 में नई दूरसंचार नीति की घोषणा की। इस नीति से यह आशा की गई थी कि इससे उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक्स तथा मीडिया उद्योगों को भी विशेष लाभ होगा। इस नीति के तथ्यों में निम्नांकित प्रमुख हैं :

1. स्पेक्ट्रम प्रबंधन में पारदर्शिता तथा कार्यकुशलता सुनिश्चित करने का प्रयास।
2. देश की प्रतिरक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता।
3. भारतीय दूरसंचार कंपनियों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने का प्रयास।
4. एक निश्चित समयावधि में दूरसंचार क्षेत्र को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में समायोजित करने का प्रयास।

5. दूरस्थ, पहाड़ी तथा जनजातीय क्षेत्रों में दूरसंचार की सुविधा का विस्तार।
6. आधुनिक एवं कार्यक्षेम दूरसंचार अवसंरचनाओं का निर्माण।
7. देश में अनुसंधान और विकास को प्रोत्साहन तथा विश्व स्तरीय विनिर्माण की क्षमता का विकास।

ऊपर लिखे गये उद्देश्यों के संदर्भ में दूरसंचार नीति 1999 ने निम्नलिखित लक्ष्यों का निर्धारण किया है :

1. वर्ष 2002 तक टेलीफोन की मांग पूरा करना तथा 2005 तक टेलीघनत्व को 7 तथा 2007 तक 15 करने का लक्ष्य।
2. ग्रामीण टेलीघनत्व को वर्तमान के 0.4 के स्तर से 2010 में 4 तक लाने का प्रयास।
3. वर्ष 2002 तक ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना एवं मीडिया का पर्याप्त विस्तार।
4. वर्ष 2002 तक 2 लाख की जनसंख्या वाले गांवों एवं नगरों तक सूचना सुविधा की उपलब्धता।
5. सभी सेवा दाताओं के लिए दर संरचना को तार्किक बनाने का प्रयास।

वर्ष 2005 में भारत सरकार दूरसंचार के क्षेत्र में विकास को गति प्रदान करने के लिए नई दूरसंचार नीति के निर्धारण का प्रस्ताव किया था। इस संबंध में राष्ट्रीय दूरसंचार नीति के प्रारूप निर्धारण का कार्य किया जा रहा है।

ब्रॉडबैंड नीति, 2004 (Broadband Policy, 2004)

भारत सरकार ने यह महसूस किया है कि ब्रॉडबैंड सेवाएं सकल उत्पादकता तथा जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसी कारण सरकार द्वारा ब्रॉडबैंड नीति, 2004 की घोषणा की गई है।

नीति में यह पहचान की गई है कि देश में इंटरनेट तथा ब्रॉडबैंड सेवाएं पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं हैं। सरकारी आंकड़ों में उल्लेख है कि दिसम्बर, 2003 तक भारत में ब्रॉडबैंड, इंटरनेट तथा वैयक्तिक कम्प्यूटर की उपलब्धता क्रमशः 0.02 प्रतिशत, 0.04 प्रतिशत तथा 0.08 प्रतिशत थी जो कई एशियाई देशों की अपेक्षा कम थी।

वर्तमान में तीव्र गति वाला इंटरनेट 64 किलोबिट प्रति सेकेंड या उससे अधिक की दर पर उपलब्ध है। दूसरी ओर, 128 किलोबिट प्रति सेकेंड की दर पर उपलब्ध इंटरनेट को ही ब्रॉडबैंड कहा जाता है।

नीति में यह उल्लेख किया गया है कि ब्रॉडबैंड सुविधा का कोई निश्चित मानदंड नहीं है तथा विभिन्न देशों में इसके भिन्न मानक होते हैं जो उन देशों की आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं।

नीति में ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी को निम्न रूप में परिभाषित किया गया है, 'एक सदैव संचालित सूचना कनेक्शन जो इंटरनेट की उपलब्धता के लिए आवश्यक अन्तःक्रियात्मक सुविधाएं उपलब्ध कराने तथा न्यूनतम 256 किलोबिट प्रति सेकेंड की दर से सेवाएं उपलब्ध कराने में सक्षम है, ब्रॉडबैंड कहलाता है। इससे सेवा दाता तथा उपभोक्ता के मध्य इंटरनेट की सुविधा तीव्र गति से उपलब्ध हो पाती है।'

नई नीति में सभी आवश्यक तकनीकों से संबद्ध अवसंरचनाओं के निर्माण पर बल दिया गया है। हम जानते हैं कि अवसंरचनाओं के विस्तार से स्वस्थ प्रतिस्पर्धा पनपती है। इसी आलोक में सरकार द्वारा किसी भी परिस्थिति में दूरसंचार अवसंरचनाओं के निर्माण और विकास के साथ समझौता नहीं किये जाने का निर्णय किया गया है।

नीति में इस बात पर भी जोर है कि तंतु प्रकाशिकी (Fibre Optics) तकनीक से असीमित बैंडविथ क्षमता प्राप्त करने के लिए प्रयास किये जाएंगे। शहरों में परंपरागत तांबे के नेटवर्क के स्थान पर प्रकाश तंतुओं के नेटवर्क के निर्माण की योजना है।

नीति में आंकड़ों के परिप्रेक्ष्य में यह कहा गया है कि बी.एस.एन.एल. तथा एम.टी.एन.एल द्वारा लगभग 4.5 लाख रूट किलोमीटर तथा निजी संचालकों द्वारा लगभग 1 लाख रूट किलोमीटर तक प्रकाश तंतुओं के नेटवर्क का निर्माण किया गया है। बी.एस.एन.एल. तथा एम.टी.एन.एल ने यह सुनिश्चित किया है कि वर्ष 2005 के अंत तक लगभग 1.5 मिलियन कनेक्शन दिये जाएंगे।

जहां तक उपग्रह मीडिया का प्रश्न है, वेरी स्मॉल अपरचर टर्मिनल (Very Small Aperture Terminals, VSATs) तथा डायरेक्ट टू होम (Direct-to-Home, DTH) सेवाओं को ब्रॉडबैंड तथा इंटरनेट के विस्तार के उद्देश्य से प्राथमिकता देना प्रस्तावित है। इसके फलस्वरूप, दूरस्थ क्षेत्रों में भी ऐसी सेवाओं का विस्तार किया जा सकेगा। नीति में यह आशा व्यक्त की गई है कि इस दिशा में कार्यक्रमों को सुदृढ़ बनाने में अंतरिक्ष विभाग का पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

यह माना गया है कि बैंडविथ की उपलब्धता ब्रॉडबैंड सेवाओं के लिए अति आवश्यक है। आज के प्रतिस्पर्धी वातावरण में सेवा दाताओं से यह अपेक्षा की गई है कि वे एक निश्चित समयावधि में बैंडविथ की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए हर संभव प्रयास करेंगे।

दूसरी ओर, यह विदित है कि बैंडविथ की कीमत ब्रॉडबैंड सेवाओं का एक महत्वपूर्ण अवयव है। इस विषय को प्राथमिकता देने के लिए सरकार और भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण को उत्तरदायी बनाया गया है।

इंटरनेट ट्रैफिक के संबंध में उल्लेखनीय है कि भारत सरकार द्वारा एक राष्ट्रीय इंटरनेट एक्सचेंज (National Internet Exchange of India, NIXI) की स्थापना कि गई है। इसके माध्यम से भारत में इंटरनेट ट्रैफिक को विनियमित किया जा सकेगा।

तंतुओं से प्रकाश का संचरण (Propagation of Light Through Fibres)

चित्र में कोण θ को अभिग्रहण कोण (Angle of Acceptance) कहते हैं। तंतु में प्रवेश करने वाला प्रकाश यदि इस कोण से कम दूरी पर प्रवेश करता है, तो वह क्लैड से θ से बड़ा कोण बनाता है। जब प्रकाश क्लैड तथा कोर के अंतरफलक या क्लैड के आंतरिक सतह पर θ से बड़े अथवा समान कोण पर मिलता है, तब पूर्ण आंतरिक परावर्तन की प्रक्रिया होती है। इस प्रकार प्रकाश की किरण में उपलब्ध ऊर्जा कोर की ओर पूर्णत: परावर्तित हो जाती है तथा इसका कोई भी भाग क्लैड की ओर नहीं जा पाता। चूंकि तंतु एक सीध में होता है, प्रकाश की किरण कोर के दूसरी ओर प्रवेश कर क्लैड की दूसरी सतह पर एक कोण बनाती है जिसके फलस्वरूप पूर्ण आंतरिक परावर्तन की प्रक्रिया की पुनरावृत्ति हो जाती है। इस प्रकार तंतु के अंत तक प्रकाश की किरणें टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर आगे बढ़ती हैं।

Propagation of light in optical fibre
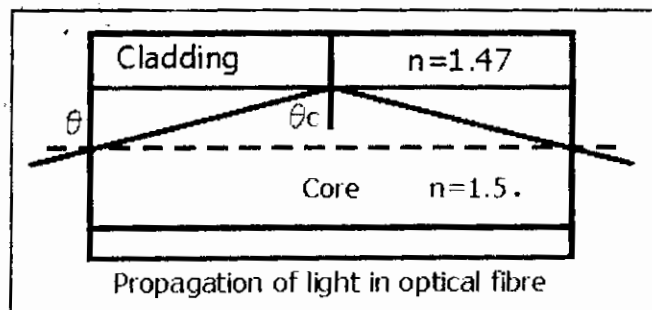
वस्तुत: जो प्रकाश तंतु में प्रवेश करता है वह एक किरण पुंज के रूप में रहता है जिसमें लाखों की संख्या में समरूप व्यवहार करने वाली किरणें होती हैं। ये सभी किरणें तंतु के कोर में टेढ़े-मेढ़े मार्ग से आगे बढ़ती हैं जिससे पूरा कोर प्रकाशमय हो जाता है। तंतु के कोर में संचरित होने वाले प्रकाश का स्पंद वास्तविकता में इन किरणों का एक समूह है।

प्रकाश तंतुओं के गुण (Advantages of Optical Fibres)

1. न्यून ऊर्जा की सहायता से अधिक बैंडविथ वाले संकेतों का तांबे के तंतुओं की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से संचरण।
2. परंपरागत तंतुओं की अपेक्षा प्रकाश तंतुओं का कम भार।
3. विद्युत चुम्बकीय हस्तक्षेप तथा तड़ित प्रभाव, रेडियो संकेतों एवं अन्य समरूप संकेतों से प्रतिरोध की क्षमता।
4. ज्वलनशील एवं विस्फोटक वातावरण में भी नुकसान मुक्त।
5. विद्युत प्रवाह नहीं होने के कारण अनचाही सूचनाओं के संचरण पर अंकुश।
6. किसी भी प्रकार के स्पार्क से मुक्त।
7. परस्पर वार्तालाप या शोर से मुक्त।

प्रकाश तंतुओं के दोष (Disadvantages of Optical Fibres)

1. कच्चे माल के रूप में रेत (सिलिका) का उपयोग करने के बावजूद प्रकाश तंतुओं पर तांबे के परंपरागत तंतुओं की तुलना में अधिक व्यय।
2. तांबे के तंतुओं की अपेक्षा प्रकाश तंतुओं को एक दूसरे से जोड़ने की प्रक्रिया कठिन। इसके अतिरिक्त, इस क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों को विशेष प्रशिक्षण देने की आवश्यकता।
3. प्रकाश स्रोत की मूर्छना एक निश्चित सीमा तक ही संभव।
4. न्यून शक्ति स्रोतों के कारण दो एम्पिलीफायरों के मध्य न्यून दूरी की आवश्यकता।

वृहद् परियोजनाएं (Major Projects)

1. **फाइबर ऑप्टिक्स लिंक अराउण्ड द ग्लोब** (Fibre Optics Link Around the Globe, FLAG):- ब्रिटेन से जापान तक जल के नीचे प्रकाश तंतु केबल प्रणाली परियोजना वर्ष 1997 में पूरी की गई थी। इसकी कुल लंबाई 28,000 किलोमीटर है तथा 64 किलोबाइट प्रति सेकेंड की दर से 1,20,000 परिपथों पर सूचनाओं के संप्रेषण में यह पूर्णतः सक्षम है। इस प्रणाली की निगरानी का कार्य संयुक्त अरब अमीरात में फूजैरा स्थित फ्लैग नेटवर्क ऑपरेशन सेन्टर द्वारा किया जाता है। इस परियोजना पर कुल 1.5 अरब डालर व्यय किये गये थे।
2. **दक्षिण अफ्रीका सुदूरपूर्व** (South Africa Far East, SAFE):- जल के नीचे प्रकाश तंतुओं के इस नेटवर्क के निर्माण की परियोजना के दिसम्बर 2001 तक पूरा करने का लक्ष्य रखा गया था लेकिन अब इसके इस वर्ष के अंत तक पूरा होने की आशा है। इस परियोजना के तहत जल के नीचे कुल 28,800 किलोमीटर लंबा नेटवर्क बनाया जायेगा। पहले चरण में दक्षिण अफ्रीका से यूरोप के बीच 15,000 किलोमीटर का नेटवर्क होगा जिसमें 10 पश्चिमी और दक्षिणी अफ्रीकी देशों से होकर गुजरेगा। दूसरे चरण में दक्षिण अफ्रीका से मलेशिया के बीच 13,800 किलोमीटर लंबे नेटवर्क का निर्माण किया जायेगा।

इस परियोजना में चार लिंक स्टेशन स्थापित किये जाने का प्रावधान है। ये हैं: भारत में कोच्चि, मलेशिया में पेनांग, मॉरिशस में जकोत की खाड़ी तथा दक्षिण अफ्रीका में केपटाउन। भारत की ओर से इस परियोजना में विदेश संचार निगम लिमिटेड सहयोग करेगा।

ब्लूटूथ प्रौद्योगिकी (Blue Tooth Technology)

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में ब्लूटूथ प्रौद्योगिकी को एक क्रांतिकारी परिवर्तन कहा जा सकता है। सामान्य भाषा में एक ब्लूटूथ उपकरण में एक बेस बैंड प्रोसेसर, एक रेडियो तथा एक एन्टिना कार्य करते हैं।

बेस बैंड प्रोसेसर सूचनाओं को संकेतों में बदल देता है जिन्हें रेडियो द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। इन संकेतों की आवृत्ति 2.4 गीगा हर्ट्ज होती है जो एन्टिना की सहायता से रेडियो द्वारा संप्रेषित किये जाते हैं। लगभग 30 फीट की दूरी पर स्थित किसी अन्य ब्लूटूथ उपकरण के एन्टिना द्वारा इन संकेतों को ग्रहण किया जाता है तथा उन्हें विपरीत दिशा में प्रसंस्कृत किया जाता है।

इस तकनीक के माध्यम से दो समान तकनीक का प्रयोग करने वाले उपकरणों से बेतार प्रौद्योगिकी के जरिए संचार संपर्क स्थापित किये जा सकते हैं।

प्रौद्योगिकी में दो भाग होते हैं: पहले को वॉल्यूम 1- कोर (Volume I-Core) तथा दूसरे को वॉल्यूम 2-प्रोफाइल (Volume II-Profile) कहा जाता है। कोर के अवयवों में रेडियो, बेस बैंड, लिंक मैनेजर तथा सर्विस डिस्कवरी प्रोटोकॉल जबकि प्रोफाइल में विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए प्रक्रियाओं तथा प्रोटोकॉल को शामिल किया जाता है।

यह प्रौद्योगिकी वस्तुतः तीव्र लेकिन कम-ऊर्जा खपत वाली माकक्रोवेव बेतार प्रौद्योगिकी है जिसमें टेलीफोन, लैपटॉप, पर्सनल डिजिटल असिस्टेन्ट तथा अन्य उपकरणों को सरलतापूर्वक संबद्ध किया जा सकता है। वर्तमान में हालांकि सूचनाएं 1-2 मेगाबाइट प्रति सेकेंड (Megabyte per second, Mbps) की दर से संप्रेषित की जा रही हैं लेकिन भविष्य में इस गति में वृद्धि की पूरी संभावना है जिसके

लिए प्रयास किये जा रहे हैं।

इस प्रौद्योगिकी में कम खर्च तथा छोटे आकार वाले लोकल एरिया नेटवर्क तकनीक का उपयोग किया जाता है। ब्लूटूथ प्रौद्योगिकी में उपकरणों को बिन्दु से बिन्दु अथवा कई बिन्दुओं पर जोड़ा जा सकता है तथा इनके बीच की दूरी 10 मीटर से बढ़ाकर 100 मीटर तक की जा सकती है लेकिन इसके लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता है।

ब्लूटूथ प्रौद्योगिकी में अदृश्य रेडियो तरंगों (2.4 गीगा हर्ट्ज बैंड) का प्रयोग होता है जो तत्काल स्वचालित रेडियो संपर्क का निर्माण करते हैं। इससे तंतुओं के असुविधाजनक नेटवर्किंग से बचा जा सकता है। साथ ही, एक ब्लूटूथ उपकरण द्वारा होल्ड मोड में केवल 30 माइक्रो एम्पीयर तथा कार्य करने के दौरान 8-30 मिली एम्पीयर ऊर्जा का उपभोग किया जाता है। इसमें प्रयुक्त रेडियो चिप को सामान्य मोबाइल फोन से ऊर्जा की लगभग 3 प्रतिशत कम मात्रा की आवश्यकता होती है। सूचनाओं की संख्या के आधार पर रेडियो चिप स्वत: होल्ड मोड में कार्य कर ऊर्जा की बचत कर सकता है। अपनी तीव्र आवृत्ति एवं क्षमता के कारण ब्लूटूथ रेडियो शोर से भरे रेडियो आवृत्ति में भी कार्य करने में सक्षम है। इसके अलावे, यह विद्यमान सूचना नेटवर्क को जोड़ने, एक अन्त:फलक के रूप में कार्य करने तथा स्थित अवसंरचनाओं से अलग हटकर कार्य करने में भी सक्षम है।

जहां तक सुरक्षा का प्रश्न है, यह तकनीक मानव शरीर अथवा सूचना नेटवर्कों के लिए पूर्णत: सुरक्षित है। उल्लेखनीय है कि इसकी सुरक्षा से संबंधित सभी प्रतिमानों का विकास कर लिया गया है।

वी सैट (Very Small Aperture Terminals, VSAT)

वी सैट पूरी तरह से निजी स्वामित्व वाला उपग्रह आधारित संचार तंत्र है। वास्तव में यह ऐसी पृथ्वी केंन्द्र है जिसमें 2मी. से भी छोटे व्यास का एक एंटीना लगाना पड़ता है, जो टर्मिनलों को बड़े नेटवर्क से बहुत आसानी से जोड़ देता है। इसमें पृथ्वी केंद्र भारत में नई दिल्ली स्थित 'मास्टर अर्थ स्टेशन' (मुख्य पृथ्वी केन्द्र) से जुड़ा होता है, जिससे उसे किसी आम नेटवर्क प्रणाली के अनुरूप श्रृंखलाबद्ध नहीं होना पड़ता। इसे व्यावसायिक फर्में दूरसंचार विभाग के स्थान पर पूर्ण विश्वस्त आंकड़ा प्राप्त करने के लिए स्वीकार कर रही हैं। निकनेट की स्थापना के बाद 1988 में वी सैट प्रणाली को इससे जोड़कर पहली सूचना सेवा शुरू हुई। इसके अंतर्गत 650 से भी अधिक वी सैट का प्रयोग करके भारत के प्रत्येक जिला मुख्यालय को इस प्रणाली से जोड़ दिया गया है। वी-सेट की दूसरी सार्वजनिक सेवा 1991 में आर.ए.बी.एम.एन. (Remote Area Business Message Network) के रूप में शुरू की गई है जिसकी सम्पूर्ण क्षमता 1000 वी-सैट के संचालन की है। इसके अतिरिक्त वी-सैट प्रणाली का प्रयोग इलेक्ट्रानिक- मेल, वॉयस मेल, इलेक्ट्रानिक मुद्रादेश, अंतर्राष्ट्रीय आंकड़ा नेटवर्क, फैक्स, दूरस्थ टेलेक्स, हाइब्रिड मेल सर्विस आदि में लाभकारी सिद्ध हो रहा है। वी सैट प्रणाली का प्रत्येक उपभोक्ता को 'सिम कार्ड' दिया जाता है, जिसमें एक कम्प्यूटर चिप होती है। इस कम्प्यूटर चिप में उपभोक्ता की व्यक्तिगत पहचान संख्या और उसके द्वारा मूल्य संबंधित सेवाओं का उल्लेख होता है। उपभोक्ता इस 'सिम कार्ड' को किसी भी सेल्यूलर फोन में लगाकर बातचीत कर सकता है। भारत में इंटरनेट सर्फिंग की सुविधा सेल्यूलर फोन की स्क्रीन पर उपलब्ध है। इसे संभव बनाने वाली प्रौद्योगिकी 'वायरलैस एक्सेस प्रोटोकॉल' है। इंटरनेट की गति को भी तीव्र करने की तकनीक पर भी तेजी से कार्य हो रहा है। निजी क्षेत्र की कम्पनी एस्सार इस सुविधा को भारत में उपलब्ध करा रही है। इस सुविधा के उपलब्ध होने तथा देश में साइबर कानून बनने के बाद मोबाइल पर व्यापार सुविधा उपलब्ध होगी, जिसे एम-कॉमर्स नाम दिया गया है। एम कॉमर्स की सुविधा मिलते ही इसके तीव्रता से लोकप्रिय होने की आशा है क्योंकि यह सेल्यूलर फोन को उपभोक्ता का कारोबारी मित्र बना देगा।

सेल्यूलर फोन प्रणालियाँ (Cellular Telephony)

फ्रिंक्वेंसी डिवीजन मल्टीपल एक्सेस (FDMA)

इसका उपयोग एनालॉग सेल्यूलर सिस्टम में किया जाता है। सामान्यत: एफडीएमए लोकेटेड स्पैक्ट्रम को कई चैनलों में विभाजित कर देता है। वर्तमान में एनालॉग सिस्टम में प्रत्येक चैनल 30 किलोहर्टज का होता है। जब एफडीएमए सेलफोन से कोई कॉल की जाती है, तो उस पूरी कॉल के दौरान यह फ्रीक्वेंसी को रिजर्व कर लेता है। वॉयस डाटा इस चैनल को फ्रीक्वेंसी बैंड पर मॉडुलेट करता

है और एयरवेव के माध्यम से भेज देता है। रिसीवर इस इन्फॉरमेशन को बैंड पास फिल्टर द्वारा ले लेता है। एनालॉग सिग्नल वॉयस क्वालिटी के दृष्टिकोण से विशेष संवदेनशील होते हैं। इनमें किसी प्रकार के शोर को फिल्टर नहीं किया जा सकता। एफडीएमए सिस्टम वर्तमान में प्रयोग हो रहे सेल्यूलर सिस्टम के दृष्टिकोण से कम उपयोगी है।

टाइम डिवीजन मल्टीपल एक्सेस (TDMA)

एफडीएमए के आधार पर ही निर्मित टीडीएमए में आवृत्ति स्पैक्ट्रम के साथ समय को भी विभिन्न चैनलों में विभाजित कर दिया जाता है। इससे लाभ यह होता है कि डिजिटल कंप्रेशन के द्वारा वॉयस 10 किलोबाइट प्रति (10 किलो हर्ट्ज) सेकण्ड में पहुँच जाती है। इससे सेल्यूलर सिस्टम की क्षमता बढ़ जाती है। टीडीएमए सिस्टम का घाटा यह है कि डिजिटज डाटा रेट के अनुसार परिवर्तन नहीं करता अर्थात् वॉयस क्वालिटी बेहतर हो, खराब हो या नेटवर्क पर ट्रैफिक हो फिर भी यह अपने चैनल स्लॉट को उसी दर से बांटता है।

कोड डिवीजन मल्टीपल एक्सेस (CDMA)

मूलत: आईएम-95 के रूप में प्रचलित सीडीएमए एक सेल्यूलर तकनीक है जिसका विकास एक अमेरिकी कंपनी क्वालकॉम ने किया। इस तकनीक में एक अलग किस्म के कोड का इस्तेमाल किया जाता है ताकि प्रत्येक कॉल में अंतर किया जा सके। इसमें विभिन्न सिग्नल एक ही ट्रांसमिशन चैनल से होकर गुजरते हैं, ताकि उपलब्ध बैंडविड्थ का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके। यह तकनीक अल्ट्रा हाई फ्रिक्वेंसी सिस्टम (900 मेगाहर्टज से 1.9 गीगाहर्टज बैंड) में काम करती है। किसी अन्य तकनीक के मुकाबले इसमें वॉयस और डाटा की क्वालिटी बेहतर होती है। साथ ही इस तकनीक में विभिन्न यूजर एक ही समय पर जुड़ सकते हैं। आईएस-95 सेल्यूलर प्रणाली सीडीएमए तकनीक का प्रयोग करता है। आईएम-95 एक एनालॉग वार्ता सिग्नल है, जो एक सेल को भेजा जाता है। और इसे पहले राशिकृत किया जाता है, उसके बाद डिजिटल आरेख संरचनाओं में से किसी एक में संगठित किया जाता है। सीडीएमए को कभी-कभी स्पीड स्पैक्ट्रम मल्टीपल एक्सेस के साथ सम्बद्ध किया जाता है, क्योंकि कूट अनुक्रम द्वारा सिग्नल के बहुगुणन की प्रक्रिया के कारण प्रसारित सिग्नल की शक्ति एक वृहत्तर बैंड विड्थ पर विस्तारित हो जाती है। आवत्ति प्रबंधन सीडीएमए में समाप्त हो जाता है। सीडीएमए प्रत्येक प्रयोक्ता को एक विशिष्ट आवृत्ति के साथ नहीं जोड़ता है। इसके बजाए प्रत्येक चैनल पूर्ण उपलब्ध स्पैक्ट्रम का प्रयोग करता है। भारत में सीडीएमए तकनीक की शुरूआत इसलिए की गई थी ताकि इसे फिक्स्ड लाइन तकनीक के रूप में स्थापित किया जा सके।

ग्लोबल सिस्टम फॉर मोबाइल (GSM)

वर्ष 1982 में यूरोप में यूरोपियन कांफ्रेस ऑफ पोस्टल एवं कम्युनिकेशन एडमिनिस्ट्रेशन में स्टैंडर्ड टेलीफोन सिस्टम के विकास एवं अध्ययन हेतु एक समूह का गठन किया गया जो ग्रुप स्पेशल मोबाइल कहलाता था। वर्ष 1987 में यूरोप के 13 देशों की तरफ से एक मेमोरेंडम हस्ताक्षरित किया गया, जिसमें ऐसी सेल्यूलर तकनीक बनाने की बात की गई जो पूरे यूरोप के लिए समान हो। वर्ष 1989 में इसे बनाने की जिम्मेदारी यूरोपियन टेलीकम्यूनिकेशन स्टैंडर्ड इंस्टीट्यूट को दे दी गई। इसके बाद एक द्वितीय पीढ़ी सेल्यूलर मानक के रूप में ग्लोबल सिस्टम मोबाइल कम्यूनिकेशन का उदय हुआ जिसने ध्वनि सेवाओं और आँकड़ा सम्प्रेषण की सुविधाओं का विकास किया। पहला जीएसएम नेटवर्क फिनलैंड में शुरू किय गया। वर्ष 1991 में वाणिज्यिक सेवा शुरू करने के बाद वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व के मोबाइल बाजार में जीएसएम में टीडीएमए तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है तथा इसका नेटवर्क का ही प्रयोग किया गया। जीएसएम की टीडीएमए तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है तथा इसका नेटवर्क चार विभिन्न आवृत्तियों में कार्य करता है। ये चार विभिन्न आवृत्तियाँ हैं- 850 मेगाहर्टज, 900 मेगाहर्टज, 1800 मेगाहर्टज। अधिकांश जीएसएम नेटवर्क 900 मेगाहर्टज से 1800 मेगाहर्टज में मध्य काम करते हैं। जीएसएम नेटवर्क में चार अलग साइज के सेलफोन प्रयोग होते हैं जो हैं- माइक्रो, मेक्रो, पिका, फेमटो।

3-जी मोबाइल सेवा

प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह ने 11 दिसंबर, 2008 को भारत में पहली बार 3-जी मोबाइल सेवा का शुभारभ किया। उन्होंने महासागर टेलीफोन निगम लि. (MTNL) की 3-जी मोबाइल सेवा का नई दिल्ली में उद्घाटन किया। इसे 'जादू' नाम दिया गया है। यह तीसरी

पीढ़ी की मोबाइल सेवा है, जो तकनीक और सुविधाओं के मामले में मौजूदा दूसरी पीढ़ी (2-जी) से कई गुना बेहतर है। 3-जी नेटवर्क पर उपभोक्ता 2 मेगाबाइट प्रति सेकण्ड की गति से इन्टरनेट सर्फिंग कर सकेंगे, जबकि 2-जी नेटवर्क पर अधिकतम 144 किलोबाइट प्रति सेकण्ड डाटा की ट्रान्सफर हो सकता है। 3-जी मोबाइल 15-20 मेगाहर्ट्स बैंडविड्थ में कार्य करते हैं, जबकि 2-जी मोबाइल अधिकतम 200 किलोहर्ट्स बेंडविड्थ ही उपयोग करते हैं। बैंडविड्थ जितनी अधिक होगी, डाटा ट्रान्सफर की गति भी उतनी ही अधिक होगी। 3-जी नेटवर्क से नेटवर्क ऑपरेटर उपभोक्ताओं को उन्नत सेवाओं की एक विस्तृत रेंज प्रदान करने में सक्षम होंगे। उन्नत स्पैक्ट्रम सक्षमता के माध्यम से अधिकतम नेटवर्क क्षमता प्राप्त करने में सहायता होगी अर्थात उपलब्ध बैंडविड्थ में अब अधिकतम सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जा सकेगा।

उपभोक्ताओं के लिए 3-जी तकनीक का लाभ यह होगा कि वे अपने मोबाइल फोन का हाई स्पीड इन्टरनेट (ब्राडबैंड जैसी सेवा) और इन्टरएक्टिव गेमिंग का आनन्द ले सकेंगे तथा फिल्में, वीडियों क्लिप और म्युजिक डाउनलोड कर सकेंगे। 3-जी तकनीक से उपभोक्ता वीडियों कार्फ्रेसिंग, वॉयस व वीडियों डाटा ट्रान्सफर (2-जी तकनीक के मुकाबले डाटा ट्रान्सफर की गति आठ गुना अधिक होगी) और वाई-फाई की बदौलत कुछ भी लिखकर कहीं भी भेज सकेंगे। इन्टरनेट के स्काईपी प्रोग्राम का उपयोग करके मोबाइल पर मुफ्त में बात भी की जा सकेंगे जो एक वायरलैस इन्टरनेट से युक्त लैपटॉप देता है।

4-जी तकनीक

4-जी तकनीक वायरलैस सेवा (मोबाइल सेवा) की चौथी पीढ़ी की तकनीक है, जिसमें आर्थोगोनल फ्रिक्वेंसी डिविजन मल्टीपल एक्सेस (OFDMA) की सहायता से नेटवर्क की सुविधा को और बेहतर बनाया जा सकेगा। 4-जी पूरी तरह से इन्टरनेट प्रोटोकॉल (IP) आधारित सेवा होगी जिसमें वॉयस डाटा और मल्टीमीडिया को समान गति से भेजा और प्राप्त किया जा सकेगा। 4-जी की गति 100 एमबीपीएस होगी, जबकि 3-जी की गति मात्र 384 केबीपीएस से 2 एमबीपीएस तक है। 4-जी लोकल एरिया नेटवर्क (LAN) की अवधारणा पर कार्य करेगा, जबकि 3-जी तकनीक वाइड एरिया नेटवर्क (WAN) अवधारणा पर कार्य करती है। 4-जी तकनीक के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं-

1. उपभोक्ता को अत्याधिक उन्नत गुणवत्ता की आडियो और विडियों सुविधा उपलब्ध होगी।
2. इन्टरनेट स्पीड यूनिफार्म हो जाएगी।
3. डाटा ट्रान्सफर अत्यधिक तीव्र गति से हो सकेगा।
4. 3-जी के तुलना में कीमत में कमी आएगी।
5. इन्टरनेट प्रोटोकॉल आधारित सेवा होने के कारण वॉयस, डेटा और मल्टीमीडिया को एक समान गति से भेजना और प्राप्त करना सम्भव हो सकेगा।

मोबाइल सर्विलाँस (Mobile Surveillance)

किसी भी व्यक्ति से संबंधित सूचानाएँ एकत्र करने के लिए उसके मोबाइल को ऑब्जरवेशन पर लगाने की प्रक्रिया को 'मोबाइल सर्विलाँस' पर लगाना कहते हैं। दो प्रकार के मोबाइल सर्विलाँस होती हैं- (1) कॉल डिटेल रिकॉर्ड (CDR) की जानकारी प्राप्त करने के लिए और (2) बातचीत की रिकॉर्डिंग का ब्यौरा 'लिसनिंग वॉच' प्रक्रिया के तहत।

सर्विस प्रोवाइडर जब 'कॉल डिटेल रिकॉर्ड' (CDR) पुलिस को मुहैया कराती है तो इसमें उन नंबरों की सूची शामिल होती है जिस पर उस व्यक्ति ने बातचीत की होती है। साथ में कॉल ड्यूरेशन भी पता चलता है कि उस नंबर पर सर्विलांस में लगे नंबर से कितने देर तक बातचीत हुई है। सर्विलांस के जरिए व्यक्ति की लोकेशन की भी जानकारी हांसिल होती है। फिर पुलिस उस नंबर को रखने वाले से पूछताछ कर उस व्यक्ति का पता ठिकाना लगाती है।

वहीं लिसनिंग वॉच प्रक्रिया के तहत सर्विस प्रोवाइडर से बातचीत रिकॉर्ड करने की व्यवस्था करती है। इसके लिए पुलिस 'व्यायस लॉगर' उपकरण के जरिए बातचीत रिकॉर्ड करती है। फिर पुलिस बातचीत को आधार मानते हुए उस व्यक्ति के खिलाफ एविडेंस

जुटाती है और मोबाइल टावर में शो किए जाने वाले लोकेशन से उस व्यक्ति तक पहुँचती है।

कम्प्यूटर (Computers)

किसी पूर्व लिखित मार्गदर्शनों को समुचित ढंग से क्रियान्वित करने के लिए किसी विशिष्ट निर्देश के तहत कार्य करने वाली युक्ति को कम्प्यूटर कहते हैं। 19वीं शताब्दी में चार्ल्स बैबेज (Charles Babbage) ने सूचनाओं के प्रसंस्करण के उद्देश्य से एक यंत्र का निर्माण किया था। बैबेज द्वारा निर्मित यंत्र में मुख्यत: तीन भाग थे, यथा संग्राहक (Store), चकरी (Mill) तथा नियंत्रक (Controller)। हालांकि यह यंत्र अत्यन्त साधारण था लेकिन इसने कालांतर में कम्प्यूटरों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इन्हीं आधारों पर 1940 के दशक में प्रथम पीढ़ी के कम्प्यूटरों का निर्माण किया गया था। ऐसा पहला कम्प्यूटर वर्ष 1944 में **मार्क-I** के नाम से हारवर्ड विश्वविद्यालय में विकसित किया गया। लेकिन पहले इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर का विकास 1946 में हुआ था जिसे **इलेक्ट्रॉनिक न्यूमेरिकल इन्टीग्रेटर एण्ड कैलकुलेटर** (Electronic Numerical Integrator and Calculator, ENIAC) कहा गया था। वलय-गणक (Ring Counter) पर आधरित गणना के सिद्धांत पर कार्य करने वाला यह पहला कम्प्यूटर था। इसमें दो अंकों को जोड़ने के लिए 200 माइक्रोसेकेंड तथा गुणा करने के लिए 2800 माइक्रोसेकेंड का समय लगता था। इसके बाद 1949 में प्रोग्राम को संग्रहित करने के सिद्धांत पर आधरित पहले कम्प्यूटर का विकास किया गया जिसे **इलेक्ट्रॉनिक डिले स्टोरेज ऑटोमेटिक कैलकुलेटर** (Electronic Delay Storage Automatic Calculator, EDSAC) की संज्ञा दी गई। यह पारे की विलंबित रेखाओं के माध्यम से संग्रहण का कार्य करने में सक्षम था। वस्तुत: इस कम्प्यूटर के निर्माण की प्रेरणा वैन न्यूमैन (Van Newmann) के सिद्धांत से प्राप्त हुई थी। इस कम्प्यूटर ने सूचनाओं और निर्देशों को एक ही स्मृति खंड में मिश्रित करने की पद्धति अपनाई थी। हालांकि यह कम्प्यूटर कई वर्षों तक प्रचलित रहा लेकिन 1951 में पहले व्यावसायिक कम्प्यूटर का विकास किया गया जिसे **यूनिवर्सल ऑटोमेटिक कम्प्यूटर** (Universal Automatic Computer, UNIVAC) का नाम दिया गया। तकनीकी दृष्टिकोण से यह एक निर्वात-नलिका कम्प्यूटर (Vacuum Tube Computer) था जिसमें चुंबकीय टेप की सहायता से सूचनाएं प्रदान की जाती थीं। कोर स्मृति की तुलना में इस प्रकार के कम्प्यूटरों के प्रसंस्करण की दर दस गुणा अधिक थी।
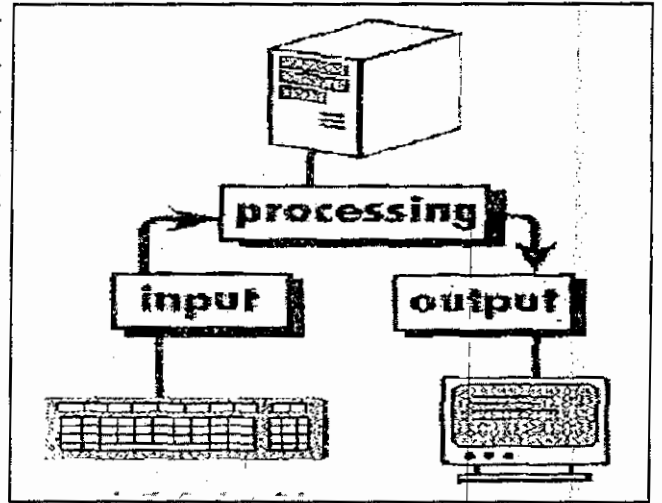
1960 के दशक में समेकित परिपथ प्रणाली (Integrated Circuit System) का विकास संभव हुआ जिसमें ट्रांजिस्टर, डायोड तथा प्रतिरोधक (Resistors) का उपयोग किया जाने लगा। वर्ष 1965 में तृतीय पीढ़ी के कम्प्यूटरों का भी विकास करने में सफलता प्राप्त हुई। इस अवधि में जर्मेनियम से निर्मित ट्रांजिस्टरों को सिलिकन के ट्रांजिस्टरों से प्रतिस्थापित कर दिया गया। इसके बाद, माइक्रोप्रोसेसर तकनीक के विकास ने विशिष्ट समेकित परिपथ प्रणालियों के विकास को भी सुगम बनाया। इस प्रकार की प्रणालियों को अति व्यापक समेकित परिपथ की संज्ञा दी गई। इस प्रकार के परिपथ में एक चिप के अन्तर्गत लगभग 50,000 ट्रांजिस्टरों का प्रयोग करने में सफलता मिली। चुंबकीय स्मृति खंडों को अर्द्धचालक स्मृतियों से प्रतिस्थापित करने की तकनीक भी विकसित हुई। वर्ष 1986 से 2000 के बीच उच्च गति वाले माइक्रोप्रोसेसर तथा वृहत स्मृति क्षमता वाले कम्प्यूटरों का विकास किया गया। विशेष रूप से 1990 के दशक में पेन्टियम, सेलेरॉन तथा इटेनियम जैसे प्रोसेसरों ने कम्प्यूटर तकनीक में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिये। यद्यपि कालांतर में कम्प्यूटर तकनीक में व्यापक परिवर्तन हुये हैं लेकिन वैन न्यूमैन की संकल्पना वर्तमान में भी कमोबेश प्रासंगिक बनी हुई है। एक सामान्य कम्प्यूटर में एक आदान (Input), एक केन्द्रीय प्रसंस्करण इकाई (Central Processing Unit, CPU) तथा एक निर्गमक इकाई (Output) होता है। प्रसंस्करण इकाई में एक अंकगणितीय तथा एक तार्किक इकाई होती है। इसके माध्यम से सूचनाओं का प्रसंस्करण किया जाता है।

कम्प्यूटर संबंधित आधारभूत तथ्य

बिट (Bit):- हय बाइनरी डिजिट्स का संक्षिप्त विवरण है, जिसका अर्थ है दो अंक जो कि '0' व '1' हैं। कम्प्यूटर ममोरी में संग्रह की सबसे छोटी इकाई है।

बाइट (Byte):- यह कम्प्यूटर के सूचना संग्रह की आधारभूत इकाई है। एक बाइट में 8 बिट्स होती हैं। एक बाइट एक अक्षर या संख्या निरूपित करती है। यह इकाई क्रमशः आगे बढ़कर किलोबाइट (KB), मेगाबाट (MB), गीगाबाइट (GB), के रूप में परिणित हो जाते हैं।

अमेरिकन स्टैडर्ड कोड फॉर इन्फोरमेशन इंटरचेंच (ASCII):- कम्प्यूटर में सूचनाओं (अक्षर, संख्याएं, निर्देश) को सिग्नल से सामान्य भाषा (अंग्रेजी) में निरूपित करने के लिए लाया जाता है। इसमें किसी अक्षर को निरूपित करने के लिए 8 बिट्स का उपयोग किया जाता है अर्थात यह कोड 256 विभिन्न चीजों को बाइनरी रूप में निरूपित कर सकता है।

प्रोसेसिंग क्षमता:- कम्प्यूटर की कार्य क्षमता का आकलन उसके माइक्रोप्रोसेसर द्वारा एक सेकंड में किये निर्देशों के अनुपालनों की संख्या पर आधारित है। इसकी आधारभूत इकाई 'हर्ट्ज' है, जबकि बड़ी इकाईयां क्रमशः किलोहर्ट्ज मेगाहर्ट्ज, गीगाहर्ट्ज कहलाती हैं। वर्तमान में सामान्यतः गीगाहर्ट्ज श्रेणी के माइक्रोप्रोसेसर उपयोग में लाए जा रहे हैं।

संख्या पद्धतिः- गणनाओं में प्रयोग होने वाली विभिन्न संख्या पद्धतियां हैं- दशमलव (0-9), आक्टेल (0-7), हेक्साडेसीमल (0-9, A-F), बाइनरी (0-1)। इन सभी पद्धतियों का उपयोग दैनिक जीवन व कम्प्यूटर दोनों में विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं के अनुसार होता है। कम्प्यूटर बाइनरी पद्धति पर आधारित है।

विंडोज :- 1975 में स्थापित बिल गेट्स की कंपनी माइक्रोसॉफ्ट द्वारा आईबीएम कम्प्यूटरों एवं आईबीएम पीसी में प्रयोग हेतु विकसित माइक्रोसॉफ्ट डिस्क ऑपरेटिंग सिस्टम (MS DOS) के बाद 1985 में पहली बार ऑपरेटिंग सिस्टम में श्रृंखला 'विंडोज' का आरम्भ किया गया जो वर्तमान में कम्प्यूटर का सबसे प्रचलित ऑपरेटिंग सिस्टम है। यह ग्राफिकल यूजर इंटरफेस पर आधारित है। विंडोज के विभिन्न प्रमुख संस्करण निम्नलिखित हैं- विंडोज 98 (win98), विंडोज 2000 (win2000), विंडोज एक्सपी (win-XP), विंडोज विस्टा (win-Vista), विंडोज सेवन (win-7) इत्यादि।

4 फरवरी, 2008 को पूर्णतः निर्मित विंडोज-7 वर्तमान में माइक्रोसॉफ्ट द्वारा जारी विंडोज का सबसे नवीनतम ऑपरेटिंग सिस्टम है। यह विंडोज सर्वर 2003 का उत्तराधिकारी है। विंडोज-7 को 16 मई, 2007 से पहले विंडोज सर्वर कोडनेम, 'लांगहार्न' के नाम से जाना जाता था। बाद में माइक्रोसॉफ्ट ने इसके आधिकारिक नाम 'विंडोज सर्वर 2008' की घोषणा की। विंडोज सेवन में विंडोज पावर सेल, हाइपर-7 जैसी कुछ सुविधाएं मौजूद हैं जो विंडोज सर्वर 2003 में नहीं थीं। कोड बेस से निर्मित विंडोज सेवन में उन्नत बेस्ट इन्सटॉलेशन तकनीक है। विंडोज सेवन में डाटा रिकवरी की सुविधा भी उपलब्ध है। सेंसर की सुविधा से युक्त विंडोज सेवन में वॉयस रिकोगनिशन की भी सुविधा उपलब्ध कराई गई है। हाल ही मे विंडोज 8 भी माइक्रोसॉफ्ट द्वारा लांच की गई है।

कम्प्यूटर की स्मृति (Memory of a Computer)

व्यापक स्तर पर कम्प्यूटर की स्मृति तथा मानव स्मृति के बीच संबंध स्थापित किये गये हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानव की स्मृति दो श्रेणियों में विभक्त होती है। पहली अस्थायी तथा दूसरी स्थायी। अस्थायी स्मृति किसी विशिष्ट घटनाक्रम पर आधारित होती है जबकि स्थायी स्मृति मस्तिष्क द्वारा प्रसंस्कृत सूचनाओं पर निर्भर होती है। इसी प्रकार, एक कम्प्यूटर की स्मृति भी अस्थायी एवं स्थायी प्रकार की होती है। अस्थायी स्मृति को रैन्डम एक्सेस मेमरी (Random Access Memory, RAM) तथा स्थायी स्मृति को रीड ओन्ली मेमरी (Read Only Memory, ROM) कहते हैं। कम्प्यूटर की स्मृतियों की संक्षिप्त व्याख्या नीचे की गई है:

रैन्डम एक्सेस मेमरी (Random Access Memory, RAM)

व्यापक स्तर पर यह एक कम्प्यूटर की मुख्य स्मृति है जो दो प्रकार की होती है : (क) गत्यात्मक रैम (Dynamic RAM or DRAM) तथा (ख) स्थैतिक रैम (Static RAM or SRAM)। तकनीक रूप से DRAM को SRAM की अपेक्षा एक से अधिक बार के लिए

परिवर्तित किया जा सकता है। लेकिन दोनों प्रकार की स्मृतियां अस्थायी होती हैं। विद्युत आपूर्ति स्थगित होने के साथ ही ये नष्ट हो जाती हैं।

रीड ओन्ली मेमरी (Read Only Memory, ROM)

यह एक स्थायी स्मृति है जिसका उपयोग मुख्यत: लेजर प्रिंटरों तथा गणकों में किया जाता है। सामान्यत: इसमें नये प्रोग्राम नहीं किये जा सकते। लेकिन कई अवसरों पर नये प्रोग्राम करने की सुविधा भी उपलब्ध होती है। इस सुविधा के साथ नीचे लिखे गये रॉम का विकास किया गया है:

1. **प्रोग्रामेबल रॉम (Programmable ROM, PROM):-** एक रिक्त स्मृति के रूप में इस प्रकार के रॉम में नये प्रोग्राम बनाये जा सकते हैं।
2. **इरेजेबल प्रोग्रामेबल रॉम (Erasable Programmable ROM, EPROM):-** इस प्रकार की स्मृति में प्रोग्राम को पराबैंगनी प्रकाश से मिटाकर नया प्रोग्राम किया जा सकता है।
3. **इलेक्ट्रिकली इरेजेबल प्रोग्रामेबल रॉम (Electrically Erasable Programmable ROM, EEPROM):-** इस प्रकार की स्मृति में किसी प्रोग्राम को मिटाने के लिये विद्युत आवेशों का प्रयोग किया जाता है।

फ्लैश मेमरी (Flash Memory)

यह भी रम्व्व्ड की भांति कार्य करने वाली स्मृति है जिसे सामान्यत: वैयक्तिक कम्प्यूटरों में प्रयोग में लाया जाता है। इस प्रकार की स्मृति में बेसिक इनपुट आउटपुट सिस्टम (Basic Input Output System, BIOS) को संग्रहित करने का कार्य किया जाता है।

कम्प्यूटर की विशेषताएं (Characteristics of a Computer)

1. साधारण गणना से लेकर कम्प्यूटर आधारित डिजाइनों तथा नौसंचालन एवं उपग्रहों से संबंधित सूचनाओं के विश्लेषण का कार्य एक कम्प्यूटर द्वारा सरलता से किया जा सकता है।
2. कम्प्यूटर किसी अन्य प्रणाली की अपेक्षा कार्य करने में अधिक सटीक और परिशुद्ध है।
3. एक समय में बड़ी मात्रा में सूचनाओं के संग्रहण की क्षमता।
4. अंकीय कम्प्यूटरों द्वारा द्विआधारी प्रणाली (Binary System) के माध्यम से कार्य किया जाता है। इन द्विआधारी अंकों को बिट कहते हैं।
5. अत्यन्त उच्च गति से संगणना करने की क्षमता।

संग्रहण युक्तियां (Storage Devices)

आंतरिक स्मृतियों के अतिरिक्त कई अन्य युक्तियों की सहायता से सूचनाओं को संग्रहित करने की व्यवस्था कम्प्यूटरों के माध्यम से की जाती है। इस प्रकार की संग्रहण युक्तियां वस्तुत: एक प्रकार की स्थायी स्मृतियां होती हैं जिन्हें लंबी अवधि तक सुरक्षित रखा जा सकता है। कुछ महत्वपूर्ण युक्तियों की संक्षिप्त व्याख्या नीचे की गई है :

1. **चुंबकीय टेप (Magnetic Tape):-** सूचनाओं के संग्रहण करने वाली युक्तियों में चुंबकीय टेप का विशेष महत्व है। वस्तुत: इनका कार्य सूचनाओं का क्रमिक संग्रहण तथा अध्ययन करना है। इन युक्तियों में सूचनाओं को चुंबकीय विधि द्वारा संग्रहित किया जाता है। इनकी सहायता से बड़ी संख्या एवं मात्रा में सूचनाओं का प्रेषण भी किया जाता है। व्यावसायिक दृष्टिकोण से इनका निर्माण कई आकारों में किया जा सकता है।
2. **फ्लापी डिस्क (Floppy Disk):-** ये युक्तियां भी वस्तुत: चुंबकीय डिस्क की ही भांति होती हैं। लेकिन इनकी संग्रहण क्षमता एक हार्ड डिस्क से कम होती है। इन्हें भी कई आकारों में बनाया जा सकता है।
3. **हार्ड डिस्क (Hard Disk):-** इस संग्रहण युक्ति भी चुंबकीय सिद्धांत पर कार्य करती है। इनकी संग्रहण क्षमता अन्य युक्तियों की

अपेक्षा अधिक होती है। एक हार्ड डिस्क में कई खांच बने होते हैं जिनमें श्रृंखलाएं विद्यमान होती हैं। इन्हीं स्थानों पर सूचनाओं का संग्रहण किया जाता है।

4. **कॉम्पैक्ट डिस्क** (Compact Disk, CD):- इस प्रकार की युक्तियां प्रकाशीय संग्रहण के सिद्धांत पर कार्य करती हैं। इसके फलस्वरूप इनकी संग्रहण क्षमता चुंबकीय संग्राहकों की अपेक्षा अधिक होती है। एक सी.डी. को लेजर डिस्क भी कहते हैं क्योंकि यह लेजर तकनीक पर आधारित है। सी.डी. कई प्रकार की होती हैं : सीडी रॉम तथा सीडी- आर.डब्ल्यू। एक सीडी रॉम में सूचनाओं को सूक्ष्म छिद्रों में संग्रहित किया जाता है। लेजर प्रकाशपुंज के प्रयोग से इन सूचनाओं का अध्ययन करने में सहायता प्राप्त होती है। द्विआधारी प्रणाली में 1 के स्थान पर लेजर प्रकाशपुंज की सहायता से सूक्ष्म छिद्र का निर्माण होता है तथा 0 के स्थान पर कोई छिद्र नहीं बनाया जाता। शून्य वाले स्थान को लैंड भी कहते हैं। एक सीडी रॉम स्थिर कोणीय वेग (Constant Angular Velocity, CAV) अथवा स्थिर रेखीय वेग (Constant Linear Velocity, CLV) तकनीक का प्रयोग कर सकता है।

इसके विपरीत सीडी -आर.डब्ल्यू. में कई बार नये प्रोग्राम किये जा सकते हैं। एक अन्य प्रकार की सीडी को वर्म (WORM : Write Once Read Many) कहते हैं। इसके अतिरिक्त सीडी रॉम तकनीक का प्रयोग करने वाली एक अन्य युक्ति को डिजिटल वर्सेटाइल डिस्क रीड ओन्ली मेमरी (Digital Versatile Disk Read Only Memory, DVDROM) कहते हैं। लेजर प्रकाश का उपयोग करने के लिए एक लेंस प्रणाली प्रयुक्त होती है जिसके कारण एक समय में दो स्थानों पर लेजर प्रकाश का उपयोग संभव होता है।

कम्प्यूटर का वर्गीकरण (Classification of Computers)

जैसा कि विदित है, कम्प्यूटरों का प्रयोग साधारण गणना से संचार के अति उच्च तकनीक तक कमोबेश सभी क्षेत्रों में किया जाता है। व्यापक स्तर पर कम्प्यूटरों के चार प्रमुख प्रकारों की पहचान की जा सकती है :

1. **माइक्रोकम्प्यूटर** (Micro Computer):- इस श्रेणी में वैयक्तिक कम्प्यूटर, लैपटॉप, पर्सनल डिजिटल असिस्टेंट तथा वर्कस्टेशनों को सम्मिलित किया जाता है।

   क) वैयक्तिक कम्प्यूटर (Personal Computer):- इस प्रकार के कम्प्यूटर को डेस्क टॉप यंत्र भी कहते हैं। पूर्व में इसमें 8088 नामक माइक्रोप्रोसेसर का प्रयोग किया जाता था। लेकिन वर्ष 2001 तथा उसके बाद पेन्टियम-4 नामक प्रोसेसर का प्रयोग किया जाने लगा है।

   ख) लैपटॉप (Laptop):- इसे नोटबुक कम्प्यूटर भी कहते हैं। वस्तुत: ये कम्प्यूटर वैयक्ति कम्प्यूटर के सिद्धांत पर ही कार्य करते हैं। लेकिन इन्हें सरलतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है। इनमें एक चौड़े पर्दे, द्रव क्रिस्टल डिस्प्ले तथा एक की-बोर्ड का उपयोग किया जाता है।

   ग) वैयक्तिक अंकीय सहायक (Personal Digital Assistant, PDA):- नोटबुक कम्प्यूटरों की अपेक्षा इनका आकार अत्यन्त छोटा होता है। इन्हें संचार के व्यक्तिगत उपयोग के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

   घ) वर्कस्टेशन (Workstation):- इन कम्प्यूटरों को भी डेस्क टॉप यंत्र कहते हैं लेकिन इनकी कार्य क्षमता अत्यधिक होती है। इस कारण इनका उपयोग मुख्यत: विज्ञान और अभियांत्रिकी के क्षेत्र में बड़ी मात्रा में सूचनाओं के प्रसंस्करण के लिए किया जाता है।

2. **मिनीकम्प्यूटर** (Minicomputer):- इस प्रकार के कम्प्यूटरों को मिड-रेंज कम्प्यूटर भी कहते हैं। इनका निर्माण विनिर्माण के क्षेत्र में सूचनाओं के संग्रहण तथा प्रसंस्करण के उद्देश्य से किया गया है। मिनीकम्प्यूटर उपभोक्ता-सेवक तकनीक (Client-Server Technology) पर कार्य करते हैं। इसके कारण इनका पूरा लाभ उपभोक्ताओं को प्राप्त होता है। अत्यन्त शक्तिशाली मिनीकम्प्यूटरों को सुपरमिनी कहा जाता है।

3. **मेनफ्रेम** (Mainframe):- जिन संगठनों में बड़ी मात्रा में सूचनाओं के प्रसंस्करण की अनिवार्यता है, वहां ऐसे कम्प्यूटरों का प्रयोग किया जाता है। इन संगठनों में रेलवे, बीमा आदि प्रमुख हैं। इन कम्प्यूटरों की प्रसंस्करण क्षमता एक करोड़ सूचना प्रति सेकेंड है।

4. **सुपरकम्प्यूटर (Supercomputer)**:- संरचनात्मक एवं कार्यात्मक भिन्नता के आधर पर किसी कम्प्यूटर को सुपरकम्प्यूटर की संज्ञा दी जाती है। वस्तुत: सुपर कम्प्यूटर एकीकृत स्मृति क्षमता के साथ बहुपक्षीय प्रोसेसर तकनीक पर कार्य करता है जिनकी सहायता से मेगाफ्लॉप, टेराफ्लॉप तथा पेंटाफ्लॉप की दर पर कार्य करना संभव होता है। सामान्यत: इनमें एक साथ 10-15 प्रोसेसरों का प्रयोग किया जाता है जो एक दूसरे के साथ समायोजित रहते हैं। अत्यधिक अंकगणितीय क्षमता के अतिरिक्त ऐसे कम्प्यूटरों की प्राथमिक स्मृति सामान्यत: 16 गीगाबाइट तथा द्वितीयक स्मृति 1000 गीगाबाइट की होती है। सभी सुपरकम्प्यूटर समानान्तर संगणना (Parallel Computation) के सिद्धांत पर कार्य करते हैं। इस प्रकार की संगणना में सभी प्रोसेसर अपने निकटस्थ प्रोसेसर के साथ सूचनाओं का विनिमय करते हैं। इसके फलस्वरूप एक समय में बड़ी संख्या में सूचनाओं का प्रसंस्करण किया जा सकता है। इस कारण ऐसे कम्प्यूटरों का उपयोग मौसम पूर्वानुमान, डी.एन.ए. की संगणनाओं, कृत्रिम बुद्धि, अंतरिक्ष विज्ञान, सांख्यिकी संबंधी संगणनाओं, विभिन्न दवाओं की आणविक संरचना के अध्ययन तथा खगोलिकी के क्षेत्र में किया जाता है। सुपरकम्प्यूटर या तो अकेला कार्य करता है या कई ऐसे कम्प्यूटर एक साथ संबद्ध होते हैं। विश्व का प्रथम सुपरकम्प्यूटर 1960 के दशक में बनाया गया था जिसे सी.डी.सी. -6000 का नाम दिया गया था।

जहां तक भारत का प्रश्न है, 1980 के दशक में भारत में बंगलौर-स्थित एरोस्पेस प्रयोगशाला द्वारा FLOSLOVE -MK 3 नामक पहला सुपरकम्प्यूटर बनाया गया था। इसका निर्माण द्रव और वायुगतिकी से संबंधित समस्याओं के निराकरण के मूल उद्देश्य से किया गया था। कालांतर में रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन (Defence Research & Development Organisation, DRDO) की आवश्यकताओं के संदर्भ में हैदराबाद स्थित उन्नत संख्यात्मक अनुसंधान और विश्लेषण समूह (Advanced Numerical Research and Analysis Group, ANURAG) ने पेस (PACE : Processor for Aerodynamics Computation and Evaluation) का विकास किया। लेकिन भारत ने जिस सुपरकम्प्यूटर के विकास द्वारा विश्व पटल पर अपनी पहचान बनाई है, वह है परम (Param)। इसका विकास पुणे स्थित उन्नत संगणना विकास केन्द्र (Centre for Development of Advanced Computing, C-DAC) द्वारा किया गया है। कालांतर में परम के कई मॉडल विकसित किये गये हैं। इनमें परम 8000, परम 8600 और परम 10000 शामिल हैं। हाल ही में सामान्य प्रोसेसर का प्रयोग कर केन्द्र ने परम पद्मा (Param Padma) नामक सुपरकम्प्यूटर का विकास किया गया है।

- परम 10,000 में जिस प्रोसेसर का प्रयोग किया गया है उसे अल्ट्रा स्पार्क II (Ultra Sparc II) कहा जाता है। इस सुपरकम्प्यूटर की कई विशिष्टताएं एक विशेष प्रकार के साफ्टवेयर क्षिप्रा (Kshipra) द्वारा प्रदान की गई हैं।

5. **क्वांटम कम्प्यूटर (Quantum Computer)**:- जैसा कि अध्याय में अब तक वर्णित तथ्यों से स्पष्ट है, एक परंपरागत कम्प्यूटर में सूचनाओं को कोड के रूप में संग्रहित किया जाता है। इसके विपरीत, एक क्वांटम कम्प्यूटर में सूचनाओं की आधारिक इकाई को क्यूबिट (Qubit) कहते हैं। इसका कारण ऐसे कम्प्यूटर का क्वांटम भौतिकी के सिद्धांत पर कार्य करना है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि क्यूबिट द्विआधारी प्रणाली के अतिरिक्त अन्य स्थितियों में भी उपलब्ध हो सकता है। दूसरे शब्दों में, एक क्यूबिट 0, 1 तथा एक ही समय में दोनों ही अंकों के रूप में कार्य कर सकता है। इस आधर पर स्पष्ट है कि क्वांटम कम्प्यूटर भी समानान्तर संगणना की संकल्पना पर आधरित है। विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को हस्तक्षेप से बचाने के लिए इसमें एक विशेष प्रकार की युक्ति का प्रयोग किया जाता है जिसे इन्टरफेरोमीटर (Interferometer) कहते हैं।

6. **ब्लू जीन कम्प्यूटर (Blue Gene Computer)**:- आगामी वर्षों में आई.बी.एम. कारपोरेशन द्वारा विश्व के तीव्रतम कम्प्यूटर का विकास किये जाने की संभावना है। इसे ब्लू जीन कम्प्यूटर का नाम दिया गया

- **सागा-220(SAGA-220: Supercomputer for Aerospace with GPU Architecture)**: इसरों (ISRO) के तिरूवनंतपुरम् स्थित विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र ने इस सुपर कम्प्यूटर का विकास किया है जो अधिकतम कार्यनिष्पादन क्षमता के मामले में देश का सबसे तेज सुपर कम्प्यूटर है। ग्राफिक प्रोसेसिंग यूनिट (GPU: Graphic Processing Unit) पर आधारित इस सुपर कम्प्यूटर का प्रयोग अंतरिक्ष वैज्ञानिकों द्वारा अंतरिक्ष वैज्ञानिकी की जटिल समस्याओं को हल करने के लिए प्रयुक्त किया जाएगा।
- **अन्नपूर्णा (Annapurna)**:- यह भारत का सातवां सबसे तीव्र सुपर कम्प्यूटर है। इसकी मेमोरी 1.5 टेराबाइट एवं सूचना भण्डारण क्षमता 30 टेराबाइट। इसकी Processing Speed 12 टेराफ्लॉप है।

है। इस परियोजना पर कुल 100 मिलियन डालर के व्यय होने की संभावना है। इसकी कार्यक्षमता वर्तमान म कार्य करने वाले सुपरकम्प्यूटरों से 500 गुणा अधिक होगी। कम्प्यूटर निर्माण के लिए एक नये कम्प्यूटर डिजाइन और तकनीक का प्रयोग किया जा रहा है। इसे स्मैश (SMASH: Simple, Many and Self-Healing) की संज्ञा दी गई है। साथ ही, इसमें 64 अत्यधिक तीव्र गति से कार्य करने वाले प्रोसेसरों का प्रयोग किया जायेगा। इस कम्प्यूटर के निर्माण के बाद इसका प्रयोग मानव प्रोटीन की संरचना की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से किये जाने की संभावना है। इससे चिकित्सा वैज्ञानिकों को विभिन्न रोगों की पहचान करने में सहायता मिलेगी।

7. **प्रकाशीय कम्प्यूटर (Photonic Computer or Optical Computer):-** प्रकाशीय कम्प्यूटर वह कम्प्यूटर प्रणाली है जिसमें लेजर प्रकाश का प्रयोग सूचनाओं के संप्रेषण संगणन के लिए किया जाता है। निश्चित रूप से इसमें प्रसंस्करण तथा संप्रेषण, दोनों की ही गति अत्यधिक होती है। इसके लिए प्रकाश तंतुओं के नेटवर्क की अनिवार्यता है।

इस दिशा में पहला प्रयास 1989 में किया गया था जब प्रकाशीय ट्रांजिस्टर का विकास हुआ था। जैसा कि हम जानते हैं, आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर में ट्रांजिस्टर की आवश्यकता होती है लेकिन उसमें फोटोन की सहायता से कार्य करने की क्षमता होती है। इस कारण ऐसे ट्रांजिस्टर में अरेखीय अपवर्तनांक (Non-linear refractive index) वाले पदार्थों का प्रयोग होता है।

हांलाकि इस संबंध में एक समस्या का उल्लेख वैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। संगणन (Computation) एक आरेखीय प्रक्रिया है जिसमें कई प्रकार के संकेतों के बीच अन्त:क्रिया होती है ताकि प्रसंस्करण किया जा सके। यह अन्त:क्रिया इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर में अत्यधिक तीव्र गति से होती है। इसके विपरीत, प्रकाश, जो एक वैद्युत चुम्बकीय तरंग है किसी अन्य ऐसी ही तरंग के साथ अन्त:क्रिया कर सकता है। इलेक्ट्रॉन की अनुपस्थिति में यह अन्त:क्रिया कम दर पर होती है। इस कारण प्रकाशीय कम्प्यूटर में ऊर्जा की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है।

लेकिन दूसरी ओर, प्रकाश की गति अत्यधिक होने के कारण सूचनाओं का संप्रेषण अत्यन्त तीव्र गति से होता है। अत: सुपरकम्प्यूटरों में प्रकाशीय तकनीक प्रयुक्त हो रही है। उल्लेखनीय है कि प्रकाश तंतुओं के बिन का प्रयोग किया जाता है तथा इसमें 2 अरब बिट प्रति सकेंट की दर से प्रसंस्करण संभव होता है।

हांलाकि वर्तमान में कोई वास्तविक प्रकाशीय कम्प्यूटर विकसित नहीं किया जा सका है लेकिन भविष्य में दूर संचार के क्षेत्र में इसके विकास की प्रबल संभावना है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि प्रकाशीय कम्प्यूटर एक से अधिक आवृत्ति वाली तरंगों को एक ही समय में संप्रेषित करने की क्षमता होती है।

कम्प्यूटर भाषाएं (Computer Languages)

जैसा कि हम जानते हैं, एक कम्प्यूटर प्रोग्राम वस्तुत: निर्देशों का एक समूह है जिसका उपयोग कम्प्यूटर द्वारा किया जाता है। ऐसे ही निर्देशों को सामूहिक रूप से साफ्टवेयर कहते हैं। साफ्टवेयर दो प्रकार के होते हैं : अनुप्रयोग साफ्टवेयर (Application Software) तथा प्रणाली साफ्टवेयर (System Software)। किसी विशिष्ट कार्य के लिए बनाये गये विशिष्ट प्रोग्राम को अनुप्रयोग साफ्टवेयर जबकि ऐसे प्रोग्राम को क्रियान्वित करने के लिए विकसित किये जाने वाले सामान्य साफ्टवेयर को प्रणाली साफ्टवेयर कहते हैं।

ऐसे ही साफ्टवेयरों के विकास के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली भाषाओं को कम्प्यूटर भाषा कहते हैं। इन भाषाओं का विकास कम्प्यूटर के अधिकाधिक प्रयोग के लिए किया जाता है। किसी कम्प्यूटर द्वारा अल्गोरिद्म की अभिव्यक्ति के लिए सटीक, सरल और स्पष्ट भाषा का होना अनिवार्य है। ऐसी भाषाओं को उच्च स्तरीय प्रक्रियात्मक प्रोग्रामिंग भाषा (High Level Procedure Oriented Programming Language) कहते हैं। ये भाषाएं कम्प्यूटर विशिष्ट होती हैं। तकनीकी रूप से एक कम्प्यूटर प्रोग्राम का संबंध उच्च स्तरीय भाषा से होता है क्योंकि प्रोग्राम उस भाषा को मशीन की भाषा में रूपान्तरित कर देता है ताकि कम्प्यूटर उसके आधर पर कार्य कर सके। इस अध्याय में कुछ उच्च स्तरीय कम्प्यूटर भाषाओं का उल्लेख संक्षेप में किया गया है :

1. **फोर्ट्रान (FORTRAN : FORmula TRANslation):-** 1956-57 में इसका विकास जॉन बैकस (John Backus) द्वारा किया गया था। इसका मुख्य उद्देश्य वैज्ञानिक और अभियांत्रिकी से संबंधित समस्याओं का निराकरण था।

2. **कोबोल** (**COBOL : COmmon Business Oriented Language**):- 1960 में ग्रेस मुरे हॉपर (Grace, Murray Hopper) द्वारा इसका विकास किया गया था ताकि व्यापारिक सूचनाओं का प्रसंस्करण किया जा सकें।

3. **बेसिक** (**BASIC : Beginner's All Purpose Symbolic Instruction**):- जॉन जी. केमेनि (John G. Kemeny) तथा थॉमस ई. कुर्ट्ज (Thomas E. Kurtz) द्वारा इस भाषा का विकास 1963 में किया गया था जिसका उपयोग व्यक्तिक कम्प्यूटरों में नये लोगों को कम्प्यूटर का उपयोग सिखलाना है।

4. **पास्कल** (**PASCAL**):- 1971 में नैकलॉस रिथ (Naklaus Writh) ने इस भाषा का विकास किया था जिसका उपयोग नये लोगों को प्रोग्राम करना तथा अन्य समस्याओं के निराकरण का ज्ञान प्रदान करना है। इसका नाम फ्रांस के गणितज्ञ ब्लेज पास्कल के नाम पर रखा गया है।

5. **ए.डी.ए.** (**ADA**):- 1979 में जॉन इश्बियान (John Ichbian) द्वारा इसका विकास किया गया था। आरंभ में इसे डी.ओ.डी.-1 कहा जाता था लेकिन बाद में इसका नाम बदलकर चार्ल्स बैबेज के एक सहयोगी अडा ऑगस्टा लवलेस के नाम पर कर दिया गया।

6. **सी भाषा** (**C Language**):- 1972 में डेनिस रिचि (Dennis Ritchie) ने इसका विकास किया था। इसका उपयोग यूनिक्स (UNIX) नामक प्रचलन प्रणाली (Operating System) के निर्माण के लिए किया गया था।

7. **सी भाषा** (**C ++ Language**):- 1980 के दशक के मध्य में इसका विकास बी. स्ट्रॉसट्रुप (B. Stroustrup) द्वारा किया गया था जो वस्तुत: सी भाषा का ही विस्तार है। इसे वर्तमान में सबसे लोकप्रिय ऑब्जेक्ट ओरिएन्टेड प्रोग्राम (Object Oriented Program) भाषा कहा जाता है।

इन्टरनेट (Internet)

जालों के संजाल को इंटरनेट कहते हैं। इस प्रणाली में प्रयुक्त सभी नेटवर्क भौतिक रूप से आपस में जुड़े होते हैं तथा सूचनाओं का आदान-प्रदान करते हैं। इसके बावजूद सामूहिक रूप से ये सभी एक नेटवर्क की भांति कार्य करते हैं। इन्टरनेट की सहायता से ध्वनि, ग्राफिक्स, साफ्टवेयर तथा सूचनाओं से संबंधित अन्य सभी प्रकार के संकेतों का संचरण एवं संप्रेषण संभव है।

इन्टरनेट प्रोटोकॉल (Internet Protocol)

इन्टरनेट की सहायता से सूचनाओं के संप्रेषण के लिए निर्मित मार्गदर्शक प्रणाली को प्रोटोकॉल कहते हैं जिन्हें कई श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। ये प्रणालियां वस्तुत: कम्प्यूटर प्रोग्राम या साफ्टवेयर होती हैं। प्रोटोकॉल के प्रकारों में कुछ की चर्चा यहां की गई है :

1. **ट्रांसमिशन कंट्रोल प्रोटोकॉल/इन्टरनेट प्रोटोकॉल** (**Transmission Control Protocol/Internet Protocol or TCP/IP**):- यह कई प्रकार के प्रोटोकॉलों का समूह है जो सूचनाओं के संप्रेषण के लिए विशिष्ट सुविधाएं उपलब्ध कराता है। टी.सी.पी. की सहायता से संप्रेषण का कार्य तथा आई.पी. की सहायता से सूचनाओं को दिशा देने का कार्य किया जाता है। टी.सी.पी. सूचनाओं को विखंडित कर उन्हें गन्तव्य तक संप्रेषित करता है जिसकी दिशा का निर्धारण आई.पी. द्वारा किया जाता है।

2. **हाइपर टेक्स्ट ट्रांस्फर प्रोटोकॉल** (**Hyper Text Transfer Protocol, HTTP**):- हाइपर टेक्स्ट मार्क अप लैंग्युएज (Hypertext Markup Language, HTML) में तैयार किये गये साफ्टवेयर को हाइपटेक्स्ट कहते हैं। इस भाषा द्वारा संपर्क स्थापित करने में व्यापक सहायता मिलती है। इसके माध्यम से टेक्स्ट या ग्राफिक्स, दोनों का ही संप्रेषण सरलतापूर्व किया जाता है।

3. **टेलनेट** (**Telnet**):- इसे रिमोट लॉग-इन भी कहते हैं। इसकी सहायता से दो कम्प्यूटरों को एक-दूसरे के संपर्क में लाया जाता है। सूचनाओं को संप्रेषित करने वाले कम्प्यूटर को स्थानीय कम्प्यूटर (Local Computer) तथा सूचनाएं प्राप्त करने वाले कम्प्यूटर को दूरस्थ कम्प्यूटर (Remote Computer) कहा जाता है।

4. **फाइल ट्रांसफर प्रोटोकॉल (File Transfer Protocol, FTP):-** यह प्रोटोकॉल क्लाइंट-सर्वर तकनीक पर कार्य करता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सूचनाओं को संपीड़ित कर उनका आकार छोटा किया जाता सकता है। इस कारण अत्यन्त कम समय में ऐसी सूचनाओं का संप्रेषण किया जा सकता है।
5. **गोफर (Gopher):-** इस प्रोटोकॉल का उपयोग दूरस्थ भागों से इन्टरनेट की सहायता से सूचनाओं का अधिग्रहण किया जा सकता है।

इंटरनेट से संबंधित तकनीकी शब्द (Technical Terms Related to Internet)

वैंडविड्थ:- बैडविड्थ का अर्थ है किसी निश्चित अवधि के दौरान संचारित की गई सूचना अथवा डाटा की मात्रा अर्थात यह किसी संचार माध्यम की सूचना वहन करने की क्षमता दर्शाता है। वस्तुत: बैडविड्थ वह गति है जो इंटरनेट कनेक्शन देने वाली लोकल कंपनी से उपभोक्ता के कम्प्यूटर को मिलती है। ब्राडबैंड उपभोक्ता के लिए यह गति 128 केबीपीएस से लेकर 100 एमबीपीएस तक हो सकती है।

मोडेम:- मोड्यूलटर-डी-मोड्यूलेटर अर्थात मोडेम कंप्यूटर को बाहरी सूचना एवं दूरसंचार उपकरण से जोड़ने का कार्य करता है। इसका मुख्य कार्य बाहरी एनलॉग सिग्नल को डिजिटल सिग्नल में बदलना व आंतरिक डिजिटल सिग्नल को एनलॉग में बदलना है। यह सिग्नल मोड्यूलेशन पद्धति पर आधारित है।

डोमेन नेम सिस्टम:- इंटरनेट द्वारा प्रयोग होने वाले डोमेन नेम सिस्टम से कम्प्यूटर एक दूसरे की पहचान करते हैं। इंटरनेट से जुड़ने के लिए प्रत्येक कम्प्यूटर को एक अद्वितीय सांख्यिकीय लेबल या एक आईपी एड्रेस की आवश्यकता होती है। आईपी एड्रेस वैश्विक डाटाबेस में संचित स्मरणीय लेबलों अर्थात् डोमेन नेम से मेल खाता है। डोमेन नेम सामान्यत: www.xxxxx.yyyy प्रारूप का अनुसरण करते हैं। yyy शीर्षस्तर के डोमेन से संबंधित होता है, जो Com या Org या एक देश का कोड हो सकता है। xxxx का संबंध द्वितीय स्तर के डोमेन जैसे Gov या Co या google से होता है। अतिरिक्त उप डोमेनों को बायी ओर www के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

वेब ब्राउजर:- इंटरनेट का उपयोग करने के लिए किया जाने वाला सॉफ्टवेयर वेब ब्राउजर कहलाता है। प्रत्येक वेब ब्राउजर सर्वमान्य लैंग्वेज 'एटीएमएल' (हाइपर टेकस्ट मार्क अप लैंग्वेज) को समझता है। ब्राउजर तकनीक में पेज को यूनीफार्म रिसोर्स लोकेटर के रूप में लोकेट किया जाता है, जिसको एड्रेस के तौर पर जाना जाता है। इसकी शुरूआत एचटीटीपी से होती है। वर्ष 1991 से शुरू हुए पहले वेब ब्राउजर 'वर्ल्ड वाइड वेब' के बाद मोज़ेक, इंटरनेट एक्सप्लोरर, नेस्टकेप नेवी गेटर, ओपेरा, सफारी और क्रोम आदि प्रमुख है इकसे अतिरिक्त मोबाइल ब्राउजर में अबेको, नेट टमर, क्यूरल, वेट मुख्य हैं। जबकि विशेष कार्यों के तोर पर फ्लोक, इमेज, एक्सप्लोरर, स्पेस टाइम, जैंक ब्राउजर, सिंड्रोम और सागबेड हैं। जहाँ फ्लोक सोशल नेटवर्किंग साइट, ब्लॉग, फोटो शेयर तकनीक को मजबूत करते हैं, वहीं स्पेस टाइम के सहयोग से इंटरनेट पर थ्री डाइमेंशनल वेब सर्च किया जा सकता है।

सरवर:- यह एक कम्प्यूटर रनिंग सॉफ्टवेयर है जो कई कम्प्यूटरों के बीच संसाधनों को साझा करने में मदद करता है।

एचटीटीपी सरवर:- इंटरनेट को कनेक्ट करना।

एफटीपी सरवर:- एफटीपी प्रोटोकॉल को प्रयोग करते हुए नेटवर्क पर फाइल ट्रांसफर।

मेल सरवर:- नेटवर्क पर ई-मेल स्टोर और ट्रांसफर।

प्रॉक्सी सरवर:- क्लाइट और मेन सरवर के बीच स्थापित सरवर, जो डाटा को फिल्टर करने और कनेक्शन शेयरिंग में मदद करता है।

ब्लॉग:- किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के निजी वेब पेज को ब्लॉग कहा जाता है। इसका निर्माण आमतौर पर निजी विचार व्यक्त करने या अपनी रूचि के विषयों पर टिप्पणी करने के लिए किया जाता है।

वाई-फाई:- वाई-फाई अर्थात वायरलैस फिडलिटी एक प्रचलित वायरलैस आधारित तकनीक है, जिसका उपयोग होम नेटवर्क, मोबाइल और वीडियोगेम्स में होता है। इस तकनीक द्वारा तार रहित इंटरनेट से जुड़कर पूरी दुनिया में नेट सर्फिंग की जा सकती है। यह तकनीक सामान्यत: सभी ऑपरेटिंग प्रणालियों को सपोर्ट करती है। वाई-फाई एरिया ओपन और क्लोज दो तरीकों का होता हैं। ओपन वाई-फाई का इस्तेमाल कोई भी कर सकता है। वही क्लोज्ड का इस्तेमाल करने के लिए पासवर्ड की दरकार होती है। वाई-फाई नेटवर्क के माध्यम से नेटवर्क कार्ड वाले कम्प्यूटर, वायलैस रूटर से जुड़े होते हैं। रूटर, इंटरनेट से मोडम द्वारा जुड़े होते हैं वाई-फाई में इन्फॉरमेशन के आदान प्रदान के लिए रेडियो फ्रीक्वेंसी टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल किया जाता है। जब रेडियो फ्रीक्वेंसी धारा की सप्लाई एंटीना में की जाती है तो इससे विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र बनता है। जिस इलाके में आप वाई-फाई एक्सेस करते हैं, उसे हॉट स्पाट कहते हैं।

वाई-फाई तकनीक ने तारों के जंजाल, स्विच, एडाप्टर, प्लग, पिन और कनेक्टर से मुक्ति दिलाई है। वाई-फाई को सपोर्ट करने वाले उपकरण जैसे पर्सनल कम्प्यूटर, गेम कोनसोल, सेल फोन, एम पी 3 प्लेयर अथवा पीडीए वायरलैस नेटवर्क की रेंज में तुरंत ही इंटरनेट से कनेक्ट हो सकते हैं। वाई-फाई तकनीक पीयर-टू-पीयर कनेक्टिविटी की अनुमति भी देती है, और वह भी बिना किसी राउटर की मदद लिए। वाई-फाई हॉटस्पॉट से मोबाइल कम्प्यूटर को इंटरनेट से जोड़ा जा सकता है तथा डिजिटल कैमरे से बिना किसी तार के तस्वीरें ट्रांसफर की जा सकती हैं। इस तकनीक की सबसे बड़ी कमी यह है कि वाई-फाई हॉटस्पॉट में कोई भी व्यक्ति इंटरनेट से कनेट हो सकता है। वह इसके इनक्रिप्टेड स्टैंडर्ड डब्ल्यूईपी (वायरलैस इक्विवेलेंट प्राइवेसी) को हैक कर तोड़ा भी सकता है।

वीडियों कॉन्फ्रेंसिंग:- संचार के क्षेत्र में वीडियों कॉन्फ्रेंसिंग एक आधुनिकतम तकनीक है। इस नवीनतम तकनीक के तहत देश में रहने वाले और देश से बाहर रहने वाले विभिन्न स्थानों के दो या अधिक व्यक्ति किसी भी स्थान या कंप्यूटर स्क्रीन पर देखते हुए आपस में संवाद स्थापित कर सकते हैं। साथ ही इस बातचीत के दौरान किसी भी प्रकार के दस्तावेज अथवा अन्य कागजी सूचनाओं का आदान-प्रदान भी कंप्यूटर की मदद से कर सकते हैं। वास्तव वीडियों में वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग से तात्पर्य है दो दूरस्थ व्यक्तियों द्वारा संवाद स्थापित करने की प्रक्रिया में दृश्य एवं श्रव्य (दिखाई देना एवं सुनाई देना) दोनों अनुभवों को प्राप्त करना। भारत में विदेश संचार निगम लि. द्वारा 1993 में ही वीडियों कॉन्फ्रेंसिंग सेवा की शुरूआत कर दी गई थी। विदेश संचार निगम लि. ने अपने दिल्ली चेन्नई, कोलकाता एवं मुंबई के कार्यालयों में चार सार्वजनिक वीडियों कॉन्फ्रेंसिंग केंद्र स्थापित किए हैं, जो सुविधानुसार क्षेत्रों का चयन कर वहाँ उच्च स्तर की सेवाएं प्रदान करते हैं। वर्तमान में इस सुविधा का प्रयोग चिकित्सा अनुसंधान, उच्च स्तरीय वार्ताओं, दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों आदि में किया जा रहा है। भारत में तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग द्वारा वीडयों कॉन्फ्रेंसिंग सुविधा को विशेष प्राथमिकता देने का निर्णय लिया गया है।

इंटीग्रेटेड सर्विसेज डिजिटल नेटवर्क के कारण वीडियों कॉन्फ्रेंसिंग का दायरा व्यापक करने में विशेष मदद मिली हैं। मुंबई की 'वीसी सेकेंड ओपीनियन' कंपनी चिकित्सा क्षेत्र में वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग की सुविधा उपलब्ध करा रही है, इसको व्यापक रूप देने के लिए उसने सेकेंड ओपीनियन वर्ल्ड वाइड, टेली क्वेस्ट, और सान फ्रांसिस्को के कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय से गठबंधन किया हुआ है। ज्ञातव्य है कि उपग्रह आधारित वीडियों कॉन्फ्रेंसिंग की सुविधा लगभग एक दशक से उपलब्ध थी, परन्तु आधुनिकतम तकनीक द्वारा इस सुविधा को पर्सनल कंप्यूटर के माध्यम से उपलब्ध कराना एक क्रांतिकारी कदम है। वीडियों कॉन्फ्रेंसिंग को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय बनाने के लिए 'इंटरनेशनल मल्टी मीडिया टेली कॉन्फ्रेंसिंग कंसोर्टियम' द्वारा विशेष प्रयास किए जा रहे है।

डिजिटल लाइब्रेरी:- यह सूचना प्रौद्योगिकी का एक रूप है जिसमें सामाजिक प्रभाव का भी उतना ही महत्व है जितना प्रौद्योगिकी के विकास का। भविष्य में ज्ञान नेटवर्क इस प्रकार कार्य करेंगे कि समुदायों की जानकारी स्वत: ही सूचनाबद्ध हो जाएगी ताकि उपभोक्ता करोड़ों की तादात के विभिन्न गठजोड़ों का प्रभावी रूप से विश्लेषण कर सकें। इस दिशा में उठाई गई मुख्य पहला यूनीवर्सल डिजीटल लाइब्रेरी की स्थापना है, जिसका उद्देश्य इंटरनेट पर 10 लाख पुस्तकों को सभी के पढ़ने के लिए उपलब्ध कराना है। भारत इस परियोजना मे भाग ले रहा है और भारतीय भाषाओं में अधिक से अधिक सामग्री उपलब्ध कराने का प्रयास कर रहा है। इस परियोजना में अमेरिका, चीन, आस्ट्रेलिया आदि जैसे देश भी भाग ले रहे हैं। भारत की डिजिटल लाइब्रेरी पोर्टल का उद्घाटन राष्ट्रपति ए.पी.जे अब्दुल कलाम ने 8 सितम्बर, 2003 को किया।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence):– कृत्रिम बुद्धि का तात्पर्य है कम्प्यूटर के माध्यम से मनुष्य की बुद्धि और उसकी विचार प्रक्रिया का मॉडल बनाना ताकि कम्प्यूटर भी मनुष्य के समान सोच विचार कर सके। यह अत्यधिक कठिन कार्य है तथा अनेक वैज्ञानिकों का मानना हैं कि यह मॉडल पूर्णत: सफल नहीं हो सकता, फिर भी अनुसंधान कार्य प्रगति पर हैं इस अनुसंधान का आधार यह मानकर चलना है कि मनुष्य की बुद्धि का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। समस्याओं को हल करने की क्षमता (Problem Sloving Behaviour) कृत्रिम बुद्धिमत्ता के संबंध में पहली बार विचार विमर्श 1950 के दशक में किया गया, जब एलम ट्यूरिंग के विचार के आधार पर हरबर्ट साइमन ने तर्क दिया कि कम्प्यूटर भी सोच सकते हैं। इसके साथ ही कृत्रिम बुद्धिमत्ता कम्प्यूटर विज्ञान की एक शाखा के रूप में स्थापित हो गया। इस शाखा का उद्देश्य है तर्क, विवेचन, नई परिस्थितियों के प्रति अनुकूलन तथा नवीन कौशल शिक्षण जैसे बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यों को निष्पादित करने के लिए कम्प्यूटर प्रणालियों को डिजाइन करना। विगत कुछ वर्षों में कृत्रिम बुद्धि के लिए शोध की दो प्रमुख दिशाएं ग्रहण की गई है। मानवीय चिन्तन की प्रकृति के संबंध में शारीरिक एवं मानसिक शोध तथा बढ़ती हुई परिष्कृत कम्प्यूटर प्रणालियों का तकनीकी विकास। वास्तविक कृत्रिम बुद्धि के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए विभिन्न उपागमों के तहत एक समांतर प्रसंस्करण की अवधारणा को अंतरबद्ध और समसामयिक कम्प्यूटर कार्यचालन के साथ लागू करने को अंगीकृत किया जा रहा हैं एक अन्य उपागम के तहत प्रयोगात्मक कम्प्यूटर चिपों (सिलिकॉन तंत्र कोशिका) के एक नेटवर्क का निर्माण शामिल है जो मस्तिष्क कोशिकाओं के आंकड़ा प्रसंस्करण कार्यों की नकल कर सकें।

इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन (Electronic Governance)

सूचना प्रौद्योगिकी के प्रशासकीय अनुप्रयोगों को सामूहिक रूप से इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन कहते हैं। इन अनुप्रयोगों का उद्देश्य सरल, नैतिक, उत्तरदायी, अनुक्रियाशील तथा पारदर्शी (Simple, Moral, Accountable, Responsive and Transparent, SMART) प्रशासन की स्थापना है। दसवीं योजना के लिए अभिसरण एवं इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन पर गठित कार्य समूह ने अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया है कि निष्क्रिय सूचना एवं सेवा प्रदान करने वाली नीतियों को नागरिकों के साथ सक्रिय संबंधों की स्थापना की संकल्पना से प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। भारत में सफल इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन के लिए रिपोर्ट में कई आवश्यक तत्वों का उल्लेख किया गया है:

1. व्यापक स्तर पर कम्प्यूटर सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
2. सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्रा में स्थानीय भाषाओं के प्रयोग की क्षमता का विकास।
3. विभिन्न प्रशासकीय इकाइयों की मानसिकता में परिवर्तन का प्रयास।
4. विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का मानकीकरण।
5. पर्याप्त अवसरंचनाओं का निर्माण और विकास।
6. बेहतर प्रशासन के लिए ज्ञान के नेटवर्क का विस्तार।

भारत में कार्यरत राष्ट्रीय सूचना प्रौद्योगिकी कार्य बल ने नागरिक-सूचना प्रौद्योगिकी अन्त:फलक (Citizen-IT Interface) की पहचान कर समाज के विभिन्न वर्गों एवं स्तरों में प्रौद्योगिकी के प्रचार-प्रसार पर जोर दिया है। कार्य समूह ने इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन एवं अभिसरण तकनीकों के अनुप्रयोगों के संदर्भ में विशिष्ट मार्गदर्शन प्रदान किये हैं। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है:

1. सूचना विज्ञान एवं इलेक्ट्रॉनिक्स की सहायता से सरकार द्वारा अभिसरण के अनुप्रयोगों की संवृद्धि के लिए एक समन्वयकारी संस्था के रूप में कार्य करने को प्राथमिकता।
2. तकनीकों के हस्तांतरण तथा किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ही प्रौद्योगिकी के विकास में सार्वजनिक धन के प्रयोग की वांछनीयता।
3. सरकार द्वारा उच्च बैंडविथ तथा बेहतर सेवा प्रदान करने के लिए कार्यरत संस्थाओं का सुदृढ़ीकरण।
4. विभिन्न सरकारी परियोजनाओं एवं इलेक्ट्रॉनिक्स की युक्तियों का परीक्षण।
5. सार्वजनिक धन से क्रियान्वित परियोजनाओं के तहत अंकीय विभेद को कम करने का प्रयास।

6. विभिन्न पक्षों के मानकीकरण के कार्य को त्वरित गति।

7. विभिन्न परियोजनाओं के क्रियान्वयन के माध्यम से ज्ञान-आधारित तथा सांस्कृतिक एवं बौद्धिक विकास से युक्त समाज की स्थापना।

8. दसवीं योजना में कुल परिव्यय 2680 करोड़ रुपए निर्धारित है जिसमें 1830 करोड़ रुपए अभिसरण और 850 करोड़ रुपए इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन के लिए निर्धारित हैं।

राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन योजना

सरकार द्वारा ई-प्रशासन को सुदृढ़ बनाने के लिए हाल ही में एक राष्ट्रीय योजना क्रियान्वित की गई है।

इसकी क्रियान्वयन रणनीति में निम्नांकित महत्वपूर्ण पक्ष शामिल किए गए हैं :-

1. केन्द्र तथा राज्य स्तर पर विभिन्न विभागों में ई-प्रशासन से संबंधित अवसंरचनाओं की उपलब्धता।
2. भारत निर्माण तथा ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना जैसे बड़े कार्यक्रमों को इलेक्ट्रॉनिक प्रशासन की तकनीकों का समर्थन।
3. राज्य स्तर पर अधिकतम पांच परियोजनाओं में ई-प्रशासन का सहयोग।
4. केन्द्र-प्रायोजित योजना के रूप में ई-प्रशासन का विस्तार।
5. सार्वजनिक-निजी साझेदारी को प्रोत्साहन।

राष्ट्रीय योजना के क्रियान्वयन के लिए आर्थिक मामलों की कैबिनेट समिति ने कई महत्वपूर्ण नीतिगत निर्णय लिए हैं। इनमें एक ऐसे समूह की स्थापना भी शामिल है जो प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कार्य करेगी।

इस समूह में सरकार के विभिन्न विभागों, राष्ट्रीय ज्ञान आयोग तथा योजना आयोग के प्रतिनिधि तथा कई विशेषज्ञ भी शामिल होंगे। इस समूह का कार्य योजना के कार्यान्वयन पर निगरानी रखना भी होगा। इसी प्रकार, संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय ई-प्रशासन सलाहकार समूह भी गठित किया गया है जो इस विषय पर महत्वपूर्ण सुझाव देगा। योजना के तहत किए जा रहे प्रयासों में निम्नांकित को भी अत्यन्त महत्वपूर्ण कहा जा सकता है।

1. **सामान्य सेवा केन्द्रों की स्थापना** (Establishment of Common Service Centres):- भारत के 6 लाख गांवों में ई-प्रशासन के विस्तार के लिए 1 लाख ऐसे केन्द्रों की स्थापना की जाएगी। इसके द्वारा सरकारी तथा निजी एजेंसियों द्वारा एकीकृत सेवाएं उपलब्ध कराई जाएंगी। 4वर्षों की अवधि वाली इस परियोजना पर लगभग 5742 करोड़ रुपये व्यय होने की संभावना है। इसमें से 856 करोड़ रुपये केन्द्र द्वारा तथा 793 करोड़ रुपये राज्यों द्वारा दिए जाएंगे। जबकि शेष राशि निजी क्षेत्र की सहभागिता से प्राप्त की जाएगी। त्रि-स्तरीय इस परियोजना को क्रियान्वयन निम्न रूप में किया जाएगा-
   (a) पहले चरण में ग्रामीण स्तर पर उद्यमशीलता के विकास का प्रयास।
   (b) दूसरे अथवा मध्यवर्ती चरण में सेवा केन्द्र एजेंसी बनाई जाएगी।
   (c) तीसरे चरण में राज्य द्वारा एजेंसियों की स्थापना की जाएगी।
2. **स्टेट वाईड एरिया नेटवर्क** (State Wide Area Network, SWAN):- जैसा कि इस अध्याय में पहले कहा गया है, इस नेटवर्क के जरिए 2 मेगाविट प्रति सेकेंड के कनेक्शन उपलब्ध कराने का प्रावधान है। निकनेट के जरिए ऐसे नेवटर्क का निर्माण किया जाएगा तथा इसके लिए अवसंरचनात्मक सहयोग केन्द्रीय विभाग के माध्यम से उपलब्ध होगा।
3. **राज्य सूचना केन्द्र** (State Data Centres, SDC):- सरकार-से-सरकार, सरकार-से- व्यापारिक संस्थान तथा सरकार-से-उपभोक्ता वाली इलेक्ट्रॉनिक सेवाओं की उपलब्धता के लिए इन केन्द्रों की स्थापना की जाएगी। यह आशा की गई है कि 2009-10 तक ऐसे केन्द्र पूर्ण रूप से कार्य करने लगेंगे।

इन्टरनेट टेलीफोनी (Internet Telephony)

इन्टरनेट पर किये जाने वाले टेलीफोन कॉल को इन्टरनेट टेलीफोनी कहा जाता है। यह परिवहन परंपरागत टेलीफोन संचार मल्टीमीडिया आदि उपकरणों तथा प्रणालियों से सर्वथा भिन्न है। इस नई तकनीक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी कम कीमत और नई सेवाओं की सरल और सार्वत्रिक उपलब्धता है। भविष्य में इन्टरनेट टेलीफोन की सेवा उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं द्वारा इन्टरनेट तथा टेलीफोन सुविधाओं के लिए एक ही आधारभूत संरचना प्रयोग में लाई जायेगी। इस संदर्भ में केवल सूचना-स्विचों का प्रयोग किया जायेगा जिससे आवश्यकतानुसार इंटरनेट तथा टेलीफोन की सेवाएं उपलब्ध कराई जाएंगी। बहुआयामी सूचनाओं तथा ध्वनि संकेतों के एकीकरण से बैंडविथ के बेहतर अनुप्रयोग की भी संभावना है। इस प्रणाली का उपयोग करने वालों को इसके साफ्टवेयर आधारित होने का भी लाभ मिलेगा। इंटरनेट टेलीफोनी के अवयवों में निम्नांकित प्रमुख हैं:

1. **एण्ड डिवाइस** (End Device):- इस श्रेणी में परंपरागत टेलीफोन, श्रव्य गुणों से युक्त वैयक्तिक कम्प्यूटर अथवा एकल उपयोग उपकरण सम्मिलित हैं।
2. **गेटवेज** (Gateways):- यदि किसी परंपरागत टेलीफोन का उपयोग किया जाता है तो उनके ध्वनि संकेतों को इंटरनेट पर संप्रेषित करने के लिए इनकी संरचना में परिवर्तन किया जाता है। इसे गेटवेज कहते हैं।
3. **गेटकीपर अथवा प्रौक्सी** (Gatekeeper or Proxies):- इस प्रकार के अवयवों द्वारा केन्द्रीकृत कॉल प्रबंधन सुविधा उपलब्ध होती है। इनके द्वारा कॉल प्रवेश नियंत्रण, बैंडविथ प्रबंधन आदि सुविधाएं भी प्राप्त होती हैं।
4. **मल्टीप्वाइंट कॉन्फ्रेन्स यूनिट** (Multipoint Conference Unit):- इन अवयवों द्वारा कई व्यक्तियों के सामूहिक वार्तालाप का प्रबंधन किया जाता है।

उपरोक्त अवयवों को हार्डवेयर अथवा साफ्टवेयर के रूप में उपयोग किया जा सकता है। साथ ही, इन्हें वैकल्पिक रूप से एकीकृत प्रणाली के रूप में भी उपयोग में लाया जा सकता है। तकनीकी दृष्टिकोण से आवाज़ से संबंधित समस्याएं प्रणाली के लिए व्यवधान उत्पन्न करती हैं। लेकिन इस संबंध में अनुसंधान कार्यक्रमों पर बल देकर इन समस्याओं को जल्दी से जल्दी दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। भविष्य में भी यह आशा है कि इस प्रणाली को सरकारी संरक्षण प्रदान किया जायेगा। संचार के क्षेत्र में तीव्र विकास ने इस क्षेत्र में कार्य करने वाले कर्मचारियों के लिए नेटवर्क की प्रणाली को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता में भी वृद्धि की है। इसने इंटरनेट टेलीफोनी के अतिरिक्त वैयक्तिक अंकीय सहयोगी प्रणाली पर आधारित मोबाइल फोन और बेतार सेवाओं की आवश्यकता में भी वृद्धि की है। वैज्ञानिकों के अनुसार, मोबाइल कर्मचारियों तथा कार्यालय में कार्यरत कर्मचारियों के बीच ध्वनि संकेतों के आदान-प्रदान के लिए इंटरनेट टेलीफोनी-आधारित प्रणालियों के विकास से संचार की नई क्षमताओं में वृद्धि हुई है।

साइबर सुरक्षा (Cyber Security)

सूचनाओं के आकस्मिक अथवा इच्छित अवैध रूपान्तरण, स्थानान्तरण आदि गतिविधियों से सुरक्षा प्रदान करने की संकल्पना ही वस्तुत: साइबर अथवा सूचना सुरक्षा है। सूचनाओं के संप्रेषण के लिए वर्तमान विश्व व्यापक रूप से कम्प्यूटरों पर निर्भर है। अत: यह आवश्यक है कि एक सुदृढ़ सुरक्षा प्रणाली का विकास किया जाये। ऐसी प्रणाली के अन्तर्गत हैकिंग, सूचनाओं की चोरी और उन्हें नष्ट होने से बचाने के लिए कम्प्यूटर प्रणालियों तथा सम्पूर्ण नेटवर्क को सुरक्षित रखने की आवश्यकता है। सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग के वैश्विक विस्तार के संदर्भ में व्यक्तिगत, व्यापारिक, राज्य अथवा राष्ट्रीय स्तर पर साइबर सुरक्षा की नितांत आवश्यकता है। एक अनुमान के अनुसार, वर्ष 2002 के प्रथम 6 माह में साइबर आक्रमणों की संख्या में लगभग 28 प्रतिशत की वृद्धि रिकार्ड की गई थी। इसी प्रकार, वर्ष 2001 में साइबर आक्रमणों के कारण उद्योग को लगभग 13.2 अरब डालर की हानि हुई थी जबकि वर्ष 2000 में यह हानि 17.1 अरब डालर की थी। यह अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2005 के अंत तक सूचना सुरक्षा उद्योग लगभग 21 अरब डालर का हो जायेगा। केवल वित्तीय सेवाओं के क्षेत्र में ही साइबर सुरक्षा पर वर्ष 2000 में 848 मिलियन डालर व्यय किये गये थे जिसके वर्ष 2005 के अंत तक 2.2 अरब डालर हो जाने की संभावना है।

जहां तक भारत का प्रश्न है, भारत साफ्टवेयर उद्योग में एक वैश्विक शक्ति के रूप में उभरा है। इस कारण देश में उच्च तथा निम्न, दोनों ही स्तरों पर दक्ष मानव संसाधन की आवश्यकता है। इससे न केवल वैश्विक स्तर पर मानव संसाधन उपलब्ध हो सकेगा बल्कि राष्ट्रीय आवश्यकताओं की भी पूर्ति की जा सकेगी। सूचना प्रौद्योगिकी विभाग ने 'साइबर सुरक्षा शिक्षा और जागरूकता' के लिए एक कार्य समूह का गठन किया है। इसका मूल उद्देश्य साइबर सुरक्षा की शिक्षा के राष्ट्रीय स्तर पर प्रचार-प्रसार के लिए सुझाव देना है। कार्य समूह ने इस संदर्भ में निम्नांकित सुझाव दिये हैं :

1. अनुसंधान और प्रौद्योगिकी के विकास कार्यक्रमों के सहयोग के लिए आवश्यक क्षेत्रों की पहचान।
2. एक साइबर सुरक्षा संस्थान की स्थापना।
3. मानव संसाधन विकास की आवश्यकताओं का आकलन।
4. राष्ट्रीय स्तर पर साइबर सुरक्षा अभियान का आरंभ।
5. सूचना प्रौद्योगिकी पाठ्यक्रमों में साइबर सुरक्षा संबंधी विषयों का समावेश।
6. एक सूचना सुरक्षा प्रौद्योगिकी तथा विकास परिषद् (Information Security Technology and Development Council, ISTDC) की स्थापना।
7. परिषद् द्वारा निगरानी समितियों के माध्यम से विभिन्न परियोजनाओं का पुनरीक्षण।
8. परियोजनाओं के पूरा होने के बाद के कार्यों को प्रोत्साहन।

साइबर युद्ध (Cyber War)

इस संकल्पना का तात्पर्य सरकारी अथवा निजी सैन्य अथवा वित्तीय कम्प्यूटर अवसंरचनाओं को क्षति पहुँचाना है। इस संकल्पना में ऐसे कार्य भी शामिल हैं जिनके द्वारा कोई एक देश किसी अन्य देश की सैन्य सूचना प्रणाली को क्षति पहुँचाने के साथ-साथ सूचनाओं में व्यापक स्तर पर हस्तक्षेप करता है।

साइबर युद्ध में इंटरनेट के अवैध उपयोग, कम्प्यूटर नैटवर्क अथवा साफ्टवेयर को नष्ट करने अथवा अप्रभावी बनाने अथवा अन्य ऐसे ही संबंधित कार्य शामिल हैं। उल्लेखनीय है कि हाल ही में चीन में गुगल ने यह आरोप लगाया था कि मानवाधिकार के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों अथवा संस्थाओं के ई-मेल खातों को क्षति पहुँचाई जा रही है।

प्रमुख साइबर आपराध

हैकिंग- कम्प्यूटर प्रणालियों अथवा नेटवर्क का अनाधिकृत उपयोग।

ई-मेल बॉम्बिंग- अत्यधिक मात्रा में किसी ई-मेल खाते में सूचनाओं का संप्रेक्षण जिसे उस खाते की कार्य प्रणाली नष्ट हो जाती है।

Data Diddling- इसका तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें किसी कम्प्यूटर द्वारा सूचना प्रसंसकरण के पूर्व ही उसमें अनावश्यक परिवर्तन कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रसंस्करण के बाद भी पुन: रूपान्तरण कर दिया जाता है।

सलामी आक्रमण- यह एक प्रकार का वित्तीय अपराध है जिसमें किसी बैंक कर्मचारी द्वारा एक विशेष कम्प्यूटर प्रोग्राम का प्रयोग कर खातों से कुछ राशि हस्तांतरित कर दी जाती है जिससे जानकारी खाता धारक को नहीं मिल पाती।

वाइरस तथा वर्म- ये दोनों ही हानिकारक साफ्टवेयर हैं वाइरस द्वारा कम्प्यूटर प्रणाली में साफ्टवेयर अथवा हार्डवेयर अथवा फाइलों को क्षति पहुँचाई जाती है। जबकि वर्म (Ride Once Re Many) द्वारा किसी फाईल की कई प्रतिलिपियाँ बना दी जाती हैं जिससे कम्प्यूटर को संग्रहण क्षमता समाप्त हो जाती है।

लॉजिक वम्ब- इस प्रकार की वाइरस आधारित प्रक्रिया को घटना विशिष्ट प्रक्रिया भी कहते हैं जिसमें उस घटना की तिथि के पूर्व तक वाइरस प्रोग्राम निष्क्रीय रहता है। जैसे चेरनोविल वाइरस।

ट्रोजन- यह एक अवैध कम्प्यूटर प्रोग्राम है जो प्रणाली में क्षति पहुँचाने के बावजूद पहचान नहीं आता।

वैश्विक समन्वय केन्द्र की स्थापना का प्रस्ताव हाल ही में ICANN (Internate Corporation for Assigned Names and Numbers) द्वारा एक ऐसे समन्वय केन्द्र की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है जो विशेषकर वर्म के दुष्प्रभाव तथा उसके फैलाव से सुरक्षा देने में सहायक होगा। इसे DNS (Domain Name System) के तहत Community Emergency Response Team (CERT) कहा गया है।

भारत में सूचना सुरक्षा के लिए नई पहल

हाल ही में भारत सरकार द्वारा साइबर अपराधों पर रोक लगाने तथा सूचना सुरक्षा के लिए एक ब्लू प्रिंट के निर्माण की पहल की गयी है जिसमें निम्नांकित शामिल हैं।

1. उन देशों, जिनके साथ भारत के मित्रवत संबंध स्थापित नहीं है, के कम्प्यूटर नेटवर्क से होने वाली असुरक्षा से बचने की क्षमता का विकास।
2. हैकिंग प्रयोगशालाओं की स्थापना जिसमें आक्रामक और सुरक्षात्मक दोनों ही तकनीकों का विकास किया जा सके।
3. एक National Testing Facility for information securitydh स्थापना।

4. सभी संगठनों की सूचना प्रणालियों का अनिवार्य अंकेक्षण।
5. CERT की स्थापना को समर्थन
6. e-bom से रक्षा के लिए विशेष तकनीकों का विकास।

लेजर (LASER: Light Amplification by Stimulated Emission of Radiation)

विकिरण (Radiation) के उद्दीप्त उत्सर्जन (Stimulated Emission) द्वारा प्रकाश के प्रवर्द्धन (Light Amplification) को लेजर कहते हैं। संक्षिप्त रूप में, उद्दीप्त विकिरण, लेजर संक्रिया की कुंजी है। लेजर की अवधारणा वर्ष 1917 में आइन्सटीन द्वारा प्रस्तुत की गई थी। उद्दीप्त उत्सर्जन की व्याख्या के पूर्व अवशोषण एवं नैसर्गिक विकिरण (Spontaneous Radiation) की अवधारणा का अध्ययन आवश्यक है। अवशोषण एक प्रक्रिया है जिसमें यदि परमाणु को विद्युतचुम्बकीय (Electormagnetic) क्षेत्र में रखा जाए तो परमाणु ऊर्जा का अवशोषण करता है। ऊर्जा के इस अवशोषण के कारण परमाणु निम्नतर से उच्चतर ऊर्जा स्तर की ओर गमन करता है। दूसरी ओर, नैसर्गिक विकिरण (Spontaneous Radiation) एक परमाणु की उच्चतर ऊर्जा स्थिति से निम्नतर ऊर्जा स्थिति की ओर गमन के कारण होती है। इस प्रक्रिया में यह नैसर्गिक रूप से विकिरण का उत्सर्जन करती है, क्योंकि यह प्रक्रिया किसी बाह्य बल अथवा घटक के प्रभाव से बाहर होती है। परन्तु परमाणु के किसी घटक अथवा बल के प्रभाव में उद्दीप्त होने की स्थिति में परमाणु का गमन उच्चतर से निम्नतर ऊर्जा स्थिति में होता है। यह प्रक्रिया उद्दीप्त विकिरण कहलाती है। यह विकिरण फोटोन के रूप में होता है, अत: फोटोन से जुड़ी तरंगों में भी ऊर्जा, प्रावस्था (Phase), ध्रुवण (Polarisation) तथा घूर्णन (Rotation) की दिशा एक समान होती है।

लेजर की खोज वर्ष 1958 में की गई थी। लेजर के प्रतिफल को स्पंदित (Pulsed) किया जा सकता है, अथवा एक सतत किरण पुंज के रूप में इसकी माप दृश्य (Visible), अवरक्त (Infrared) पराबैंगनी (Ultraviolet) अथवा असंख्य इलेक्ट्रॉन या शक्ति के द्वारा की जा सकती है। कमोबेश सभी लेजरों में निम्नलिखित विशेषताएं सामान्य रूप से पाई जाती हैं, यथा लेजिंग पदार्थ (Lasing Material) जो ठोस, द्रव अथवा गैस अथवा एक अर्द्धचालक जो ऊपरी ऊर्जा स्तर को अन्त:क्षेपित कर सकता है, का प्रयोग होता है। साथ ही, लेजर में उद्दीप्त विकिरण द्वारा प्रभावित होने वाले अधोगामी संक्रमण की अनिवार्यता है। अधिकांश लेजर तीन या चार ऊर्जा स्तर प्रणालियों पर आधारित होते हैं, जो प्रयुक्त होने वाले लेजिंग पदार्थ के प्रकार पर निर्भर करते हैं। लेजर क्रिया प्राप्त करने के लिए ऊर्जा पंपिंग उपकरण में लेजिंग माध्यम में संख्या व्युतक्रमण (Population Inversion) अवश्य प्राप्त किया जाना चाहिए, ताकि उद्दीप्त उत्सर्जन में भाग लेने वाले युग्म की ऊपरी ऊर्जा स्थिति पर परमाणुओं, आयनों अथवा अणुओं की संख्या में वृद्धि हो सके। संख्या व्युतक्रमण में वृद्धि के क्रम विउद्दीपन (De-excitation) के बिना मितस्थायी (Metastable) स्थिति में परमाणु को स्थिर रखने की यान्त्रिकता को संख्या व्युतक्रमण की संज्ञा दी गई है। यह परमाणुओं को अधिक ऊर्जा भण्डारण के लिए दीर्घ अवधि तक स्थिर रखता है, जिसके फलस्वरूप उद्दीप्त फोटोन का अधिकतम उत्पादन संभव होता है। संख्या व्युतक्रमण की प्रक्रिया द्वारा मितस्थायी स्तर पर परमाणुओं की अधिकाधिक संख्या सुनिश्चित की जाती है। व्युतक्रमण के कारण ऊर्जा स्थिति में परमाणुओं के अन्त:क्षेपण की दर उनके निर्गम से अधिक हो जाती है। ऊष्मीय (थर्मल सन्तुलन की शर्तों के उल्लंघन से उद्दीपन की उच्चतर स्थिति में अधिक परमाणु रहते हैं। परिणामस्वरूप संख्या व्युतक्रमण में वृद्धि हो जाती है। संख्या व्युतक्रमण की स्थिति प्राप्त करने के लिए तीन अथवा चार ऊर्जा स्तरों वाली लेजर प्रणाली की आवश्यकता होती है। तीन स्तरीय प्रणाली की विशिष्टता के रूप में सर्वोच्च ऊर्जा स्तर (पम्प स्तर) में परमाणुओं का अन्त:क्षेपण किया जाता है। इसे पम्प स्तर से मितस्थायी स्तर में विउद्दीपन के रूप में भी जाना जाता

है। प्रकाशीय अनुनादी प्रकोष्ठ (Optical Resonant Cavity) के बिना लेजर क्रिया को केवल संख्या व्युतक्रमण यान्त्रिकता द्वारा स्थिर नहीं रखा जा सकता। है। अन्य सभी यांत्रिकताएँ, जो प्रकाशीय अनुनादी प्रकोष्ठ के रूप में दो दर्पणों के मध्य लेजर माध्यम को मर्यादित कर प्राप्त की जा सकती हैं, में उद्दीप्त उत्सर्जन द्वारा निर्मित फोटोनों को प्रणाली में बंद रखकर अन्य फोटोनों के निर्माण के उपयोग में लाया जाता है। ऐसी दशा में दो दर्पण क्रमशः पूर्णतः एवं आंशिक रूप में परावर्तन करते हैं। आंशिक परावर्तन 10 और 90 प्रतिशत के मध्य (महत्त्वपूर्ण प्रकाशीय शक्ति को बचाने एवं उपलब्ध कराने के लिए सुनिश्चित करने हेतु) होता है। प्रकाशीय अनुनादी प्रकोष्ठ की सहायता से वर्तमान उद्दीपन तथा भविष्य के लिए आवश्यक उद्दीपन को प्रकाशीय पुनर्निवेश की सहायता से जाना जा सकता है। वैज्ञानिकों के अनुसार, उद्दीप्त किये गये फोटोन में प्रकोष्ठ के अग्र तथा पृष्ठ भाग में उछाल की संभावना होती है जो लेजर अभिक्रिया हेतु आवश्यक है।

सर्वप्रथम रूबी लेजर का निर्माण 1960 में टी. एच. माईमन (T.H. Maiman) द्वारा किया गया था। इस लेजर में अल्युमीनियम ऑक्साईड कणों का प्रयोग होता है, जिसमें अल्युमीनियम के कई परमाणुओं को क्रोमियम के परमाणुओं द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। वास्तव में इन क्रोमियम परमाणुओं के कारण रूबी का रंग लाल होता है। यह इसके लेजिंग व्यवहार के लिए भी उत्तरदायी है। रूबी के लाल रंग का कारण क्रोमियम परमाणु द्वारा हरे-नीले रंग का अवशोषण तथा लाल रंग का परावर्तन करना है। उच्च वोल्टेज विद्युत के कारण स्फटिक फ्लैश ट्यूब से तीव्र विस्फोटकमय प्रकाश का उत्सर्जन होता है, जो रूबी कण के परमाणुओं को उच्च ऊर्जा स्तरों पर पंपिग द्वारा उद्दीप्त करता है। एक विशिष्ट ऊर्जा स्तर पर ही कुछ परमाणु फोटोन उत्सर्जित करते हैं। एक परमाणु से प्राप्त फोटोन द्वारा अन्य परमाणुओं से फोटोन के उत्सर्जन का उद्दीपन किया जाता है, जिससे प्रकाश की तीव्रता में वृद्धि होती है। उद्दीप्त उत्सर्जन प्रक्रिया में प्रयुक्त दर्पण इन फोटोनों को आगे तथा पीछे की ओर बने रहने में मदद करता है। फोटोन के उत्सर्जन के बाद ही प्रकाश की तीव्रता बढ़ जाती है। अंत में आंशिक रूप से चमकीले दर्पण से लेजर प्रकाश की उत्पत्ति होती है।

लेजर प्रकाश के गुण (Properties of Laser Light)

ऊर्जा की दशा में हुए परिवर्तन तथा उसके बाद प्रवर्द्धित प्रकाश के उत्पादन के संदर्भ में लेजर प्रकाश के कुछ विशेष गुण हैं जो निम्नलिखित हैं:

1. **एकवर्णिता (Monochromaticity)**:– लेजर प्रकाश को एक लघु तरंगदैर्घ्य में संघनित किया जाता है। इस प्रकार वह प्रकाश के शुद्धतम रूप का उत्पादन कर पाती है। ऐसे प्रकाश को एकवर्णी प्रकाश कहते हैं। प्रकाश के वर्ण प्रकीर्णन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि किसी दिये गये माध्यम में दीर्घ तरंगदैर्घ्य की अपेक्षा लघु तरंगदैर्घ्य का अपवर्तन सूचकांक अधिक होता है। प्रकाश की श्वेत पुंज में दृश्य वर्णक्रम के सभी अवयव विद्यमान होते हैं।
2. **संसक्ति (Coherence)**:– लेजर प्रकाश पुंज का फैलाव अत्यन्त कम होता है, क्योंकि उत्सर्जित हुए सभी फोटोन काल और अवस्था के संदर्भ में एक दूसरे से स्थिर अवस्था में संबंध बनाए रखते हैं। अतः प्रकाश संसक्त हो जाता है।
3. **प्रकाशपुंज अपसरण (Beam Divergence)**:– उत्सर्जित हुए सभी फोटोन एक ही दिशा में घूर्णन करते हैं। प्रकाश को एक अति संकुचित कूर्चिका (Narrow Pencil) में रखा जाता है और यह लगभग संघनित होता है। अतः लेजर प्रकाश अपसरण में सामान्यतः धीमा होता है।
4. **उच्च प्रदीप्ति (High Irradiance)**:– जब प्रकाश को संकुचित त्रिविमीय पट्टी में संकेन्द्रित किया जाता है, तो इसमें प्रति इकाई क्षेत्र में उच्च प्रदीप्ति रहती है। ऊर्जा की यह मात्रा दो प्रकाश किरणपुंजों द्वारा वाहित होती है। इस प्रकार, प्रकाश पुंज को एक छोटे से स्थान पर भी फोकस किया जा सकता है।

लेजर के प्रकार (Types of Laser)

यद्यपि प्रत्येक लेजर की आधारभूत आवश्यकताएं समान होती हैं, तथापि कई प्रकार के लेजर उपलब्ध हैं। इनमें सामान्य रूप से निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं:

1. लेजर क्रिया के समर्थन के लिए ऊर्जा स्तरों के उपयुक्त समुच्चय के साथ सक्रिय माध्यम होता है।

2. एक पंपिंग ऊर्जा के स्रोत की आवश्यकता संख्या व्युतक्रमण एवं प्रकाशीय अनुनादी प्रकोष्ठ की स्थापना तथा प्रकाशीय पुनर्निवेशन एवं लेजर प्रणाली की अनुरक्षा हेतु है।

लेजरों को उनकी सक्रियता एवं लेजिंग माध्यम के आधार पर वगीकृत किया जा सकता है। इस आधार पर ठोस, गैस तथा अर्द्धचालक लेजर का निर्माण किया गया है-

ठोस लेजर (Solid Laser)

इन लेजरों में रवेदार कुचालक ठोस छड़ या पट्टी का प्रयोग किया जाता है, जो उनके लेजिंग या सक्रिय माध्यम के रूप में कुछ अशुद्धता से लेपित रहता है। इसलिए इन लेजरों को कभी-कभी लेपित पृथक्कारी लेजर (Doped Insulator Laser) भी कहा जाता है। यह नाम अर्द्धचालक लेजरों के साथ होने वाले भ्रम से बचने के लिए सुझाया गया है। क्रिस्ट्लीय संजालिका परपोषी पदार्थ के रूप में कार्य करती है फिर भी यह सम्पूर्ण ऊर्जा संरचना के लिए भी उत्तरदायी है।

दो सामान्यत: प्रयुक्त होने वाली ठोस लेजरें रूबी लेजर (Ruby Laser) तथा ND-YAG (Neodymium-Yettrium-Aluminium, Garnate) हैं। लेजर प्रणाली की प्रभावोत्पादकता को ध्यान में रखते हुए आधुनिक समय में रूबी लेजर को ND-YAG से प्रतिस्थापित किया गया है। रूबी लेजर लगभग क्रोमियम आयनों के लगभग 0.05 प्रतिशत भार से लेपित संश्लिष्ट नीलम अथवा अल्युमिनियम आक्साईड (Al_2O_3) का प्रयोग करता है। रूबी क्रिस्टल कण, जेनॉन से भरी हुई फ्लैश ट्यूब को इस प्रकार रखा जाता है कि वे पंपिग प्रकोष्ठ में, जो परिमार्जित होता है, एक दूसरे के सामानान्तर रहें। जैसे ही प्रणाली कार्य प्रारम्भ करती है रूबी कण (क्रिस्टल) नीले-हरे प्रकाश की किरणों को अवशोषित करता है तथा क्रोमियम आयनों को उद्दीप्त करता हुआ 694.3 mm की तरंग दैर्ध्य पर लेजर ऊर्जा का उत्सर्जन करता है। दूसरी ओर, जैसा कि पहले कहा गया कि यह छक.लळ रूबी लेजर को लगभग प्रस्थापित कर चुका है और वर्तमान में प्रयुक्त होने वाला सामान्य ठोस लेजर यही है। यह लेजर $Y_2Al_3O_{12}$ अथवा YAG 0.7: भार वाले Neodymium आयनों (ND^{3+}) से लेपित होता है। लेजर उत्सर्जन 1.064 mm (अवरक्त) पर होता है।

गैस लेजर (Gas Laser)

हीलियम-नियोन लेजर के रूप में प्रथम गैस लेजर का निर्माण किया गया था। इस प्रकार के लेजर के निर्माण का उद्देश्य किरणपुंज के निरंतर उत्पादन के लिए किया गया था। कांच की डिस्चार्ज (Discharge) ट्यूब संक्रिया लेजिंग माध्यम से भरी रहती है। संक्रिया लेजिंग माध्यम में 10:1 के अनुपात में हीलियम तथा नियोन का मिश्रण रहता है। डिस्चार्ज ट्यूब का प्रत्येक सिरा एक दर्पण से सीलबंद रहता है, ताकि प्रकाशीय छिद्र बनाया जा सके। उद्दीप्त उत्सर्जन हेतु विद्युत प्रवाह द्वारा पम्पिंग कराई जाती है, जो इलेक्ट्रोड के मध्य उत्पन्न होती है। इसके उपरांत उत्सर्जन को सुनिश्चित करने के लिए इलेक्ट्रोड के मध्य उत्पन्न होती है। इसके उपरांत उत्सर्जन को सुनिश्चित्त करने के लिए इलेक्ट्रोड के पार लगभग 10 KV का स्पंदन कराया जाता है। विद्युत धारा के प्रवाह से हीलियम परमाणु उद्दीप्त हो जाते हैं, क्योकि वे तुलनात्मक रूप से हल्के परमाणु होते हैं, और हीलियम परमाणु की इलेक्ट्रॉन के साथ हुई टकराहट से उद्दीप्त होते हैं।

जब हीलियम परमाणु नियोन परमाणुओं से टकराते हैं, तो उनकी उर्जा नियोन परमाणुओं में स्थानान्तरित हो जाती है, जिसके कारण वे उद्दीप्त होकर मितस्थायित्व की अवस्था में आ जाते हैं जहां उन्हे संख्या व्युत्क्रमण भी प्राप्त होता है। यादृच्छिक (Randomly) रूप से उत्सर्जित फोटोन मित्स्थायी स्तर से प्रेरक विउद्दीपन द्वारा सतही स्थिति में आ जाते है तथा 33mm की तरंगदैर्ध्य के साथ लेजर प्रकाश उत्सर्जित होता है।

दूसरी ओर, आर्गन लेजर में उद्दीप्त आयनों की प्लाविका (Plasma) का प्रयोग लेजिंग माध्यम के रूप में होता है। वैद्युत उत्सर्जन गैसीय आर्गन के संकुचित ट्यूब में होता है। इससे परमाणु का आयनीकरण होता है, एवं वे ऊपरी ऊर्जा स्थिति के इलेक्ट्रॉनों के साथ [illegible] बहुटकरावों के कारण ही मुख्यत: उद्दीप्त हो जाते है। इससे प्रकाश के नीले हरे वणक्रम में उसी समय कई लेजर परिगमनों का मार्गदर्शन किया जाता है। ऊर्जा घनत्व को बनाए रखने के लिए लेजर ट्यूब में चुम्बकीय क्षेत्र विकसित किया जाता है। देशांतरीय क्षेत्र में प्लाविका में इलेक्ट्रॉन घनत्व में वृद्धि कर दीवारों के इलेक्ट्रॉनों के क्षरण का रुकना सुनिश्चित करने की दृष्टि से इलेक्ट्रॉन प्लाविका

के चारों ओर वलयदार (सर्पित) मार्ग में अनुगमन करता है। डिस्चार्ज ट्यूब सामान्यत: बेरेलियम आक्साईड (BeO), ग्रेफाइट अथवा धातु मृतिका जैसे निम्न ऊष्मीय तापीय संचालक से बनी होती है। ताप परिवर्तक के रूप में धातु के डिस्क को ट्यूब के अन्दर रखा जाता है। ये ताप परिवर्तक तापमान को कम बनाए रखने में सहायक होते हैं। इन लेजरों से 514mm तरंगदैर्ध्य का लेजर प्रकाश प्राप्त हो सकता है। होलोग्राफी, नेत्र शल्य चिकित्सा, स्पेक्ट्रोरसायन, प्रकाशीय छाया संसाधन तथा अर्द्धचालक संसाधन में आर्गन लेजर का प्रयोग अधिक होता है।

एक अन्य गैस लेजर में कार्बनडायक्साइड का प्रयोग किया जाता है। इस लेजर की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इलेक्ट्रॉन के वितरण की अपेक्षा कार्बनडायक्साइड अणुओं के कंपन से स्वयं महत्वपूर्ण ऊर्जा स्तर का विकास होता है। मुख्य CO^2 तरंग का तरंग दैर्ध्य वर्णक्रम में दूरस्थ अवरक्त क्षेत्र में 10.6mm होता है।

अर्द्धचालक लेजर (Semiconductor Laser)

अर्द्धचालक लेजर व्यापक रूप से लेपित PN Junctions द्वारा बनी होती है, जो संशोधित प्रकाश उत्सर्जन डायोड संरचना पर आधारित होती है। लेजर क्रिया के प्रारंभ तथा उसे बनाए रखने के लिए PN Junction के चारों ओर उच्च लेपन के सान्द्रन की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, यह सुनिश्चित हो जाता है कि उद्दीप्त उत्सर्जन को बढ़ाने की दृष्टि से दीर्घ नैसर्गिक जीवन काल वाले पदार्थों का प्रयोग होता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सभी PN Junction आगे की ओर प्रवृत्त धारा के मार्ग पर प्रकाश उत्सर्जित करते हैं। विभिन्न पदार्थों की तुलना से यह स्पष्ट हो गया है कि सिलिकन तथा गैलियम, प्रकाश के निपुण उत्पादक नहीं है। इस प्रकार, सदैव गैलियम-आर्सेनिक अथवा गैलियम-अल्युमिनियम- आर्सेनिक जैसे यौगिक अर्द्धचालक के प्रयोग को वरीयता प्रदान की जाती है।

लेजर के अनुप्रयोग (Applications of Laser)

हालांकि कई क्षेत्रों में लेजर का प्रयोग होता है लेकिन उनका कुशलतम और निरंतर प्रयोग चिकित्सीय प्रयोजनों तथा औद्योगिक प्रयोजनों के आधारभूत वैज्ञानिक अनुसंधानों में किया जाता है।

सत्राभि सूक्ष्मदर्शिकी (Confocal Microscopy)

त्रिविमीय चित्रों की तरह उच्च प्रबोधन तथा उच्च विषमता वाले चित्रों की प्राप्ति हेतु प्रयुक्त होने वाली तकनीक सत्राभि सूक्ष्मदर्शिकी कहलाती है। इस प्रकार के सूक्ष्मदर्शी में अभिदृश्यक लेंस (Objective Lens) का प्रयोग प्रदीपन एवं बिम्बन; दोनों के लिए किया जाता है। वास्तव में यह एक पर्यवलोकन प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी है, क्योंकि इसकी सहायता से प्रतिदर्श के केवल एक ही बिन्दु को देखा जा सकता है। ये बिम्ब चित्र तत्वों की सहायता से बनते हैं, जो तकनीकी रूप से च्पगमसे कहलाते हैं। यह कार्य प्रतिदर्श का पर्यवलोकन पूर्ण होने के बाद ही संभव हो पाता है। इसमें प्रतिदर्श के मूल प्रकाशीय भागों का ही प्रयोग किया जाता है, क्योंकि अभिदृश्यक लेंस का किरण केन्द्र तल (Focal Plane) अत्यन्त छोटा लगभग 0.5 माईक्रोन के बराबर होता है। केन्द्रीय तल से ऊपर एवं नीचे के सभी आकंड़ों को संसूचक तक पहुँचने से रोका जाता है। केन्द्रीय तल के उठने एवं नीचे आने के क्रम में प्रतिदर्श के स्तरों को एकत्र किया जाता है। बाद में इन स्तरों को एक त्रिविमीय संरचना में कम्प्यूटर की सहायता से विकसित किया जाता है। सत्राभि सूक्ष्मदर्शिकी के लाभों में उच्च प्रबोधन निम्न माईक्रोन सूक्ष्मदर्शिकी तथा सजीव प्रतिदर्शों का विनाशिता रहित परीक्षण भी शामिल है। इस प्रकार के सूक्ष्मदर्शियों का प्रयोग कोशिका विज्ञान एवं स्नायुविज्ञान के अनुसंधानों में बहुलता से होता है।

प्रवाह कोशिकामिति (Flow Cytometry)

यह जीव की असंक्राम्यता अथवा आनुवांशिक सरंचना की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से मुख्य रूप से प्रयोग की जाने वाली एक नवीन तकनीक है। इस तकनीक में निम्नलिखित चरण शामिल हैं:

1. जीव की कोशिकाओं को रंजक के साथ मिलाना। मिलाने की क्रिया तथा उसके अनुवर्ती कोशिका अवयव रंजन को सयुंक्त रूप से टैगिंग कहते है।

2. लेजर प्रकाश द्वारा प्रतिदर्श का प्रदीपन। यह पाया गया है कि 488μm लेजर प्रकाश रंजक को उद्दीप्त कर पाने में काफी शक्तिशाली होती है। फिर भी हाल ही में रंजक को उद्दीप्त करने के लिए 523μm लेजर प्रकाश का प्रयोग किया गया है।
3. संकेतों को पृथक करने के लिए उत्सर्जित किरणों की प्राप्ति।
4. मात्रात्मक रूप से उपलब्ध कराये जाने बाले संकेतों का विश्लेषण तथा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति।

रमन प्रकीर्णन (Raman Scattering)

प्रदीपन के प्रभाव मे रखे प्रतिदर्श से रमन प्रकीर्णन का प्रभाव उत्पन्न होता है। रमन प्रकीर्णन, रमन प्रभाव पर आधारित एक कम्पनात्मक स्पेक्ट्रमी तकनीक है, जिसका प्रयोग पदार्थ की ठोस, द्रव एवं गैस, सभी अवस्थाओं में किया जाता है। रमन प्रभाव एक कम्पनात्मक स्पेक्ट्रमी तकनीक है, जिसका प्रयोग पदार्थ की ठोस, द्रव अथवा गैस, सभी अवस्थाओं में किया जाता है। रमन प्रभाव के दौरान क्षीण संकेत किए जाते हैं। वास्तव में संकेत आपतित प्रकाश की अपेक्षा क्षीण होते हैं। अतः इनकी माप दुष्कर है। फिर भी लेजर स्रोत प्रतिदर्श के इलेक्ट्रॉनिक संक्रमण के अनुरूप होता है। इसके फलस्वरूप अनुनादी प्रभाव में वृद्धि होती है। दीप्ति की अन्य व्यवस्थाओं द्वारा अन्ततः रमन प्रकीर्णन बढ़ता है। इसे अनुनादी रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी कहते हैं। इस तकनीक का प्रयोग सामान्यतः मात्रात्मक विश्लेषण तथा आणविक संरचना के ज्ञान हेतु किया जाता है। विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम के दृश्य भाग के प्रभाव के कारण प्रतिदर्श इलेक्ट्रॉनिक संक्रमण दर्शाता है, जिसके फलस्वरूप इससे संबंधित सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है।

इस क्षेत्र में कार्य करने वाला सर्वाधिक सामान्य लेजर रंजक लेजर (Dye Laser) है। ऐसे लेजर प्रकाश की तरंगदैर्ध्य 375μm से 1050μm के मध्य होती है। पराबैंगनी अनुनादी रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी के अन्तर्गत स्पंदित लेजर स्रोतों का विशेष महत्व है। यह आणविक संरचना, बलगतिकी एवं पृष्ठीक उद्दीपन तथा गतिकी की जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रयुक्त होती है। उन्नत उच्च ऊर्जा स्पंदित ND: YAG लेजर अवरक्त, दृश्य तथा पराबैंगनी क्षेत्रों में तरंग दैर्घ्य उपलब्ध कराता है।

बहुफोटोन उद्दीपन सूक्ष्मदर्शिकी (Multi Photon Excitation Microscopy)

पर्यवलोकन सूक्ष्मदर्शिकी तथा बहुफोटोन प्रदीपन को संयुक्त रूप से बहुफोटोन उद्दीपन सूक्ष्मदर्शिकी कहते हैं। इस तकनीक का प्रयोग सूक्ष्मदर्शी वस्तुओं के उच्च विभेदन त्रिविमीय चित्र प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इस तकनीक द्वारा सूक्ष्म सजीव कोशिकाओं का गहन अध्ययन भी संभव है। इसमें प्रयुक्त लेजर टिटेनियम–नीलम लेजर (Ti-Sapphire Laser) होता है। इसके लिए आर्गन तथा क्रिप्टन लेजरों का प्रयोग भी हो सकता है। चिन्हक रंजकों की विरंजकता, संवृद्धि कोशिका जीवन क्षमता तथा उच्च विभेदन बिम्बों के बढ़ने के साथ ही घट जाती है। अतः इस तकनीक को प्राथमिकता दी जाती है।

काल विभेदन प्रदीपन

प्रदीपन संकेतों के क्षरण काल स्थिरांक की माप करने की तकनीक को काल विभेदन प्रदीपन कहते हैं। यह तकनीक कुछ सूक्ष्म सेकेंडों में होने वाले परासरण को भी माप सकती है। यह कार्य काल विभेदन अवशोषण तकनीक से नहीं किया जा सकता है। प्रतिदर्श को उद्दीप्त करने के लिए स्पंदित प्रकाश का प्रयोग किया जाता है। उत्सर्जित होने वाले प्रकाश का द्वार वाली अन्वेषण प्रणाली द्वारा अध्ययन किया जाता है। बहुचैनल तरंगदैर्ध्य का पता लगाने की प्रणाली में प्रतिदीप्ति संकेत एक दूसरे से अलगाव दर्शाते है, जिस कारण उन संकेतो को खोज पाना आसान हो जाता है। यह तकनीक उद्दीप्त अवस्था संबंधी सूचना उपलब्ध कराने तथा जीवनपर्यन्त ऊर्जा हस्तान्तरण प्रक्रिया का ज्ञान कराती है। चित्र तथा संरचना की पहचान हेतु भी इस तकनीक का प्रयोग होता है।

होलोग्राफी (Holography)

त्रिविमीय बिम्ब को उच्च वैषम्य पर उन्नत तंतु वचन फिल्म द्वारा प्राप्त करने की प्रक्रिया होलोग्राफी कहलाती है। वास्तव में इस प्रकार का चित्र होता है, जो बहुकोणीय बिम्ब को दर्शाता है। बिम्ब विवर्तन बनाने के कारण इस प्रकार के बिम्ब दिग्भेदक (Parallax)

हो जाते हैं। इस प्रकार इसे विभिन्न कोणों से देखा जा सकता है। प्रकाश के दो तरंगदैर्घ्य के बीच बाधा करने के कारण ही संभवत: बिम्ब विवर्तन हो पाता है। वस्तु का प्रदीपन लेजर के प्रयोग द्वारा ही हो पाता है। होलोग्राफी मे परिशुद्धता विस्तृत रूप से अनावरण काल, लेजर की रेखा की मुटाई, आवृति स्थिरता आदि घटकों पर निर्भर करती है। यह भी सुनिश्चित करना होता है कि बाधा पैटर्न में विघ्न नहीं पड़े। ये बातें होलोग्राफ के निर्माण में मुख्य समस्याएं उत्पन्न करती हैं। चिकित्सा के अतिरिक्त होलोग्राफी का प्रयोग अर्द्धचालकों तथा फोटोनिक्स उद्योग में भी होता है।

लिडार (Light Detection and Ranging, LIDAR)

यह प्रकाश संसूचन एवं रेजिंग के लिए प्रयुक्त होने वाला परिवर्णी शब्द है। यह प्रणाली भी रडार प्रणाली के सिद्धान्त पर आधारित है। प्रकाश को एक दूसरे को प्रभावित करने वाली वस्तुओं द्वारा बदले गए उपकरण से संचारित किया जाता है। फिर भी प्रकाश का एक भाग प्रभावित होता है। उपकरण द्वारा इसे प्राप्त करने के बाद इसका विश्लेषण किया जाता है। प्रकाश के गुणों में परिवर्तन, लक्ष्य वस्तु की विशिष्टताओं और गुण को उपलब्ध कराता है। प्रकाश के गुणों में परिवर्तन प्रकाश द्वारा अन्त:क्रिया करने वाली लक्षित वस्तु की जानकारी प्राप्त की जाती है। उपकरण की कार्य सीमा की जानकारी स्रोत से अन्त: क्रिया किये गये वस्तु की दूरी तक प्रकाश संचरण में लगे समय की रिकार्ड कर प्राप्त की जाती है। लिडार के तीन प्रकार के हो सकते है, यथा, कार्य सीमा की जानकारी प्रदान करने वाला (Range Finders), अन्तरीय अवशोषण लिडार (Differential Absorption Lidar, DIAL) तथा डॉप्लर लिडार (Doppler LIDAR)। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, रेंज फाइंडर का प्रयोग उपकरण से लक्षित वस्तु की दूरी जानने के लिए किया जाता है। दूसरी ओर, डायल का प्रयोग दो अलग-अलग तरंगदैर्घ्य वाली लेजरों का प्रयोग करते हुये रासायनिक संकेन्द्रण को मापने के लिए किया जाता है। परावर्तित संकेतों की तीव्रता के अन्तराल को अणुओं के संकेन्द्रण को ज्ञात करने के लिए विश्लेषित किया जाता है। डाप्लर में हुए आंशिक परिवर्तन से लाल या नीली वस्तु या लक्ष्य के वेग को रिकार्ड की ओर जा रही है या नहीं, इसकी जानकारी प्राप्त की जाती है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में लेजर (Laser in Healthcare)

उपचार एवं नैदानिक उद्देश्यों पर आधारित लेजरों के विभिन्न प्रकारों का स्वास्थ्य के क्षेत्र में प्रयोग होता है। उदाहरणस्वरुप, लेजर चाकू इस प्रकार काट सकता है कि खून न निकले। दूसरी ओर, Smart Scalpel नामक उपकरण लेजर का प्रयोग करते हुये कोशिकाओं में विषाणुओं की पहचान करने में सक्षम है।

लेजर प्रौद्योगिकी का प्रयोग त्वचा की झुर्रियों को मिटाने अथवा त्वचा के तिल, कृमिकोष, गोदना आदि को हटने के लिए भी किया जा सकता है। प्रकाशपुंज तथा गैर-प्रकाशपुंज समस्याएं उत्पन्न होने की आशंका लेजर के प्रयोग से होती है। तथापि लेजरों का प्रयोग स्वास्थ्य के क्षेत्र में व्यापक रूप से होता है। लेजर प्रकाशपुंज के खतरों में नेत्र अथवा त्वचा में जलन शामिल है जो सामान्यत: व्यक्ति के शरीर पर लेजर प्रकाशपुंज की चमक के कारण होती है। दूसरी ओर, गैर प्रकाशपुंज जोखिमों में लेजर उपकरणों से उत्सर्जित खतरनाक अवयव, लेजर प्रकाश पुंज में प्रयुक्त पदार्थो में उत्सर्जित धुंआ तथा सर्जिकल उत्पादकों के दौरान उत्पन्न हुई लेजर Plume भी शामिल है।

प्रकाशपुंज तथा गैर प्रकाशपुंज (ब्राक्स देखें) जोखिमों के अतिरिक्त लेजर प्रकाशपुंज आग भी उत्पन्न कर सकते हैं। फिर भी यह तभी संभव है जब प्रकाशपुंज कागज एवं उत्तक जैसी किसी ज्वलनशील पदार्थ से टकराए। जहां तक लेजर से आंखों में होने वाली समस्याओं का प्रश्न है, चोट आने की संभावना लेजर प्रकाशपुंज की शक्ति एवं उसकी तरंग की लम्बाई पर निर्भर करती है। प्रकाश की अत्यधिक चमक आखों को प्रभावित करती है क्योंकि प्रतिबिम्ब क्रिया के प्रभाव के कारण आंख झपकनी शुरू हो जाती है। कार्बनडाइक्साईड लेजर प्रकाशपुंज की भांति अदृश्य अवरक्त लेजर प्रकाशपुंज चमकीला प्रकाश नहीं देता। इसके बाद लेजर प्रकाशपुंज की प्रकाशीय प्रवृत्ति नुकसान के स्थल को दर्शाती है। लेजर च्सनउमे के कारण होने वाली समस्या भी महत्वपूर्ण है। लेजर Plumes, कार्सिनोजेन (कैंसर उत्पन्न करने वाले पदार्थ), उत्परिवर्तक, धूल, बीजाणु, रक्त विखण्डन, वायुमंडल के जैव कण आदि अवयवों के समूह हैं। लेजर Plumes द्वारा स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों में आंख, नाक तथा कान में खारिश, जुकाम, उल्टी, नकसीर, छाती पर

दबाब, पेडू में अकड़न, फ्लू के लक्षण तथा थकावट शमिल हैं। ये लक्षण एक या दो दिनों तक बने रहते हैं। अन्य प्रकाश पुंज जोखिमों के अतिरिक्त गैर प्रकाशपुंज समूह में विद्युतीय जोखिम अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि लेजर उपकरणों का असावधानी पूर्वक प्रयोग करने की दशा में विद्युतीय झटके की संभावना बनी रहती है। उपरोक्त सभी प्रयोगों के अतिरिक्त लेजर प्रौद्योगिकी प्लाविका प्रौद्योगिकी यूरेनियम को संवर्द्धित करने की दृष्टि से समस्थानिकों के पृथकीकरण, रक्षा के प्रकाश पुंज शास्त्रों के विकास, तंतु प्रकाशिकी द्वारा सम्प्रेषण तकनीक विकसित करने के लिए भी प्रयुक्त होती है। तंतु प्रकाशिकी में क्वांटम लूप लेजर का प्रयोग किया जाता है।

भारत में लेजर प्रौद्योगिकी (Laser Technology in India)

भारत में 1960 में भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र (Bhabha Atomic Research Centre) द्वारा लेजर प्रौद्योगिकी विकसित की गई थी। केन्द्र ने सफलतापूर्वक एक अर्द्धचालक लेजर का विकास किया था, जिसका 20 कि.मी की दूरी पर प्रकाशीय (Optical) सम्प्रेषण सम्पर्क स्थापित करने के लिए प्रयोग किया गया था। इसकी सफलता के बाद लेजर विकास कार्यक्रम को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ जिसके कारण कई अन्य प्रमुख लेजरों के विकास हेतु गैर रैखिक प्रकाशिकी, लेजर प्लाविका, आपसी व्यवहार आदि क्षेत्रों में अनुसंधान करने के लक्ष्य भी निर्धारित किये गये। बाद में अधिकांश लेजर गतिविधियां उन्नत प्रौद्योगिकी केन्द्र (Centre for Advanced Technology, CAT) द्वारा विकसित की जाने लगीं। अब इंदौर स्थित इस केन्द्र को भारत सरकार द्वारा लेजर का विकास करने वाली एक अग्रणी संस्थान के रूप में पहचाना जाने लगा है। यह राष्ट्रीय लेजर कार्यक्रम के कार्यान्वयन को भी समन्वित करती है। विभिन्न प्रकार की लेजरें, लेजर संबंधित अवयव (पुर्जे/घटक) तथा लेजर पर आधारित उपकरणों को इस केन्द्र द्वारा विकसित किया गया है। वर्तमान में भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिक के विकास के क्षेत्र में कार्यरत अधिकांश विभाग जैसे परमाणु ऊर्जा विभाग, इलेक्ट्रॉनिक विभाग, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, विज्ञान एवं तकनीक विभाग आदि लेजर प्रौद्योगिकी के विकास संबंधी कार्यक्रमों का आयोजन करके इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं।

1991 में भारत में लेजर की स्थिति पर रिपोर्ट बनाने के लिए गठित वैज्ञानिक सलाहकार समिति ने राष्ट्रीय लेजर कार्यक्रम बनाने की सलाह दी थी, जिसका प्रारंभ परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं, अस्पतालों, शैक्षणिक संस्थानों में छोटी एवं बड़ी परियोजनाओं का नियमन कर लेजर तथा उनके अनुप्रयोगों को बढ़ाने की दृष्टि से किया गया। प्रायोगिक लेजर प्रौद्योगिकी तथा प्रकाशीय इलेक्ट्रॉनिक्स में आधुनिकतम परिवर्तनों पर चर्चा करने के लिए फरवरी 2001 में अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी एवं सम्मलेन आयोजित किया गया था। इसके उपरांत रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (Defence Research and Development Organistion, DRDO) ने न केवल रक्षा उद्देश्य से अपितु भारत के सामाजिक चिकित्सीय तथा आर्थिक क्षेत्र को सहयोग प्रदान करने के उद्देश्य से लेजर प्रौद्योगिकी को विकसित करने का प्रयास किया है। 1999 में रक्षा विज्ञान केन्द्र का नाम बदल कर लेजर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र (Laser Science and Technology Centre, LASTEC) रखा गया। LASTEC नामक इस केन्द्र ने ND-YAG लेजर का विकास करने में सफलता प्राप्त की है। इसकी सहायता से ठोस अवस्था लेजर के क्षेत्र में LASTEC ने वायुगतिकी अनुप्रयोगों के लिए ND-YAG लेजर निम्नतापी शीतलन प्रणाली को विकसित किया है तथा Polymer Foam प्रौद्योगिकी को विकसित करने में भी सफलता प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त, कार्बन डाइक्साइड गैस डायनामिक लेजर के लिए मुख्य तकनीकों का आधारभूत ढांचा तैयार किया जा सकता है। LASTEC ने Alexandrite लेजर प्रणाली तथा दोहरी आवृति वाले ND-YAG लेजर का विकास क्रमश: संवेदन रोधी एवं व्यक्ति रोधी कार्यों के लिए किया है। मोतियाबिन्द के बाद देखभाल एवं ग्लूकोमा के उपचार के लिए LASTEC द्वारा नेत्र चिकित्सा लेजर प्रणाली दृष्टि -1064 विकसित की जा चुकी है। DRDO तथा BARC के अतिरिक्त टाटा मौलिक अनुसंधान संस्थान भी लेजर प्रौद्योगिकी पर कार्य करने के लिए इस समूह में शामिल हो गया है।

अतिचालकता (Superconductivity)

अतिचालता भौतिकी का एक अत्यंत रुचिकर, आर्कषक तथा चुनौतिपूर्ण पहलू है। प्रथम अतिचालक पदार्थ की खोज 1911 में Heike Kammerlingh Onnes द्वारा तब की गई थी, जब पारे को –269°C तक शीतल किया गया था। वास्तव में व्दद्मे ने हीलियम को 425°F अथवा 4K तक सफलतापूर्वक शीतल करने में सफलता प्राप्त कर ली थी। इसके बाद, विश्व में पदार्थ की इस अनोखी

ष्टता के प्रायोगिक अनुप्रयोग जानने के लिए कार्य आरंभ किये गये, फिर भी लगभग साढ़े तीन दशकों तक यह अवधारणा अस्पष्ट ही। हाल में निम्नतापी कार्यों के लिए अतिचालकों की आवश्यकता के संदर्भ में इस दिशा में पुनः प्रयास आरंभ किये गये हैं।

अतिचालक एक ऐसा पदार्थ है, जिसमें प्रतिरोध रहित विद्युत प्रवाह संभव है। दूसरे शब्दों में, अन्य पदार्थों की तुलना में अतिचालकों र्जा के ह्रास के बिना विद्युत प्रवाह संभव होता है। 1993 में Walther Meissner तथा त्व ब्वीपेमदपिमसक ने दर्शाया था कि ालक विद्युत के आदर्श चालकों से अधिक कार्यक्षेम होते हैं, तथा उनमें चुम्बकीय क्षेत्र को त्यागने का चुम्बकीय गुण भी होता न वैज्ञानिकों के अनुसार, एक अतिचालक चुम्बकीय क्षेत्र को अपने आन्तरिक भाग में प्रवेश नहीं करने देता। उसके आन्तरिक भाग वाहित होने वाली धारा से एक ऐसे क्षेत्र का निर्माण होता है, जो चुम्बकीय क्षेत्र में प्रवेश को रोकता है। इस प्रभाव को डमपेदमत । कहते हैं। अतिचालकता की अवधारणा को प्रोत्साहन वास्तव में 1957 में दिया गया, जब BCS (John Barden, Lean Cooper John Shriffer) का सिद्धांत प्रस्तावित किया गया था। सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि अतिचालकता शून्य के समान ताप पर है। सिद्धान्त के अनुसार, जब अतिचालकता की संजालिका में धनात्मक क्षेत्र से एक ऋणात्मक आवेश वाला इलेक्ट्रॉन गुजरता है, संजालिका अव्यवस्थित हो जाती है। इसके कारण प्रोटॉन उत्सर्जित होते है, जो इलेक्ट्रॉन के चारों ओर धनात्मक आवेशों की एक ना बनाते हैं। स्थिति के फिर से सामान्य होने के पूर्व, अर्थात् संजालिका के व्यवस्थित होने से पहले नलिका में अन्य इलेक्ट्रॉनों खींच लिया जाता है। इस स्थिति में दो इलेक्ट्रॉन एक दूसरे के प्रतिकर्षण की बजाय एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। इलेक्ट्रोनों के इस को Cooper युग्म कहते हैं। जब तक अतिचालक अत्यंत कम ताम पर ठंढा रहता है, तब तक 'Cooper युग्म' अखंडित रहता लेकिन ताप बढ़ने से ताप ऊर्जा 'Cooper युग्म' को तोड़ देती है, और पदार्थ की अतिचालकता समाप्त हो जाती है। इस प्रकार, स्पष्ट है कि किसी अतिचालक को उसी स्थिति में रहने के लिए ताप व्यवस्था एवं चुम्बकीय क्षेत्र को बनाए रखना चाहिए। वह जिस पर कोई पदार्थ अतिचालक बनता है, क्रांतिक तापमान कहलाता है। सामान्य रूप से उपयोग में आने वाले अतिचालकों में ायम, कॉपर आक्साइड, बेरियम, थैलियम, वेनेडियम आदि शामिल हैं।

अतिचालकों के प्रकार (Typer of Superconductor)

तः टाइप-1 तथा टाइप-2 नामक दो प्रकार के अतिचालक होते हैं। सीसा, पारा एवं टिन टाईप -I के अतिचालक हैं, जबकि CU_2O_7 (YBCO) तथा $Bi_2CaSr_2Cu_2O_3$ टाइप II अतिचालक के उदाहरण हैं। यह पाया गया है कि जब टाईप-I के अतिचालकों एक बाहरी चुम्बकीय क्षेत्र के अन्तर्गत रखा जाता है तो जब तक पदार्थ अतिचालकता से सामान्य अवस्था में नहीं आता, ऐसे । परिवर्तन के न होने तक अभिप्रेरित चुम्बकीयता प्रायोगिक चुम्बकीयता को रद्द नहीं करती। इस प्रकार के अतिचालक सामान्यतः धातुओं के होते हैं, तथापि सीसा सबसे मज़बूत टाईप-I अतिचालक माना जाता है। वास्तव में टाईप-II अतिचालकों को हाल खोजा गया है। इन्हें उच्च ताप अतिचालक या Perovskites भी कहते हैं। ये धातु आक्साइड के मिश्रण होते हैं, जो मृतिका के क एवं भौतिक गुणों को दर्शाते हैं। इन पदार्थों के व्यवहार एवं गुण डमपेदमत प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। इन पदार्थों की एक पूर्ण विशेषता यह है कि इनमें ताँबा एवं आक्सीजन आपस में एक विशेष प्रकार के रासायनिक बंध से जुड़े हुए हैं। तांबे एवं सीजन के बीच विशेष रासायनिक बंध पदार्थों को विद्युत उत्पादन करने देता है। उदहारणतः YBCO को आक्सीजन के प्रति एक धिक संवेदी पदार्थ माना जाता है और यदि आक्सीजन के आयतन में परिवर्तन आता है तो यह अपनी संरचना के परिवर्तित हुए अर्द्धचालक से अतिचालक बन जाता है।

तापमान अतिचालकों की खोज 1986 में Bednor तथा Mueller द्वारा की गई थी। उच्च तापमान अतिचालाकों की श्रेणी में O तथा Ti एवं Hg आधारित प्रणालियां शामिल हैं। इनका क्रांतिक तापमान क्रमशः 90K, 120K एवं 160K होता है। इन उच्च ान अतिचालकों के कुछ प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं-

ये मृतिका एवं परिघीय आक्साईड हैं।

कमरे के सामान्य ताप पर ये निकृष्ट धातु हैं।

सामान्य धातुओं की अपेक्षा इनमें कुछ आवेश वाहक भी होते हैं।

4. ये उच्च विद्युतीय तथा चुम्बकीय गुणों को दर्शाते हैं जो आक्सीजन आयतन के लिए संवेदनशील होते हैं।

अतिचालन अवस्था को क्रांतिक क्षेत्र एवं क्रांतिक धारा घनत्व नामक तीन घटकों द्वारा परिभाषित किया जाता है। अतिचालन की दशा बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि चुम्बकीय क्षेत्र, धारा घनत्व एवं ताप को क्रांतिक मान से कम रखा जाए। जहां तक उच्च ताप अतिचालकों के अनुप्रयोग का प्रश्न है, वे चुम्बकीय रक्षण उपकरण, चिकित्सीय बिम्बन प्रणाली, अतिचालकता मात्रात्मक व्यतिकरण उपकरण (Superconducting Quantum Interference Device or SQUID), अवरक्त सेंसर, संकेत संसाधन उपकरण तथा सूक्ष्मतम उपकरणों को तैयार करने में प्रयुक्त होते हैं।

अतिचालकों के अनुप्रयोग (Applications of Super Conductor)

अतिचालकों ने तकनीकी एवं औद्योगिक दोनों क्षेत्रों में अनुप्रयुक्त विज्ञान के क्षेत्र में क्रांति ला दी है। इलेक्ट्रॉनिक्स क्षेत्र विभिन्न स्तरों पर अतिचालकों के अनुप्रयोग से प्रभावित है। अतिचालकों के आगमन से अधिक संघनित चिपों को विकसित किया जा सकता है। 13 Picosecond की तार्किक देरी एवं 9 Picosecond के स्विच दबाने की देरी को सफलतापूर्वक प्रदर्शित करना इलेक्ट्रॉनिकी क्षेत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। SQUID, सूक्ष्म तरंग संसूचक, चुम्बकीयमापी आदि उपकरणों में Josephson जंक्शन का प्रयोग करते हुए विकसित किया जा सकता है। घूर्णन के क्षेत्र में अध्ययन अतिचालकों का प्रयोग कर किया जा सकता है। यह घूर्णिका में इकट्ठे किए गए द्रव्य में स्थिरता लाता है तथा विभिन्न द्रव्य प्रक्षालन तकनीकों की दक्षता को सफलतापूर्वक प्रदर्शित करता है। इन कनकों में एकत्रित द्रव्य का ऊष्मीय तापानुशीलन शामिल है। शक्ति उपकरण को उच्च ऊष्मीय एवं यान्त्रिक दबाव से बचाने के लिए अतिचालक दोष धारा मर्यादक (Superconducting Fault Current Limiters) का प्रयोग होता है, जो उच्च शार्ट सर्किट करंट को स्वचलित रूप से उनकी अतिचालकता को सामान्य दशा में परिवर्तित कर सीमित करती है। इस प्रकार, यह सामान्य संचालन के दौरान उच्च शार्ट सर्किट क्षमता और किसी प्रकार के दोष की दशा में शार्ट सर्किट करंट को नियंत्रित करती है। इस प्रकार की प्रणाली प्रतिरोधकता की अवधारणा पर अधारित होती है, जिसमें अतिचालक को सीधे उसी रेखा में रखा जाता है जिसे बचाव की आवश्यकता होती है। अतिचालक की अवस्था में परिवर्तन समस्या को कम करता है। इसके बाद लोहे के अभ्यंतर का प्रयोग करते हुए प्रेरक मर्यादक (Inductive Limiter) नामक एक अन्य अवधारणा को भी लागू किया जा सकता है। वर्तमान में अतिचालकों का प्रयोग अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में भी हो रहा है। अंतरिक्ष का शून्य घनत्व विशेष मिश्रधातु कण एवं उपयुक्त गोला बनाना संभव करता है। परिवहन के क्षेत्र में द्रवीभूत हीलियम को प्रशीतक के रूप में प्रयोग करते हुए अतिचालक का प्रयोग चुम्बकीय रूप से आकाशगामी वाहनों के लिए किया जाता है। अतिचालक चुम्बकों का प्रयोग विशेषत: प्रकाशपुंज परिवहन तथा जहां वे स्थिर क्षेत्र मे संचालित हुए हों वहां Bubble Chamber Magnet जैसे अनुप्रयोगों के लिए हो सकता है। त्वरित कणों में चुम्बकों का प्रयोग प्रकाशपुंज को मोड़ने एवं फोकस करने वाले कणों के त्वरण तथा कणों के आपसी व्यवहार के विश्लेषण करने के लिए भी किया जाता है। वास्तव में प्रकाशपुंज परिवहन चुम्बकों के रूप में प्रयुक्त होने के लिए द्विध्रुवीय चुम्बकों को उपयुक्त पाया गया है। अधिकांश मामलों में इस उद्देश्य से NbTi का प्रयोग अतिचालक पदार्थ के रूप में हुआ है। हाल ही में Kasumov et. el, 2001 ने कहा है कि DNA अणु अनोखी अतिचालकता के गुणों से लैस होता है, जो कार्बन Nanotubes के समान होते हैं। वैज्ञानिकों ने एक विशेष इलेक्ट्रोड का प्रयोग किया है तथा इलेक्ट्रोडों से 500μm की दूरी के पार DNA अणु निक्षेप रखा गया। ऐसी दशा में अतिचालकता को कई स्तरों पर मापा गया। दूसरे अणुओं से अलग DNA ने निम्न ताप पर बढ़ी हुई चालकता को दर्शाया (यह पहले से ही माना जाता था कि सामान्यत: DNA एक अतिचालक नहीं है।) 1K से भी कम ताप पर चुम्बकीय क्षेत्र की पहचान हेतु अब तक का सर्वाधिक संवेदनशील उपकरण SQUID है, जो परम्परागत निम्नताप अतिचालकों के लिए विकसित किया गया है जिनमें 4 Kelvin हीलियम द्रव्य के साथ शीतलन की आवश्यकता होती थी। जैव औषधि के क्षेत्र में SQUID का प्रयोग हृदय अथवा रक्त परिपथ समस्याओं के निदान के लिए किया जाता है।

इसके अतिरिक्त, परम्परागत प्रणाली चक्र में अतिचालकों का प्रयोग करते हुए एक अन्य सुधार Magneto Cardiograms का प्रयोग है। गैर विनाशक परीक्षण के क्षेत्र में भी SQUID का प्रयोग हो रहा है। इस तकनीक का प्रयोग विशेषत: उन संरचनाओं जिनमें धातु शामिल हो, के आन्तरिक दोषो एवं घिसावट का पता लगाने के लिए अथवा X-ray प्रणाली अथवा अल्ट्रासाउन्ड के एक विकल्प के रूप में किया जा सकता है।

भारत में अतिचालकता (Superconductivity in India)

भारत सरकार ने 1987 में अतिचालकता के क्षेत्र में अनुसंधानों की सफलता को सुनिश्चित करने की दृष्टि से कार्यक्रम प्रबंधन बोर्ड (Programme Management Board, PMB) की स्थापना की थी। 1991 से इस प्रकार के अनुसंधान कार्यक्रमों एवं उनके प्रभावी कार्यान्वयन की उन्नति के लिए राष्ट्रीय अतिचालकता कार्यक्रम का क्रियान्वयन किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत कई संस्थानों को एक दूसरे से जोड़ा गया है। इन संस्थानों में परमाणु ऊर्जा विभाग, विभिन्न भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान तथा वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् शामिल हैं। राष्ट्रीय कार्यक्रम के प्रथम चरण (1989-91) में अतिचालकता से संबंधित 63 कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक पूरा किया गया है। द्वितीय चरण 1991 से 1995 तक क्रियान्वित किया गया, जिसमें 6 और कार्यक्रम प्रारंभ किए गए थे। वर्तमान में तीसरा चरण क्रियान्वित किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, चेन्नई विश्वविद्यालय जैसे कई अन्य विश्वविद्यालय भी अतिचालकता पर अनुसंधान कर रहे हैं। हांलाकि वे राष्ट्रीय कार्यक्रम के साथ संयोजित हैं। अनुसंधान परियोजनाओं में उच्च ताप अतिचालकता के अनुप्रयोग भी शामिल हैं।

8. महासागरीय प्रौद्योगिकी Ocean Technology

महासागरीय नीति (Ocean Policy)

वर्ष 1982 में भारत ने संयुक्त राष्ट्र सामुद्रिक विधि सम्मेलन (UNCLOS) की सदस्यता ग्रहण की थी, जिसके आधार पर वर्ष 1982 में ही एक राष्ट्रीय महासागरीय नीति का निर्धारण किया गया। भारत द्वारा स्वदेशी तकनीकियों की सहायता से महासागरीय विशिष्टताओं से संबंधित सूचनाएं एकत्र करने, विभिन्न प्रकार के पदार्थों एवं संसाधनों का विकास करने तथा क्षरण-निरोधक प्रयासों को प्रश्रय देने के उद्देश्य से विशेष कार्य किये जा रहे हैं। राष्ट्रीय महासागरीय नीति के तथ्यों में निम्नांकित प्रमुख हैं:

1. महासागरीय संसाधनों का उपयोग, नियंत्रण एवं प्रबंधन।
2. नियंत्रण तथा प्रबंधन से संबंधित आधारभूत संरचनाओं का विकास।
3. मछली तथा अन्य महासागरीय जैव संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग।
4. हाईड्रोकार्बन तथा अन्य भारी संचित पदार्थों सहित सभी अजैव संसाधनों का संदोहन।
5. महासागरीय अवशिष्टों में नवीकरणीय संसाधनों से महासागरीय ऊर्जा प्राप्त करने, जल स्तंभों के तापमान में आये अन्तर से लाभ प्राप्त करने, ज्वारभाटाओं की ऊंचाई, लवणता की प्रवणता तथा बहुधात्विक पिण्डों से लाभ प्राप्त करने का प्रयास।
6. गहरे जल से मछलियों के संदोहन हेतु स्वदेशी तकनीकों के विकास पर विशेष बल।
7. महासागरीय तकनीकों के विकास के लिए ठोस प्रयास।
8. ऊर्जा के नये संसाधनों, खनिजों तथा खाद्य पदार्थों के नये स्रोतों का अन्वेषण।
9. महासागरीय पर्यावरण तथा संसाधनों के निरीक्षण एवं संरक्षण हेतु विशेष प्रयास।
10. विशिष्ट वैधानिक प्रावधानों के प्रभावशाली क्रियान्वयन पर विशेष बल।
11. महासागरीय विकास कार्यक्रमों से संबंद्ध कार्यरत एजेंसियों का सुदृढ़ीकरण तथा आवश्यकतानुसार नये एजेंसियों तथा अभिकरणों का गठन।
12. महासागरीय विकास हेतु सूचनाओं का संकलन, परिकूलन तथा प्रसार।

राष्ट्रीय महासागरीय नीति के प्रावधानों के आधार पर भारत में पर्यावरण संबंधी सूचनाओं का संकलन तथा महासागरीय विशिष्टताओं के विश्लेषण का कार्य किया जा रहा है। साथ ही इन विषयों से संबंधित अनुसंधान तथा विकास कार्यक्रमों की कई विस्तृत श्रृंखलाएं भी प्रारंभ की गई है। महासागरीय तरंगों, जलधाराओं, उनके तापमान, दाब, लवणता जैविक गुण तथा पृथ्वी के चुम्बकीय एवं गुरुत्वीय गुणों के अध्ययन हेतु विशेष रूप से निरूपित यंत्रों का उपयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त UNCLOS के प्रावधानों के अनुरूप समुद्री प्रदूषण तथा समुद्री जल के कचरा निस्तारण पर नियंत्रण रखने हेतु भी भारत कटिबद्ध है।

बहुधात्विक पिण्ड (Polymetallic Nodules)

अन्तर्राष्ट्रीय समुद्र तल प्राधिकरण के अनुसार, समुद्र के विभिन्न क्षेत्रों में पाये जाने वाले धात्विक पिण्ड निम्नांकित चार प्रकार के होते हैं :

1. **कणिकामय तलछटी** (Granular Sediments):- क्वार्ट्ज युक्त रेत तथा कणिकाएं तथा कार्बोनेट रेत तथा गाद एवं मिट्टी इस श्रेणी के महत्वपूर्ण खनिज हैं। नदियों तथा हिमनदों के प्रवाह की सहायता से महासागरीय जल में प्रविष्ट होने वाले इन खनिजों का तलछटीकरण उनके आकार के अनुरूप होता है।
2. **प्लेसर खनिज** (Placer Minerals):- सोना, हीरा, प्लेटिनम, टिन तथा टिटेनियम प्लेसर खनिजों की श्रेणी में सर्वाधिक प्रचलित हैं।
3. **जलतापीय खनिज** (Hydrothermal Minerals):- सल्फाईड के भंडार में तांबा, सीसा, जस्ता, सोना, चांदी आदि इस श्रेणी में सम्मिलित हैं। इन खनिजों की उत्पत्ति ज्वालामुखी की गतिविधियों से संबंधित है।
4. **जल जनित खनिज** (Hydrogenetic Minerals):- इनकी उत्पत्ति महासागरीय जल के निक्षेपन के द्वारा होती है। इस श्रेणी में कोबाल्ट, प्लेटिनम, निकेल, तांबा, तथा विरल मृतिका खनिजों के अतिरिक्त फॉस्फोराइड लवण, बेराईट तथा लौह-मैंग्नीज पिण्ड सम्मिलित हैं।

बहुधात्विक पिण्ड आलू के आकार के ऐसे खनिज युग्म हैं जो सागरों की विभिन्न गहराइयों में पाये जाते हैं। लौह मैंग्नीज पिण्डों के अतिरिक्त इस श्रेणी में निकेल, तांबा, कोबाल्ट, मोलिबडेनम, वेनेडियम, कैडमियम, टिटेनियम, आदि के पिण्ड भी पाये जाते हैं। हिन्द महासागर में 150 लाख वर्ग किमी. के क्षेत्र में 3500 से 6000 मी. की गहराई तक इन पिण्डों की उपलब्धता है। अन्तर्राष्ट्रीय समुद्रतल प्राधिकरण द्वारा भारत को हिन्द महासागर में 1,50,000 वर्ग किमी. के क्षेत्र में इन पिण्डों के खनन का अधिकार प्रदान किया गया है। समुद्र की गहराई के सर्वेक्षण के आधार पर भारत द्वारा ऐसे कुछ स्थानों की पहचान की गई है जहां से बहुधात्विक पिण्डों का निष्कासन किया जा सकता है। इस संदर्भ में भारत ने विशिष्टताएं भी विकसित कर ली हैं। वस्तुत: समुद्री खनन के क्षेत्र में भारत द्वारा विकसित क्षमताओं एवं तकनीकों को वैश्विक स्तर पर मान्यता प्रदान की गई है। वर्ष 1990 में भारतीय जलयान गवेषणी द्वारा विश्व स्तर पर सर्वप्रथम बहुधात्विक पिण्डों का निष्कासन किया गया था।

बहुधात्विक पिण्डों के निष्कासन एवं खनन से समुद्री पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव पड़ने की आशंका होती है। अत: इस कार्य में पर्यावरणीय प्रभावों पर विशेष बल दिया जाता है। भारत ने बंदोबस्त विकास मूल्यांकन तकनीक (Endowment Assessment Technology) तथा जन शक्ति विकास तकनीक (Manpower Development Technology) विकसित कर समुद्री खनन के क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त कर ली है। साथ ही, समुद्री पर्यावरण के सतत एवं अनुकूलतम उपयोग के सुनिश्चितीकरण के लिए पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन भी किया जाता है। पिण्डों के अन्वेषण तथा धातुओं के निष्कासन से संबंधित कार्यक्रमों के मार्गदर्शन तथा पुनरीक्षण हेतु बहुधात्विक पिण्ड प्रबंधन बोर्ड कार्यरत है। समुद्री खनन में निम्नलिखित चार अवयवों का विशेष योगदान है :

1. **सर्वेक्षण तथा अन्वेषण** (Survey and Exploration):- सर्वेक्षण की प्रक्रिया तथा अन्वेषण का उद्देश्य बहुधात्विक पिण्डों की सापेक्ष सांद्रता तथा गुणवत्ता से संबंधित विशेषताओं का मूल्यांकन करना है। साथ ही, इसके माध्यम से समुद्र तल के स्थानाकृत विज्ञान (Topography) का भी अध्ययन संभव है।
2. **पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन** (Environmental Impact Assessment):- एक ओर जहां बहुधात्विक पिण्डों के सर्वेक्षण तथा अन्वेषण के विशेष प्रभाव परिलक्षित नहीं होते, वहीं दूसरी ओर इनके खनन तथा अन्तत: धातुओं के निष्कासन के फलस्वरूप पौधों तथा जन्तुओं सहित समुद्री पर्यावरण पर व्यापक कुप्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। भारत सरकार ने रूस के प्राकृतिक संसाधन मंत्रालय के साथ समुद्री पर्यावरण पर पड़ने वाले ऐसे सभी कुप्रभावों की जानकारी के लिए विशेष अध्ययन कार्यक्रम प्रारंभ किया है।
3. **तकनीकी विकास** (Technical Development):- दुर्गापुर स्थित केन्द्रीय यांत्रिक अभियांत्रिकी संस्थान द्वारा छिछले (250 मी.) तथा गहरे सागर खनन हेतु नई तकनीकों के विकास का कार्य किया जा रहा है। इन तकनीकों के अन्तर्गत उप प्रणालियों का विकास भी किया जाता है। इस कार्य में संस्थान को विशेष सफलता प्राप्त हुई है।

कार्यक्रम के तहत सागरीय जल में कार्बन की मात्रा में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन भी किया जाता है। इस कार्य को IBGP के तहत संयुक्त वैश्विक महासागरीय परिवर्तन अध्ययन (Joint Global Ocean Flux Study or JGOFS) नामक कार्यक्रम के माध्यम से मूर्तरूप प्रदान किया गया है। भारत द्वारा अन्य राष्ट्रों के साथ संयुक्त रूप से कार्यक्रम की सफलता हेतु प्रयास किये जा रहे हैं। अरब सागर में कार्बन के मात्रात्मक परिवर्तन के अध्ययन हेतु भारत ने वैश्विक महासागर अवलोकन प्रणाली (Global Ocean Observing System or GOSS) नामक कार्यक्रम का क्रियान्वयन किया है। वैज्ञानिकों के अनुसार, अरब सागर कार्बव डायक्साइड के स्रोत तथा मग्नक (Sink) दोनों ही के रूप में कार्य करता है। GOSS नामक कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य जलवायु का प्रबोधन एवं मूल्यांकन, तटीय पर्यावरण से संबंधित परिवर्तनों तथा समुद्री संसाधनों का विस्तृत अध्ययन करना है। इसके अतिरिक्त, कार्यक्रम के तहत समुद्री मौसम एवं क्रियाशील महासागरीय सेवाओं का अध्ययन भी किया जाता है।

राष्ट्रीय महासागरीय तकनीक संस्थान (National Institute of Ocean Technology)

राष्ट्रीय महासागरीय तकनीक संस्थान की स्थापना चेन्नई में सन् 1993 में की गई थी। संस्थान का सर्वाधिक प्रमुख उद्देश्य महासागर से संबंधित विभिन्न विषयों पर अनुसंधान कार्य करना है। संस्थान ने जर्मनी के सीजेन विश्वविद्यालय के सहयोग से क्रॉलर नामक एक यान का विकास किया है। इसके द्वारा समुद्री खनन के कार्य में व्यापक सहायता प्राप्त होने की प्रबल संभावना है। इसके अतिरिक्त, संस्थान तथा रूस के एकेडमी ऑफ सायंस (Academy of Science) ने मानव रहित पनडुब्बीनुमा यान के विकास में भी सफलता प्राप्त की है। संस्थान द्वारा वैज्ञानिक समुदाय को महासागर विकास से संबंधित अनुसंधान कार्यों के लिए वित्तीय तथा अन्य प्रकार की सहायता भी प्रदान की जाती है। महासागरीय विकास विभाग द्वारा क्रियान्वित COMAPS कार्यक्रम के तहत संस्थान को सागर पूर्वी तथा सागर पश्चिमी नामक जलयानों की जल यात्राओं के प्रबंधन तथा सुनिश्चितीकरण का दायित्व सौंपा गया है। साथ ही तापी ज्वारनदमुख (Tapi Estuary) में अमेरिका के लिमोटेक (Limo Tech) नामक संस्थान द्वारा कचरा स्वांगीकरण क्षमता (Waste Assimilation Capacity) में वृद्धि करने के प्रयास भी किये जा रहे हैं। अमेरिकी संस्थान के सुझाव पर राष्ट्रीय महासागरीय तकनीक संस्थान द्वारा भी एन्नोर की सँकरी खाड़ी तथा तटवर्ती क्षेत्र में इसी प्रकार का अध्ययन किया जायेगा।

9. पर्यावरण
Environment

वैश्विक पर्यावरण सम्मेलन (Global Conventions on Environment)

मानव पर्यावरण विषय का वैश्विक कल्याण तथा विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन का आयोजन वर्ष 1972 में स्टॉकहोम में किया गया था। इस सम्मेलन ने यह स्पष्ट किया कि पर्यावरणीय समस्याएं, विशेषकर विकासशील देशों में, पिछड़ेपन के कारण उत्पन्न होती हैं। खाद्यान्न, आवास, वस्त्र तथा शिक्षा की अपर्याप्तता के कारण समस्याएँ अत्यधिक विकराल हो जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या का एक बड़ा भाग निम्नतम स्तर पर जीवन यापन करने को विवश हो जाता है। पर्यावरण संरक्षण को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से सम्मेलन में निम्नलिखित तथ्यों पर बल दिया गया :

1. वर्तमान तथा भविष्य की पीढ़ी के लाभ हेतु प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण।
2. अत्याचार, जाति, लिंग, धर्म आदि से संबंधित भेदभावपूर्ण नीतियों का उन्मूलन।
3. पृथ्वी की पुनरोत्पादन क्षमता के संरक्षण से नवीकरणीय संसाधनों के उत्पादन का सुनिश्चितीकरण।
4. प्रकृति का संरक्षण तथा वन्य जीवन की सुरक्षा।
5. मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले हानिकारक पदार्थों से होने वाले सागरीय प्रदूषण को कम करने के प्रयास।
6. सुदृढ़ आर्थिक तथा सामाजिक विकास सुनिश्चित करके जीवन के गुणों में सुधार लाने का प्रयास।
7. विषैले पदार्थों एवं अत्यधिक ऊष्मा के निस्तारण को कम कर पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण।
8. विकास की अपूर्णता तथा प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न होने वाली पर्यावरणीय समस्याओं के निराकरण हेतु तकनीक हस्तान्तरण की प्रक्रिया को त्वरित गति।
9. विकास संबंधी आवश्यकताओं तथा पर्यावरण संरक्षण के प्रयासों के मध्य विवादों को समाप्त करने का प्रयास।
10. पर्यावरण संबंधी खतरों को पहचानने, उनसे बचने तथा उन पर नियंत्रण रखने के लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी विधियों का अनुप्रयोग।
11. पर्यावरण से संबंधित अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर वैश्विक सहयोग का सुनिश्चितीकरण।
12. परमाणु अस्त्रों तथा व्यापक विनाशकारी शस्त्रों से मानव तथा उसके पर्यावरण की सुरक्षा।

हेलसिन्की सम्मेलन (Helsinki Convention)

वर्ष 1974 में बाल्टिक सागर क्षेत्र के समुद्री पर्यावरण की रक्षा पर हेलसिन्की में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया था। वस्तुतः यह प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय समझौता था, जिसमें प्रदूषण के सभी स्रोतों पर विचार किया गया चाहे वे पृथ्वी, सागर अथवा वायु के हों। इस सम्मेलन ने तेल तथा अन्य प्रदूषणकारी पदार्थों द्वारा जलीय प्रदूषण को नियंत्रित करने तथा सहयोग के नियमन पर बल दिया।

इसके बाद 1992 में इसी विषय पर एक अन्य सम्मेलन (Convention on the Protection of the Marine Environment of the Baltic Sea Area) आयोजित किया गया जिसे बाल्टिक सागर क्षेत्र के देशों तथा यूरोपीय आर्थिक संघ (European Economic Community) के सदस्यों द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई। वर्ष 1992 में पुन: आयोजित हेलसिन्की सम्मेलन के 17 जनवरी 2000 से प्रभावी हो जाने के कारण वर्ष 1974 के सम्मेलन के प्रावधानों को निरस्त कर दिया गया है।

लंदन सम्मेलन (London Convention)

समुद्री प्रदूषण तथा अपशिष्ट एवं अन्य पदार्थ क्षेपण निरोधक सम्मेलन (Convention on the Prevention of Marine Pollution by Dumping of Wastes and other Matter) जिसे लंदन सम्मेलन भी कहते हैं, का आयोजन वर्ष 1975 में किया गया था। अपशिष्टों के क्षेपण का विरोध करने वाला यह पहला वैश्विक सम्मेलन था, जिसने ऐसे अपशिष्टों से समुद्री जल के प्रदूषण पर नियंत्रण रखने का प्रयास किया। सम्मेलन के प्रावधानों को 30 अगस्त वर्ष 1975 से प्रभावी बनाया गया है। सम्मेलन का सर्वाधिक प्रमुख उद्देश्य जलयानों, वायुयानों या भष्मीकरण द्वारा अपशिष्टों के ऐच्छिक क्षेपण पर नियंत्रण रखना है। इसके अतिरिक्त, जलयानों, वायुयानों तथा प्लेटफार्मों से अपशिष्टों के प्रत्यक्ष क्षेपण को भी प्रतिबंधित किया गया है। अन्य पदार्थों का क्षेपण अधिकारिक परमिट प्राप्त करने के उपरांत ही किया जा सकता है। नवम्बर, 1996 में लंदन में आयोजित एक अन्य सम्मेलन में प्रावधानों का अनुमोदन किया गया। इन प्रावधानों का वर्तमान में पुनरीक्षण किया जा रहा है। प्रावधानों के अनुसार, किसी भी अपशिष्ट के समुद्री जल में क्षेपण के पूर्व उसके प्रभावों का गहन मूल्यांकन अनिवार्य है। नये सम्मेलन के आधार पर समुद्र में भष्मीकरण द्वारा प्राप्त अपशिष्टों के क्षेपण को पूर्णत: प्रतिबंधित कर दिया गया है। साथ ही, क्षेपण द्वारा होने वाले समुद्री प्रदूषण पर अंकुश लगाने के उद्देश्य से अन्तराष्ट्रीय तकनीकी सहयोग की अपेक्षा की गई है। सामान्यत: इस प्रोटोकोल के अनुपालन में प्रदूषक-भुगतान नियम (Polluter-pays Principle) को मान्य बनाया गया है।

यूरोपीय वन्य जीवन तथा प्राकृतिक निवास्य क्षेत्र संरक्षण सम्मेलन

वनीय वनस्पतियाँ तथा जीव जैविक तथा प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इन वनीय संसाधनों के ह्रास के संदर्भ में सितम्बर, 1979 में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसके प्रावधानों को 1 जून 1982 से प्रभावी बनाया गया है। सम्मेलन में निम्नांकित तथ्यों पर विशेष बल दिया गया था :

1. वनीय वनस्पतियों तथा जीवों के प्रति प्राकृतिक संस्कृति की भाँति व्यवहार।
2. वनस्पतियों तथा जीव जन्तुओं के संरक्षण की प्रक्रिया का राष्ट्रीय नीतियों में समावेश।
3. प्रवासी प्रजातियों सहित लुप्तप्राय तथा असुरक्षित प्रजातियों के संरक्षण पर विशेष बल।
4. प्रजातियों तथा उनके निवास्य क्षेत्र के संरक्षण से संबंधित शिक्षा एवं ज्ञान का प्रचार-प्रसार।
5. विभिन्न प्रजातियों के व्यवसाय पर प्रतिबंध।

विएना सम्मेलन (Vienna Convention)

विएना सम्मेलन का आयोजन 1985 में किया गया था, जिसका प्रमुख उद्देश्य मानव जनित गतिविधियों से उत्सर्जित होने वाले हानिकारक पदार्थों से ओजोन संस्तर की सुरक्षा करना था। साथ ही, सम्मेलन में यह भी तय किया गया कि वर्तमान में ओजोन परत के संरक्षण हेतु किये जा रहे वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रयासों को आगामी वर्षों में भी मूर्तरूप दिया जायेगा। अन्य तथ्यों के अतिरिक्त सम्मेलन में निम्नलिखित आयामों पर भी विशेष बल दिया गया :

1. मानव स्वास्थ्य तथा पर्यावरण की पराबैंगनी विकिरणों की अधिक मात्रा से रक्षा।
2. सहयोगपूर्ण अनुसंधान को प्रोत्साहन।
3. विकासशील देशों में तकनीक हस्तान्तरण पर बल।

इस सम्मेलन के पश्चात् 1987 में मान्ट्रियाल प्रोटोकॉल तथा लंदन संशोधन हेतु भी सम्मेलनों का आयोजन किया गया।

न्ट्रियाल प्रोटोकॉल (Montreal Protocol)

ं ओजोन क्षरण करने वाले पदार्थों पर नियंत्रण रखने के उद्देश्य से मान्ट्रियाल में एक सम्मेलन आयोजित किया गया था। न के माध्यम से ओजोन क्षरण के लिए उत्तरदायी पदार्थों की मात्रा कम तथा अन्ततः समाप्त करने के लिए समय सीमा त की गई। प्रोटोकॉल की सदस्यता ग्रहण नहीं करने वाले देशों से ओजोन क्षरण करने वाले पदार्थों के आयात को प्रतिबंधित या है। विकसित देशों द्वारा 1 जनवरी, 1994 से हैलोन तथा 1 जनवरी, 1996 से क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC) के उपयोग को कर दिया गया है। प्रोटोकॉल में विकासशील देशों को इस कार्य हेतु 1 जनवरी, 2010 तक की छूट दी गई है लेकिन कुछ रा यह कार्य नियत अवधि से पूर्व पूरा कर लिये जाने की आशा है। एक धूमीकारक के रूप में उपयोग में आने वाले मिथाईल ; के उत्पादन तथा उपयोग को विकसित देशों ने 1995 से प्रतिबंधित कर दिया है और 2010 तक इसके सभी प्रकार के प्रयोगों माप्त कर दिया जायेगा। जबकि विकासशील देशों ने मिथाईल ब्रोमाइड के 1995-98 के स्तर के आधार पर 2002 तक इसके को समाप्त करने का निर्णय लिया गया था। प्रोटोकॉल के सदस्य देशों द्वारा एक बहुपक्षीय कोष स्थापित किया गया था, ताकि शील देश नियंत्रण संबंधी प्रयासों को सफल बना सकें। इस कोष में धनराशि का आवंटन विकसित देशों द्वारा किया जाता है। ोष के प्रबंधन हेतु मान्ट्रियाल स्थित सचिवालय की सहायता से 14 सदस्यीय कार्यकारिणी समिति उत्तरदायी है। इस कोष से त गतिविधियां संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम, तथा विश्व बैंक द्वारा क्रियान्वित की जाती हैं। वेकासशील देशों को प्रोटोकॉल की सदस्यता प्राप्त है तथा ओजोन क्षरण करने वाले पदार्थों की प्रति व्यक्ति खपत 0.3 किलोग्राम म है, उनको ही इस कोष से वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है ताकि वे ऐसे पदार्थों के उन्मूलन से संबंधित कार्यक्रमों मुचित क्रियान्वयन कर सकें। कोष की सहायता के अन्तर्गत तकनीकी सहायता, नई तकनीकों से संबंधित सूचना, प्रशिक्षण एवं 1 को भी सम्मिलित किया गया है।

रियो घोषणापत्र (Rio Declaration)

त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन (United Nations Conference on Environment and Development, UNCED) का जन 1992 में रियो डी जेनेरियो में किया गया था। यह सम्मेलन रियो घोषणापत्र के रूप में लोकप्रिय है। इसे पृथ्वी सम्मेलन भी जाता है। इस घोषणापत्र में वर्णित तथ्यों में निम्नलिखित प्रमुख हैं :

पर्यावरण तथा विकास के क्षेत्र में विश्वव्यापी सहयोग का सुनिश्चितीकरण।

पृथ्वी की पारिस्थितिकी के समन्वय तथा स्वास्थ्य संरक्षण, सुरक्षा एवं पुनर्स्थापना को सुनिश्चित करने की व्यवस्था।

निर्धनता उन्मूलन तथा सतत विकास हेतु प्रभावी प्रयास।

पर्यावरण की रक्षा के प्रयासों को त्वरित गति प्रदान करने के उद्देश्य से जन भागीदारी में वृद्धि।

पर्यावरण संबंधी वैधानिक प्रावधानों का क्रियान्वयन।

विभिन्न गतिविधियों हेतु एक राष्ट्रीय यंत्र के रूप में पर्यावरणीय प्रभावों का मूल्यांकन।

पर्यावरणीय प्रबंधन तथा विकास में महिलाओं की पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करने पर विशेष बल।

नैरोबी घोषणापत्र (Nairobi Declaration)

97 के नैरोबी घोषणापत्र द्वारा संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम को पर्यावरण के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र की सदस्य देशों द्वारा सर्वाधिक त्वपूर्ण संस्था के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। निम्नांकित पहलुओं पर घोषणा पत्र में विशेष बल दिया गया है:

पर्यावरण संबंधी नियमों तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के निष्पादन की प्रक्रिया का सुदृढ़ीकरण तथा सहयोगपूर्ण कार्यवाही को प्रोत्साहन।

पर्यावरण की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण तथा वैश्विक एवं क्षेत्रीय प्रवृत्ति का मूल्यांकन।

अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण के अधिनियमों की प्रगति को प्रश्रय।

4. पर्यावरणीय जागरुकता को प्रोत्साहन तथा समाज के सभी क्षेत्रों के मध्य प्रभावशाली सहयोग को सुगम बनाने हेतु प्रयास।
5. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संबंधी गतिविधियों का समन्वय।

क्योटो सम्मेलन (Kyoto Conference)

हरितगृह गैसों के प्रभाव पर बल देते हुए दिसम्बर 1997 में क्योटो सम्मेलन का आयोजन किया गया था जिसमें निम्नलिखित छः गैसों को हरितगृह प्रभाव उत्पन्न करने वाली गैसों के रूप में मान्यता प्रदान की गई :

1. कार्बन डायक्साइड (Carbondioxide, CO_2)
2. मिथेन (Methane, CH_4)
3. नाइट्रस ऑक्साइड (Nitrous Oxide, N_2O)
4. हाइड्रोफ्लोरो कार्बन (Hydrofluorocarbon, HFC)
5. परफ्लोरोकार्बन (Perfluorocarbon, PFC)
6. सल्फर हेक्साफ्लोराइड (SF_6)

औद्योगिक देशों में हरित गृह गैसों के उत्सर्जन की मात्रा को नियंत्रित करने के लिए लक्ष्य निर्धारित करने का कार्य संयुक्त राष्ट्र जलवायवीय परिवर्तन सम्मेलन प्रारूप (United Nations Framework Convention on Climatic Change) द्वारा क्योटो प्रोटोकॉल की सहायता से किया जाता है। प्रोटोकॉल 16 मार्च 1995 को हस्ताक्षर के लिए रखा गया था। वैश्विक स्तर पर सतत विकास को प्रोत्साहित करने के लिए क्योटो प्रोटोकॉल तकनीकी एवं आर्थिक प्रक्रिया के माध्यम से उत्सर्जन में कमी लाने तथा तकनीकी हस्तान्तरण का सुअवसर प्रदान करता है। इस रणनीति के तहत निम्नांकित तथ्यों पर बल दिया गया है:

1. विकाशील देश किसी कटौती के लिए प्रतिबद्धता को मानने के लिए बाध्य नहीं है।
2. उत्सर्जन घटाने के नियम की अवहेलना की स्थिति में जुर्माने का निर्धारण किया जाना बाकी है।
3. न्यूनतम 55 देशों द्वारा हस्ताक्षर किये जाने के उपरांत ही प्रोटोकॉल को प्रभावी बनाया जा सकता है।

हाल ही में अमेरिका द्वारा प्रोटोकॉल के प्रावधानों को नहीं मानने का निर्णय लिया गया है। अमेरिका के इस निर्णय के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विवाद उत्पन्न हो गये हैं। विशेष रूप से विकासशील देशों ने इस संबंध में गंभीर चिन्ता व्यक्त की है। वस्तुत: हरित गृह गैसों के कुल उत्सर्जन का 25 प्रतिशत अमेरिका द्वारा किया जाता है। अमेरिकी अधिकारियों के अनुसार, सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश, भारत तथा चीन प्रोटोकॉल के प्रावधानों का अनुपालन करने के लिए बाध्य नहीं हैं, जिसके फलस्वरूप अमेरिकी अर्थव्यवस्था पर इसके व्यापक कुप्रभाव पड़ने की आशंका है। इस कारण अमेरिका ने प्रोटोकॉल को पक्षपातपूर्ण तथा वैश्विक जलवायवीय परिवर्तनों के संदर्भ में अप्रभावी कहा है। वायु की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए अमेरिका द्वारा एक व्यापक ऊर्जा नीति का क्रियान्वयन किया जाता है। इसके अतिरिक्त, सल्फर डायक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड तथा पारे के उत्सर्जन को कम करने के लिए ऊर्जा संयंत्रों द्वारा एक बहुप्रदूषण रणनीति का अनुपालन किया जाता है। इस आधार पर अमेरिका ने कार्बनडायक्साइड के उत्सर्जन को कम करने की अनिवार्यता की नीति का पालन नहीं करने का निर्णय किया है। अमेरिका के स्वच्छ वायु अधिनियम (Clean Air Act) के तहत कार्बनडायक्साइड को प्रदूषक नहीं बताया गया है लेकिन अमेरिका वैश्विक स्तर पर होने वाले जलवायवीय परिवर्तनों, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, बाजार-व्यवस्था आदि से संबंधित विषयों का अवलोकन कर हरित गृह गैसों के प्रभावों के अध्ययन के लिए तत्पर है।

5 जून, 2002 को बुश प्रशासन द्वारा मानवीय गतिविधियों से हरित गृह प्रभाव के उत्पन्न होने के संबंध में स्वीकारोक्ति प्रकट की गई थी। प्रशासन ने अमेरिका के पर्यावरण पर पड़ने वाले ऐसे प्रभावों के संबंध में भी स्पष्ट विचार व्यक्त किये हैं। पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी द्वारा जारी अमेरिकी जलवायु कार्य रिपोर्ट, 2002 में कहा गया है कि हरित गृह प्रभाव के लिए मानवीय गतिविधियां मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं। इस स्थिति में कई पारिस्थितिकी तंत्रों के लुप्त हो जाने की आशंका है।

इस बीच जापान ने 4 जून, 2002 को क्योटो प्रोटोकॉल को अनुमोदित किया है तथा कार्बन डाइआक्साइड के उत्सर्जन को 6 प्रतिशत

म करने का भी निर्णय लिया है। इसी प्रकार रूस ने भी वर्ष 2004 में प्रोटोकॉल का अनुमोदन कर दिया है।

माल्मो घोषणापत्र (Malmo Declaration)

थम वैश्विक मंत्रीस्तरीय पर्यावरण फोरम सम्मेलन का आयोजन मई 2000 में स्वीडेन के माल्मो में आयोजित किया गया था। सम्मेलन घोषणापत्र में स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि पर्यावरण की सुरक्षा के संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई प्रयास किये गये हैं, तथापि र्यावरण तथा प्राकृतिक संसाधनों का निम्नीकरण चिन्तनीय दर से हो रहा है। घोषणापत्र में व्यापार एवं पर्यावरण के संतुलन तथा मन्वय के लिए प्रयास करने पर विशेष बल दिया गया है। वर्तमान वैश्विक अर्थव्यवस्था में उदारीकरण के संदर्भ में यह अत्यन्त ावश्यक है। इसके अतिरिक्त, सम्मेलन में पर्यावरण के क्षेत्र में निजी क्षेत्र की वृहत भूमिका, सामाजिक व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण तथा न भागीदारी के लिए भी विशेष प्रयास करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। साथ ही, मीडिया की पर्यावरण संरक्षण में मिकों के संदर्भ में घोषणा पत्र में जागरुकता में वृद्धि तथा समाज में पर्यावरणीय मूल्यों के संरक्षण के लिए मीडिया को उत्तरदायी नाने पर भी ध्यान दिया गया है।

इन्फोटेरा (Infoterra-2000)

र्यावरण सूचना के समुचित अभिगमन के लिए सितम्बर 2000 में डबलिन में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के तत्वावधान में एक शिवक सम्मेलन आयोजित किया गया था। इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण तथा सतत विकास सुनिश्चित करने के नए आवश्यक पर्यावरणीय सूचनाओं के अभिगमन में वृद्धि करने के लिए प्रयास करना था। इसके अतिरिक्त, सम्मेलन में निम्नांकित थ्यों पर भी प्रकाश डाला गया:

- पर्यावरणीय सूचना की परिभाषा।
- उपभोक्ता समूह तथा सूचना की उपलब्धता करने वालों की पहचान।
- पूर्ति पक्ष की ओर से संस्था संबंधी पदाधारियों के मध्य नेटवर्क की स्थापना।
- सूचना सेवा हेतु आवश्यक आधारभूत संरचना का विकास।
- सेवा को प्रोत्साहन तथा उसका मूल्यांकन।

पृथ्वी सम्मेलन, 2002 (Earth Summit, 2002)

क्षिण अफ्रीका में जोहानसबर्ग में 26 अगस्त से 4 सितम्बर, 2002 तक आयोजित विश्व सतत विकास सम्मेलन ने विकासशील शों को न केवल भूमंडलीकरण के कुप्रभावों पर चर्चा बल्कि पारिस्थितिकी, पर्यावरण तथा सामाजार्थिक एवं सांस्कृतिक आयामों के न्तरसंबंधों की व्याख्या का अवसर भी प्रदान किया। चूंकि सतत विकास की अवधारणा में ऐसे सभी आयाम अन्तर्निहित हैं, अत: भी राष्ट्रों को एकजुट होर सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करने की आवश्यकता है। जोहानसबर्ग पृथ्वी सम्मेलन के विभिन्न पक्षों पर चर्चा करने के पूर्व यहाँ वर्ष 1992 के रियो डी जेनेरो, ब्राजील में आयोजित प्रथम पृथ्वी सम्मेलन के कुछ महत्वपूर्ण पक्षों को समझना अनिवार्य है। रियो सम्मेलन में वस्तुत: विकसित देशों ने पर्यावरण की वैश्विक समस्याओं के निराकरण के लिए संकल्प लिया था। सतत विकास सुनिश्चित करने के लिए सम्मेलन में गरीबी उपशमन, लैंगिक समानता, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण आदि कार्यक्रमों के क्रियान्वयन पर विशिष्ट बल दिया था। साथ ही, ऐसे कार्यक्रमों के लिए कोष की उपलब्धता के संबंध में भी सम्मेलन में गहन चर्चा की गई थी और यह भी स्पष्ट किया था कि सतत विकास के लक्ष्य की प्राप्ति विकास के बहुपक्षीय आयामों जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, से ही संभव है। इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (United Nations Environment Programme, UNEP) ने वर्ष 2000 की वैश्विक आर्थिक रिपोर्ट (Global Economic Outlook, GEO) में स्पष्ट उल्लेख किया है कि गरीबी विश्व की समस्याओं में सर्वोपरि है। लेकिन अब तक इस दिशा में विशेष सफलता प्राप्त नहीं की जा सकी है। इस कार्य के लिए विश्व स्तर पर बड़ी संख्या में विधान बनाये गये हैं लेकिन अपेक्षाकृत प्रगति नहीं की जा सकी। इसके परिणामस्वरूप पर्यावरण संरक्षण के अधिकांश कार्यक्रमों का सफल क्रियान्वयन नहीं हो सका। वर्तमान में विकासशील देशों द्वारा लिया जाने वाला सर्वाधिक

महत्वपूर्ण कदम सतत विकास के विभिन्न कार्यक्रमों में निवेश करना है। इस प्रकार का निवेश वस्तुत: निदानात्मक सिद्ध हो रहा है। रियो सम्मेलन के दस वर्षों के बाद यह विचार व्यक्त किये गये हैं कि सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए बेहतर प्रशासन की आवश्यकता है। ऐसे कई महत्वपूर्ण लक्ष्यों का उल्लेख नीचे किया गया है :

1. 1990-2015 के बीच गरीबी के स्तर में 50 प्रतिशत की कमी।
2. प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में नामांकन में लैंगिक विभेद की समाप्ति कर वर्ष 2005 तक लैंगिक समानता लाने का प्रयास।
3. 1990-2015 के बीच मातृ मृत्यु दर में तीन चौथाई कमी का लक्ष्य।
4. 1990-2015 के बीच शिशु मृत्यु दर और बाल मृत्यु दर में दो तिहाई कमी का लक्ष्य।
5. वर्ष 2015 तक प्रत्येक स्तर पर स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता।
6. वर्ष 2015 तक अब तक हुये पर्यावरण निम्नीकरण की भरपाई करने के उद्देश्य से वर्ष 2005 तक सतत विकास की राष्ट्रीय रणनीतियों का प्रभावकारी क्रियान्वयन।

उपरोक्त लक्ष्यों के विभिन्न पक्षों पर जोहानसबर्ग सम्मेलन में गहन चर्चा की गई थी। लेकिन पूर्व की भांति इस सम्मेलन में भी विकसित और विकासशील देशों के बीच विवाद उत्पन्न हो गये। अंतत: सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कई प्रमुख सिद्धांतों पर लगभग 200 देशों ने सहमति व्यक्त की। इस समझौते के तहत निम्नांकित तथ्यों को प्राथमिकता दी गई है:

1. वर्ष 2015 तक प्रति दिन 1 डालर से कम की आय वाली जनसंख्या के संबंध में विशिष्ट अध्ययन।
2. सतत विकास के लिए बेहतर प्रशासन की संकल्पना को मान्यता।
3. वर्ष 2005 तक आगामी पीढ़ी के लिए विशिष्ट रणनीतियों के माध्यम से संसाधनों का संरक्षण।
4. गरीबी उपशमन के उद्देश्य से एक एकता कोष की स्थापना।
5. जन्तुओं तथा पौधों की प्रजातियों के विलुप्त होने की दर में 2010 तक कमी।
6. मानवाधिकारों तथा धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के साथ-साथ स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं की उपलब्धता।
7. हानिकारक अपशिष्टों के बेहतर प्रबंधन पर बल।
8. वर्ष 2025 तक मत्स्य संसाधनों के संरक्षण का प्रयास।
9. पारितंत्र की रक्षा के लिए महासागरों तथा समुद्रों के महत्व की पहचान।
10. व्यापार और पर्यावरण संबंधी विषयों का प्रभावकारी प्रबंधन।

कोपेनहेगन सम्मेलन

यह सम्मेलन 7 से 18 दिसम्बर, 2009 बेलासेन्टर कोपेनहेगन में सम्पन्न हुआ। इसने 193 देशों के प्रतिनिधियों, 138 देशों के राष्ट्राध्यक्षयों, ने भाग लिया। यह सम्मेलन U.N. के द्वारा बुलाया गया था।

कोपेनहेगन सम्मेलन में विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों का संघर्ष ज्यादा उभर कर सामने आया। विकसित राष्ट्रों ने क्योटो में किये गए अपने वायदे को तोड़ने की भी घोषणा कर दी परंतु भारत, चीन, दक्षिण अफ्रिका एवं ब्राजील जैसे विकासशील राष्ट्रों के दबाव के पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका ने विकासशील राष्ट्रों को मदद देने की घोषणा की। इस मदद के अनुसार अगले 3 वर्षों में अमेरिका 30 बिलियन डॉलर विकासशील राष्ट्रों को जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर उपलब्ध कराएगा। यह राशि धीरे-धीरे बढ़ते हुए 2020 में 100 बिलियन डॉलर तक होगी। भारत सहित अन्य विकासशील राष्ट्रों ने भी कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन की मात्रा को घटाए जाने पर सहमति जतायी, जिसके अनुसार भारत वर्ष 2005 के स्तर से वर्ष 2020 तक में 20 से 25% उत्सर्जन कम कर सकेगा। चीन इन्हीं वर्षों के दौरान 40 से 45% की कमी लाएगा तो ब्राजील 38 वे 42% तथा दक्षिण अफ्रीका 34% की कमी लाएगी। परंतु कमी लाने की

ोषणा की बाध्यता नहीं होगी। अमेरिका ने जो मदद की घोषणा की है वह भी कानूनी बाध्यता में नहीं आती है परंतु अमेरिका, ा, जापान एवं यूरोपीयन यूनियन के देशों ने यह सहमति जतायी है कि ग्रीन तकनीक (हरित तकनीक) को हस्तान्तरित किये की आवश्यकता है। कनाडा ने पहल कर अपने मदद की घोषणा की है। परंतु निश्चित रूप से ऐसी घोषणाएं तब तक सफल होती हैं जब तक क्रियान्वयन के स्तर पर न आ जाएं।

डरबन जलवायु परिवर्तन सम्मेलन 2011

ही में, 28 नवम्बर से 10 दिसम्बर 2011 (कान्फ्रेंस ऑफ पार्टीज़ 17) को आयोजित डरबन जलवायु परिवर्तन सम्मेलन, जलवायु र्तन वार्ताओं में एक महत्वपूर्ण अग्रगामी कदम है। डरबन के निष्कर्षों ने बाली कार्य योजना की उद्देश्य की पूर्ति हेतु महत्वपूर्ण ान दिया है क्योंकि उन्होंने क्योटो प्रोटोकाल के द्वितीय प्रतिबद्धता अवधि को सुस्थापित किया और उनसे हरित जलवायु निधि सीएफ) प्रौद्योगिकी तंत्र (टीएम) और अनुकूलन फ्रेमवर्क संबंधी कुछेक प्रमुख कानकुन करार अमल में आए हैं। डरबन निष्कर्षो श्विक जलवायु परिवर्तन व्यवस्था हेतु 2020 के उपरांत की व्यवस्थाओं पर की गई परिचर्चाओं के लिए एक अवसर भी उपलब्ध ा है जिसके लिए डरबन फ्रेमवर्क की शुरूआत की गई है। तथापि भारत और अन्य विकासशील देश डरबन में भारी दबाव में तो भी भारत ने यह सुनिश्चित करने में अग्रणी भूमिका निभाई कि नई व्यवस्थाओं को कन्वेंशन में सुदृढ़ता से शामिल किया और ये 'सर्वमान्य परन्तु विभेदक उत्तरदायित्व' और 'समदृष्टि' के सिद्धांतों पर आधारित हों। कानकुन में सभी पक्षों ने जलवायु र्तन विचार विमर्श के लिए जिस सर्वसम्मति आधारित बहुपक्षीय व्यवस्था के प्रति आस्था पुनः व्यक्त की थी, डरबन में उसकी पुष्टि हुई। कानकून व्यवस्थाओं के विपरीत, जिन्हें बोलिविया द्वारा स्पष्ट रूप से अस्वीकृत किए जाने के बावजूद अंगीकार किया था, डरबन के निष्कर्षों को सर्वसम्मति से अंगीकार किया गया। डरबन ने जलवायु परिवर्तन से सम्बन्धित विषयों पर निर्णय करने बहुपक्षीय मंच के रूप में यूएनएफसीसीसी वार्ताओं की सर्वोच्चता को पुनःस्थापित किया है।

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2006 (National Environment Policy 2006)

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2006 में यह कहा गया है कि पर्यावरण के समक्ष जो सबसे बड़ी चुनौती है वह पर्यावरण निम्नीकरण गरीबी के आपसी संबंधों के कारण उत्पन्न हुई है। यह चुनौती पर्यावरणीय संसाधनों जैसे- भूमि, जल, वायु आदि की मात्रा में वाली कमी से भी संबंधित है। तेजी से बढ़ने वाली जनसंख्या मानव और पारितंत्र के संबंधों पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। संख्या में वृद्धि उपभोग की प्रवृत्तियों में परिवर्तन कर देती है तथा इसका प्रभाव गहन कृषि तथा अनियोजित नगरीकरण के रूप में ट रूप से दिखाई देता है।

ावरण निम्नीकरण कदाचित उन महत्वपूर्ण कारकों में से एक है जो गरीबी के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। पर्यावरण नीकरण का अर्थ एक ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें मृदा की उर्वरता, जल, वायु, वन, वन्य जीवन तथा कुल मिलाकर किसी क्षेत्र की रिस्थितिकी में गुणात्मक तथा मात्रात्मक ह्रास होता है।

रिस्थितिकी की गुणवत्ता में होने वाली कमी मानव स्वास्थ्य के लिए घातक हो सकती है। आंकड़ों के अनुसार, लगभग 20% स्वास्थ्य ंधी समस्याओं के कारण यही है। भारत सहित उन देशों में भी इस प्रकार की समस्या का फैलाव तेजी से होता है जहां आर्थिक ासंरचनाएं पर्याप्त नहीं हैं तथा संस्थागत सुविधाओं का अभाव है। इसके अतिरिक्त, ऐसे देशों में शिक्षा और जनजागरूकता भी पर्याप्त ीं होती, इस कारण पर्यावरण के प्रति लोगों को संवेदनशील बनाने में बड़ी समस्याएं आती हैं।

ल के दशकों में विश्व स्तर पर उभरने वाली पर्यावरणीय समस्याओं के कारणों में समतापमंडलीय ओजोन की सांद्रता में कमी, जैव विधता का ह्रास तथा जलवायवीय परिवर्तन प्रमुख कहे जा सकते हैं। इसी पृष्ठभूमि में पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के लिए ट्रीय पर्यावरण नीति, 2006 घोषित की गई है। नीति के उद्देश्यों में शामिल निम्नांकित तत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं:-

महत्वपूर्ण पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण:- उन महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय प्रणालियों, संसाधनों तथा प्राकृतिक व मानव निर्मित मूल्यवान धरोहरों की सुरक्षा तथा संरक्षण करना जो जीवन रक्षक आजीविका/आर्थिक तथा मानव कल्याण की व्यापक संकल्पना के लिए अनिवार्य है।

2. **वर्तमान पीढ़ी में समता: गरीबों के लिए आजीविका सुरक्षा:-** समाज के सभी तबकों के लिए पर्यावरणीय संसाधनों तक पहुंच तथा गुणवत्ता की समानता सुनिश्चित करना तथा विशेष तौर पर यह सुनिश्चित करना कि निर्धन समुदाय जो आजीविका के लिए सर्वाधिक रूप से पर्यावरणीय संसाधनों पर निर्भर है, उन्हें ये संसाधन अवश्य मिलें।

3. **पीढ़ियों में समता:-** वर्तमान और भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं तथा अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए पर्यावरणीय संसाधनों का न्यायोचित प्रयोग सुनिश्चित करना।

4. **आर्थिक तथा सामाजिक विकास में पर्यावरणीय सरोकारों का एकीकरण:-** आर्थिक तथा सामाजिक विकास के उद्देश्य से पर्यावरणीय सरोकारों को योजनाओं, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं के रूप में एकीकृत करना।

5. **पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग में दक्षता:-** प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभावों को कम करने के लिए आर्थिक उत्पादन की प्रति इकाई में प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग में कमी करके उनका सही प्रयोग सुनिश्चित करना।

6. **पर्यावरणीय संचालन:-** पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग के प्रबंधन तथा विनियमन के संबंध में बेहतर संचालन (पारदर्शिता, न्यायोचितता, जवाबदेही, समय तथा लागतों में कमी, सहभागिता तथा नियंत्रण की स्वतंत्रता) के सिद्धांत को लागू करना।

7. **पर्यावरण संरक्षण के लिए संसाधनों में बढ़ोतरी:-** स्थानीय समुदायों, सार्वजनिक एजेंसियों शैक्षणिक और अनुसंधान समुदाय, निवेशकों और बहुपक्षीय और द्विपक्षीय विकास साझेदारों के मध्य परस्पर लाभकारी सहभागिताओं के माध्यम से पर्यावरणीय संरक्षण हेतु वित्त, प्रौद्योगिकी, प्रबंधन कौशल, पारंपरिक ज्ञान तथा सामाजिक पूंजी आदि को शामिल करते हुए अधिक संसाधन प्राप्ति सुनिश्चित करना।

यह नीति इस तथ्य को पहचान कर तैयार की गई है कि केवल वही विकास अविच्छिन्न हो सकता है जिसमें पारिस्थितिकीय दबावों और न्याय की अनिवार्यताओं पर भी ध्यान दिया गया हो। निम्नलिखित सिद्धांत नीति संबंधी विभिन्न कारकों की गतिविधियों में मार्गदर्शन कर सकते हैं। इनमें से प्रत्येक सिद्धांत में नीति उद्घोषणाओं, विधिशास्त्र, अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय कानून या अंतर्राष्ट्रीय सरकारी पद्धतियों में सुस्थापित वंश परंपरा विद्यमान है।

1. **सभी मानव अविच्छिन विकास सरोकारों के केंद्र बिंदु हैं:-** सभी मानव अविच्छिन विकास सरोकारों के केंद्र बिंदु हैं। उन्हें प्रकृति के साथ तालमेल रखते हुए स्वस्थ और गतिशील जीवन जीने का हक है।

2. **विकास का अधिकार:-** वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों की विकासात्मक तथा पर्यावरणीय आवश्यकताओं की समान रूप से पूर्ति के लिए विकास पर अधिकार अवश्य ही दिया जाना चाहिए।

3. **पर्यावरणीय सुरक्षा विकास प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है:-** अविच्छिन विकास के लिए पर्यावरणीय सुरक्षा विकास प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग होगी तथा इसे इससे अलग करके नहीं रखा जा सकता।

4. **एहतियाती दृष्टिकोण :-** जहां प्रमुख पर्यावरणीय संसाधनों को गंभीर अथवा अपूरणीय क्षति के वास्तविक खतरे हों, वहां पर्यावरणीय अवक्रमण के निवारण के लिए लागत प्रभावी उपायों के आस्थगन के लिए पूर्ण वैज्ञानिक सुनिश्चितता की कमी को कारण नहीं बनाया जाएगा।

5. **आर्थिक क्षमता:-** इस सिद्धांत के लिए आवश्यक है कि पर्यावरणीय संसाधनों की सेवाओं को आर्थिक महत्व प्रदान किया जाए तथा वैकल्पिक कार्य विधियों का विश्लेषण करते समय इसे अन्य वस्तुओं और सेवाओं के आर्थिक महत्व के बराबर महत्व दिया जाए।

इस सिद्धांत के अन्य प्रभाव निम्नलिखित हैं -

(i) **प्रदूषणकर्ता द्वारा क्षतिपूर्ति:-** किसी एक पक्ष की उत्पादन तथा उपभोग संबंधी गतिविधियों का प्रभाव उन तीसरे पक्षों पर हो सकता है जिनका मूल गतिविधि के साथ प्रत्यक्ष तौर पर आर्थिक संबंध नहीं है। ऐसे प्रभाव को बहिर्भाविता कहते हैं। यदि बहिर्भाविता की लागतों (या लाभों) का दायित्व मूल क्रिया के लिए उत्तरदायी पक्ष पर नहीं पड़ता तो उत्पादन अथवा उपभोग तथा बहिर्भाविता के संपूर्ण क्रम का परिणामी स्तर अपर्याप्त होगा। इस प्रकार की स्थिति में बहिर्भाविता के दोषी को

इसकी लागत (या लाभ) के वहन के लिए उत्तरदायी बनाकर आर्थिक क्षमता को पुन: बहाल किया जाना चाहिए। इस नीति के अंतर्गत प्रोत्साहन आधारित नीतिगत साधनों का उपयोग करते हुए पर्यावरणीय लागतों के आंतरिकीकरण को बढ़ावा दिया जाएगा जिसमें इस विचार पर ध्यान में रखा जाएगा कि प्रदूषणकर्ता सार्वजनिक हितों का पूरा ध्यान रखते हुए तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और निवेश के स्वरूप को बिगाड़े बिन सिद्धांत तौर पर प्रदूषण की लागत को स्वयं वहन करेगा।

(ii) **लागत न्यूनीकरण:-** जहां कहीं किसी प्रक्रिया के पर्यावरणीय लाभों को विधियों या अवधारणात्मक कारणों की वजह से आर्थिक मूल्य के लिए आरोपित नहीं किया जा सकता हो, वहां किसी भी मामले में लाभ प्राप्त करने की आर्थिक लागतें कम की जानी चाहिए।

अतुल्य महत्व की हस्तियां:- मानव-स्वास्थ्य, जीवन तथा पर्यावरण की दृष्टि से जीवन रक्षक प्रणालियों को होने वाले जोखिमों को, जो बड़ी संख्या में व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित कर सकते हैं, अतुल्य माना जा सकता है। उनके संरक्षण के लिए सामाजिक संसाधनों के आवंटन में प्रत्यक्ष अथवा तात्कालिक आर्थिक लाभों पर विचार किए बिना प्राथमिकता दी जाएगी।

समता:- समता अथवा न्याय के मुख्य सिद्धांत में यह अपेक्षा की गई है कि मानवों के बीच के असंगत मतभेदों के आधार पर उनके साथ अलग-अलग तरह से व्यवहार नहीं किया जा सकता है। इस नीति के संदर्भ में समता का आशय हकदारियों से संबंधित तथा पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग के संदर्भ में निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में संबंधित जनता की भागीदारी से है।

वैधानिक उत्तरदायित्व:- मौजूदा पर्यावरणीय शिकायत निस्तारण तंत्र प्रमुख रूप से आपराधिक उत्तरदायिता सिद्धांतों पर आधारित है जो कि पूरी तरह प्रभावी साबित नहीं हुआ है और इसमें सुधार करने की आवश्यकता है।

पर्यावरणीय क्षति से संबंधित नागरिक उत्तरदायित्व पर्यावरण की दृष्टि से हानिप्रद क्रियाकलापों को रोकेगी और पर्यावरण क्षति के शिकार लोगों की प्रतिपूर्ति करेगी।

सार्वजनिक न्यास (पब्लिक ट्रस्ट) का सिद्धांत:- राज्य को सभी प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त नहीं है बल्कि वह मात्र उन संसाधनों का एक ट्रस्टी है। ये संसाधन सार्वजनिक उपयोग और मनोरंजन के लिए है, लेकिन इनका उपयोग बड़ी संख्या में लोगों के न्यायसंगत हितों की रक्षा अथवा रणनीतिक राष्ट्रीय हितों के मामलों के लिए आवश्यक शर्तों को पूरा करने के अधीन है। यह व्याख्या उच्चतम न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 21 के अर्थ निर्णय के दौरान की गई थी।

पर्यावरणीय मानकों का निर्धारण:- पर्यावरणीय मानक जहां लागू हों, वहां उन्हें आर्थिक और सामाजिक विकास की स्थिति को परिलक्षित करने में सक्षम होना चाहिए। किसी एक समाज या संदर्भ में अपनाए गए मानक आर्थिक और सामाजिक रूप में अस्वीकार्य हो सकते हैं यदि उन्हें अन्य समाज या संदर्भ में विभेद किए बिना लागू किया जाए। पर्यावरणीय मानकों को निर्धारित करने में अनेक बातों पर ध्यान देना होगा, जैसे मानव स्वास्थ्य के लिए जोखिम, अन्य पर्यावरणीय हस्तियों को जोखिम, तकनीकी व्यवहार्यता, अनुपालन की लागत तथा रणनीतिक मामले आदि।

जैव विविधता (Biodiversity)

सतत लाभ प्रदान करने के लिए अपनी विविधताओं सहित सभी प्रकार के जैव संसाधन पूँजी निर्माण की प्रक्रिया का गठन करते तीव्र गति से वृद्धि करने वाली तकनीकी सभ्यता ने इन संसाधनों के लिए कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं, जिनके कारण व प्रजाति पर भी व्यापक दुष्प्रभाव परिलक्षित हो रहे हैं। जैव विविधता, पारिस्थितिकी तंत्र की जटिलता का भी प्रतिनिधित्व करती जहाँ जीव निवास करते हैं। इस संदर्भ में जैव विविधता का संरक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है।

विरणीय निम्नीकरण के अतिरेक ने जैव विविधता के ह्रास को निम्नतम स्तर पर ला दिया है। इस कारण न केवल कई प्रजातियों विलुप्त होने की आशंका प्रबल हो गई है, अपितु आनुवांशिक अपरदन (Gene Erosion) भी अवश्यमभावी हो गया है।

प्रजातीय विविधता (Species Diversity):- वृहतम स्तर पर जीवों में पाई जाने वाली विविधता को प्रजातीय विविधता कहते हैं। दूसरे शब्दों में, इस प्रकार की विविधता में सूक्ष्म जीवों से मानव प्रजाति तक के जीवों को सम्मिलित किया गया है।

2. **पारिस्थितिकीय विविधता** (Ecosystem Diversity):- पारितंत्र में पारिस्थितिकीय जटिलता के साथ जीवों की विविधता को पारिस्थितिकी विविधता कहते हैं। इस प्रकार की विविधता में सकारात्मक, नकारात्मक तथा उदासीन प्रकार के कार्यात्मक गुण पाये जाते हैं। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, पारिस्थितिकी विविधता किसी पारितंत्र के संरचनात्मक तथा कार्यात्मक अवयवों का प्रतिनिधित्व करती है।

3. **आनुवांशिक विविधता** (Genetic Diversity):- प्रत्येक जीव की पहचान उसकी आनुवांशिक संरचना के आधार पर होती है। यह संरचना जीव विशिष्ट होती है। दूसरे शब्दों में, आनुवांशिकता के आधार पर विविध जीवों को आनुवांशिक विविधता के तहत सम्मिलित किया जाता है।

आधुनिक विश्व में जैव विविधता के ह्रास के संदर्भ में विभिन्न स्तरों पर इसके संरक्षण हेतु प्रयास किये जा रहे हैं। भारत जैसे विकासशील देश में विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था के माध्यम से जैव विविधता संरक्षण किया जा सकता है। इस संदर्भ में संपूर्ण दक्षिण एशिया में सामुदायिक स्तर पर ऐसे प्रयास किये जा रहे हैं।

जैव विविधता की माप तथा मानचित्रीकरण (Mapping & Measuring Biodiversity)

क्षेत्र विशेष के गहन अध्ययन तथा प्रजातियों की भिन्नता की जानकारी हेतु हाल ही में लंदन स्थित नैचुरल हिस्ट्री म्यूजियम के पॉल विलियम्स, क्रिस हम्फ्रिज तथा डिक वेन राइट ने वर्ल्डमैप (World Map) नामक एक साफ्टवेयर का विकास किया है। इस साफ्टवेयर की सहायता से जैव विविधता के संदर्भ में किसी क्षेत्र का मानचित्रीकरण किया जा सकता है। वैज्ञानिकों के अनुसार, यह साफ्टवेयर प्रजातियों के पारिवारिक इतिहास की व्याख्या करने में भी सक्षम है।

वैज्ञानिकों ने इस संबंध में स्थान परिमिति को व्याख्यायित करते हुए कहा है कि एक या दो कोशिकाएँ अन्य कोशिकाओं में जैव विविधता के गुण विकसित करने में सफल होती हैं। इस साफ्टवेयर की सहायता से रंगीन मानचित्र बनाया जा सकता है। मानचित्रीकरण के द्वारा प्रजातियों में जैव विविधता का सापेक्ष अध्ययन किया जा सकता है। यह कार्य विशेष रूप से स्तनधारियों, पक्षियों तथा पौधों के अध्ययन हेतु अत्यन्त लाभकारी है। जैव विविधता की माप हेतु निम्नलिखित तीन विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं:

1. **अल्फा विविधता** (Alpha Diversity):- किसी दिए हुए क्षेत्र में प्रजातियों की कुल संख्या उस क्षेत्र की अल्फा विविधता प्रदर्शित करती है। इस प्रक्रिया से यह भी स्पष्ट होता है कि उस क्षेत्र में जैव विविधता की प्रस्थिति क्या है। इस संकल्पना के आधार पर विभिन्न क्षेत्रें में जैव विविधताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

2. **बीटा विविधता** (Beta Diversity):- प्रजातियों की संख्या का ज्ञान हो जाने के उपरांत प्रजातियों की संरचना की पहचान की जाती है, जिसे बीटा विविधता कहते हैं। यह अध्ययन करने के पूर्व पर्यावरणीय तथा भौगोलिक कारकों की उपस्थिति का भी ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

3. **गामा विविधता** (Gamma Diversity):- किसी क्षेत्र में प्रजातियों के मध्य होने वाली अन्त:क्रिया का ज्ञान गामा विविधता से प्राप्त किया जाता है। यह अन्त:क्रिया भी पर्यावरणीय या भौगोलिक कारकों पर निर्भर करती है।

जैव विविधता सम्मेलन (Convention on Biodiversity)

1992 के रियो सम्मेलन, जिसे पृथ्वी शिखर सम्मेलन, भी कहा जाता है, में एक वैधानिक रूप से बाध्य समझौते का अनुमोदन किया गया था। इसे जैव विविधता सम्मेलन घोषणा पत्र कहते हैं। इसके प्रावधानों को दिसम्बर 1993 से प्रभावी बनाया गया है। प्रावधानों में संरक्षण तथा सतत विकास के सिद्धान्तों के अनुरूप जैव संसाधनों का परंपरागत विधियों द्वारा उपयोग तथा आनुवांशिक संसाधनों के संरक्षण को प्रोत्साहित करने पर बल दिया गया है। इस संबंध में नसाउ, बहमास में 1994 में आयोजित सदस्यों की प्रथम गोष्ठी में संगठनात्मक पहलुओं पर विमर्श किया गया था, जबकि दूसरी गोष्ठी जकार्ता, 1995 में जैव सुरक्षा के विभिन्न आयामों पर चर्चा की गई। जैव सुरक्षा प्रोटोकॉल को जैव विविधता सम्मेलन घोषणा पत्र के अनुच्छेद 19 के तहत इसका एक अभिन्न अंग बना दिया गया है। जीवित रूपान्तरित जीवों (Living Modified Organisms, LMO) के विकास हेतु जैव तकनीक के क्षेत्र में अनुसंधान कार्यों के लिए

जैव सुरक्षा संबंधी तथ्यों को प्राथमिकता देने का प्रावधान प्रोटोकॉल में किया गया है। भारत में जैव तकनीक विभाग ने जैव सुरक्षा प्रोटोकॉल के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की है, तथा इस क्षेत्र में जागरूकता में वृद्धि तथा जन भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु प्रयासरत है।

इसके अतिरिक्त, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग ने कई समितियों का गठन किया है जिसकी सहायता से संस्थानों तथा राष्ट्रीय स्तर पर जैव तकनीक के क्षेत्र में जैव सुरक्षा के पहलुओं को समावेशित करने का प्रयास किया जा रहा है।

धारा 19 के अन्तर्गत ब्ठक का एक भाग ठपवेंमिजल च्तवजवबवस को बना दिया गया है और इस उद्देश्य के लिए इस बात पर सहमति दी गई है कि जैव तकनीक के अधिकतम लाभ सुनिश्चित किए जाएं। प्रोटोकॉल उन धाराओं पर बल देता है जिनका संबंध सुधारे हुए (LMOs) जीवों के अनुसंधान तथा विकास के लिए जैव तकनीकी में सुरक्षा से है। जहां तक भारत में जैव-तकनीक के विभाग का प्रश्न है, इसने Biosafety Protocol के समक्ष सकारात्मक ढंग से प्रतिक्रिया प्रकट की है और यह लोगों के मध्य जागरूकता बढ़ाने तथा उनकी सम्पूर्ण भागीदारी भी सुनिश्चित करने का प्रयास करता रहता है। आगे चलकर, भारत में विज्ञान तथा तकनीक विभाग ने विभिन्न समितियां स्थापित की हैं ताकि संस्थात्मक तथा राष्ट्रीय, दोनों ही स्तरों पर जैव-तकनीक विज्ञान सुरक्षा पर नियंत्रण तथा प्रबंधन सुनिश्चित किया जा सके।

जैव विविधता का संरक्षण (Conservation of Biodiversity)

पारितंत्र के सतत विकास तथा जैव संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग के दृष्टिकोण से जैव विविधता के संरक्षण की अनिवार्यता है। विगत दो दशकों में जैव संसाधनों के ह्रास की दर में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। मानव द्वारा जैव विविधता संरक्षण किये जाने के निम्नांकित महत्वपूर्ण कारण हैं:

1. विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों की प्राप्ति।
2. कृषि तथा औषधीय निर्माण विकास।
3. भूमि संसाधनों का समुचित उपयोग।
4. पारिस्थितिकी पुनर्स्थापना।
5. बेहतर तकनीकी प्रत्याशाएँ।

जैव तकनीक के क्षेत्र में हाल की उपलब्धियों ने बेहतर कृषि की संभावनाओं को प्रबल किया है। प्रत्येक देश को अपने जैव संसाधनों के दोहन का अधिकार प्राप्त है लेकिन इसके साथ-साथ ऐसे संसाधनों का संरक्षण भी राष्ट्रों का प्रमुख दायित्व है। जैव विविधता संरक्षण हेतु निम्नांकित प्रयास किये जा सकते हैं :

1. जैव विविधता संरक्षण तथा राष्ट्रीय विकास की रणनीतियों का एकीकरण।
2. अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रमों से प्राप्त लाभ की न्यायपूर्ण तथा समान भागीदारी तथा जैव सुरक्षा के महत्व को ध्यान में रखते हुए, जैव संसाधनों का दोहन।
3. जैव संसाधनों के सतत अनुप्रयोग हेतु महिलाओं सहित जन भागीदारी पर विशेष बल।
4. राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर सहयोग।
5. क्षतिग्रस्त पारितंत्र की पुनर्स्थापना तथा लुप्तप्राय प्रजातियों का पुनर्वास।
6. इन-सीटू तथा एक्स-सीटू संरक्षण के द्वारा जैव संसाधनों का सतत उपयोग।
7. मैंग्रोव (गरान वनस्पति), प्रवाल भित्तियों तथा ज्वारनदमुखों जैसे तटीय पारितंत्रों के इन-सीटू संरक्षण हेतु विशेष प्रयास।
8. जीन बैंकों के मूल्यांकन, प्रतिदर्श संकलन, सर्वेक्षण तथा रख-रखाव हेतु प्रयास।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन ने यह संभावना व्यक्त की थी कि वर्ष 1993 तथा 2000 के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जैव विविधता संरक्षण पर होने वाला व्यय 3.5 अरब डालर का हो जायेगा। लेकिन उपरोक्त प्रयासों पर होने वाला व्यय विभिन्न राष्ट्रों की आवश्यकताओं तथा क्षमताओं पर निर्भर करता है। सम्मेलन ने इस क्षेत्र में मानव संसाधन विकास एवं क्षमता निर्माण की प्रक्रियाओं के सुदृढ़ीकरण पर भी बल दिया है। जहां तक भारत का संबंध है, इसने प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तथा सतत उपयोग पर आयोजित किये गये अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लिया है। भारत ने जैव विविधता सम्मेलन घोषणापत्र पर 5 जून को हस्ताक्षर किया तथा 9 मई, 1994 से इसे प्रभावी बनाया गया है। इसके अतिरिक्त, मानव एवं जैवमंडल कार्यक्रम (Man and the Biosphere Programme, MAB) का क्रियान्वयन संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) की सहायता से किया जा रहा है। इस कार्यक्रम को भारत में 14 विभिन्न विषयों में विभक्त किया गया है तथा इसे वित्तीय सहायता वन एवं पर्यावरण मंत्रालय से प्राप्त होती है। 1972 में भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय मानव एवं जैवमंडल समिति का गठन किया गया था। यह समिति वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के अधीन एक परामर्शदात्री समिति के रूप में कार्यरत है। दूसरी ओर, राष्ट्रीय जैव विविधता रणनीति एवं कार्य योजना परियोजना (National Biodiversity Strategy and Action Plan Project, NBSAP) का क्रियान्वयन राष्ट्रीय स्तर पर जैव विविधता की संकल्पना के प्रचार-प्रसार हेतु किया जा रहा है लेकिन इस दिशा में सर्वाधिक वृहत चुनौती लक्ष्य प्राप्ति हेतु औपचारिक तथा अनौपचारिक क्षेत्रों के समन्वय की है। उक्त परियोजना का क्रियान्वयन अप्रैल 2000 में प्रारंभ किया गया था जिसका मुख्य उद्देश्य परामर्शी गोष्ठियों तथा कार्यशालाओं के आयोजन से जैव संसाधनों के सतत उपयोग तथा संरक्षण के प्रति सरकारी एजेंसियों, गैर सरकारी संगठनों, नागरिकों, वैज्ञानिकों, बुद्धिजीवियों तथा रक्षा सैनिकों को प्रेरित करना है। यह सरकार को एक राष्ट्रीय रणनीति के निर्धारण में भी सहायता प्रदान करेगा।

इसके अतिरिक्त, 1998 से जैव विविधता संरक्षण प्राथमिकीकरण परियोजना (Biodiversity Conservation Prioritisation Project, BCPP) का क्रियान्वयन किया जा रहा है जिसका प्रमुख उद्देश्य जैव विविधता संरक्षण हेतु प्राथमिकताओं का निर्धारण तथा इस आधार पर प्रजातियों, स्थानों एवं रणनीतियों की पहचान करना है। इस परियोजना का क्रियान्वयन जैविक तथा सामाजार्थिक मूल्यों के संदर्भ में किया जा रहा है। परियोजना के तहत कई लघु परियोजनाओं का क्रियान्वयन पूरा किया गया है। भारत में जैव विविधता संरक्षण से संबंधित अब तक का यह सर्वाधिक वृहत कार्यक्रम है।

जैव विविधता विधेयक (The Biodiversity Bill)

विश्व व्यापार संगठन के अधीन व्यापार संबद्ध बौद्धिक सम्पदा अधिकार (ट्रिप्स) समझौतों के प्रावधानों के अनुरूप एक अनुकूल पेटेन्ट नियम के निर्धारण अथवा जैव संसाधनों के लिए एक अद्वितीय प्रणाली विकसित करने के उद्देश्य से जैव विविधता अधिनियम 2002 प्रमुख है। साथ ही, भारत जैव विविधता सम्मेलन के प्रावधानों के प्रति भी वचनबद्ध है। अधिनियम की धारा 3 के तहत राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण को विदेशी कंपनियों या विदेशी साझा प्रतिष्ठानों को जैव संसाधन प्राप्त करने की अनुमति प्रदान करने का अधिकार सौंपा गया है। अधिनियम की धारा 2 (ख) के अन्तर्गत जैव संसाधनों को परिभाषित किया गया है। इसके अनुसार, जैव संसाधनों में पौधों, जन्तुओं या सूक्ष्म जीवों या उनके शारीरिक भागों, आनुवांशिक पदार्थों, उपोत्पादन तथा उनके संभावित उपयोग या मूल्यों जिसमें मानवीय आनुवांशिक पदार्थ सम्मिलित नहीं हैं, को समावेशित किया गया है। अधिनियम में किसी भी स्थान पर लुप्तप्राय जीव की व्याख्या नहीं की गई है। धारा 7 के तहत राज्य स्तरीय जैव विविधता बोर्ड की स्थापना का प्रावधान है। धारा 24 में वर्णित तथ्यों के आधार पर इन बोर्डों का कार्य आवेदन पत्रों को संसाधित कर विभिन्न परियोजनाओं को स्वीकृति प्रदान करना है। साझा अनुसंधान परियोजनाओं को त्वरित गति प्रदान करने के उद्देश्य से धारा 5 के तहत प्रक्रियाओं का सरलीकरण किया गया है। पेटेन्ट के संबंध में धारा 6 (i) के अन्तर्गत किसी व्यक्ति द्वारा पेटेन्ट हेतु आवेदन करने की स्थिति में राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण द्वारा पेटेन्ट स्वीकृत होने के उपरांत लेकिन संबंधित अधिकारी द्वारा पेटेन्ट के मुद्रांकण के पूर्व अनुमति प्रदान की जा सकती है। अधिनियम में उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त निम्नांकित आयामों पर भी बल दिया गया है :

1. वैधानिक प्रारूप तथा संस्थागत क्षमता का निर्माण।
2. जैव तकनीक के क्षेत्र में निवेश में वृद्धि कर अनुसंधान कार्यों से पर्याप्त लाभ प्राप्त करने का प्रावधान।

3. जैव विविधता के क्षयंकर तथा अक्षयंकर मूल्य (Consumptive & Non-consumptive values) का ज्ञान।
4. जैव विविधता संरक्षण तथा इसके सतत उपयोग से संबंधित सभी कार्यक्रमों में पणधारियों (Stakeholder) की भागीदारी का सुनिश्चितीकरण।
5. इन-सीटू तथा एक्स-सीटू संरक्षण पर समान बल।

हरित गृह प्रभाव तथा भूमंडलीय तापन (Greenhouse Effect & Global Warming)

पृथ्वी पर मौसम तथा जलवायु, सौर उर्जा द्वारा नियंत्रित होते हैं। कार्बनडाइक्साइड, मिथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड लघु तरंग दैर्ध्य वाली सौर किरणों को वायुमंडल में प्रवेश करने देती हैं, जिससे ये विकिरणें पृथ्वी की सतह तक पहुँचती हैं, लेकिन दीर्घ तरंग दैर्ध्य वाली ताप विकिरणें वायुमंडल से बाहर नहीं जा पाती हैं। इस कारण वैश्विक तापक्रम में वृद्धि हो जाती है। इस प्रभाव को हरितगृह प्रभाव कहते हैं। ठंडे प्रदेशों में पौधों को उचित तापक्रम उपलब्ध कराने के लिए इस तकनीक पर कांच के हरितगृहों का निर्माण किया जाता है। प्राकृतिक रूप से हरितगृह प्रभाव वायुमंडलीय तापक्रम को सामान्य बनाये रखने हेतु नितांत आवश्यक है, ताकि पृथ्वी पर जीवन की सुरक्षा की जा सके। इन गैसों की मात्रा में हुई अचानक वृद्धि के कारण भूमंडलीय तापन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसके व्यापक कुप्रभाव पौधों, जन्तुओं, मानव प्रजाति तथा जलवायु पर परिलक्षित होते हैं। अनुसंधानों के अनुसार, वायुमंडल में कार्बन डाईक्साइड की मात्रा में 30 प्रतिशत की वृद्धि, मिथेन की सांद्रता में कमाबेश दुगनी तथा नाइट्रस ऑक्साइड की सांद्रता में औद्योगिक क्रांति के उपरांत अब तक 15 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इस वृद्धि के कारण पृथ्वी के वायुमंडल के ताप अवशोषण की क्षमता में भी वृद्धि हो गई है। यद्यपि एक सामान्य वायु प्रदूषक के रूप में सल्फेट के कण प्रकाश का अंतरिक्ष की ओर परावर्तन कर वायुमंडल को ठंडा करते हैं, लेकिन इन कणों की विद्यमानता अल्पकालिक होती है तथा इनकी सांद्रता क्षेत्रीय दृष्टिकोण से परिवर्तित होती रहती है।

विभिन्न अध्ययनों में यह स्पष्ट किया गया है, कि वैश्विक स्तर पर पृथ्वी की सतह का औसत तापक्रम 0.3 से 0.6°C बढ़ गया है। 1860 से अब तक की अवधि में वर्ष 2000 को सर्वाधिक गर्म वर्ष कहा गया था। महासागरों के तापीय विस्तार के कारण सागर जल के स्तर में 10 से 25 सेंटीमीटर की वृद्धि हो गई है। आगामी 100 वर्षों में महासागरों के जल स्तर में 15 से 95 सेंटीमीटर की सीमा में औसतन 50 सेंटीमीटर की वृद्धि होने की आशंका है। वर्ष 2100 तक गैसों द्वारा ताप अवशोषित करने के उपरांत औसत वैश्विक तापक्रम के स्थायित्व प्राप्त कर लेने के बावजूद महासागरों के जलस्तर में वृद्धि होने की आशंका है जिसका मुख्य कारण महासागरों का तापीय जड़त्व (Thermal Inertia) है। इस स्थिति में प्रकृति में जल चक्र पर कुप्रभाव पड़ने की आशंका है, जिससे संपूर्ण पारितंत्र में पोषक तत्वों के चक्र पर भी कुप्रभाव परिलक्षित होंगे। उपग्रहों द्वारा प्राप्त सूचनाओं में भी इस तथ्य की पुष्टि की गई है। 1997 में क्योटो प्रोटोकॉल के अधीन 6 हरित गृह गैसों की पहचान की गई है। ये गैसें कार्बनडाईक्साइड, मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, हाईड्रोफ्लोरोकार्बन, परफ्लोरोकार्बन तथा सल्फर हेक्साफ्लोराइड हैं। इनमें कार्बन डाईऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस आक्साइड तथा अंजान प्राकृतिक गैसें हैं। कार्बन डाइक्साइड ठोस अपशिष्टों, जीवाश्म ईंधनों (तेल, प्राकृतिक गैस एवं कोयला), काष्ठ एवं काष्ठ उत्पाद के ज्वलन से विमुक्त होती है। इसके अतिरिक्त, पशुपालन की अभिक्रियाओं तथा ठोस नगरीय कार्बनिक अवशिष्टों के अपघटन से मिथेन का उत्सर्जन होता है। दूसरी ओर, नाइट्रस आक्साइड कृषि एवं औद्योगिक गतिविधियां, ठोस अपशिष्टों तथा जीवाश्म ईंधनों के ज्वलन से विमुक्त होती है। मानव जनित गतिविधियों से उत्सर्जित होनी वाली हरित गृह गैसें हाइड्रो फ्लोरोकार्बन, परफ्लोरोकार्बन तथा सल्फर हेक्साफ्लोराइड हैं। प्रत्येक हरित गृह गैस के ताप अवशोषण की क्षमता भिन्न होती है। इन गैसों में ताप अवशोषण की सर्वाधिक क्षमता हाइड्रोफ्लोरोकार्बन तथा परफ्लोरोकार्बन की है। कार्बन डाईक्साइड के एक अणु द्वारा अवशोषित की गई ताप की कुल मात्रा की तुलना में मिथेन के एक अणु द्वारा 21 गुना तथा नाइट्रस ऑक्साइड के एक अणु द्वारा 270 गुणा अधिक ताप अवशोषित किया जा सकता है। हरित गृह गैसों के उत्सर्जन को मिलियन मिट्रिक टन कार्बन समतुल्य (Million Metric Tons of Carbon Equivalent or MMTCE) की इकाई में व्यक्त किया जाता है।

1988 में अन्तर्राज्यीय जलवायु परिवर्तन समूह (Inter Governmental Panel on Climate Change, IPCC) का गठन किया गया था। इसका मुख्य उद्देश्य जलवायु परिवर्तनों के प्रभाव तथा विज्ञान का गहन अध्ययन तथा उनके प्रति अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के आधार के रूप में

प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्त करना था। 1990 में आई.पी.सी.सी. द्वारा प्रथम मूल्यांकन रिपोर्ट जारी की गई थी, जिसमें विश्व के 300 वैज्ञानिकों ने अपने विचार व्यक्त किये। सामयिक सूचनाओं की उपलब्धता के लिए 1992 तथा 1994 में भी इस प्रकार के रिपोर्ट जारी किये गये। इन रिपोर्टों में जलवायु परिवर्तन से संबंधित निम्नांकित विशिष्ट तथ्यों पर बल दिया गया था:

1. वायुमंडल में हरित गृह गैसों की मात्रा में मानव जनित गतिविधियों के कारण वृद्धि।
2. कार्बन डाईक्साईड तथा अन्य हरित गृह गैसों की उत्सर्जित होने वाली मात्रा को कम करने के प्रयास।
3. विकासशील देशों को वित्तीय सहायता प्रदान करने का प्रावधान।
4. अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को सर्वोच्च प्राथमिकता।

उपरोक्त तथ्यों पर विशेष बल देने का मुख्य उद्देश्य मानव द्वारा जलवायु प्रणाली में हस्तक्षेप की सीमा तथा हरित गृह गैसों की वायुमंडल में बढ़ रही मात्रा को कम करना था। इसके उपरांत मार्च-अप्रैल 1995 में बर्लिन मेंडेट (Berlin Mandate) के तहत हरित गृह गैसों के उत्सर्जन की मात्रा को कम करने के लिए विशेष प्रयास प्रारंभ किये गये। आई.पी.सी.सी. की वर्ष 2001 की रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया गया है कि औसत वैश्विक तापक्रम में विगत एक दशक में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। इसका मुख्य कारण विगत तीन दशकों में मानव जनित गतिविधियां हैं। एक ओर कणिकामय प्रदूषण सामान्यत: वायुमंडलीय तापक्रम को कम करता है, लेकिन दीर्घकालिक हरित गृह गैसों की बढ़ती हुई मात्रा से तापक्रम को कम करता है, लेकिन दीर्घकालिक हरित गृह गैसों की बढ़ती हुई मात्रा से तापक्रम वृद्धि की घटना अधिक प्रभावी होती है।

IPCC Fourth Assessment Report: Climate change 2007 (AR4)

वर्ष 2007 की अपनी रिपोर्ट में आई.पी.सी.सी. ने निम्नांकित तथ्यों को उजागर किया है-

1. 20वीं सदी के मध्य की तुलना में हाल के वर्षों में वैश्विक तापमान में लगभग 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।
2. यदि हरित गृह गैसों के उत्सर्जन को रोक भी दिया जाए तो भी कई शताब्दियों तक तापक्रम में वृद्धि तथा महासागरीय जल का बढ़ना जारी रहेगा।
3. प्राकृतिक रूप से जलवायु में होने वाला परिवर्तन लगभग 5 प्रतिशत होगा।
4. महासागरीय जल स्तर लगभग 18-59 सें.मी. बढ़ने की आशंका है।
5. गर्म हवाओं की उत्पत्ति में लगभग 90 प्रतिशत तक की वृद्धि की आशंका है।
6. उष्णकटिबन्धीय चक्रवातों, सूखा तथा उच्च ज्वार जैसे घटनाक्रमों में लगभग 90 प्रतिशत वृद्धि की आशंका है।

आई.पी.पी.सी. ने यह भी कहा है कि वर्ष 1750 की तुलना में कार्बनडायक्साइड, मिथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड की सान्द्रता में मानव-जनित गतिविधियों से अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।

हाल में वैज्ञानिकों द्वारा एक नए हरित गृह गैस की खोज की गई है। इलेक्ट्रॉनिक, हथियार निर्माण तथा अन्य सैन्य उद्योगों से उत्पन्न होने वाली इस गैस की प्रकृति सल्फरहेक्साफ्लोराइड की भांति है तथा इसे ट्राईफ्लोरोमिथाईल सल्फर पेंटाफ्लोराइड की संज्ञा दी गई है। वर्तमान में यह गैस समतापमंडल तथा अंटार्कटिका क्षेत्र में बर्फ के अधोसंस्तरों में उपस्थित है। 1960 में इस गैस की न्यूनतम मात्रा वायमुडल में पायी गयी थी, लेकिन वर्तमान में यह मात्रा 4000 टन है तथा यह 6 प्रतिशत की चिन्ताजनक वार्षिक दर से वृद्धि कर रही है।

वैज्ञानिकों के अनुसार कार्बन डाईक्साइड की तुलना में इसके ताप अवशोषण की क्षमता 18000 गुना अधिक है। दूसरी ओर, क्लोरोफ्लोरोकार्बन की तुलना में इस गैस के अणुओं की आयु दीर्घ है, जिसके फलस्वरूप ओजोन के विखंडन की आशंका में वृद्धि हुई है। वस्तुत: वायुमंडल में प्रवेश करने के उपरांत इस गैस के अणु 1000 वर्ष या उसके अधिक की अवधि के लिए अविखण्डित अवस्था में रह सकते हैं। विलियम टी. स्टर्च के अनुसार, किसी हरित गृह गैस की भूमंडलीय तापन की क्षमता का अन्य गैसों के

ाथ सापेक्ष अध्ययन किया जाता है। यह क्षमता वस्तुत: किसी गैस की निश्चित मात्रा द्वारा अवशोषित किए गए ताप के अनुपात से गैस विशेष की भूमंडलीय तापन की क्षमता का निर्धारण किया जाता है। एक अन्य सामयिक आंकड़े के अनुसार, कार्बन डाईक्साइड के समतापमंडल में प्रवेश करने के उपरांत तापमान में कमी होती है तथा यह ओजोन विखंडन हेतु आवश्यक तापक्रम- 105°C से 10°C तक न्यून हो सकती है। इस खोज के आधार पर ओजोन विखंडन तथा भूमंडलीय तापन की प्रक्रियाओं में अन्तर संबंध स्थापित किया जा सकता है। कार्बन डाईक्साइड के इस विशिष्ट गुण के कारण इसका अधिक उत्सर्जन ओजोन विखंडन की दर में वृद्धि करने की क्षमता रखता है।

भूमि पर प्रभाव

1. वाष्पीकरण की उच्च दर के कारण मृदा की नमी में अप्रत्याशित कमी।
2. अन्त:सरण की न्यून दर से जल संतुलन समीकरण पर व्यापक प्रभाव तथा मृदा की उर्वरता में कमी।
3. प्राकृतिक निवास्य क्षेत्रों के संकुचन के कारण जैव संसाधनों के विलुत होने की आशंका।

जल पर प्रभाव

1. ध्रुवीय बर्फ के प्रगलन से महासागरों के जलस्तर तथा तापक्रम में वृद्धि।
2. तटीय क्षेत्रों का सागर में समावेश।
3. महासागरों के विस्तार से तटीय क्षेत्रों में पेय जल का प्रदूषण।

ओजोन विखंडन (Ozone Depletion)

ओजोन (O_3) एक हल्के नीले रंग की गैस है जो समतापमंडल में पाई जाती है। इसका मुख्य कार्य सूर्य की पराबैंगनी विकिरणों का अवशोषण करना है। वर्तमान में वायुमंडल में इसकी मात्रा 0.02 से 0.07 PPM है लेकिन 30000 A (Angstrom) तक की विकिरणों का अवशोषण करने की क्षमता इस गैस में पायी गयी है। ओज़ोन के विखंडन से व्यापक स्तर पर तापक्रम परिवर्तन होते हैं जिसके फलस्वरुप जीवन समर्थक प्रणालियों पर कुप्रभाव परिलक्षित होते हैं। वस्तुत: समतापमंडल में ओजोन की उपस्थिति L1, L2 तथा L3 नामक तीन संस्तरों में होती है। इसमें L2 संस्तर की मुटाई सर्वाधिक है। मानव जनित ओजोन विखंडन का वैज्ञानिक अधययन 1970 में प्रारंभ किया गया था लेकिन ओजोन की गत्यात्मक संकल्पना की सर्वप्रथम व्याख्या चेपमैन ने 1930 में ही की थी। चैपमैन के अनुसार ऑक्सीजन के अणुओं का विखंडन ब्रह्मांडीय विकिरणों (Cosmic Rays) के प्रभाव से होता है जिसके फलस्वरूप आक्सीजन के परमाणु विमुक्त होते हैं। प्रत्येक परमाणु आक्सीजन के एक अणु से प्रतिक्रिया कर ओजोन का निर्माण करता है। इस कारण ओजोन के एक अणु में ऑक्सीजन के 3 परमाणु उपस्थित होते हैं। वर्तमान में चैपमैन की इस संकल्पना की प्रासंगिकता नहीं रह गई है। वैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार पर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि 75 से 85 प्रतिशत ओजोन विखंडन मानवजनित गतिविधियों द्वारा होता है। 1920 एवं 1970 के मध्य जी.एम.बी. डाब्सन द्वारा ओजोन के अध्ययन के उपरांत ओजोन संस्तर की मुटाई की माप डाब्सन इकाई में की जाती है (1 D.U. = 0.4 mm)।

मानवजनित गतिविधियों से विमुक्त हुए पदार्थ ओजोन क्षरण के लिए उत्तरदायी हैं। इन पदार्थों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC) है। वायुमंडल में सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में (CFC) के एक अणु का विखंडन होता है, जिससे क्लोरीन का एक परमाणु विमुक्त होता है। ओजोन के एक आक्सीजन परमाणु से प्रतिक्रिया कर यह क्लोरीन मोनोक्साइड का निर्माण करता है। इस प्रकार ओजोन का विखंडन हो जाता है। वैज्ञानिकों के एक समूह के अनुसार, समतापमंडलीय ओजोन का विखंडन क्लोरीन की अपेक्षा ब्रोमीन से अधिक होता है। दूसरी ओर, पराबैंगनी विकिरणों की उपस्थिति में ओजोन का विखंडन आक्सीजन के एक अणु तथा एक परमाणु में होता है जिसके पुनर्संयोजन से पुन: ओजोन का निर्माण होता है। विखंडन तथा पुनर्संयोजन की यह प्रक्रिया वैकल्पिक रूप से निरंतर होती रहती है। अंतत: आक्सीजन के दो अणुओं का निर्माण हो जाता है। ओजोन विखंडन की यह घटना वैज्ञानिकों तथा भूगोलविदों के लिए एक चुनौती है, क्योंकि सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक रूप से यह प्रतिक्रिया विपरीत दिशा में होती है। भौगोलिक

दृष्टिकोण से अंटार्कटिक क्षेत्र में एक अंडाकार वातावर्त (Vortex) का निर्माण होता है, जिसका तापक्रम सामान्यत . 900C पाया गया है। इस तापक्रम पर वायु के संघनित होने से बादलों का निर्माण तथा बर्फ के रवों के विमुक्त होने की प्रक्रिया होती है। इन रवों के द्वारा ओजोन विखंडन की प्रतिक्रिया हेतु आवश्यक आधार प्रदान किया जाता है, लेकिन इस तापक्रम पर वायु में उपस्थित नाइट्रोजन क्लोरीन के परमाणु के विमुक्त होने की प्रक्रिया का प्रतिरोध करता है। तापक्रम में वृद्धि के फलस्वरूप प्रकाश की उपस्थिति में CFC के विखंडन से क्लोरीन के परमाणु विमुक्त हो जाते हैं। सामयिक अनुसंधानों के अनुसार, ओजोन विखंडन हेतु अनुकूलतम तापमान -1050 C से -1100 C है। अंटार्कटिक क्षेत्र की तुलना में आर्कटिक क्षेत्र में अनुकूलतम तापमान के अभाव के कारण इस क्षेत्र में ओजोन विखंडन की संभावना से इनकार किया गया था। लेकिन 1999 की शीत ऋतु में आर्कटिक के क्षेत्र में कमोबेश 2 माह की अवधि तक अनुकूलतम तापमान की उपस्थिति ने ओजोन विखण्डन की संभावना को प्रबल बना दिया है। इस अवधि में वस्तुतः ओजोन का विखंडन सर्वाधिक हुआ है।

कुल मिलाकर यह स्पष्ट है कि ओजोन का विखंडन स्वतंत्र तत्वों (Free radicals) जैसे हाइड्रोक्सिल (OH–), नाइट्रिक ऑक्साइड (NO–), परमाणविक क्लोरिन (Cl–) तथा परमाणविक ब्रोमिन (Br–) से होता है। ये सभी तत्व प्राकृतिक तथा मानव जनित, दोनों ही स्रोतों से प्राप्त होते हैं। वर्तमान में OH– तथा NO– प्राकृतिक रूप से समतापमंडल में विद्यमान हैं लेकिन क्लोरिन तथा ब्रोमिन की मात्रा में जो अप्रत्याशित वृद्धि हुई है वह मानव जनित गतिविधियों से है।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास (International Efforts)

ओजोन क्षरण की समस्या से संबंधित विषयों पर 1985 में सर्वप्रथम विएना में एक वैश्विक सम्मेलन आयोजित किया गया था, जिसका मुख्य उद्देश्य अंटार्कटिक क्षेत्र में ओजोन छिद्र की पहचान करना था। विएना घोषण पत्र में ओजोन क्षरण को रोकने हेतु तकनीकी एवं वैज्ञानिक अनुसंधानों पर विशेष बल दिया गया। इसके उपरांत 1987 में मॉन्ट्रियाल प्रोटोकॉल, 1990 में लंदन संशोधन तथा हेलसिंकी सम्मेलन एवं 1992 में कोपेनहेगन सम्मेलन का आयोजन किया गया। इन अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में CFC को ओजोन क्षरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक मानकर इसके उत्पादन तथा उपयोग पर 2000 तक प्रतिबंध लगाने पर विशेष बल दिया गया। इसके अतिरिक्त, मिथाइल ब्रोमाइड तथा कार्बन टेट्रा क्लोराइड को भी ओजोन क्षरण करने वाले पदार्थों के रूप में मान्यता प्रदान की गई। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इनके उत्पादन एवं उपयोग को प्रतिबंधित करने का प्रस्ताव भी किया गया। मॉन्ट्रियाल प्रोटोकॉल के अनुमोदन के एक दशक के उपरांत भी ओजोन क्षरण करने वाले पदार्थों का वायुमंडल में प्रवेश जारी है। निःसंदेह वैश्विक स्तर पर CFC के उपयोग को कम करने तथा उसके एक विकल्प की खोज करने के प्रयास किए गए हैं ताकि ओजोन को नुकसान पहुंचाने वाले पदार्थों के उपयोग पर नियंत्रण रखा जा सके। वैज्ञानिकों के अनुसार, 1995 से 2005 के मध्य CFC का आधिकारिक उत्पादन 2 करोड़ दस लाख टन हो जायेगा। अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत सभी राष्ट्रों का दायित्व ओजोन विखंडन को रोकना है। इस संबंध में मानव जनित गतिविधियों से होने वाले ओजोन विखंडन तथा उसके कुप्रभावों को कम करने हेतु विशेष प्रावधानों पर विएना घोषणापत्र के सुझावों के अनुरूप कार्य किया जा रहा है। 1972 में स्टॉकहोम में संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन के अंतर्गत घोषणा पत्रों का अनुमोदन किया गया था, जिसके तहत हानिकारक पदार्थों जिनसे अनावश्यक ताप की उत्पत्ति होती है, को नियंत्रित करने पर बल दिया गया था। इसके अतिरिक्त, पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाले सभी पदार्थों के उपयोग पर नियंत्रण रखने हेतु भी प्रयास करने पर बल दिया गया था। हाल ही में अमेरिका सहित विश्व के कई देशों में CFC की कालाबाजारी की घटनाएं परिलक्षित हुई हैं। इस संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय विधानों की सहायता से समस्या पर नियंत्रण रखने हेतु योजनाएं बनाई जा रही हैं।

भारतीय प्रयास (Indian Efforts)

भारत ने मॉन्ट्रियाल प्रोटोकॉल और लंदन संशोधन को 1992 में अनुमोदित किया था। भारत विश्व के ऐसे विशिष्ट देशों में एक है जहां वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के अधीन एक ओजोन प्रकोष्ठ कार्यरत है। ओजोन क्षरण करने वाले पदार्थों को प्रतिबंधित करने के लिए भारत सरकार द्वारा उत्पाद करों में छूट का प्रावधान भी किया गया है। भारत ने CFC के विकल्प का भी निर्माण करने में सफलता प्राप्त की है। हाइड्रोक्लोरोफ्लोरो कार्बन (HCFC-22) तथा HCFC-134 का निर्माण CFC के विकल्प के रूप में किया है। HCFC-11 तथा HCFC-12 के उत्पादन एवं उपयोग को समाप्त करने हेतु विशेष कार्यक्रम बनाये गये हैं। ऐसे सभी पदार्थों के उपयोग को 2010

समाप्त कर दिया जायेगा। साथ ही, भारत वैश्विक स्तर पर इस दिशा में कार्य करने हेतु वित्तीय सहायता प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है।

प्रभाव (Impact)

वरण सुरक्षा एजेंसी (Environmental Protection Agency,EPA) ने अमेरिका में जनभागीदारी पर विशेष बल दिया है। पर्यावरण क्षा कोष ने यह आशंका व्यक्त की है कि सूर्य की पराबैंगनी विकिरणों की अधिकता से विश्व में कुल गेंहू तथा दलहन के ादन का 3 प्रतिशत नष्ट हो जायेगा। साथ ही, उत्परिवर्तन की दर में वृद्धि होने की आशंका है। पराबैंगनी विकिरणों की अधिकता ायुमंडलीय तापमान में वृद्धि होती है, जिससे अन्य जलवायवीय समस्याएं उत्पन्न होने की आशंका होती है। वैज्ञानिकों के अनुसार, लीकरण की प्रक्रिया में 6 प्रतिशत कमी होने की आशंका है।

ंश में ओजोन विखंडन के प्रभावों को निम्नांकित श्रेणियों में बांटा जा सकता है :-

मानव पर प्रभाव:- उच्च ऊर्जा वाली पराबैंगनी "बी" विकिरणों से त्वचीय कैंसर होने की पूरी आशंका होती है। इसके साथ-साथ एक अच्छी बात यह है कि इन विकिरणों से विटामिन "डी" की मात्रा की अधिकता मानव शरीर में होती है। उल्लेखनीय है कि विटामिन डी कैंसर-रोधी गुणों वाला एक पदार्थ है। लेकिन विकिरणों के लगातार प्रभाव से इसकी क्षमता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त, पराबैंगनी विकिरणों से कई प्रकार के नेत्र रोग, विशेषकर मोतियाबिंद की आशंका होती है।

वैज्ञानिकों के अनुसार, पराबैंगनी विकिरणों का एक प्रभाव यह भी होता है कि इनसे कोशिका में उपस्थित डीएनए के अणुओं के विखंडन की आशंका होती है।

फसलों पर प्रभाव:- पराबैंगनी विकिरणों से मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों को प्रत्यक्ष हानि होती है। खास कर, सायनोबैक्टीरिया पर सबसे अधिक दुष्प्रभाव पड़ते हैं। इन सूक्ष्म जीवों द्वारा आर्थिक रूप से उन्नत कई फसलों को सहायता मिलती है क्योंकि ये जैव उर्वरक की भूमिका निभाते हैं।

जैवमंडल सुरक्षित क्षेत्र (Bioshpere Reserves)

वन्य जीवों तथा पादप प्रजातियों के संरक्षण एवं उनके सतत् अनुप्रयोग के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक ठन द्वारा 1971 से मानव तथा जैवमंडल कार्यक्रम (Man and the Biosphere Programme, MAB) का क्रियान्वयन किया जा रहा है। क्रम के तहत संरक्षण, अनुसंधान, शिक्षा तथा जन भागीदारी पर विशेष बल दिया जाता है।

कार्यक्रम के अन्तर्गत आनुवांशिक विविधता के संरक्षण हेतु इन-सीटू संरक्षण विधि को विशेष महत्त्व दिया गया है। भारत की जैव विविधता के संदर्भ में पारितंत्र के प्रतिनिधि प्रतिदर्शों के संरक्षण हेतु विशेष प्रयास किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, भारत कार द्वारा जन भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त शिक्षण एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था के अन्तर्गत पर्यावरण केन्द्रों की स्थापना जाती है। विलुप्तप्राय प्रजातियों की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए जैवमंडल सुरक्षित क्षेत्रों की स्थापना की गई है। इन क्षेत्रों में इस क्रम को जन आंदोलन का रूप प्रदान करने के लिए विशेष प्रशिक्षण सुविधा भी उपलब्ध कराई जाती है।

वन्य जीवन (सुरक्षा) कानून, 1972 (Wild Life (Protection) Act, 1972)

जीवन की सुरक्षा हेतु भारत में कई वैधानिक प्रावधान किए गए हैं, जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण 1972 में पारित वन्य जीव सुरक्षा न है। कुल 7 अध्यायों तथा 5 सूची वाले इस कानून का क्रियान्वयन जम्मू-कश्मीर को छोड़कर पूरे देश में किया जाता है। कानून धारा-2 (1) में जन्तु शब्द को परिभाषित किया गया है जिसके अनुसार, जन्तुओं की श्रेणी में उभयचरों पक्षियों, स्तनधारियों तथा सृपों, उनकी संतति तथा पक्षियों एवं सरीसृपों के संदर्भ में उनके अंडों को भी सम्मिलित किया गया है। कानून की धारा 2 (3) अन्तर्गत वन्य जीव के प्राकृतिक निवास (भूमि, जल या वनस्पति) को निवास्य क्षेत्र की संज्ञा दी गई है। धारा-2 (7) के अन्तर्गत जीवन का तात्पर्य किसी जन्तु या जलीय और धरातलीय वनस्पति से है। वन्य प्राणियों के शिकार को कानून की धारा-9 के तहत बंधित किया गया है लेकिन किसी योग्य अधिकारी या स्वरक्षा हेतु शिकार की अनुमति प्रदान की गई है। इसी प्रकार, विशिष्ट

पौधों की कृषि तथा उन्हें नष्ट करने के कार्यों को इस कानून द्वारा प्रतिबंधित किया गया है।

बाघ परियोजना (Project Tiger)

भारत सरकार द्वारा 1 अप्रैल 1973 से बाघ परियोजना का क्रियान्वयन किया जा रहा है। कार्यक्रम के निम्नांकित उद्देश्य हैं :

1. वैज्ञानिक, आर्थिक, सौन्दर्यपरक, सांस्कृतिक तथा पारिस्थितिकीय मूल्यों के लिए बाघों की पर्याप्त संख्या का सुनिश्चितीकरण।
2. लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने, शिक्षा एवं अन्य लाभ प्रदान करने के उद्देश्य से जैविक महत्ता वाले सभी क्षेत्रों का संरक्षण।

वर्तमान में भारत में कुल 27 बाघ सुरक्षित क्षेत्र हैं, जो 33,875 वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में विस्तृत हैं। इन सुरक्षित क्षेत्रों में बाघों की कुल संख्या 3435 थी लेकिन हाल ही में विशेषकर सरिस्का में बाघों की हत्या से इस संख्या में कमी आई है तथा बाघों की सुरक्षा का विषय निश्चित रूप से विवादास्पद बन गया है। निःसंदेह, इस परियोजना के क्रियान्वयन ने भारतीय बाघों को विलुप्त होने से बचाया है, लेकिन दूसरी ओर, दक्षिण पूर्वी एशिया में बाघों की संख्या मुख्यतः शिकार के कारण कम हो गई है। भारतीय वन सर्वेक्षण के अनुसार, बाघ बहुल क्षेत्रों में वनों का विकास हुआ है। भारत सरकार द्वारा बाघों के संरक्षण हेतु आधारभूत संरचना के विकास के लिए नई रणनीति का निरूपण किया जा रहा है। उदाहरणार्थ, सरकार ने कर्मियों की पर्याप्त संख्या के अतिरिक्त पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान करने का आश्वासन दिया है। वस्तुतः भारत में अनुमानतः 15000 कि.मी. बाघों के निवास्य क्षेत्र के ह्रास के संदर्भ में संरक्षण के प्रयासों को त्वरित गति प्रदान करने की नितांत आवश्यकता है।

हाथी परियोजना (Project Elephant)

हाथी के प्राकृतिक निवास के न्यूनतम स्तर पर पहुंचने तथा उनके जीवन के सुनिश्चितीकरण के उद्देश्य से इस परियोजना को 1991-92 में प्रारंभ किया गया था। राज्यों से सहायता प्राप्त करने के लिए केन्द्र सरकार तकनीकी तथा वित्तीय सहायता उपलब्ध कराती है, ताकि हाथियों की संख्या की पहचान कर लम्बे समय तक इनके जीवित रह सकने का लक्ष्य पूरा किया जा सके। इस परियोजना के उद्देश्य निम्नांकित हैं:

1. मानव-गज विवाद को समाप्त करना अथवा घटाना।
2. गजनिवासों पर मानवीय प्रभाव कम करना।
3. स्वतंत्रता, शिक्षा तथा पारिस्थितिकी संबंधी विकास कार्यक्रमों पर बल।
4. हाथियों की शिकार तथा प्राकृतिक मृत्यु से रक्षा।
5. वर्तमान प्राकृतिक निवास स्थानों में पारिस्थितिकी की पुनर्स्थापना।
6. हाथियों की रक्षा के लिए अनुसंधान परियोजनाओं पर विशेष बल।
7. पर्याप्त संयोजन तथा उचित प्रबंधन।
8. हाथियों के स्थानान्तरण तथा उनकी संख्यागतिकी के आधार पर आंकड़ों का संकलन।

जहां तक एशियाई हाथियों का प्रश्न है, वन्य जीव सुरक्षा कानून, 1972 में इसे अनुसूची 1 में रखा गया है। साथ ही, 1986 से सभी प्रकार के एशियाई हाथी दांत के घरेलू व्यापार को प्रतिबंधित कर दिया गया है। CITES ने भी एशियाई हाथियों को एपेन्डिक्स 1 में सम्मिलित किया है तथा IUCN (International Union for Conservation fo Nature and Natural Resources) ने इसे विलुप्तप्राय प्रजातियों की श्रेणी में सम्मिलित किया है। भारत में एशियाई हाथियों पर 1990 से गहन अध्ययन का कार्य प्रारंभ किया गया है। भारतीय वन्य जीव सुरक्षा समिति, भारतीय वन्य जीव न्यास तथा अन्तर्राष्ट्रीय एशियाई हाथी अनुसंधान एवं संरक्षण केन्द्र संगठन जैसी संस्थाएँ हाथियों के शिकार पर अंकुश लगाने तथा उन्हें विलुप्त होने से बचाने हेतु प्रयासरत हैं। CITES के अनुसार, कुल एशियाई

थियों की संख्या का 50 प्रतिशत (35,000 से 50,000) भारत में है। लेकिन अफ्रीकी हाथियों की संख्या (300,000 से 600,000) | तुलना में एशियाई हाथियों की संख्या कम है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निगरानी के कार्य किये जा रहे हैं। इन प्रणालियों में मॉनिटरिंग फ इल्लिगल किलिंग ऑफ एलीफैन्ट्स (MIKE) तथा एलीफैन्ट ट्रेड इनफौरमेशन सिस्टम (ETIS) की सहायता से कार्य किया जा | है। रिपोर्ट में स्पष्ट किया गया है, कि यद्यपि भारत में वन्य हाथियों की संख्या 20,000 है, लेकिन प्रजनन करने वाले हाथियों की ख्या केवल 1000 से 2000 के मध्य है।

गेंडा परियोजना (Project Rhino)

भारत सरकार द्वारा 1987 में असम में एक केन्द्र प्रायोजित योजना के रूप में गेंडा संरक्षण परियोजना का क्रियान्वयन प्रारंभ किया | तदुपरांत, विश्व वन्य जीवन कोष की सहायता से असम के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी गेंडे के संरक्षण हेतु प्रयास किये जा हैं। गेंडे की संख्या यद्यपि स्थायित्व प्राप्त कर चुकी है, तथापि इसके शिकार के कारण इसे लुप्तप्राय जीव की श्रेणी में रखा गया विश्व वन्य जीवन कोष के अनुसार, मानस राष्ट्रीय उद्यान में गेंडों की संख्या में कमी आई है। कोष तथा भारत सरकार के संयुक्त गवधान में एक विशेष कार्यक्रम प्रारंभ किया गया है। इसका क्रियान्वयन मुख्यत: मानस राष्ट्रीय उद्यान में 1991-93 से किया जा है। कोष ने दुधवा राष्ट्रीय उद्यान में गेंडे के संरक्षण के लिए भी एक विशेष कार्य योजना का प्रारूप तैयार किया है, जिसे कोष | एम.एस. स्वामीनाथन रिसर्च फाउंडेशन द्वारा संयुक्त रूप से कार्यान्वित किया जायेगा।

भारतीय प्राणी कल्याण बोर्ड (Animal Welfare Board of India)

भारतीय प्राणी कल्याण बोर्ड की स्थापना 1962 में प्राणी क्रूरता निरोध कानून, 1960 (Prevention of Cruelty to Animals Act, 60) के तहत की गई थी। एक स्वायत्त संस्था के रूप में बोर्ड वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के अधीन कार्य करता है। इसका मुख्य श्य प्राणियों का कल्याण करना है। बोर्ड द्वारा प्राणी कल्याण पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती है, जिनका कार्य प्राणियों की भन्न प्रकार के संकट से रक्षा करना है। बोर्ड द्वारा प्राणी जन्म नियंत्रण योजना का प्रारंभ किया है, जिसके तहत आवारा कुत्तों के ध्याकरण पर विशेष बल दिया जा रहा है। प्रति वर्ष 14 जनवरी से बोर्ड द्वारा प्राणी कल्याण सप्ताह मनाया जाता है।

वन्य जीव संरक्षण तथा नीतिगत विषय (Policy Issues in Wild Life Conservation)

वन्य जीव संरक्षण एक जटिल समस्या है। इसमें सभी जीव जन्तुओं तथा पौधों को सम्मिलित किया गया है। अत: इसका प्रबंधन यन्त आवश्यक है। संविधान के अनुच्छेद 48 ए और 51 ए पर अमल करने के लिए राष्ट्रीय वन्य जीवन कार्य योजना का निर्धारण एवं पर्यावरण मंत्रालय द्वारा किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य सभी सुरक्षित क्षेत्रों को एक-दूसरे के साथ सम्बद्ध कर प्रमुख वन्य | पारितंत्रों के प्रतिनिधि प्रतिदर्शों का अध्ययन करना है। इस कार्य में भौगोलिक वितरण पर भी बल देने का प्रावधान है। योजना तहत लुप्तप्राय प्रजातियों के पुनर्वास तथा उनके प्राकृतिक निवास्य क्षेत्रों की पुनर्स्थापना हेतु भी कार्य किया जायेगा। घड़ियाल नन परियोजना के तहत अब तक 1000 घड़ियालों का पुनर्वास किया गया है। इसके अतिरिक्त, सरकार द्वारा आनुवांशिक निरंतरता सुनिश्चितीकरण तथा सुरक्षित क्षेत्रों के पर्याप्त एवं समुचित प्रबंधन हेतु भी प्रयास किये जा रहे हैं। 1988 की राष्ट्रीय वन नीति में | जीव संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। सामान्यत: वन्य जीव प्रबंधन में सर्वाधिक प्रमुख समस्या मानव-जीव संघर्ष है। इस स्या के निराकरण हेतु नीतिगत परिवर्तन की आवश्यकता है। मानव जनसंख्या की अप्रत्याशित वृद्धि के कारण प्राकृतिक निवास्य की व्यापक क्षति हुई है, जो इस संघर्ष की उत्पत्ति में सहायक है।

राष्ट्रीय वन नीति, 1988 (National Forest Policy, 1988)

वर्ष 1927 में भारत सरकार द्वारा वनों को प्रबंधित करने के उद्देश्य से एक भारतीय वन कानून बनाया गया था। हांलाकि भारत 19वीं शताब्दी से ही वन नीति का निर्धारण किया जा रहा है लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पहले 1952 तथा फिर 1988 में वन | निर्धारित की गई। वर्तमान में 1988 की वन नीति प्रभावी है।

राष्ट्रीय नीति में यह स्वीकार किया गया है कि देश में वनों के उन्मूलन की समस्या व्यापक स्तर पर विद्यमान रही है। इसके कारणों में जलावन की लकड़ी की अत्यधिक मांग, सुरक्षा से संबंधित प्रावधानों की अपर्याप्तता तथा वन भूमि का गैर-वनीय कार्यों के लिए स्थानान्तरण महत्वपूर्ण है। इसी पृष्ठभूमि में नई रणनीति के निर्धारण के लिए नीति के उद्देश्य बनाए हैं। इनमें निम्नलिखित को अत्यन्त महत्वपूर्ण कहा जा सकता है-

1. परिरक्षण के माध्यम से पर्यावरण स्थायित्व सुनिश्चित करना तथा जहां भी आवश्यकता हो, वहां पारिस्थितिकीय संतुलन के लिए पारितंत्रों का पुनरुत्थान। इस समस्या का मुख्य कारण वनों का उन्मूलन रहा है।
2. बचे हुए प्राकृतिक वनों को संरक्षित कर राष्ट्र के प्राकृतिक धरोहरों की रक्षा। उल्लेखनीय है कि इन वनों में जैव विविधता की प्रचुरता है तथा देश का आनुवांशिक संसाधन (जीन संसाधन) संरक्षित हैं।
3. नदियों, झीलों तथा जल संग्राहकों के तटवर्ती क्षेत्रों में मृदा अपरदन को रोकना। इसका उद्देश्य जल संरक्षण के साथ-साथ बाढ़ एवं सूखे जैसी समस्याओं का समाधान है।
4. राजस्थान के मरूस्थलीय भागों के विस्तार पर रोक।
5. व्यापक स्तर पर वनीकरण के माध्यम से देश में वनाच्छादित प्रदेश का विस्तार। वनीकरण में सामाजिक वानिकी पर अत्यधिक ध्यान दिया जाएगा।
6. राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों की उत्पादकता में वृद्धि के प्रयास।
7. वन उत्पादों का अनुकूलतम उपयोग।
8. व्यापक स्तर पर वन संरक्षण को आंदोलनात्मक स्वरूप प्रदान करना। ऐसे जागरूकता कार्यक्रम में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने का प्रयास।

इन उद्देश्यों के आलोक में यह कह[illegible] वन नीति पर्यावरणीय [illegible] संतुलन के लिए प्रतिब[illegible] साम्यावस्था भी शामिल है।

वन प्रबंधन (Forest Management)

वनों की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के लिए भारत ने 1985-86 में एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम आरम्भ किया। वर्तमान में भारत प्रति वर्ष 10 लाख हेक्टेयर सार्वजनिक भूमि तथा 5 लाख हेक्टेयर निजी भूमि को वनाच्छादित करने में सक्षम है। भारत में वनों पर पड़ने वाले दबाव के बावजूद इन प्रयासों के सकारात्मक परिणाम परिलक्षित हुए हैं। इनके फलस्वरूप, भारत के वनाच्छादित प्रदेश का विस्तार भी संभव हुआ है। भारत जैसे विकासशील देशों में वनों का विकास करने के कोष की कमी एक विकट समस्या

भारत को वनों के विकास की दिशा में किये जा रहे प्रयासों में निरंतरता बनाये रखने की आवश्यकता है। जिसके लिए अतिरिक्त संसाधनों की उपलब्धता में वृद्धि करना अनिवार्य है। भारत सरकार ने वनों के विकास के लिए जन भागीदारी को सर्वोच्च प्राथमिकता

M-STrIPES (Monitoring System for Tigers–Intensive Protection and Ecological Status)

14 अप्रैल, 2010 को पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा बाघ अभ्यारण्यों के लिए सॉफ्टवेयर आधारित अनुश्रवण प्रणाली (Software-based monitoring System) का प्रारंभ किया। इस प्रणाली के द्वारा प्रोजेक्ट टाइगर के अंतर्गत आने वाली क्षेत्रों की [illegible] करने में सहायता मिलेगी।

[illegible] (Green Action for National Dandi [illegible]ge Initiative) परियोजना

[illegible] को डांडी मार्च के 80 वर्ष पूर्ण होने के उपलब्ध में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा इस परियोजना को प्रारम्भ किया गया है। विश्व बैंक की सहायता से चलाई जा रही इस परियोजना से जहाँ एक ओर गुजरात के तटवर्ती क्षेत्रों में स्थित मैंग्रोव का संरक्षण किया जाएगा वहीं दूसरी ओर डांडी के आसपास के क्षेत्र का गांधीवादी सिद्धांतों के आधार पर समग्र विकास किया जाएगा।

समुद्री प्रहरी

भारत का पहला स्वदेश निर्मित प्रदूषण नियंत्रक पोत आई.सी.जी.एम समुद्र प्रहरी का अक्टूबर, 2010 में जलावतरण किया गया। 4300 टन वजनी एवं 95 मीटर लम्बा यह पोत एक बार ईंधन भरने पर 20 दिनों तक 6500 समुद्री मील की यात्रा तय कर सकता है। इस पोत का निर्माण सूरत स्थित एबीजी शिपयार्ड लिमिटेड द्वारा किया गया है।

। है। इसके लिए सरकार ने 1990 में नए नियमों का निर्धारण किया है। इन नियमों का पालन राज्य सरकारों द्वारा भी किया जायेगा। न विकास में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका के संदर्भ में केन्द्र ने राज्य सरकारों को वन विकास हेतु क्रियान्वित किये जा रहे ार्यक्रमों में गैर सरकारी संगठनों को सम्मिलित करने के निर्देश दिये हैं। नये मार्गदर्शनों के अनुरूप अब तक 15 राज्यों में वनों के रक्षण तथा विकास में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका के संदर्भ में केन्द्र ने राज्य सरकारों को वन विकास हेतु क्रियान्वित किये । रहे कार्यक्रमों में गैर सरकारी संगठनों को सम्मिलित करने के निर्देश दिये हैं। नये मार्गदर्शनों के अनुरूप अब तक 15 राज्यों में नों के संरक्षण तथा विकास में गैर सरकारी संगठनों की सहायता ली जा रही है। साथ ही, भारत में केन्या तथा बांग्लादेश के ग्रीन ल्ट कार्यक्रम की भाँति संयुक्त वन प्रबंधन कार्यक्रम के अन्तर्गत साझेदारी वन प्रबंधन का कार्य किया जा रहा है। इन कार्यक्रमों में हिलाओं की अधिकाधिक भागीदारी सुनिश्चित करने का लक्ष्य है। वन नीति, 1988 के तहत प्राकृतिक वनों के संरक्षण पर सर्वाधिक ल दिया गया है। इसके तहत संसाधनों के नवीकरण की प्राकृतिक क्षमता के संरक्षण पर भी बल दिया गया है। वर्तमान में आंध्र देश, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा पश्चिम बंगाल में वन प्रबंधन कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जा रहा है। इसी प्रकार के कार्यक्रमों । क्रियान्वयन आगामी वर्षों में अन्य राज्यों में भी किया जायेगा। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करने के लिए भारत ने क्षेत्रीय स्तर पर पक्षीय संबंधों को प्राथमिकता दी है, ताकि वनों का विकास संभव हो सके। सामाजिक वानिकी तथा वनीय अनुसंधान हेतु भारत विभिन्न कार्यक्रमों में वित्तीय तथा तकनीकी सहायता प्राप्त हुई है। राष्ट्रीय वन नीति, 1988 में वन प्रबंधन के अनिवार्य तत्वों की ाख्या की गई है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण तत्वों का उल्लेख यहां किया गया है :-

- बचे हुए वनों तथा वन भूमि की सुरक्षा तथा उनकी उत्पादकता में वृद्धि।
- विशेष रूप से पर्वतीय ढाल वाले क्षेत्रों में वनाच्छादन। इसके अतिरिक्त, नदियों के जलग्रहण क्षेत्र, महासागरीय तटों तथा अर्द्ध शुष्क एवं मरूस्थलीय क्षेत्रों में वानस्पतिक विस्तार।
- जैव विविधिता के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय पार्कों, अभ्यारण्यों, जैवमंडलीय सुरक्षित क्षेत्रों तथा अन्य सुरक्षित क्षेत्रों के नेटवर्क को सुदृढ़ बनाने का प्रयास।
- वनोन्मूलन पर रोक लगाने के लिए वनों के आस-पास के क्षेत्रों में चारागाही की पर्याप्त उपलब्धता के साथ-साथ जलावन की लकड़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयास।
- लघु वन उत्पादों का संरक्षण। इसका कारण यह है कि ऐसे उत्पादों से जनजातियों को लाभ होता है।

राष्ट्रीय वन आयोग (National Forest Commission)

सघन और खुले वनों तथा गरान वनस्पति (मैंग्रोव) सहित भारत में लगभग 63.73 मिलियन हेक्टेयर भू-भाग वनाच्छादित है। द्रीय वन और पर्यावरण मंत्रालय द्वारा 7 फरवरी 2003 को राष्ट्रीय वन आयोग के गठन की अधिसूचना जारी की गई थी। न्यायमूर्ति एन. किरपाल की अध्यक्षता वाले इस आयोग के गठन का मूल उद्देश्य वन और वन्य जीवन के क्षेत्रकों के सभी पक्षों का पुनरीक्षण वन और पर्यावरण मंत्रालय के अधीन नई दिल्ली में अवस्थित आयोग का कार्यकाल दो वर्षों का होगा। आयोग के कार्यों में नांकित प्रमुख हैं:

- प्रचलित विधियों और नीतियों के वैज्ञानिक, पारिस्थितिकीय, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रभावों का अध्ययन और मूल्यांकन।
- वन प्रशासन का परीक्षण और मूल्यांकन।
- निरंतर बढ़ रही सामाजिक आवश्यकताओं के संदर्भ में राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर वनीय संस्थानों की प्रस्थिति का परीक्षण।
- वन और वन्य जीवन के सतत प्रबंधन का सुनिश्चितीकरण। इस संबंध में नीतिगत परिवर्तनों की आवश्यकताओं के अनुरूप अनुशंसा करने का कार्य।
- जैव विविधता के संरक्षण और पारिस्थितिकीय सुरक्षा का सुनिश्चितीकरण।
- वनीय प्रबंधन और जनजातीय समुदायों सहित स्थानीय जन समुदाय के मध्य समन्वय।

नए रोगों की पहचान के लिए जीन हस्ताक्षर (Genetic Signature)

डी.एन.ए. वस्तुत: चार क्षारों की एक अनुक्रम श्रृंखला है जिसमें एडनीन (A), ग्वानीन (G), थाइमीन (T), एवं साइटोसीन (C) नामक क्षार विद्यमान होते हैं। इनमें से कई अनुक्रम प्रोटीन के निर्माण हेतु आनुवांशिक कोड बनाते हैं इन्हें जीन कहा जाता है। डी.एन.ए. के अणु में उपस्थित कई क्षार अनुक्रम प्रोटीन के निर्माण में भाग नहीं लेते। ऐसे अनुक्रम व्यक्ति विशिष्ट होते हैं जिन्हें सामूहिक रूप से जीन हस्ताक्षर अथवा आनुवांशिक फिंगर प्रिंटिंग कहा जाता है।

किसी व्यक्ति के माता-पिता के आनुवांशिक फिंगर प्रिंट में उपस्थित क्षारों के अनुक्रम की पुर्नव्यवस्था से उस व्यक्ति के आनुवांशिक फिंगर प्रिंटिंग का निर्माण होता है। शत-प्रतिशत समान जुडवां बच्चों को छोड़कर किन्हीं दो व्यक्तियों में सामान आनुवांशिक फिंगर प्रिंट की सम्भाविता लगभग शून्य होती है। विभिन्न नमूनों जैसे बाल, त्वचा, लार, पसीना, अथवा वीर्य से प्राप्त डी.एन.ए. के नमूनों में विद्यमान जीन हस्ताक्षर किसी बच्चे के पितृत्व की पहचान अथवा उसकी वंशावली की जांच अथवा विश्वसनीयता के साथ अपराधियों की पहचान में सहायक होती है। इसके बावजूद यह महत्वपूर्ण है कि प्रभावित होने वाले व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं गरिमा को बनाए रखते हुए आनुवांशिक विश्लेषण को गोपनीय रखा जाय।

यह सर्वविदित है कि कई आनुवांशिक विविधताएं इस संभाव्यता को जन्म देती हैं कि कोई व्यक्ति कैंसर अथवा किसी अन्य रोग से प्रभावित है अथवा उपचार हेतु किसी विशिष्ट दवा का प्रयोग सम्भव है। आनुवांशिक परीक्षण का चिकित्सकीय मूल्य, संभावनाओं पर आधारित होता है क्योंकि ऐसे परीक्षणों में आनुवांशिक चिन्हकों का प्रयोग किया जाता है। इस कारण इन परीक्षणों की उपयोगिता केवल किसी रोग के जोखिम के आकलन तथा उपचार की प्रभावशीलता तक सीमित है। हाल के समय में जीनोमिक्स के क्षेत्र में हुई प्रगति के अतिरिक्त लाभ इस रूप में प्राप्त किए जा सकते हैं कि इनसे शरीर में पहले से विद्यमान किसी रोग की पहचान की जा सकती है। यह पहचान निश्चित रूप से विशिष्ट आनुवांशिक चिन्हकों पर निर्भर करती है। ऐसे चिन्हकों का प्रयोग प्रत्यारोपण के दौरान अंगदाता के विशिष्ट उतकों की पहचान में भी किया जा सकता है। इसी आधार पर अंगदाता एवं प्राप्तकर्ता की कोशिकाओं अथवा ऊतकों के मध्य अंतर किया जा सकता है।

जैव उपचार (Bio Remediation)

जैव उपचार एक प्रक्रिया है जिसमें सूक्ष्म जीवों अथवा उनके एंजाइमों का प्रयोग कर प्रदूषित पर्यावरण को पुन: उसकी मूल अवस्था में लाया जाता है। किसी विशिष्ट प्रदूषक जैसे-क्लोरीनीकृत कीटनाशक के विरूद्ध यह प्रक्रिया प्रयोग में लाई जा सकती है क्योंकि जीवाणु ऐसे कीटनाशकों को विखंडित कर देते हैं। इसके अतिरिक्त तेल रिसाव के विरूद्ध भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसमें कच्चे तेल के विखंडन के लिए विशिष्ट जीवाणुओं का प्रयोग उर्वरकों के साथ किया जाता है लेकिन भारी धातुओं जैसे कैड्मियम तथा सीसा सूक्ष्म जीवों द्वारा अवशोषित नही हो पाते। इन धातुओं का एकीकरण पारे के साथ होने पर खाद्य श्रृंखला अत्यधिक दुष्प्रभावित होती है। यह स्थिति तब और बिगड़ जाती है जब जीवों द्वारा इन धातुओं का जैव संचय किया जाता है। तेल

के खतरों से बचाने में जैव उपचार अत्यंत महत्वपूर्ण है। सूक्ष्म जीवों को पृथ्वी की सतह के नीचे अंत: क्षेपित करके भी तेल निकारक प्रभावों को कम किया जा सकता है। जैव उपचार इस रूप में भी महत्वपूर्ण है कि यह अन्य विधियों की तुलना में ख़र्चीला है।

ांश्लेषित जीव विज्ञान की शाखा में नई सम्भावनाएं (Prospects of Synthetic Biology)

ांश्लेषित जैविकी जोखिम अनुसंधान का एक नया क्षेत्र है जिसमें विज्ञान एवं अभियांत्रिकी दोनों शामिल होते हैं तथा इसमें विभिन्न के द्रष्टिकोण एवं पद्धतियों का प्रयोग होता है। सैन्थेटिक बायोलोजी का प्रयोग 1974 में वाक्लो जाइवलस्की द्वारा किया गया ाविक प्रणालियाँ ऐसी भौतिक प्रणालियाँ हैं जो रसायनों से निर्मित होती हैं। कई मामलों में संश्लेषित जैविकी को इस रूप में ना जाता है कि यह जीव विज्ञान के क्षेत्र में संश्लेषित रसायन शास्त्र के अनुप्रयोग का विस्तार है जिसमें नए एवं उपयोगी जैव ा तक का अध्ययन किया जाता है।

ओर अभियांत्रिकी जैविकी एक प्रौद्योगिकी है। संश्लेषित जैविकी में जैव-प्रौद्योगिकी का विस्तार शामिल होता है जिसका उद्देश्य जैविक प्रणालियों का निर्माण करना है जो सूचनाओं का प्रसंस्करण, रसायनों की व्यवस्था कुशलता, पदार्थो की संरचनाओं का , ऊर्जा उत्पादन, खाद्य पदार्थो की उपलब्धता और मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण का रखरखाव एवं उसमें सुधार कर सकते हैं ण के लिए सालमोना टाइफी न्यूरियम की टाइप-3 स्रावक प्रणाली के डिज़ाइन का निर्माण जिससे सिल्क प्रोटीन बनाया जा सके सके द्वारा स्रावित प्राकृतिक संवाहक प्रोटीन की तुलना में अधिक तन्य जैव पदार्थ है। संश्लेषित जैविकी परंपरागत जीन अभियंत्रिकी रूप में भिन्न है कि यह उन आधारिक तकनीकों के विकास पर अधिक बल देती है जो जीव विज्ञान की अभियंत्रिकी को ; सरल एवं विश्वसनीय बनाती है।

ज्ञानिक एवं तकनीकी चुनौतियों के अतिरिक्त संश्लेषित जैविकी में जैव नैतिकता, जैव सुरक्षा, इस क्षेत्र में कार्यरत एजेंसियों की , बौद्धिक संपदा संबंधित प्रश्न भी उठते हैं। अंतर्राष्ट्रीय संश्लेषित जैविकी संघ द्वारा स्वविनियम की एक पहल का प्रस्ताव किया : ताकि संश्लेषित जैविकी उद्योग विशेषकर डी.एन.ए. संश्लेषण से संबंधित कम्पनियों द्वारा विशिष्ट प्रसास किये जा सकें। कई कों ने यह तर्क दिया है कि सुरक्षा संबंधी विषयों के लिए एक बेहतर अग्रगामी दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। ऐसे वैज्ञानिकों सुझाव दिया है कि भौतिक अंकुश के साथ-साथ पोषणीय एवं जैविक अंकुश भी लगाया जाना चाहिए। इनके तहत स्वपोषण विशिष्ट अभिलक्षण वाले जीवों का विकास किया जाना चाहिए।

षत जैविकी के विकास हेतु कई समर्थकारी तकनीकें उपलब्ध हैं जिनका योगदान महत्वपूर्ण हो सकता है। ऐसी महत्वपूर्ण नाओं में जैविक भागों का मानकीकरण और जटिल संश्लेषित प्रणालियों में उनका प्रयोग शामिल है। ऐसे लक्ष्य की प्राप्ति .ए. के लिखने तथा पढ़ने (Sequance and Fabrication) जैसी पद्धति से किया जा सकता है। लेकिन सटीक माडल के निर्माण म्प्यूटर समर्थित डिजाइन बनाने हेतु कई कारकों की आवश्यकता है। डी.एन.ए. को पढ़ने का अर्थ किसी डी.एन.ए. के अणु में ाति न्यूक्लियोटाइड की व्यवस्था का निर्धारण है। संश्लेषित जीव वैज्ञानिकों द्वारा ऐसी व्यवस्था का उपयोग कई रूपों में किया है-

ाकृतिक रूप से पाए जाने वाले जीवों से संबंधित विस्तृत सूचनाएं उनके जीनोम की व्यवस्था के अध्ययनों से प्राप्त होती हैं। इससे से आधार बनाए जाते हैं जो संश्लेषित जैविकी के तहत विभिन्न भागों तथा युक्तियों का निर्माण करने में सहायक होते हैं।

से व्यवस्था क्रम का उपयोग नई डिजाइन की हुई प्रणालियों के अध्ययन में किया जाता है।

स्ती लेकिन विश्वसनीय व्यवस्थाएं किसी संश्लेषित प्रणाली तथा जीवों की पहचान तथा खोज को प्रोत्साहित कर सकती है।

ुपरबग का विकल्प

परबग के खिलाफ वैज्ञानिकों ने एक नयी तकनीक विकसित की है। वैज्ञानिकों ने मेंढक की त्वचा में मौजूद कुछ ऐसे रसायन लिए हैं, जो मानव शरीर के लिए हानिकारक जीवणुओं को नष्ट करने में सक्षम होंगे।

वैज्ञानिकों के अनुसार मेंढक जिस माहौल में रहते हैं, वहां कीटाणुओं का हमला होना आम बात हैं। लिहाजा प्राकृतिक रूप से उनकी त्वचा में सैकड़ों ऐसे कीटाणु नाशक तत्व पाए जाते हैं, जो सुपरबग का हमला बोलकर उनका सफाया कर दें। ये तत्व कई मायने में मानव शरीर के लिए खतरनाक साबित हो सकते हैं, लेकिन संयुक्त अरब अमीरात (यू.ए.ई.) विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक इसका हल भी खोजने में कामयाब रहे हैं। उन्होंने कीटणु नाशक तत्वों में से मनुष्यों के लए हानिकारक रसायनों की खोज प्रारम्भ कर दी है। इसके चलते आने वाले दिनों में चिकित्सा जगत के पास बिल्कुल सुरक्षित सुपरबग रोधी एंटीबायोटिक्स उपलब्ध हो सकेंगी। रिसर्च टीम ने मेंढक की त्वचा से निकलने वाले 100 नए एंटीबायोटिक्स की पहचान की है। इसमें एक एंटीबायोटिक ऐसा भी है, जो हॉस्पिटल सुपरबग मेथिलीन रेसिस्अेंस स्टाफायलोकोक्कस एयरस (एम.आर.एस.ए.) नामक बैक्टीरिया को नष्ट कर देगा। रिसर्च टीम ने बताया, मेंढक की त्वचा में मौजूद रसायनों से तैयार एंटीबॉयोटिक्स के जरिए सुपरबग से उच्च स्तर पर लड़ा जा सकेगा। इस दृष्टिकोण से इस खोज को काफी महत्वपूर्ण माना जा रहा है।

सिनरियम (Synriam)

सिनरियम एक दवा (औषधि) है। इस दवा का विकास देश की सबसे बड़ी फार्मा कम्पनी 'रैनबैक्सी लैबोरेटरीज लिमिटेड' द्वारा भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के सहयोग से किया गया है। 25 अप्रैल, 2012 को विश्व मलेरिया दिवस के अवसर पर केंद्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री ने देश में बनी पहली मलेरिया-रोधी दवा 'सिनरियम' का लोकार्पण किया। दवा तैयार करने में उड़ीसा, कर्नाटक और झारखंड के मेडिकल कॉलेजों तथा अस्पतालों के साथ 'भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद' से संबद्ध 'राष्ट्रीय मलेरिया अनुसंधान संस्थान' (NIMR) ने भी सहयोग किया है। सिनरियम नामक इस दवा का प्रयोग व्यस्कों में 'प्लास्मोडियम फैल्सीपैरम' जनित साधारण मलेरिया के उपचार में किया जाएगा। यह नई दवा भारत में विपणन हेतु 'भारत के औषधि महानियंत्रक' (DCGI : Drug Controller General of India) द्वारा अनुमोदित है तथा मलेरिया की 'संयोजन चिकित्सा' (Combination Therapy) में प्रयोग हेतु 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' (WHO) की अनुशंसाओं का पालन करती है।

मेडुस्वायड (Medusoid)

कैलिफोर्निया तकनीकी संस्थान के वैज्ञानिकों ने एक कृत्रिम जेलीफिश तैयार की, जो हृदय रोगियों के लिए फायदेमंद है। इस कृत्रिम जेलीफिश का नाम मेडुस्वायड (Medusoid) रखा गया। अनुसंधानकर्ताओं ने यह जेलीफिश सिलिकॉन एवं चूहों की हृदय कोशिकाओं से तैयार की। इसे और अधिक विकसित इंसानों के हृदय की तरह धड़कने में सक्षम बनाया जा सकता है। साथ ही इससे जैविक पेसमेकर को विकसित किया जा सकता है। प्रचलित पेसमेकर के मुकाबले इसके इस्तेमाल में विद्युत तरंगों की जरूरत नहीं पड़ेगी। इसका डिजाइन एक पंप की तरह है, जो इस तरह से बना है कि यह खुद से धड़कना शुरू कर दे। शोध नेचर बायोटेक्नोलॉजी प्रत्रिका में प्रकाशित हुआ। मेडुस्वायड में प्रोटीन की परत वाली आठ भुजाए हैं, यह असली जेलीफिश की मांसपेशियों के समान होती है, यह पेसमेकर 6 से 10 वर्ष तक काम कर सकता है।

पेंटोएआ एंग्लोमेरान्स जीवाणु

जैकब्स लोरेना (Jacobs-Lorena) के नेतृत्व वाले अमेरिकी वैज्ञानिकों के एक दल ने पेंटोएआ (Pantoea Agglomerans) नामक जीवाणु को अनुवांशिकी तौर पर विकसित करने में सफलता प्राप्त की है जो मलेरिया के संक्रमण को रोकने में सक्षम है। इस जीवाणु से निकलने वाले प्रोटीन से मलेरिया के जीवाणु नष्ट हो जाएंगे, परन्तु यह मच्छरों या लोगों के लिए नुकसानदेह नहीं हैं। यह जानकारी प्रोसिडिंग्स ऑफ द नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज (Proceedings of the National Academy of Science) नामक पत्रिका में जुलाई 2012 में प्रकाशित की गई। पेंटोएआ एग्लोमेरानस नामक जीवाणु (बैक्टीरिया) मलेरिया फैलाने वाले जीवाणुओं को समाप्त करने में 98 प्रतिशत सफल है।

टीएनएफ-अल्फा प्रोटीन (TNF–Alpha Protein)

वेस्टर्न ऑस्ट्रेलियन इंस्टिट्यूट फॉर मेडिकल रिसर्च के वैज्ञानिकों ने टीएनएफ-अल्फा नामक एक प्रोटीन की खोज की। यह (के प्रतिरक्षा कोशिकाओं को कैंसर ट्यूमर के अंदर घुसने और कैंसर कोशिकाओं से लड़ने में मदद करता है। यह खोज वेस्टर्न ट्रेलियन इंस्टिट्यूट फॉर मेडिकल रिसर्च के प्रोफेसर रूथ गांस के नेतृत्व में एक अंतर्राष्ट्रीय टीम ने की। परीक्षण के दौरान ाएफ-अल्फा सीधे अग्नाशय के ट्यूमर में प्रवेश कर गया और उससे ट्यूमर के बाहर की कोशिकाओं को कोई नकसान नहीं ता। परीक्षण के दौरान इस प्रोटीन ने ट्यूमर के भीतर रक्त नलिकाओं पर विशेष रूप से असर किया और प्रतिरक्षा कोशिकाओं भंदर प्रवेश करने के लिए रास्ता तैयार कर दिया।

बीएमपी बी प्रोटीन (BMP B–Protein)

कैंब्रिज विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने बीएमपी8बी नामक प्रोटीन की खोज की, बीएमपी8बी नामक प्रोटीन दिमाग और शरीर के ों में भूरे रंग की वसा की सक्रियता को नियंत्रित करता है। बीएमपी8बी नाम के ये प्रोटीन भूरे रंग की वसा को सक्रिय करती जससे वजन घटाने की चिकित्सा में मदद मिल सकती हैं। कैंब्रिज विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने बीएमपी8बी नामक प्रोटीन का पर प्रयोग किया।

पीआरआरटी 2 जीन (PRRT 2 Gene)

वैज्ञानिकों ने बच्चों में मिर्गी के दौर के लिए जिम्मेदार पीआरआरटी 2 नामक जीन की खोज की, बच्चों को पड़ने वाले मिर्गी रे को 'बेनाइन फैमीलियल इन्फैन्टाइल एपीलेप्सी' (BFIE: Benign familial infantile epilepsy, बीएफआईई) कहा जाता है, यह ग सभी बच्चों को नहीं होती लेकिन जिन्हें होती है उन्हें छः माह से दो साल की उम्र के बीच मिर्गी के दौरे पड़ते हैं, दो साल उम्र के बाद ये दौरे रूक जाते हैं। वैज्ञानिकों की टीम ने यह पता लगाया कि पीआरआरटी 2 नामक जीन में होने वाला परिवर्तन फआईई के मुख्य कारणों में से एक हैं। बीएफआईई वाले बच्चों में पीआरआरटी 2 जीन में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन की से जीन प्रोटीन को सही तरीके से कूटबद्ध नहीं कर पातां।

पेंटावेलेंट वैक्सीन (Pentavalent Vaccine)

भारत सरकार द्वारा हीमोफीलस इनफ्लुएंजा के खिलाफ सुरक्षा उपाय के रूप में शुरू किया जाने वाली यह एक वैक्सीन है जो रिया, टिटनेस, पुर्टसिस और हेपेटाइटिस बी जैसी बीमारियों से रक्षा करेगी। यह वैक्सीन 17 दिसम्बर, 2012 को तमिलनाडु में की गई। इस वैक्सीन को राष्ट्रीय प्रतिरक्षण कार्यक्रम में शामिल करने वाला भारत विश्व का 171वां देश है। हाल में सरकार ने बरों को निराधार बताया है जिनमें यह कहा गया था कि इस वैक्सीन के प्रयोग से श्रीलंका, भूटान, पाकिस्तान में कुछ बच्चों की हुई थी। उल्लेखनीय है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं नेशनल टेक्निकल एडवायजरी ग्रुप ऑन इम्यूनाइजेशन (NTAGI: National nical Advisory Group on Immunisation) ने इस वैक्सीन की संस्तुति की थी।

पैनस्पर्मिया (Panspermia)

पैनस्पर्मिया वह सकंल्पना है जिसमें यह अध्ययन किया जाता है कि जीवाणु किस प्रकार अंतर-ग्रहीय तथा अंतर-तारकीय स्थानों में भ्रमण करते हैं। यह वस्तुत: खगोल-जैविकीय का एक अवयव है। खगोल-जैवकीय, जीव विज्ञान की वह शाखा है जिसमें वायुमंडल में विद्यमान जीवन का अध्ययन किया जाता है। पृथ्वी से बाहर विद्यमान जीवन की पहली क्रमबद्ध खोज सन् 1960 में फैंक ड्रेक द्वारा की गई थी, जब उन्होंने ताउसिटी (Tau Ceti) और इप्सिलोन इरिडानी (Epsilon Eridani) नामक तारों का अध्ययन किया था। इस खोज के लगभग आधी शताब्दी पश्चात् यह अध्ययन, जिसे गैर पार्थिप बुद्धिमत्ता की खोज (SETI- search For Extra Terestrial Intelligence) कहा गया है, एक बड़े अंतर्राष्ट्रीय उपक्रम के रूप में विकसित हो गया है।

वस्तुत: पैनस्पर्मिया की संकल्पना सर्वप्रथम यूनानी दार्शनिक 'एनक्सा गोरस' ने विकसित की थी। 20वीं शताब्दी में आरहीहनियस ने यह स्पष्ट किया कि पैनस्पर्मिया का अर्थ जीवाणुओं के अंतर-तारिकीय स्थानों में लम्बी दूरी तक भ्रमण करने से है।

1970 के दशक में फ्रेड होयल एवं चंद्राविक्रम सिंह ने एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत की जिसमें सौर्य मंडल के सीमांतों से जीवाणु पृथ्वी तक आते हैं। इन वैज्ञानिकों के अनुसार जमीं हुई अवस्था में जीवाणु धूमकेतुओं से लिपटे होते हैं। ये सूर्य के सीमांतों तक भ्रमण करते रहते हैं। इसके उपरांत ये जीवाणु धूमकेतु की पूंछ पर फैल जाते हैं। पृथ्वी के वायुमंडल के सम्पर्क में आने पर पृथ्वी की गुरूत्वीय शक्ति के कारण ये पृथ्वी की ओर हस्तांतरित हो जाते हैं। इस सिद्धान्त को हाल के समय में प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों के आधार पर समर्थन मिला है। ऐसे प्रयोग में विशिष्ट जीवाणु प्रजातियों जैसे डाइनोकोकस रेडियोड्यूरेंस (Deinococcus radiodurans) के अस्तित्व में बने रहने के गुणों का अध्ययन किया गया था, जब उसे विकरण के प्रभाव में रखा गया था।

नासा के प्रयास

1. वर्ष 2006 में वाइल्ड 2 (Wild.2) नामक धूमकेतु के अध्ययन हेतु स्टारडस्ट मिशन भेजा गया था, जिसमें वहाँ उपस्थित पदार्थों का संग्रहण किया गया था। इसमें ग्लाइसिन नामक एक अमीनों अम्ल की उपस्थिति पाई गई थी।
2. फरवरी, 2010 में टेम्पल 1' नामक धूमकेतु के अध्ययन करने हेतु 'स्टारडस्ट नेक्सट' नामक मिशन भेजा जाएगा।

इसरो (ISRO) के प्रयास

1. टाटा आधारिक अनुसंधान संस्थान (Tata Institute of Fundamental Research) के अधीन कार्यरत राष्ट्रीय बैलून सुविधा द्वारा जनवरी, 2001 में वायुमंडलीय नमूने प्राप्त करने हेतु पहली बैलून उड़ान भेजी गई थी।
2. इन नमूनों का परीक्षण कर्डिफ (वेल्स की राजधानी) स्थित खागोलीय-जैविकीय केन्द्र तथा हैदराबाद स्थित कोशिकीय एवं आणविक जीव विज्ञान केन्द्र में किया गया था।
3. कार्डिफ स्थित प्रयोगशाला में मिल्टन वेन राइट ने बैसिलस सिम्पैक्स तथा स्टैफाइलोंकोकस पास्च्यूरी नामक जीवाणु प्रजातियों तथा

इनगायोटोंसियम एल्बम नामक कवक प्रजाति की खोज की गई

इसी प्रकार हैदराबाद स्थित प्रयोगशाला में शिवाजी एवं अन्य द्वारा बैसिलस की चार प्रजातियों की पहचान की गई-बी अल्टीट्यूडनस, बी. एरोफिलस, बी. स्टैटोस्पेरिकस,बी. एरियस। इन प्रजातियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें पराबैंगनी विकिरणों के प्रतिरोध की क्षमता पाई जाती है।

उल्लेखनीय है कि अब तक जीवाणुओं के 12 एवं कवकों के 6 समूहों की पहचान की जा चुकी है।

नारको एनालिसिस (Narco Analysis)

इसे 'ट्रुथ सीरम टेस्ट' भी कहा जाता है। इस प्रयोग के दौरान संबंधित व्यक्ति को डाक्टरों (चिकित्सकों) के निरीक्षण में प्रयोगशाला नियंत्रित स्थितियों में एक रसायन से उपचारित किया जाता है। यह रसायन संबंधित व्यक्ति को संम्मोहन की अवस्था में ले जाता है। माना जाता है कि इस प्रयोग के दौरान मना करने की शक्ति घट जाती है एवं प्रश्नों के उत्तर में हेर-फेर नही किया जा सकता। यन की मात्रा संबंधित व्यक्ति की उम्र,लिंग, स्वास्थ्य और शरीरिक स्थितियों (क्षमता) पर निर्भर करती है। रसायन की अधिक । व्यक्ति को कोमा में ले जा सकती है अथवा व्यक्ति की मृत्यु भी हो सकती है।

रसायन बारबिटुरेट्स समूह के हैं। यह समूह ऐसे यौगिकों का है जो बारबिटुरिक अम्ल से व्युत्पन्न किए गए हैं जैसे- फेनोबारबिटोन, ड्यम पेन्टोथाल आदि। ये सभी व्युत्पन्न यौगिक केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (स्नायु तंत्र), श्वसन दर को धीमा कर देते हैं, हृदय गति को वित करते हैं तथा रक्त दबाव एवं शरीर के तापमान को कम कर देते हैं। आरामदायक प्रभाव हेतु इन ड्रग्स को अधिक सुरक्षित ।, जैसे वेन्जोडिआजिपाइंस (Benzodiazepines) से प्रतिस्थापित किया जा चुका है।

पोलिग्राफी टेस्ट (Polygrophy)

यह 'लाई डिटेक्टर' के नाम से भी जाना जाता है। जब संबंधित व्यक्ति से प्रश्नों की एक श्रृंखला पूछी जाती है तब यह उपकरण भन्न शारीरिक नियंत्रकों, जैसे रक्त दाब, नाड़ी, श्वसन दर तथा त्वचा की चालकता इत्यादि को रिकार्ड करता है। यह माना जाता के किसी प्रश्न का गलत उत्तर देने से शारीरिक प्रतिक्रिया होगी, इस प्रकार की प्रतिक्रिया को किसी दिए हुए सही उत्तर की रिक प्रतिक्रिया से विभेदित किया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन के अध्ययन हेतु आइस मिशन सैटेलाइट (Ice Mission Satellite for Climate Change)

ध्रुवीय बर्फ एवं वायुमंडलीय परिवर्तनों से संबद्ध विभिन्न पदार्थों के अध्ययन हेतु प्रयुक्त उपग्रह को क्रायोसेट के नाम से जाना ा है। हाल ही में यूरोपियन स्पेस ऐजेंसी ने पृथ्वी के हिम (बर्फ)को जलवायु परिवर्तन किस प्रकार प्रभावित कर रहा है, के अध्ययन एक उपग्रह प्रक्षेपित किया है।

अप्रैल, 2010 को कजाकिस्तान से क्रायोसेट-2 का प्रक्षेपण किया गया। ध्रुवीय कक्षा से इस उपग्रह द्वारा भेजे गए आँकड़ों से ानिकों को यह जानने में सहायता मिलेगी कि कब और कहाँ हिम पिघल रही है अथवा बढ़ रही है?

सी ने वर्ष 2005 में क्रायोसेट का प्रक्षेपण किया था जो प्रक्षेपण के फेल हो जाने से नष्ट हो गया था। क्रायोसेट-2 इस मूल लाइट (उपग्रह) का स्थान लेगा। मिशन के उद्देश्य पूर्ववर्ती हैं अर्थात अटार्कटिक एवं ग्रीनलैंड में फैली हुई हिमचादरों की मोटाई ना, साथ ही साथ ध्रुवीय सागरों में तैर रहे हिमखंडों की मोटाई में परिवर्तनों को मापना। क्रायोसेट-2 के प्रक्षेपण के साथ ही अर्थ सप्लोरर के उपग्रहों की संख्या 3 हो गई है और ये सभी उपग्रह 12 महीनों की अल्पवधि में प्रक्षेपित किए गए हैं। क्रायोसेट-2, र्ष 2009 में प्रक्षेपित ग्रेविटी-फील्ड एंड स्टेडी-स्टेट ओशिन सर्कुलेशन एक्सप्लोरर्स (GOCE) मिशन एवं पिछले वर्ष नवम्बर,2009 प्रक्षेपित सोइल मोस्चर एंड ओशिन सैलिनिटी (SMOS) मिशन की श्रृंखला का है।

अर्थ एक्सप्लोरर्स, वैज्ञानिक समुदाय द्वारा पहचाने गए मुद्दों पर कार्यवाही करेगा और इसके द्वारा पृथ्वी तंत्र किस प्रकार काम करता है इसकों समझने में सहायता मिलेगी साथ ही साथ प्राकृतिक प्रक्रियाओं पर मानवीय गतिविधियों के प्रभाव का भी अध्ययन किया जाएगा। यद्यपि कायोसेट-2 मुख्य रूप से जर्मनी एवं फ्रांस द्वारा बनाया गया है परन्तु वैज्ञानिक रूप से इसका नेतृत्व यूनाइटेड किंगडम के प्रस्तावक एवं सैद्धांतिक निरीक्षक के रूप में डंकन विंघम यूनीवर्सिटी कालेज, लंदन द्वारा किया गया है।

ब्रेन मैपिंग टेस्ट (Brain Mapping)

ब्रेन मैपिंग अपराध-संदिग्ध व्यक्ति के ऊपर की जाती है। जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि अपराध से जुड़ी चीजों के प्रति उसकी प्रतिक्रिया कैसी है। संदिग्ध व्यक्तिय से पूछताछ की जाती है कि वह कोई जानकारी छुपा तो नहीं रहा है। कुछ संवेदक उसके सिर से संबद्ध किए जाते हैं। तत्पश्चात् उसे कुछ निश्चित चित्र (दृश्य) दिखाए जाते हैं। फिर उसे कुछ निश्चित ध्वानियाँ सुनाई जाती हैं। संवेदको द्वारा मस्तिष्क की वैद्युत गतिविधियों पर निगरानी रखी जाती है तथा P-300 तरंगों का अध्ययन किया जाता है। यह तरगें तभी उत्सर्जित होती हैं जब व्यक्ति का सम्बंध चित्र अथवा ध्वनि के रूप में दिए गए आवेगों के साथ होता है।

ब्रेन मैपिंग तकनीक

ब्रेन इलेक्ट्रिकल ओसिलेशन सिग्नेचर (BEOS):- यह तकनीक राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य एवं स्नायु विज्ञान संस्थान के चम्पादी रमन मुकुंदन के द्वारा खोजी गई थी। यह एक ऐसी तकनीक है जिसमें अपराध परीक्षण के दौरान इसे वैज्ञानिक परीक्षण के एक उपकरण के रूप में प्रयोग करके मस्तिष्क की वैद्युत गतिविधियों में उतार-चढ़ाव की व्याख्या की जाती है। यह तकनीक इस सिद्धांत पर कार्य करती है कि जब व्यक्ति को उन वैद्युत संवेगों के सम्पर्क में रखा जाता है जो उसने सम्बंधित मामले की जानकारी प्राप्त करने के समय अनुभव की थी, तो इस आधार ऐसे वैद्युत संवेगों के प्रति अनुक्रिया एक अपराधी द्वारा ही की जा सकती है। इसके लिए बोले गए वाक्यों अथवा एक टेलीविजन चित्र के रूप में दृश्य संवेगों की एक श्रृंखला के प्रभाव में व्यक्ति को रखा जाता है। अपराध की जानकारी रखने वाले संवेगों और जाँच हेतु दिए गए संवेगों के पारस्परिक हस्तक्षेप से वैद्युत गतिविधियों का एक निश्चित पैटर्न प्राप्त होता है।

ब्रेन फिंगर प्रिंटिंग:- इस तकनीक का अविष्कार वर्ष 1991 में लारेंस फारवेल ने किया था। यह एक विवादास्पद अपराध विज्ञान तकनीक है जिसमें कंप्यूटर स्क्रीन पर शब्द, वाक्य अथवा दृश्य दिखाकर मस्तिष्क वैद्युत तरंगों के प्रति प्रतिक्रिया को मापकर यह जानने का प्रयास किया जाता है कि विशिष्ट सूचना, मस्तिष्क के किस हिस्से में संग्रहित है। मस्तिष्क में अपराध से संबधित संग्रहित सूचनाओं को EEG (Electroencephalograph) में एक विशिष्ट पैटर्न द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इस तकनीक में मूलतः सुविख्यात P-300 मस्तिष्क तरंगों की प्रतिक्रिया का प्रयोग किया जाता है ताकि मस्तिष्क द्वारा ज्ञात सूचनाओं की पहचान की जानकारी प्राप्त की जा सके। इसके उपरांत MERMER (Memory and Encoding Related Multifaceted Electroencephalograph) नामक संकल्पना की खोज की गई जिसमें P-300 मस्तिष्क तरंगों की तुलना में अधिक सटीक एवं उच्चस्तरीय जानकारी देते हैं।

ब्रेन फिंगर प्रिंटिंग मस्तिष्क की संज्ञानात्मक अनुक्रियाओं का उपयोग करता है। यह व्यक्ति की भावनाओं पर निर्भर नहीं करता और न ही भावनात्मक अनुक्रियाओं से प्रभावित होता है। ब्रेन फिंगर प्रिंटिंग केवल सूचनाओं की जानकारी देता है न कि मंशा की। इसलिए यह निर्धारित नहीं किया जा सकता कि व्यक्ति अपराध के लिए दोषी है अथवा निर्दोष।

डी.एन.ए. पितृत्व परीक्षण (DNA Paternity Test)

डी.एन.ए. पितृत्व परीक्षण, आनुवांशिक हस्ताक्षर अथवा आनुवांशिक फिंगर प्रिंटिंग का वह उपयोग है जो यह निश्चित करता है कि दो व्यक्तियों के मध्य जैविक रूप से पिता-पुत्र संबंध है अथवा नही। पितृत्व-परीक्षण किसी व्यक्ति के जैविक पिता होने तथा मातृत्व-परीक्षण किसी महिला के जैविक माता होने का आनुवांशिक प्रमाण देता है। हालांकि आनुवांशिक परीक्षण सबसे विश्वसनीय मानक है फिर भी कई पुरानी तकनीकें भी प्रयोग में लाई जाती हैं जैसे ABO रक्त समूह टाइपिंग, विविध प्रकार के प्रोटीन एव एंजाइमों का विश्लेषण अथवा ह्यूमन ल्यूकोसाइट एंटीजन का उपयोग आदि।

वर्तमान में डी.एन.ए. परीक्षण पितृत्व निर्धारण की सबसे उन्नत एवं सटीक तकनीक है। इस परीक्षण में किसी व्यक्ति के किसी बच्चे का जैविक पिता होने की स्थिति में पितृत्व की सम्भाविता 99.9 प्रतिशत होती है लेकिन उसके जैविक पिता नही होने की स्थिति में यह सम्भावित शून्य प्रतिशत होती है।

इस परीक्षण में डी.एन.ए. प्रोफाइलिंग की प्रक्रिया शामिल है। यह एक स्थापित सत्य है कि व्यक्ति विशेष के प्रत्येक एवं सभी दैहिक कोशिकाओं (Somatic Cells) में ड.एन.ए. लगभग समान होता है। लैगिंक जनन के दौरान माता-पिता के डी.एन.ए. बिना किसी निश्चित क्रम के मिलकर एक नई कोशिका में विशिष्ट आनुवांशिक पदार्थ (जनैटिक मैटीरियल) का निर्माण करते हैं। इस प्रकार व्यक्ति विशेष का आनुवांशिक पदार्थ अपने माता-पिता के लगभग समान आनुवांशिक पदार्थ से मिलकर बना होता है। इस प्रकार यह आनुवांशिक पदार्थ व्यक्ति के केन्द्रीय जीनोम के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह केन्द्रक में पाया जाता है।

- दो व्यक्तियों के डी.एन.ए. क्रम की तुलना करके यह जाना जा सकता है कि किसी एक की व्युत्पत्ति दूसरे से हुई है अथवा नही। विशिष्ट डी.एन.ए. क्रम को देखकर यह ज्ञात किया जा सकता है कि एक के जीनोम अक्षरशः दूसरे की नकल (समान) है। इस प्रकार यह सिद्ध किया जा सकता है कि एक व्यक्ति का आनुवांशिक पदार्थ दूसरे से व्युत्पन्न किया गया है अर्थात पहला दूसरे का अभिभावक है।

केन्द्रक में यूक्लियर डी.एन.ए. के अतिरिक्त माइटोकांड्रिया में भी अपना आनुवांशिक पदार्थ होता है जिसे माइट्रोकांड्रियल जीनोम कहा जाता है। माइट्रोकांड्रियल डी.एन.ए. केवल माता की तरफ से आता है वह भी बिना किसी परिवर्तन के।

माइट्रोकांड्रियल जीनोम की तुलना पर आधारित संबंध को सिद्ध करना अधिक आसान है, अपेक्षाकृत केन्द्रीय जोनोम पर आधारित तुलना के। परन्तु माइट्रोकांड्रिया की जीन संरचना केवल यह सिद्ध कर सकती है कि दो व्यक्ति मातृत्व वंशावली से संबंधित है। इस कारण इसका महत्व सीमित है अर्थात यह पितृत्व की पहचान हेतु उपयोग में नहीं लाई जा सकती है।

जैव सुरक्षा (Bio Safety)

बड़े पैमाने पर जैविक संसाधनों के क्षरण को रोकने वाली संकल्पना जैव सुरक्षा कहलाती है। यह संकल्पना परिस्थतिकी एव मानव स्वास्थ्य पर बल देती है। आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी से विकसित जीवित रूपांतरित जीवों (Living Modified Orgnisms-LMOs) से जैव विविधता पर उत्पन्न होने वाले जोखिम से सुरक्षा इसका उद्देश्य है। जैव सुरक्षा पर कार्टाजिना प्रोटोकाल के अनुसार नई तकनीकों से विकसित होने वाले उत्पाद सुरक्षात्मक सिद्धान्तों पर आधारित होने चाहिए साथ ही विकासशील राष्ट्रों को अनुमति होनी चाहिए कि वे सार्वजनिक स्वास्थ्य को आर्थिक लाभ के ऊपर वरीयता दे सकें। यह प्रोटोकाल 11 सितम्बर, 2003 से प्रभावी है।

जीवित रूपांतरित जीवों का अर्थ

आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी से विकसित ऐसे जीव व्यापक स्तर पर आनुवांशिक रूप से रूपांतरित जीवों के लगभग समान होते हैं। दोनों के मध्य अंतर यह है कि जहाँ जीवित रूपांतरित जीव (LMOs) विकास में सक्षम होते हैं एवं शस्य फसलों से संबंधित होते हैं वही आनुवांशिक रूप से रूपांतरित जीव (GMOs) की संकल्पना में जीवित रूपांतरित जीवों के अतिरिक्त मृत जीव भी शामिल होते हैं। आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी इस रूप में परिभाषित है कि इसमें प्रयोगशाला में नाभिकीय अम्ल तकनीकों का प्रयोग अथवा वर्गीकृत परिवारों के बाहर कोशिकाओं का सल्लयन होता है ताकि प्राकृतिक शरीर क्रिया विज्ञान, प्रजनन अथवा पुनर्सयोजन के अवरोधों को दूर किया जा सके। ऐसी तकनीकें चुनाव तथा प्रजनन की परंपरागत तकनीकों से भिन्न होती हैं।

एल.ई.डी.परियोजना का प्रस्ताव (Proposal of LED Project)

हाल ही में तेल एव प्राकृतिक गैस निगम ने प्रकाश उत्सर्जित करने वाले डायोड (Light Emitting diode, L.E.D) की एक परियोजना के आरम्भ का प्रस्ताव किया है। एल.ए.डी. प्रकाश का एक अर्द्धचालक स्रोत है जिसका उपयोग कई उपकरणों में संकेतक लैम्पों के रूप में तथा प्रकाश व्यवस्था (मुख्यतः सड़कों के किनारे) में अधिकाशतः किया जाता है। व्यवहारिक इलेक्ट्रानिक अवयवों

के रूप में ऐसे डायोड का सर्वप्रथम 1962 में विकास किया गया था। आरंभिक चरणों में ऐसे डायोड निम्न तीव्रता वाले लाल प्रकाश के उत्सर्जन में सक्षम थे। लेकिन वर्तमान में इनके द्वारा दृश्य प्रकाश, पराबैगनी तथा अवरक्त जैसे तरंग दैर्ध्य भी उत्सर्जित किए जाते है जिनकी तीव्रता अपेक्षाकृत अधिक होती है।

वैज्ञानिक रूप से जब किसी एल.ई.डी. को स्विच आन (चालू) किया जाता है तब इलेक्ट्रान पुनर्संयोजन के योग्य हो जाते हैं। ऐसा पुनर्संयोजन उपकरणों में उपस्थित छिद्रों में होता है। पुनर्संयोजित होने वाले इलेक्ट्रानों द्वारा फोटान के रूप में ऊर्जा उत्सर्जित की जाती है। इस प्रभाव को वैद्युत प्रदीप्ति कहते हैं। इसके तहत प्रकाश का रंग फोटान के रूप में उत्सर्जित ऊर्जा के सापेक्ष तथा अर्धचालक के ऊर्जा अंतराल द्वारा निर्धारित होता है।

प्रदीप्ति ऊर्जा स्रोतों की तुलना में एल.ई.डी. से कई लाभ प्राप्त होते हैं जैसे-ऊर्जा की खपत में कमी, दीर्घ जीवन, अधिक मजबूती, छोटा आकार तथा विश्वसनीयता प्रमुख हैं। इस प्रकार एल.ई.डी. के उपयोग से प्रकाश व्यवस्था में प्रयोग की जाने वाली ऊर्जा की मात्रा को घटाकर उसके दसवें भाग तक लाया जा सकता है। वास्तव में एक एल.ई.डी. परंपरागत प्रदीप्ति लैंप की तुलना में प्रति वाट प्रकाश का उत्सर्जन दस गुना अधिक जबकि ऊर्जा कार्य कुशल सी.एफ.एल. से दो गुना प्रकाश अधिक उत्सर्जित करता है।

उल्लेखनीय है कि 23 राज्यों में ग्रामीण स्तर पर एल.ई.डी. की प्रदर्शन परियोजना चलाई जा रही है। इसी प्रकार 32 राज्यों/ संघ शासित राज्यों में सड़क पर प्रकाश व्यवस्था हेतु ऊर्जा कार्यकुशलता ब्यूरों (BEE) द्वारा एल.ई.डी. परियोजना चलाई जा रही है।

समुद्री अम्लीकरण (Ocean Acidification)

समुद्र के पी.एच. मान में कमी होना समुद्री अम्लीकरण कहलाता है। यह मुख्यतः वायुमंडल द्वारा कार्बन डाई आक्साइड के अवशोषण से होता है। सन् 1751 से 1994 के मध्य समुद्र तल के पी.एच.मान में लगभग 8.179 से 8.104 की कमी का आकलन किया गया। पी.एच. मान में -0.075 की कमी से समुद्री जल में 18.9 प्रतिशत H आयन की सांद्रता बढ़ गई। 21वीं शताब्दी के प्रथम दशक में समुद्र के पी.एच. मान में -0.11 का परिवर्तन आया। इससे वैश्विक स्तर पर समुद्र की अम्लीयता में लगभग 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

कार्बन चक्र की संकल्पना का समुंद्री अम्लीकरण में विशेष महत्व है क्योंकि कार्बन चक्र समुद्र, स्थलीय बायोस्फीयर, भूपृष्ठ तथा वायुमंडल के मध्य कार्बन डाई आक्साइड के परिवर्तन का वर्णन करता है। विभिन्न मानवीय गतिविधियों जैसे भूमि उपयोग में परिवर्तन, जीवाश्म ईंधन के दहन तथा सीमेंट के उत्पादन आदि के परिणामस्वरूप वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा और भी बढ़ गई है। इस कार्बन डाई आक्साइड की कुछ मात्रा वायुमंडल में शेष रह जाती हैं, कुछ स्थलीय पौधों के द्वारा प्रयोग कर ली जाती है तथा कुछ समुद्र द्वारा अवशोषित कर ली जाती है।

कार्बन चक्र दो रूपों मे सामने आता है- कार्बनिक कार्बन चक्र एवं अकार्बनिक कार्बन चक्र। समुद्री अम्लीकरण में अकार्बनिक कार्बन चक्र का विशेष महत्व है। समुद्री अम्लीकरण के अंतर्गत पृथ्वी के समुद्र में विभिन्न रूपों में घुलित कार्बन डाई आक्साइड शामिल है।

जब कार्बन डाई आक्साइड समुद्री जल में घुलती है तो यह जल से क्रिया करके आयनीकृत एवं गैर आयनीकृत पदार्थों के बीच एक संतुलन का निर्माण करती है जैसे घुलित मुक्त हुई आक्साइड, कार्बोनिक अम्ल, बाईकार्बोनेट एवं कार्बन आदि का निर्माण। इन पदार्थो का अनुपात समुद्री जल के ताप तथा क्षारीयता जैसे कारकों पर निर्भर करता है।

समुद्री जल में कार्बन डाई आक्साइड के धुलने से समुद्री जल में हाइड्रोजन आयन (H+) की सांद्रता बढ़ने लगती है एवं इस प्रकार समुद्री जल का पी.एच.मान. घटने लगता है।

समुद्री अम्लीकरण के संभावित प्रभाव

यद्धपि समुद्री जल द्वारा प्राकृतिक CO_2 का अवशोषण, मानवीय गतिविधियों द्वारा उत्सर्जित CO_2 से उत्पन्न जलवायु प्रभाव को कम करता है परन्तु ऐसा माना जाता है कि इसके परिणामस्वरूप समुद्री जल के पी.एच.मान में कमी होने से इसका नकारात्मक प्रभाव प्राथमिक रूप से कैल्शियम का निर्माण करने वाले समुद्री जीवों पर पड़ेगा। इससे समपोषी एवं विषमपोषी के मध्य खाद्य श्रृंखला

खतरे से कोशिका को सुरक्षा प्रदान करने के मध्य संतुलन स्थापित करते हैं।

क्योंकि ये जीवाणु स्वय, विकसित एवं मरम्मत कर सकने में सक्षम होते हैं। अत: अनुसंधानकर्ताओं में यह आशा है कि इलेक्ट्रान उपकरणों पर प्रकाश संश्लेषण जीवाणुओं के आवरण के निर्माण में इस खोज का योगदान किया जा सकेगा। इनसे उनकी ऊर्जा निर्गम परंपरागत वैद्युत परिपथ का भाग बनाई जा सकती है जो विभिन्न तीव्रता वाले प्रकाश के साथ सौर्य पैनल के अनुकूलन को दिशा दे सकता है।

हरिकेन (चक्रवात) की भविष्यवाणी हेतु कम्प्यूटर मॉडल

एक अद्वितीय (विलक्षण) कम्प्यूटर माडल को फ्लोरिडा स्थित ओशन एटमोस्फियरिक प्रिडिक्शन स्टडीज सेन्टर (COAPS) के वैज्ञानिकों ने विकसित किया है जो दक्षता से हरिकेन (चक्रवातों) का अद्भुत सटीकता के साथ भविष्यवाणी करता है। वर्ष 1995 से 2009 के दौरान उपरोक्त माडल ने 13.7 माध्य वाले नामित चक्रवातों का पूर्वानुमान किया था, जिसमें से 7.8 माध्य वाले हरिकेन थे। वास्तविकता में इस अवधि में औसतन 18.8 नामित चक्रवातों में से 7.9 हरिकेन थे। यह माडल विश्व स्तर पर बनाए गए कई गणितीय माडलों में से एक है जो चक्रवातों की मौसमी गतिविधियों का अध्ययन करते हैं लेकिन अन्य की तुलना में यह माडल अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ। माडल द्वारा उच्च कार्य निष्पादन करने वाले कम्प्यूटर का प्रयोग कर वायुमंडलीय, महासागरीय, एवं स्थलीय सूचनाओं का विश्लेषण किया जाता है। इस माडल का एक महत्वपूर्ण अवयव सागरीय सतह के तापक्रम का पूर्वानुमान करना भी है।

आकाशगंगाओं का WISE के माध्यम से अध्ययन

वाइड-फील्ड इंफ्रारेड सर्वे एक्सप्लोरर (WISE) एक अवरक्त तरंग दैर्ध्य वाली अंतरिक्ष वेधशाला है। यह नासा (NASA) के द्वारा खोजी गई थी और इसे 14 दिसंबर, 2009 को प्रक्षेपित किया गया था। पृथ्वी की कक्षा में भ्रमण करने वाला उपग्रह अपने साथ यह 40 सेमी. व्यास वाली अवरक्त किरण संवेदनशील वेधशाला को ले गया, जो 3-25 माइक्रान की तरंगदैर्ध्य वाले चित्रों के माध्यम से 6 महीने तक सम्पूर्ण आकाश का सर्वेक्षण करेगा। वेधशाला का आकृति संसूचक (Image Detector) इस प्रकार निर्मित किया गया है जो आकाश के अवरक्त प्रदर्शन (लक्षण) हेतु पूर्ववर्ती प्रक्षेपित अवरक्त अंतरिक्ष सर्वेक्षण वेधशालाओं जैसे अवरक्त अंतरिक्ष उपग्रह (IRAS), AKARI, COBE आदि से कम से कम 1000 गुना अधिक संवेदनशील है। इस वेधशाला की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि यह वेधशाला प्रत्येक दिन दर्जनों अज्ञात छुद्रग्रह की खोज रही है।

यह सम्पूर्ण मिशन आकाश के लगभग 99 प्रतिशत भाग का बढ़ती हुई सटीकता के आधार पर, आकाश की प्रत्येक स्थिति से, कम से कम 8 चित्रों को बनाएगा। अंतरिक्षयान को 524 किमी. ऊँचाई पर वृत्तीय, ध्रुवीय एव सूर्य-समस्थितिक (SUN-SYNCHRONOUS) कक्षा में 10 महीने की अवधि के लिए स्थापित किया जाएगा। इस दौरान यह प्रति 11 सेकंड चित्र की दर से 1.5 लाख चित्रों को खीचेगा। प्रत्येक चित्र लगभग 47 आर्कमिनट (ARCMINUTE) क्षेत्र की जानकारी देगा। आकाश के प्रत्येक क्षेत्र का 10 बार सूक्ष्मता से परीक्षण किया जाएगा।

स्थानीय सौर्य प्रणाली, मंदाकिनी आकाशगंगा और ब्रह्मांड से संबधित आंकड़ों को रखेगा। वाइज (WISE), के उद्देश्यों में क्षुद्र ग्रहों, शीत तारों जैसे कि भूरे वामन (Brown dwarfs) और सर्वाधिक उद्दीपित अवरक्त आकाशगंगाओं का अध्ययन शामिल है। WISE, मार्च, 2009 में प्रक्षेपित वाइड फील्ड इंफ्रारेड एक्सप्लोरर (WISE) जो अपनी कक्षा में पहुचने के एक घंटे के अन्दर नष्ट हो गया था, के प्रतिस्थापन के रूप में भी कार्य करेगा।

तेल रिसाव (Oil Spill)

मानवीय गतिविधियों के परिणामस्वरूप तरल पेट्रोलियम हाइड्रोकार्बन को वातावरण में मुक्त करना तेल रिसाव कहलाता है। यह निश्चित रूप से प्रदूषण का एक प्रकार है। तेल रिसाव जलीय वातावरण अर्थात समुद्र अथवा समुद्र तटीय क्षेत्र में पेट्रोलियम के मुक्त होने के सन्दर्भ में बहुत प्रसिद्ध शब्दावली है। तेल रिसाव में टैंकर, आफशोर प्लेटफार्म (समुद्रतट से दूर स्थित प्लेटफार्म), खोदे जा रहे

ई से कच्चे तेल, साथ ही साथ परिशोधित तेल से निर्मित उत्पाद (जैसे कि गैसोलीन, डीजल) और उनके सहउत्पाद तथा बड़े-बड़े जहाजों में प्रयुक्त भारी ईंधन जैसे बंकर ईंधन अथवा किसी भी प्रकार के तैलीय अपशिष्ट का रिसाव अथवा अपशिष्ट तेल आदि शामिल हैं। इस बिखरे हुए तेल को साफ करने में महीनों अथवा कई वर्ष भी लग सकते हैं।

पर्यावरणीय प्रभाव

यह तेल चिड़ियों के पंखों की संरचना में प्रवेश कर जाता है जिससे उनकी तापरोधी क्षमता में कमी आती है। इस प्रकार तापमान के परिवर्तन के प्रति चिड़ियाँ अधिक असुरक्षित हो जाती हैं साथ ही साथ जल में उनकी विचरणशीलता प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त यह उनके भोजन ढूंढने की क्षमता एवं शिकारियों से बचने की क्षमता को भी क्षति पहुंचाता है।

जलीय स्तनधारी जब तेल रिसाव के सम्पर्क में आते हैं तो उनके शारीरिक तापक्रम में परिवर्तन की क्षमता प्रभावित होती है। इस तेल युक्त पानी को निगलने से इनमें निर्जलीकरण तथा पाचनक्रिया के क्षीण होने की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

तेल के समुद्र तल पर फैलने के परिणामस्वरूप सौर्य प्रकाश काफी कम दूरी तक जल में जा पाता है जिससे जलीय पौधों एवं फाइटोप्लेंक्टन में प्रकाशसंश्लेषण की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है।

इससे पारिस्थितकीय तंत्र में खाद्य श्रृंखला बाधित होती है।

तेल उपभोग करने वाले जीवाणु

तेल उपभोग करने वाले जीवाणु तीन प्रकार के होते है- सल्फेट का उपचयन करने वाले, अम्ल का उत्पादन करने वाले और अन्य ऑक्सी जीवाणु। इनमें से पहले दो जीवाणुओं की श्रेणियाँ आनॉक्सी प्रकार की है जबकि अन्तिम की आक्सी प्रकार की है। जीवाणु प्राकृतिक रूप से पाए जाते हैं एवं पारिस्थितकीय तंत्र से तेल को नष्ट करने का कार्य करते हैं तथा इन जीवाणुओं के जैव माण (बायोमास) खाद्य श्रृंखला में अन्य जीवों की जनसंख्या को प्रतिस्थापित करता है।

गहरे समुद्री क्षेत्र में तेल रिसाव

सामान्यत: बी.पी. तेल रिसाव अथवा, मैक्सिको की खाड़ी तेल रिसाव अथवा बी. पी. तेल आपदा अथवा मैकान्ड्रो ब्लोआउट acondo blowout) कहा जाता है। इसे अब तक का सबसे बडा तेल रिसाव कहा गया है। यह तेल रिसाव समुद्र तल पर लगे लिंग रिंग में विस्फोट के कारण 20 अप्रैल, 2010 को हुआ था जिसके बाद यह अत्यधिक वेग से होने लगा था। लगभग 4.6 लियन बैरल कच्चे तेल के बाहर आने के बाद कुएं को ढक कर इस तेल रिसाव को रोकने की कोशिश की गई। यह अनुमान गया गया कि लगभग 53000 बैरल तेल का रिसाव प्रतिदिन हो रहा है। इस तेल रिसाव ने समुद्री एवं वन्य जीवन निवास्य क्षेत्रों व्यापक रूप से प्रभावित किया है। समुद्री तट, आर्द्र भूमि तथा ज्वारनदमुख तक तेल के फैलाव को रोकने हेतु बालू भरे अवरोधों छानने वाले जलयानों का उपयोग किया गया था। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिकों ने ऐसे पदार्थ प्रयोग किए हैं जो समुद्री जल में ही का अवशोषण कर सकते थे।

पर्यावरण संवेदनशीलता सूचकांक मानचित्रीकरण (ESI-Environmental Sensitivity Index) Mapping

पर्यावरण संवेदनशीलता सूचकांक मानचित्रों का प्रयोग तेल रिसाव की घटना के पूर्व संवेदनशील तटीय संसाधनों की पहचान में या जाता है ताकि सुरक्षा की प्राथमिकताओं का निर्धारण और तेल सफाई की रणनीतियों का नियोजन किया जा सके। ऐसे मानचित्र नांकित तीन श्रेणियों में शामिल सूचनाओं के आधार पर बनाए जाते हैं-तटीय रेखा संसाधन, जैविक संसाधन एवं मानव उपयोग धन।

क्लाउड कम्प्यूटिंग (Cloud Computing)

क्लाउड कम्प्यूटिंग एक संकल्पनात्मक प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों की साझेदारी साफ्टवेयर तथा अन्य सूचनाओं की इंटरनेट आधारित संगणना की जाती है। माँगे जाने पर यह सूचनाएं कम्प्यूटर तथा अन्य उपकरणों को दी जाती हैं जैसे विद्युत ग्रिड। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1980 के दशक में उपभोक्ता सेवा प्रदाता प्रौद्योगिकी प्रचलित रही थी लेकिन क्लाउड कम्प्यूटिंग ने इसे प्रतिस्थापित कर दिया है। इसमें उन उपभोक्ताओं से सूचना प्राप्त की जाती है जिन्हें प्रौद्योगिकी अवसंरचना में विशेषज्ञता अथवा उस पर नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती।

यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें इंटरनेट पर सूचना सेवाओं की उपलब्धता, उनके उपयोग एवं समर्थन के लिए एक मॉडल बनाया जाता है। इसमें इंटरनेट पर होने वाले सभी कार्यों को शामिल किया जाता है। इस कारण इंटरनेट आधारित युक्तियों एवं उपयोगिताओं तक एक ब्राउजर द्वारा इस प्रकार पहुंच बनाई जाती है जैसे उनके स्थानीय कम्प्यूटर में प्रोग्रामिंग की गई हो। 'क्लाउड' शब्द का प्रयोग इंटरनेट के एक लाक्षणिक शब्द के रूप में किया जाता है जो पूर्व में किसी टेलीफोन नेटवर्क के ऐसे चित्र को अभिव्यक्त करता था, जिसमें बादल के आकार की अभिव्यक्ति की जाती थी। वर्तमान में इंटरनेट एक कम्प्यूटर नेटवर्क तथा उसके अवसंरचनाओं को ऐसे चित्र से अभिव्यक्त किया जाता है।

एक सामान्य क्लाउड कम्प्यूटिंग सुविधा के तहत इंटरनेट पर एक से अधिक व्यवसायिक उपयोगिताएं, जो किसी अन्य साफ्टवेयर अथवा ब्राउजर में उपलब्ध है, प्रदान की जाती है जबकि साफ्टवेयर और सूचनाएं सर्वर में संग्रहित रहती हैं। क्लाउड कम्प्यूटिंग का एक महत्वपूर्ण तत्व यह है कि इसके तहत उपभोक्ता-आधारित अनुभव पर कार्य किया जाता है दूसरी ओर भौतिक अवसंरचनाओं पर उपभोक्ताओं का स्वामित्व नहीं होता। इस कारण उन्हें इन संरचनाओं पर पूंजीगत व्यय करने की आवश्यकता भी नहीं होती। वे केवल सेवा के रूप में संसाधनों का उपयोग करते हैं तथा उसी के अनुरूप भुगतान करते हैं। अधिकांशत: क्लाउड कम्प्यूटिंग में उसी प्रकार की उपयोगिता आधारित कम्प्यूटिंग प्रणाली उपलब्ध कराई जाती है जैसे विद्युत अथवा परंपरागत रूप से दी जाने वाली सेवाएं।

क्लाउड अभियंत्रिकी वह शाखा है जिसमें क्लाउड कम्प्यूटिंग के समाधानों, विश्लेषण, डिजाइन,एकीकरण, सेवा उपलब्धता तथा प्रचालन जैसी सेवाएं शामिल होती हैं। इसके विपरीत क्लाउड आर्किटेक्चर वह प्रणाली है जिसमें क्लाउड कम्प्यूटिंग उपलब्ध कराने वाली साफ्टवेयर प्रणाली का अध्ययन किया जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार के संचार अवयवों, उनकी प्रोग्रामिंग तथा इंटरनेट सेवाओं को भी शामिल किया गया है।
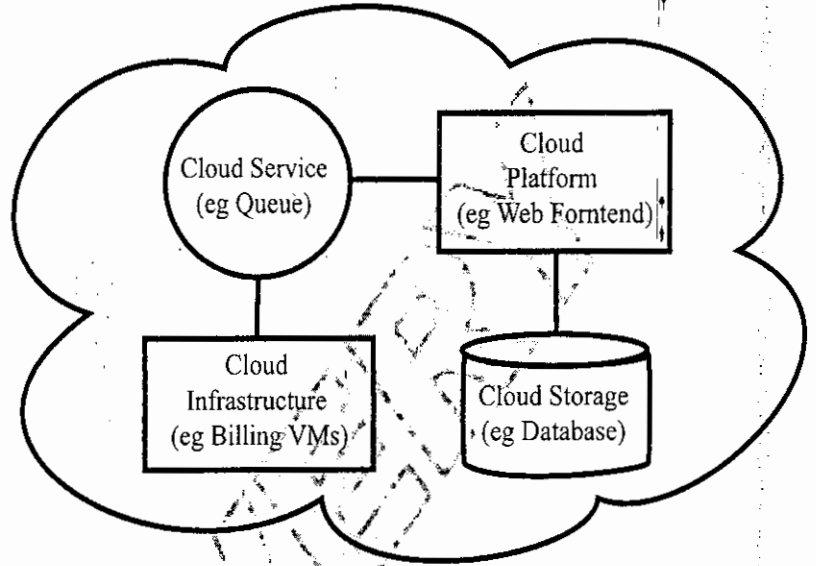
क्लाउड कम्प्यूटिंग से भिन्न संकल्पनाएं

1. **स्वचालित कम्प्यूटिंग-** ऐसी कम्प्यूटर प्रणालियों में स्वप्रबंधन की क्षमता होती है।
2. **क्लाइंट सर्वर माडल-** यह एक वितरण आधारित कम्प्यूटर प्रणाली है जिसमें सेवा प्रदाता एवं सेवा उपभोक्ता के बीच स्पष्ट अंतर किया जाता है।
3. **मेन फ्रेम कम्प्यूटर-** बड़े संस्थानों में ऐसे कम्प्यूटर प्रयोग में लाए जाते हैं तथा अत्यधिक मात्रा में सूचनाओं की प्रोसेसिंग एवं उनका संग्रहण किया जाता है जैसे-जनगणना से संबंधित आंकड़े, संसाधनों का नियोजन एवं प्रबंधन।
4. **उपयोगिता कम्प्यूटिंग-** संगणना से संबंधित संसाधनों के पैकेजिंग तथा सूचनाओं के संग्रहण एव उपयोग पर आधारित प्रणाली।
5. **पीयर-टू-पीयर-** वितरण आधारित कम्प्यूटर प्रणाली जिसमें एक केन्द्रीकृत समन्वय के आधार पर कार्य किया जाता है।

क्लाउड् कम्प्यूटिंग के प्रमुख अभिलक्षण

1. **चपलता/तीव्रता (एजीलिटी)**- ऐसे गुण के कारण उपभोक्ताओं को प्रौद्योगिकीय अवसंरचना और उसके अध्ययन से संसाधनों की उपलब्धता अत्यंत तीव्र गति से होती है।
2. **कीमत**- कम कीमत होने के साथ-साथ पूंजीगत का प्रचालनीयं व्यय में रूपातंरण।
3. **उपकरण तथा अवस्थिति की स्वतंत्रता**- उपभोक्ता द्वारा किसी भी उपकरण अथवा अवस्थिति पर क्लाउड कम्प्यूटिंग का प्रयोग किया जा सकता है।
4. **बहुल उपयोग**- एक समय में एक से अधिक उपभोक्ताओं द्वारा संसाधनों की साझेदारी की सुविधा उपलब्ध होती है।
5. **विश्वसनीयता**- एक से अधिक संसाधनों का समेकित उपयोग करने के कारण सूचनाओं की विश्वसनीयता बनी रहती है।
6. **सुरक्षा**- सूचनाओं के केन्द्रीकरण के कारण उन्हें पूर्णरूप से सुरक्षित रखा जा सकता है।
7. **रख-रखाव**- चूँकि क्लाउड कम्प्यूटिंग के अवयवों को प्रत्येक उपभोक्ता के कम्प्यूटर में रखने के बदले उन्हें केन्द्रीकृत किया जाता है। अत: उनका रख-रखाव अपेक्षाकृत सरल होता है।

उपयोगिताएं

1. वाणिज्यक रूप से उपलब्ध साफ्टवेयर का प्रबंधन और नेटवर्क आधारित सेवाओं तक पहुंच।
2. दूरस्थ अवस्थित कम्प्यूटर अथवा उपभोक्ताओं तक सुविधाओं की उपलब्धता। क्योंकि ऐसी सारी सुविधाएं किसी एक केन्द्रीकृत स्थान से उपलब्ध कराई जाती हैं।
3. अधिक मात्रा में सूचनाओं का संग्रहण एवं उपयोग।

एक नवीन स्मार्ट पैड-एडम (ADAM)

एक स्मार्ट पैड एडम (ADAM) हैदराबाद एवं बैंगलौर में संकल्पित तथा डिजाइन किया गया है। यह इतना छोटा है कि कहीं भी ले जाया जा सकता है तथा इतना बड़ा है कि कुछ भी किया जा सकता है। यह हैदराबाद के सात भारतीयों द्वारा स्थापित नोशन इंक नामक संस्था की संकल्पना है। इस उपकरण में 770 ग्राम भार, 0.6 इंच मोटाई, 10.1 इंच खरोचरोधी स्पर्शी स्क्रीन (Touch Screen) वाले भागों को शामिल किया गया है।

यह पहला उपकरण होगा जिसमें पिक्सल क्यूआई डिस्प्ले (Dixel QI Display) तथा कम खर्चीली एवं ऊर्जा बचत वाली स्क्रीन प्रयुक्त होगी जो तीन मोड जैसे एल.सी.डी.मोड, कम ऊर्जा वाले आधारिक रंग पारपरावर्ती मोड एवं अत्यंत कम ऊर्जा वाले सौर्य प्रकाश में पढ़े जाने वाले ई-पेपर मोड जिसमें आँखों पर कम दबाव पड़ता है में संचालित किया जा सकता है।

यह स्क्रीन फिंगर प्रिंट रोधी तथा तैलीय विकर्षण और चमकरोधी लेप से युक्त होगा। इस उपकरण का लगभग पूरा निर्माण ताइवान में किया जाएगा। छोटे आकार वाले एडम में जल, आवश्यक प्रकाश, संवेदक, एक्सेलेरोमीटर समर्थित जी.पी.एस., डिजिटल कम्पास तथा माइक्रोफोन शामिल होंगे। इसमें 16 अथवा 32 जी.बी. की फ्लैश मैमोरी रखी जा सकेगी जिसे सुरक्षित डिजिटल कार्ड का समर्थन मिलेगा।

इसके तीन अंत: फलक होंगे स्पर्शी स्क्रीन, आन स्क्रीन आभासी कीबोर्ड तथा स्क्रीन के पीछे स्थित ट्रैक पैंड जो 1800 के कोण पर फोटोग्राफी/वीडियोग्राफी कर सकेगा।

भारत में 4जी सेवाओं की सम्भावना

हाल ही में भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (TRAI) ने चौथी पीढ़ी के चलित बेतार ब्रॉडबैंड सेवाओं को आरम्भ करने से संबंधित एक वार्ता पूर्व पत्र जारी किया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पिछले एक वर्ष में 3 जी एवं 2 जी स्पैक्ट्रम के आवंटन

एवं लाइसेंस के विषयों पर विभिन्न संस्थाओं के मध्य हितों के टकराव के कारण विवाद बना हुआ है। 4 जी तकनीकों का डिजाइन कई सेवाओं की उपलब्धता हेतु किया है जैसे- उच्च गतिवाला इंटरनेट सम्पर्क, मल्टीमीड़िया सेवाओं जैसे टी.वी. प्रसारण, वीड़ियों कान्फ्रेंसिंग, मोबाइल फोन आधारित वाणिज्य आदि। इन सेवाओं के लिए इंटरनेट प्रोटोकाल का प्रयोग किया जाएगा। इसके अतिरिक्त यह सभी प्रकार के 2जी एंव 3 जी नेटवर्कों में भी कार्य कर सकता है। 2जी से 4जी तकनीकों की ओर उन्मुख होने का कारण यह है कि मोबाइल उपभोक्ताओं का आधार 525 मिलियन से अधिक का है तथा स्थिर फोन सेवा (Land Line) के लिए 12-14 प्रचालकों के बीच, औसतन 6-7 मेगाहर्ट्ज स्पेक्ट्रम के लिए प्रतिस्पर्धा बनी हुई है। इसी कारण भारत में ब्रॉडबैंड सेवाओं के विस्तार में व्यवधान है। ऐसी स्थिति में 4जी तकनीकें 2जी की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक कार्यकुशल होंगी। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या प्रचालकों को आवश्यक रेडियों आवृत्ति मिल पाएगी जिससे 4जी सेवाए दी जा सकें क्योंकि 3जी स्पेक्ट्रम के आवंटन पर ही विवाद बना हुआ है।

सरकार ने प्रत्येक सेवा क्षेत्र में प्रत्येक प्रचालन के लिए 20 मेगाहर्ट्ज तक आवंटन का निर्णय किया है तथा इसके लिए ब्रॉडबैंड बेतार सेवाओं की कुल आवृत्ति बैंड 2.5 गीगाहर्ट्ज निर्धारित है। यद्धपि यह निर्देश प्रौद्योगिकी को ध्यान में रखकर दिया गया है लेकिन इस आवृत्ति बैंड में सबसे लोकप्रिय तकनीक वाईमैक्स (Wimax) है। सरकार 2.5 गीगाहर्ट्ज और 2.1 गीगाहर्ट्ज के आवंटनों को एक दूसरे से अलग करने का प्रयास कर रही है ताकि 3जी सेवाओं के माध्यम से

मोबाइल टेलीफोनी का विकास

1जी- इसका प्रारम्भ 1980 के आरम्भ में उन्नत फोन सेवा के सेल्युलर नेटवर्को के वाणिज्यक उपयोग हेतु किया गया था। इस प्रणाली में एक समय में किसी एक उपभोक्ता द्वारा एक चैनल का प्रयोग किया जा सकता है।

2जी- इसका विकास 1990 के दशक में हुआ था जब मोबाइल प्रचालकों ने जी.एस.एम. एवं सी.डी.एम.ए. नामक दो प्रतिस्पर्धी डिजिटल स्वर मानकों का प्रयोग आरम्भ किया। 2जी तकनीक में ध्वनि एवं एस.एम.एस को तीव्र गति से भेजा जा सकता है जिसके लिए सम्पीड़न (Compression) एवं मोड्यूलेशन (Modulation) नामक तकनीकें प्रयुक्त होती हैं।

3जी- इस तकनीक में 5 मेगाहर्ट्ज पर बहुसंवहन प्रणाली प्रयुक्त होती है जिससे एक ही चैनल से ध्वनि, तथा सूचनाएं भेजी जा सकती हैं जिनकी दर कई mbps होती है।

देश भर में ब्रॉडबैंड की बेतार सेवाओं तक पहुँच बढ़ाई जा सके, दूसरी ओर 4जी तकनीक के तहत एक अन्य सेवा वाणिज्यक क्षेत्र में परिपक्व हो रही है जिसे लांग टर्म एवल्यूशन (L.T.E) कहते हैं। 4 दिसम्बर, 2009 को सबसे पहले स्वीडन के प्रचालक टेलिया-सोनेश ने लांग टर्म एवल्यूशन नेटवर्क का प्रयोग किया था। जिसके बाद जापान, दक्षिण कोरिया, और अमेरिका के कई प्रचालकों ने भी इसका परीक्षण किया। विशेषकर अमेरिका एवं यूरोप में 2जी स्पैक्ट्रम बैंड को 4जी तकनीक से प्रतिस्थापित करने हेतु आंदोलनात्मक प्रयास किए जा रहे हैं। 4जी में स्पैक्ट्रम की कार्यकुशलता 2जी से 40 गुना अधिक होती है। स्पैक्ट्रम कार्यकुशलता का अर्थ प्रति कोष स्पैक्ट्रम की प्रति हर्ट्ज क्षमता है। दूसरी ओर 3जी जिसमें संवहन (Carrier) के लिए न्यूनतम 2x5 मेगाहर्ट्ज आवश्यक होता है वही 4जी तकनीकों में 2x1-25 मेगाहर्ट्ज पर संवहन किया जा सकता है। इस कारण कार्यरत जी.एस.एम. प्रचालकों के लिए 4जी लांग टर्म एवल्यूशन तकनीक की उपलब्धता से प्रचालकों को कीमत संबंधी तथा संरचनात्मक लाभ प्राप्त होंगे। इस प्रकार 4जी तकनीकें न केवल उच्च गति वाली सूचना एवं वीड़ियों सेवाएं दे सकती हैं वरन् प्रति मेगाहर्ट्ज ध्वनि सूचनाओं को भी उच्च गुणवत्ता के साथ उपलब्ध कराया जा सकता है।

पराक्साइड़ बम विस्फोटक उपकरण का पता लगाने हेतु नवीन युक्ति (उपकरण)

TATP (ट्राई एसीटोन ट्राईपराक्साइड) एक पराक्साइड बम विस्फोटक उपकरण है और यह एयरपोर्ट पर बम गिराने वालों के लिए एक विकल्प है।

TATP एक अत्यन्त ही घातक विस्फोटक है एवं पिछले तीन दशकों में हुए आंतकवादी हमलों में इसने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसे आसानी से सस्ते कच्चे पदार्थो से बनाया जा सकता है और इसे खोजना काफी कठिन है।

यह आंतकवादियों में अत्यंत लोकप्रिय विस्फोटक है। परन्तु TATP को खोजना अब मुश्किल नहीं होगा। एक साधारण और कम खर्चीला

उपकरण, जो TATP के पांच माइक्रोग्राम तक को खोजने में सहायक है, विकसित किया गया है। उपकरण पेन जैसा दिखता है जो TATP आधारित विस्फोटकों को लिए हुए आतंकवादियों की योजना को विफल करने में नई दिशा दे सकता है। इस नवीन उपकरण को स्पर्श करने वाली विधि से संचालित किया जाता है, इस उपकरण की संवेदनशीलता अत्यंत उच्चस्तरीय है। यह पांच माइक्रोग्राम TATP तक की मात्रा को भी पहचान सकता है जिसे मानवीय आँख से नहीं देखा जा सकता। उपकरण को संचालित करने वाला उपकरण के निचले सिरे (Tip) को संदेहास्पद पदार्थ की सतह पर स्पर्श करता है। तदुपरांत टिप को हटा लिया जाता है और पेन के ऊपर इसे प्रतिस्थापित किया जाता है तथा तीनों लीवर को दबाया जाता है, प्रत्येक लीवर 300 माइक्रोग्राम लीटर विलयन को छोड़ता है। रंग में परिवर्तन ज्ज्च की उपस्थिति का संकेत देता है।

- यह युक्ति सभी उड़ानों को उपलब्ध कराई जाएगी जो एयर लाइन होस्टेज को तीव्रता एवं सटीकता के साथ संदेहास्पद पदार्थों की खोज में सहायक होगी। यह स्थलीय प्राधिकारियों को उस स्थिति में बेहतर एव तीव्र अनुक्रिया करने में मदद करेगा जब संदिग्ध आतंकवादी किसी प्रकार विमान के अन्दर पहुंच गया हो।

प्रोटोटाइप फास्ट ब्रीडर रियक्टर (Prototype Fast Breeder Reactor)

भारतीय नाभिकीय विद्युत निगम लिमिटेड (BHAVINI) के अनुसार, जो प्रोटोटाइप फास्ट ब्रीडर रियक्टर (PFBR) का निर्माण कर रहा है, इस प्रोजेक्ट ने विशिष्ट उपलब्धि हासिल कर ली है। 500 डॅम वाले प्रोटोटाइप फास्ट ब्रीडर रियक्टर (PFBR) के इस प्रोजेक्ट का निर्माण भारत में द्वितीय चरण के नाभिकीय शक्ति कार्यक्रम की शुरूआत का संकेत दे रहा है जिसके अंतर्गत फास्ट ब्रीडर रियक्टर की एक श्रृंखला स्थापित की जाएगी। प्रोटोटाइप फास्ट ब्रीडर रियक्टर (PFBR) में ईंधन के तौर पर प्लूटोनियम-यूरेनियम आक्साइड और शीतलक के तौर पर तरल सोड़ियम का प्रयोग किया जाएगा। यह मार्च, 2012 तक उत्पादन अवस्था में होगा। रियेक्टर के सभी आंतरिक भाग, जिसमें कोर और प्राथमिक सोडियम परिपथ शामिल है; एक मुख्य वेसल में स्थित होते हैं। तापीय बफल (Thermal Baffle) जो कि अभी हाल में ही स्थापित की गई थी उसमें दो संकेद्रिक कोष होते हैं जो लगभग 12.5 मीटर व्यास वाले एवं 5 मीटर लम्बे होते हैं।

परमाणु ऊर्जा विभाग के नाभिकीय शक्ति कार्यक्रम के प्रथम चरण के अंतर्गत दाबित भारी जल रियक्टरों की श्रृंखला पहले से ही बनाई जा चुकी है जिसमें प्राकृतिक यूरेनियम ईंधन के तौर पर एवं भारी जल शीतलक एवं मंदक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

बफल ठंडे सोडियम को मुख्य वेसल को ठंडा करने हेतु रास्ता उपलब्ध कराएगा और सामान्य परिचालन के दौरान रियक्टर के तापक्रम को 5500C से 4500C तक नीचे लाएगा। इसका उद्देश्य ताप से होने वाली जटिलता एवं संरचना के टूटने के खतरे से मुख्य वेसल को बचाना है।

बफल का निर्माण भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स द्वारा किया गया है तथा इसे मुख्य वेसल के साथ जोड़ा जाएगा। यह वैसल तैरने वाली मकड़ी की संकल्पना पर आधारित होगा। इसके दोनों संकेद्रिक कोषों से कार्य लेने हेतु सावधानी पूर्वक नियोजन एवं प्रक्रियाओं के विकास की आवश्यकता है क्योंकि परंपरागत विधियाँ इसमें प्रभावी नहीं होंगी। PFBR कल्पक्कम स्थित इंद्रा गाँधी परमाणु अनुसंधान केन्द्र द्वारा डिजाइन किया गया है तथा इसका जीवन काल 40 वर्षों का होगा।

साइबर युद्ध (Cyber War)

लंदन स्थित 'अंतर्राष्ट्रीय सामरिक संस्थान' की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार साइबर युद्ध सैन्य आधार संरचना, सरकारी एवं निजी संचार तंत्र और वित्तीय बाजारों के समक्ष एक क्रमश: बढ़ती हुई लेकिन बहुत कम समझी गई अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी खतरा उत्पन्न करता है एवं राज्यों के मध्य भविष्य में होने वाले संघर्षो में एक निर्णायक हथियार सिद्ध हो सकता है। राजनीतिक विवाद में साइबर आक्रमण के प्रभाव के बावजूद साइबर विवाद को किस प्रकार आंका जाय इस संदर्भ में वैश्विक स्तर पर थोड़ी समझ विकसित हुई है। कुछ विशेषज्ञों ने कहा है कि वर्तमान विश्व साइबर युद्ध की समस्या के साथ-साथ बौद्धिक विकास के उसी स्तर पर पहुंच गया है जैसा कि 1950 के दशक में नाभिकीय युद्ध की संभाव्यता थी। रिपोर्ट का नाम **'सैन्य संतुलन 2010'** है जो वैश्विक सैन्य

क्षमता और रक्षा आर्थिकी का एक आकलन प्रस्तुत करती है। अध्ययन में अन्य सुरक्षा खतरों की ओर भी संकेत किया गया है इनमें अफगानिस्तान में युद्ध, चीन का सैन्य विविधिकरण, इरान के परमाणु कार्यक्रम का विकास और इराक और कहीं भी आंतकवादी समूहों का प्रभाव आदि शामिल हैं। भविष्य में राज्यों के बीच संघर्ष तथा ऐसे संघर्ष जिसमें अलकायदा जैसे गैर राज्यीय कर्ता शामिल होंगे असंतुलित युद्ध तकनीकों पर निर्भरता के आधार पर पहचाने जाएंगे। ऐसा राज्य जो दूसरे राज्यों के प्रति शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण रखता हैं तीव्र गति से उन्नतशील प्रौद्योगिकी की आड़ में गुप्त आक्रमण करने में संक्षम होंगे। पारंपरिक एवं नाभिकीय हथियारों से भिन्न साइबर हथियारों की रोक पर कोई भी अंतर्राष्ट्रीय सहमति नहीं बनी है। साइबर युद्ध स्थिति किसी देश के आधारिक संरचना को असक्षम कर सकता है, दूसरे देश के सैनिक आंकड़ों में हस्तक्षेप कर उसकी अखंड़ता को प्रभावित कर सकता है, किसी देश के वित्तीय लेन-देन को भ्रमित अथवा अन्य सम्भावित तरीकों से पंगु कर सकता है।

साइबर युद्ध प्रणाली में, मुख्यत: इंटरनेट प्रणाली में अवैध घुसपैठ, कम्प्यूटर नेटवर्को एवं साफ्टवेयर प्रणाली को नष्ट-भ्रष्ट करना, हैकिंग एवं कम्प्यूटर जासूसी फोरेंसिक जैसी चीजें शामिल होती हैं। साइबर युद्ध आक्रमण, चाहें वे सरकार समर्थित हो अथवा निजी संगठनों द्वारा चालित हो, से संबंधित रिपोर्ट लगातार सामने आ रही हैं। हाल ही में गूगल ने चीन से संचालित साइबर आक्रमणों की जाँच का कार्य प्रारम्भ किया जिनमें कुछ मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के ई-मेल खातों को तोड़ने का प्रयास किया गया था।

दिसम्बर 2009 में दक्षिण कोरिया सरकार ने उत्तर कोरियाई हैकरों के द्वारा गुप्त रक्षा योजनाओं, जिनमें कोरियाई प्रायद्वीप पर युद्ध की स्थिति में दक्षिण कोरियाई अमरीकी रणनीति की रूप रेखा दी गई थी, को चुराने हेतु साइबर आक्रमण की रिपोर्ट दी थी। अब तक का सर्वाधिक कुख्यात साइबर आक्रमण एस्टोनिया में 2007 में घटित हुआ था जब 10 लाख से अधिक कम्प्यूटरों के माध्यम से सरकारी व्यापारिक एवं मीडिया व्यवसायों को अवरूद्ध कर दिया गया था। यह आक्रमण जो संभवत: रूस से संचालित हुआ था, ने दोनों देशों के बीच तीव्र राजनीतिक तनाव को जन्म दिया था तथा इससे हजारों मिलियन यूरो की क्षति हुई थी।

इस रिपोर्ट में निम्नांकित बातें उल्लेखनीय हैं-

1. अफगानिस्तान में आतंकवाद अत्यंत जटिल है एवं पाकिस्तान का पूर्ण सहयोग संदिग्ध है।
2. अलकायदा के पास अभी भी बगदाद में नियमित आक्रमण क्षमता मौजूद है।
3. यद्यपि तकनीकी बाधाएं इरान की नाभिकीय महत्वाकांक्षाओं को सफल नहीं होने दे रही हैं फिर भी इरान में संवर्धित यूरेनियम का संग्रहण बढ़ता जा रहा है।

ब्रह्मोस प्रक्षेपास्त्र (Brahmos Missile)

भारत विश्व में पहला देश है जिसने उड़ीसा तट से एक गतिशील युद्धपोत आई.एन.एस. रणवीर से सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल ब्रह्मोस का लम्बवत् प्रक्षेपण किया। यह मिसाइल आई.एन.एस. रणवीर पर स्थापित एक लम्बवत् लांचर से प्रक्षेपित किया गया तथा जिसमें अनुप्रयुक्त लक्षित जहाज आई.एन.एं. मीन को सफलतापूर्वक नष्ट किया। इस उड़ान ने मिशन की सभी आवश्यकताओं को पूरा किया तथा यह 100 प्रतिशत सफल था। यह परीक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण था जिसमें मिसाइल जो 2.8 मैक की चाल से लम्बवत लांचर द्वारा प्रक्षेपित किया था एवं जिसने सफलतापूर्वक लक्ष्य को नष्ट किया।

नौसेना ने पहले से ही 290 किमी. परास वाली ब्रह्मोस मिसाइल को अपने कुछ युद्धपोतों पर तैनात किया है। 711 करोड़ रु. की लागत वाली 49 फायरिंग इकाइयों को स्थापित किया है, ये झुके हुए प्रमोचक विन्यास पर आधारित हैं। अब इन हवा से आक्सीजन ग्रहण करने वाली मिसाइल को लम्बवत् प्रामोचक विन्यास में भी शामिल किए जाने की तैयारियां चल रही हैं।

यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि जबसे लम्बवत् प्रमोचक (लांचर), युद्धपोत के फर्श के नीचे स्थापित किया गया है, उन्हें वातावरणीय स्थितियों से बचाना सुरक्षित हो रहा है तथा हथियार प्रणाली को गुप्त रखने में सहायता मिली है। यह प्रणाली मिसाइल को किसी भी दिशा में आक्रमण करने हेतु सक्षम बनाती है।

लम्बवत् प्रमोचकों के कारण ब्रह्मोस 3600 स्पैक्ट्रम में भी लक्ष्य को भेद सकती है। ऐसे दो मोड्यूल 16 मिसाइलों के साथ प्रत्येक

तीन कोलकाता क्लास पी-15 डिस्ट्रायरों में स्थापित किये जा रहे हैं जो 11.662 करोड़ रु. की लागत से मझगांव डाक में बनाई जा रही है। ब्रह्मोस, तीन तलवार क्लास स्टील्थ फिग्रेट पर स्थापित की जाएगी जिसे कैलिनिगार्ड (रशिया) में यानतार शिपयार्ड पर 5514 करोड़ रु. के प्रोजेक्ट के अंतर्गत निर्मित किया जाऐगा।

सेना ने दो और ब्रह्मोस ब्लाक-II लैंड अटैक क्रूज मिसाइल (LACM) 'सटीक लक्ष्य भेदक हथियार' के रूप में निर्मित की है जिसे अनियोजित शहरी वातावरण में स्थित छोटे लक्ष्यों को लक्षित करने में सक्षम बनाया गया है। ब्रह्मोस ब्लाक-II को शामिल करना इसलिए भी आवश्यक था क्योंकि पाकिस्तान चीन के सहयोग से विकसित नाभिकीय क्षमतायुक्त बाबर, जिसका परास 500 किमी है, बड़ी मात्रा में अपनी सेना शामिल कर रहा है। ब्रह्मोस-II को देश की सीमा के बाहर स्थित आतंकवादी प्रशिक्षण केन्द्रों पर Surgical Strickes के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है वह भी बिना किसी समपार्शिविक क्षति पहुंचाए। 290 किमी. परास वाली ब्रह्मोस-I विन्यास की एक रेजीमेंट, जिसमें 67 मिसाइलें, 5 सचल स्वतंत्र प्रमोचक, जो 12x12 Tatra गाड़ी पर स्थित है और दो सचल कमांड पोस्ट तथा अन्य उपकरण, पहले से ही सेना में प्रयोग की जा रही है। सेना ने प्रथम चरण में 8352 करोड़ रु. की लागत वाली दो ब्रह्मोस रेजीमेंट का आर्डर पहले ही दे दिया था। ब्रह्मोस-II विन्यास बहुलक्षित वातावरण में स्वू Radar cross section के साथ विशिष्ट छोटे लक्ष्यों के लिए निर्मित की गई है।

भारत एवं रूस ने 5 और 7 मैक की रफ्तार से उड़ने में सक्षम हाइपरसोनिक ब्रह्मोस-II मिसाइल के निर्माण हेतु प्रारम्भिक कार्य प्रारम्भ कर दिया है। अंतत: सशस्त्र बल की योजना 1500 किमी. मारक क्षमता वाली न्यूक्लियर टिप्ड LACM के विकसित करने की है। अग्नि जैसे बैलिस्टिक मिसाइलों के विपरीत क्रूज मिसाइलें वातावरण को नहीं छोड़ती और अपने उड़ान मार्ग द्वारा समर्थित एवं निर्देशित होती है। क्रूज मिसाइलें निम्न अक्षांशों पर उड़ने के परिणामस्वरूप शत्रु के रडारों एवं वायु रक्षा तंत्र से बच सकती हैं साथ ही साथ बैलिस्टिक मिसाइलों की तुलना में ये सस्ती हैं एवं अधिक सटीकता तथा सरल ढंग से संचालित की जा सकती हैं।

धनुष एवं पृथ्वी (Dhanush & Prithvi)

सशस्त्र बलों में और अधिक क्षमता विकसित करते हुए भारत ने स्वदेश में ही निर्मित बैलिस्टिक मिसाइल पृथ्वी-II एवं धनुष का उड़ीसा के तट से प्रक्षेपण किया। जहाँ पृथ्वी-II, चांदीपुर के परीक्षण केन्द्र से सचल प्रमोचक द्वारा प्रक्षेपित की गई वहीं धनुष मिसाइल पुरी के निकट बंगाल की खाड़ी में आई.एन.एस. सुभद्रा से प्रक्षेपित किया गया। निम्न परास वाली सतह से सतह मार्ग वाली पृथ्वी-II मिसाइल, जो पहले से ही सेना में शामिल है, का सेना द्वारा यह प्रायोगिक परीक्षण था। इस मिसाइल को स्ट्रेटिजिक कमांड फोर्स द्वारा निर्देशित किया जाता है। भारत की पहली बैलिस्टिक मिसाइल 'पृथ्वी' देश के इंटीग्रेटेड गाइडेड मिसाइल डेवलपमेंट प्रोग्राम (एकीकृत निर्देशित प्रक्षेप्रास्त्र विकास कार्यक्रम) के अंतर्गत निर्मित की गई है जिसमें 500 किग्रा वारहैड़ ले जाने की क्षमता है और इसमें तरल नोदक (Liquid Propulsion) वाले दो इंजन हैं। 9 मी. लम्बाई एवं 1 मी. व्यास वाली पृथ्वी -II मिसाइल एडवांस इनरशियल गाइडेंस सिस्टम (Advanced Inertial guidanca System) को प्रयोग करते हुए स्वनिर्मित पथ पर सटीकता के साथ लक्ष्यों तक पहुंचती है। प्रक्षेपण के बाद के विश्लेषण हेतु प्रक्षेपास्त्र के सम्पूर्ण पथ की जानकारी उच्चस्तरीय रडारों के समूह से प्राप्त की गई है तथा ऐसे विश्लेषणों के लिए अलग-अलग स्थानों पर वैद्युत प्रकाशीय टेलीमेट्री केन्द्र बनाए गए हैं।

नाभिकीय क्षमता से युक्त धनुष,जो पृथ्वी का नौसैनिक संस्करण है, ने पूर्व निर्धारित पथ का अनुसरण किया तथा लक्ष्य के निकट स्थापित दो नौ सैनिक पोतों ने इसकी सटीक जानकारी प्राप्त की। 350 किमी. मारक क्षमता वाली इस मिसाइल से नौसेना को अधिक यथार्थता के साथ शत्रु लक्ष्यों पर आक्रमण की क्षमता प्रदान होगी। तट के साथ स्थिति परिष्कृत रडार तंत्र ने इसके सम्पूर्ण पथ पर निगरानी रखी थी। एक चरण वाला यह प्रक्षेपास्त्र 6 टन का है यह द्रव प्रणोदक से संचालित है।

डाटा प्राइवेसी डे (Data Privacy Day)

अमेरिका, कनाडा एवं यूरोपीय संघ के 27 देशों द्वारा 20 जनवरी को **'डाटा प्राइवेसी डे'** के रूप में मनाया गया जिसका महत्व सामान्य जीवन में निजता के ही समान निजी आंकड़ा सुरक्षा को महत्व देने में है। इस दिन कुछ बड़ी निर्गमित कंपनियों ने अपने लाखों उपभोक्ताओं के निजी आंकड़ों की सुरक्षा के संकल्प को भी दोहराया।

सूचनाओं की बढ़ी हुई आनलाइन हिस्सेदारी के परिदृश्य में, विशेषकर सोशल नेटवर्क के क्षेत्र में, यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि एक बार पीछे मुड़कर यह देखा जाय कि न केवल व्यक्तिगत सूचनाओं की सुरक्षा की जाय वरन् यह भी सुनिश्चित किया जाय कि सूचनाओं की आन लाइन हिस्सेदारी के लिए किस तरह उचित मर्यादाओं का पालन किया जाय।

पुनर्संशोधित सूचना तकनीक अधिनियम, 2008 में अमेरिका एव यूरोपीय देशों के आंकड़ा सुरक्षा अधिनियम में विद्यमान अधिकांश नियमों व विनियमों को शामिल कर लिया गया है। चूँकि भारत के पास कोई प्रथक निजता संरक्षक कानून नहीं है अत: अधिकांश उपभोक्ता जो निजी आंकड़ों के दुर्पयोग से पीढ़ित है उन्हें दूसरे अधिनियमों में ही न्याय खोजना होगा।

इस संबंध में काफी चिंता व्यक्त की गई है कि गूगल एवं फेसबुक जैसी कंपनियां आनलाइन आंकड़ों की सुरक्षा करने हेतु क्या करेंगे? किन्तु इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि उन लोगों के बारे में क्या कदम उठाया जाय जो जानबूझ कर सोशल नेटवर्क साइटों पर अपनी निजी सूचनाएं रखना चाहते हैं। सामान्यत: फेसबुक एवं लिक्ड्इन पर लोग अपनी व्यवसायिक सूचनाएं प्रकाशित कर देते हैं जिनका दुरूपयोग हैकरों द्वारा किया जा सकता है।

एडवान्स टेक्नोलॉजी व्हीकल फ्लाईट का परीक्षण

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) ने 3 अप्रैल, 2010 को सफलतापूर्वक नई पीढ़ी के उच्च उत्पादकतापूर्ण साउंडिंग राकेट का श्री हरिकोटा स्थित स्पेसपोर्ट से प्रक्षेपण किया। एडवांस टेक्नोलॉजी व्हीकल (ATV-DOI) जिसका वजन 3 टन है, इसरो द्वारा विकसित सबसे भारी साउंडिंग राकेट है। इसमें एक सुपर सोनिक कम्बस्चन रैमजेट (स्क्रैमजेट) तथा वायु से आक्सीजन प्राप्त करने वाली तकनीक का प्रयोग किया गया है।

राकेट सफलतापूर्वक 6 मैक से अधिक गति से लगभग 7 सेकेण्ड तक उड़ा था। ये स्थितियाँ एक्टिव स्कैमजेट इंजन कम्बस्चन माड्यूल के सतत दहन के लिए आवश्यक है जो अगले ए.टीवी. उड़ान के लिए निर्धारित हैं।

एयर ब्रीदिंग राकेट सिस्टम अपने आस-पास के वातावरण से आक्सीजन प्रयुक्त करता है और उड़ान अवस्था में ईंधन को जलाता है जिससे ऊपर उड़ान हेतु आवश्यक बल मिल सके। यह पारंपरिक रासायनिक राकेट तंत्र, जो अपने साथ उड़ान हेतु आक्सीजन एवं ईंधन दोनों ले जाता है, से भिन्न है। इस प्रकार एयर ब्रीदिंग राकेट पारंपरिक राकेट की तुलना में अधिक हल्के एवं अधिक कार्यकुशल होते हैं जिससे अंतरिक्ष परिवहन की लागत में कमी आती है। अत: उपग्रह को कक्षा में स्थापित करने में लागत कम आएगी। स्क्रैमजेट इंजन का विकास अत्यंत जटिल था एवं इसमें कई तकनीकी चुनौतियां शामिल थी। अत्यंत तीव्र गति की हवा (1.5 किमी./सेकेण्ड) के ईंधन के साथ मिश्रण से दहन हेतु सततता प्राप्त होती है।

ब्रॉडबैंड हेतु स्पेशल परपज व्हीकल (SPV)

ब्रॉडबैंड आधारित संरचना को प्रोत्साहित करने हेतु सरकार एक स्पेशल परपज व्हीकल (SPV) के गठन की योजना बना रही है ताकि पाँच लाख किमी. लम्बी प्रकाश तंतु नेटवर्क (Optical Fibre Network) बिछाकर देश के सभी ग्राम पंचायतों को जोड़ा जा सके। केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम, जैसे भारत संचार निगम लिमिटेड, रेलटेल और पावर ग्रिड जिनके अपने प्रकाश तंतु केबल पहले से ही हैं, इस प्रोजेक्ट के भाग होंगे। नेशनल इंफोर्मेटिक्स सेंटर और सेंटर फॉर डेवलपमेंट आफ टेलीमेट्रिक्स भी इस प्रोजेक्ट के भाग होंगे एवं इस सेवा को उपलब्ध कराने हेतु आवश्यक हार्डवेयर, अनुप्रयोग तथा साफ्टवेयर आदि के विकास हेतु उत्तरदायी होंगे। इस स्पेशल परपज व्हीकल (SPV) की स्थापना हेतु इसकी प्रक्रिया विधि तैयार करने के लिए किसी बाहरी परामर्शदाता को नियुक्त किया जाएगा।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पी.एस.यू.) के द्वारा पहले से ही बिछाई गई प्रकाश तंतु (Optical Fibre) इस प्रोजेक्ट हेतु एकीकृत करके प्रयोग में लाई जाएगी।

सेवा प्रदान करने हेतु संरचना एवं लागत जानने हेतु एक पायलट परियोजना, जो 4 राज्यों के 100 ग्राम पंचायतों को जोड़ने हेतु, अगले 3 महीने में प्रारम्भ की जाएगी तथा इसमें राष्ट्रीय सूचना केन्द्र द्वारा विकसित साफ्टवेयर राज्य सरकारी सेवाओं में परीक्षण हेतु प्रयुक्त

किया जाएगा। सरकार ने इस सम्पूर्ण प्रोजेक्ट के क्रियान्वयन हेतु यूनीवर्सल सर्विस आब्लीगेशन फंड (U.S.O.F-Universal Services Obligation Fund) से 18,000 करोड़ रु. आवंटित किए हैं। पायलट प्रोजेक्ट के आधार पर यूनीवर्सल अब्लीगेशन फंड प्रबंधक दो वर्षों में पूरे होने वाले सम्पूर्ण प्रोजेक्ट का निरीक्षण करेगा।

नेटवर्क स्थापित किए जाने के पश्चात् दूरसंचार विभाग प्रत्येक ग्राम पंचायत को 3 ब्राडबैंड कनेक्शन शुल्क मुक्त अगले तीन साल के लिए, कम्प्यूटर एवं प्रिंटर की स्थापना के साथ, उपलब्ध कराएगा। यह भी प्रस्ताव है कि बिना किसी चार्ज के तीन टेलीफोन कनेक्शन और एक टी.वी. कनेक्शन ग्राम पंचायतों को उपलब्ध कराया जाऐगा।

ई-कचरा (E-Waste)

इसे वेस्ट इलेस्ट्रीकल एण्ड इलेक्ट्रानिक इक्युप्मेन्ट भी कहा जाता है। जिसमें क्षतिग्रस्त कम्प्यूटर तथा उसके अवयव मोबाइल फोन C.D., T.V. रेफ्रिजरेटर, CFL, CRT, Picture Tube जैसे पदार्थ शामिल होते हैं। इन पदार्थों से भारी-धातुओं के अतिरिक्त कई अन्य हानिकारक तत्वों का उत्सर्जन होता है जैसे लेड, कैडमियम, एल्युमीनियम, मरकरी, वेरिलियम, कार्बन आदि। यह अनुमान लगाया गया है कि विश्व में लगभग 50 मिलियन टन ऐसे कचरे प्रतिवर्ष उत्सर्जित होते हैं। ई-कचरों में शामिल हानिकारक पदार्थों के निम्नांकित प्रमुख देखे जा सकते है 1.पृष्ठ प्रवाह के कारण मृदा प्रदूषण में वृद्धि जिससे सूक्ष्म जीवों का विनाश हो जाता है और मृदा में उपस्थित हयूमस की मात्रा घट जाती है।

2. जल में ऐसे पदार्थों के घुलने से जलीय पारितंत्र में जैविक आक्सीजन की मांग बढ़ जाती है जो जलीय जीव जन्तुओं के लिए हानिकारक है।
3. भूमिगत जल के प्रदूषित हो जाने से पौधों में ऐसे प्रदूषक मुख्यत: श्वसन तथा प्रकाश संश्लेषण जैसी प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं।
4. मानव शरीर में ऐसे प्रदूषक कैंसर नेत्ररोग तथा स्नायु विकार जैसी समस्याएं उत्पन्न करते हैं।

इन कचरों का निस्तारण सामान्यत: भूमिगत किया जाता है लेकिन पुर्नचक्रण के बाद इनमें से कई दुबारा प्रयोग में लाए जाते हैं।

भारत के ई-कचरे में अत्यधिक वृद्धि

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) ने फरवरी, 2010 में बाली में ई-कचरे (e-waste) के संदर्भ में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में भविष्यवाणी की गई है कि वर्ष 2020 तक चीन और दक्षिण अफ्रीका में कम्प्यूटर से संबंधित ई-कचरा, वर्ष 2007 के स्तर से 400 प्रतिशत अधिक होगा। वहीं भारत के सन्दर्भ में यह वृद्धि 500 प्रतिशत अधिक होगी। बेकार हो चुके मोबाइल फोन से ऐसे ई-कचरे की मात्रा में वर्ष 2007 की तुलना में 18 गुना की वृद्धि का अनुमान लगाया गया है।

ई-कचरे में डेस्कटाप कम्प्यूटर, जिसके विभिन्न आंतरिक भाग प्रिंटेड सर्किट बोर्ड, हार्ड डिस्क ड्राईव, चिपसेट्स आदि शामिल है। 'पुर्नचक्रण: ई-कचरा से संसाधन निर्माण' शीर्षक रिपोर्ट में 11 प्रतिनिधि विकासशील देशों से संकलित आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। जिसके आधार पर वर्तमान एवं भविष्य में उत्पन्न होने वाले ई- कचरे का आकलन किया जा सके। संयुक्त राष्ट्र पार्यावरण कार्यक्रम के अंतर्गत यह रिपोर्ट स्विस फेडरल लेबोट्रीज फार मेटेरियल टेस्टिंग एण्ड रिसर्च,यूमीकोर तथा यूनाइटेड नेशंस यूनीवर्सिटीज द्वारा बनाई गई है। जहाँ टी.वी. एवं रेफ्रीजीरेटर की बिक्री में क्रमश: 2 तथा 3 कारकों के आधार पर रेखीय संबृद्धि सम्भावित है वहीं संयुक्त राष्ट्र विशेषज्ञों के अनुसार आने वाले वर्षों में इन पदार्थों के भार एवं संगठन में परिवर्तन होगा जब डेस्कटाप से लैपटाप, सी. आर.टी. (कैथोड् रे ट्यूब) से एल.सी.डी. (लिक्विड् क्रिस्टल डिस्प्ले) में परिवर्तित होगा और ये परिवर्तन पुनर्चक्रण एंव द्वितीयक बाजार पर दबाव डालेगा। रिपोर्ट के अनुसार ई-कचरे से संबंधित विधियों की कमी होने के कारण तथा कानून के क्रियान्वयन में भ्रष्टाचार होने के परिणामस्वरूप भारत में ई-कचरा तकनीक के हस्तांतरण में बाधाएं आ रही हैं।

यह पाया गया है कि भारत ने 99 प्रतिशत कचरे को प्रभावी ढंग से पुनर्चक्रित किया जा सकता है एवं इसमें से 1 प्रतिशत से भी कम जहरीले तत्वों के निकलने की सम्भावना होती है जिन्हें भूमि के अन्दर निस्तारित किया जा सकता है। यद्यपि किसी ई-कचरा

नीति के अभाव में न तो उपभोक्ता एवं न ही उत्पादक किसी नियमन अथवा उत्तरदायित्व से बंधे हैं। हालांकि एक ई-कचरा नीति बनाई जा रही है लेकिन इसके प्रभावी होने में कम से कम एक वर्ष लगेगा।

ई-कचरा (प्रबंधन एवं संचालन) नियम, 2011

- देश में ई-कचरा के समुचित प्रबंधन एवं निपटान हेतु हाल ही में केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने एक अधिसूचना जारी कर "ई-कचरा (प्रबंधन एवं संचालन) नियम, 2011" [E-Waste (Management and Handling) Rules, 2011, की घोषणा की है। ये नियम 1 मई, 2012 से प्रभावी हो गए हैं।
- इस नियमों के अंतर्गत भारत में ई-कचरा की समस्या के स्थायी समाधान के लिए यूरोपीय देशों में प्रचलित व्यवस्था 'विस्तारित निर्माता उत्तरदायित्व' (Extended Producer Responsibility) की तर्ज पर पुनर्चक्रण (Recycling) एवं निपटान (Disposal) प्रक्रिया विकसित करने का प्रावधान किया गया है।
- विस्तारित निर्माता उत्तरदायित्व व्यवस्था के तहत इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों के विनिर्माण में संलग्न संगठनों को ही इन उत्पादों के अनुपयोगी होने के पश्चात उनके निपटान या पुनर्चक्रण के लिए जवाबदेह बनाया जाता है।
- उल्लेखनीय है कि केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार वर्ष 2005 में देश में लगभग 1,46,800 टन ई-कचरा उत्पन्न हुआ था जिसके वर्ष 2012 तक बढ़कर आठ लाख टन हो जाने की सम्भावना है।
- खराब एवं अनुपयोगी हो जाने पर इलेक्ट्रॉनिक सामानों का सुरक्षित एवं क्रमबद्ध निर्मूलन अथवा पुनर्चक्रण अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि ई-कचरे में कुछ जहरीले अपशिष्ट पदार्थों के अलावा कैडमियम, सीसा, पारा, आर्सेनिक और कई अन्य प्रकार के खतरनाक रसायन पाए जाते हैं जो पर्यावरण एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त हानिकारक हैं।

इंटरनेट टेलीफोनी (Internet Telephony)

इंटरनेट वर्किंग प्रणाली से जुड़ी ऐसी व्यवस्था जिसके अंतर्गत टेलीफोन सेवा इंटरनेट प्रणाली का उपयोग

ई-कचरे से उत्पन्न होने के खतरे

1. पुराने बेकार हो चुके कम्प्यूटरों के धात्विक भाग पर्यावरण के लिए हानिकारक होते है क्योंकि ये विषैले रसायनों से युक्त होते हैं।
2. टेलीविजन एवं कम्प्यूटर मोनीटर के पुराने माडलों में, जो कि बहुत अधिक मात्रा में हैं, लगभग 5 पाउंड तक विषैला धात्विक सीसा होता है।
3. सीसा (लेड) कम्प्यूटर मोनीटर एवं टेलीविज़न मोनीटर के कैथोड़ ट्यूब में भी पाया जाता है। यह धातु केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को नष्ट कर सकती है।
4. फ्लैट पैनल डिस्प्ले स्क्रीन में खतरनाक मरकरी धातु प्रयोग की जाती है जो एक न्यूरोटॉक्सिक है। खतरनाक धातु पीने के पानी के साथ मनुष्य के शरीर में पहुंच जाती है। धात्विक मरकरी की अधिक मात्रा से तंत्रिका तंत्र एवं विकसित हो रहे भ्रूण नष्ट हो जाते हैं। यदि एक बार मरकरी वातावरण में मुक्त हो जाय जो इससे छुटकारा पाना अत्यंत कठिन है।
5. परिपथ बोर्ड एवं बैटरियों में कैडमियम पाया जाता है जिसे कारसिनोजेन के नाम से जाना जाता है यह प्रत्यक्ष तौर से विभिन्न प्रकार के कैन्सर उत्पन्न करता है।
6. पालीविनायल क्लोराइड, (पी.वी.सी.) जो एक संश्लेषित पोलीमर है, वैद्युत उपकरणों के तारों एवं केबल में विद्युत रोधी के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। जब इसका निस्तारण किया जाता है तो यह क्लोरीनेटेड डाईआक्सिन और फ्यूरेंस के उत्सर्जन को बढ़ा देता है।
7. पुराने बेकार हो चुके डेस्कटाप पीसी के मोनीटरों में कैड्मियम एवं मरकरी पाया जाता है। जब ये भूगर्भीय जल में छनकर पहुंच जाते हैं तो उसे दूषित कर देते हैं।
8. अनुसंधानकर्ताओं ने यह पाया है कि ई-कचरे का अनुचित ढंग से निस्तारण के परिणामस्वरूप आने वाले 10-20 वर्षों में भूगर्भीय जल की गुणवत्ता प्रभावित होगी।
9. एक अनुमान के अनुसार अनुचित तरीके से निस्तारित ई-कचरे से आने वाले आने वाली पीढ़ियों को स्वच्छ जल की आपूर्ति बाधित होगी।
10. रिचार्जबल निकेल-कैडमियम बैटरियां, जो लैपटॉप कम्प्यूटर में प्रयुक्त होती हैं ई-कचरा के एक प्रमुख

करते हुए उपलब्ध होती है, उसे इंटरनेट फोन के नाम से जाना जाता है। सामान्य टेलीफोन नेटवर्क स्वीचिंग सिस्टम के आधार पर कार्य करता है तथा यह स्वीचिंग प्रोग्राम से नियंत्रित होता है। इंटरनेट टेलीफोन में स्वीचिंग प्रोग्राम की प्रणाली को इंटरनेट के साथ जोड़ दिया जाता है। इससे टेलीफोनिक सिस्टम भी कम्प्यूटर इंटरनेट से जुड़ जाता है। इस व्यवस्था के माध्यम से कोई कस्टमर अब फोन भी कर सकता है।

भारत में भी टेलीफोन सेवा का उपयोग करने वाले ग्राहक अपने इंटरनेट युक्त व्यक्तिगत कंप्यूटर से किसी बेसिक टेलीफोन या मोबाइल पर तथा पुनः टेलीफोन से कंप्यूटर पर कॉल करने की सुविधा प्राप्त कर सकते हैं, यदि इसके संबंध में ट्राई (TRAI) द्वारा निर्धारित प्रक्रिया व नियम को सरकार अनुमति प्रदान कर देती है। ट्राई ने अनुशंसा की है कि इंटरनेट से की जाने वाली काल को टेलीफोन पर प्राप्त करने की अनुमति दी जाए। इससे टेलीफोन मार्केट में प्रतिस्पर्धा में जबरदस्त वृद्धि होगी। पछिले वर्ष टेलीफोन विभाग ने प्रथम बार VOIP उत्पादों जैसे याहू, जीटाक, नेट टू फोन आदि को निम्नांकित कारणों से प्रतिबंधित करने की कोशिश किया था:

1. सुरक्षा कारण VOIP के द्वारा कॉल करने पर कॉलर्स का स्रोत पता करना मुश्किल होता था।
2. राजस्व की व्यापक हानि।

नियमानुसार अब प्रत्येक लाइसेंस प्राप्त सर्विस प्रोवाइडर को 12.5 प्रतिशत सेवा कर तथा 6 प्रतिशत राजस्व का भाग सरकार को देना होगा। यह 19 प्रतिशत कर सभी अवैध इंटरनेट सेवा प्रदाताओं द्वारा चोरी कर लिया था और इसी कारण सभी प्रदाता टव्ल्‍ टूल्स के प्रति सतर्क हैं जैसे याहू, स्काइप, आदि। वर्ष 2007 के आंकड़ों के अनुसार इंटरनेट सेवा प्रदाताओं ने 30 मिलियन मिनट इंटरनेट टेलीफोनिक सेवा प्रति माह कारपोरेट, कॉलसेंटर और बीपीओ को प्रदान किया जिससे बड़ी मात्रा में हानि दर्ज की गई।

ट्राई की अनुसंशा

1. इंटरनेट टेलीफोन काल्स को PSTN PLMN पर विस्थापित करना तथा इसके विपरीत क्रम में विस्थापित करना।
2. राष्ट्रीय लंबी दूरी के आपरेटर (LND) को इंटरनेट सर्विस प्रोवाइडर्स से जुड़ने की अनुमति सार्वजनिक इंटरनेट के माध्यम से दी जानी चाहिए जिससे अप्रतिबंधित इंटरनेट टेलीफोन सेवा को बढ़ावा मिल सके।
3. ISPD और छस्क के पास पारस्परिक प्रतिबंधित इंटरनेट टेलीफोनिक सेवा की सहमति।
4. वर्तमान IUC नियमों में कोई परिवर्तन नहीं।
5. TEC इंटरनेट टेलीफोन कस्टमर के विभिन्न नंबर स्रोतों की पहचान करेगा।
6. टेलीफोन नंबर, इंटरनेट टेलीफोनिक सेवा के लिए ISPS, UASPS, BSOS और COMPS को निर्धारित खंड आबंटित किये जाएंगे।
7. ISPS को आपात नंबर डायलिंग की सुविधा नहीं।
8. सभी ISPS अप्रतिबंधित टेलीफोनिक सेवा को प्रदान करने में रूचि रखते हैं, जिससे उपर्युक्त मशीनरी को स्थापित करेंगे।

VOIP

वाइस ओवर इंटरनेट प्रोटोकाल VOIP जो कम्यूनिकेशन को शासित करते हैं। यह इंटरनेट के माध्यम से वाइस ट्रांसमिशन क्रिया करते हैं या दूसरे स्वीचिंग नेटवर्क से वास्तविक रूप से वाइस को भेजने की यह प्रक्रिया है। यह अवधारणा आई.पी. टेलीफोन, इंटरनेट टेलीफोन, वाइस ओवर ब्राडबैंड, ब्राडबैंड टेलीफोन और ब्राडबैंड फोन से भी संबंधित है।

आयनोस्फिरिक रिसर्च सेटेलाइट: प्रथम

प्रथम एक भारतीय आयनोस्फीरिक रिसर्च सेटेलाइट है जिसको आईआईटी, मुम्बई द्वारा आपरेट किया जा रहा है। इसका वजन करीब 7 कि.ग्रा. है। इसे मुंबई विश्वविद्यालय के छात्रों के नेतृत्व में बनाया गया है। यह सेटेलाइट अभी निर्माण की अवस्था में है

और उम्मीद की जा रही है कि इस माह में इसकी प्री-लॉच टेस्टिंग हो सकती है। लांच सहित प्रथम को बनाने की कुल कीमत 1.5 करोड़ है। प्रथम के दो पेपर प्राग में 27 सितंबर से 1 अक्टूबर, 2010 तक होने वाले इंटरनेशनल एस्ट्रोनॉटिकल कांग्रेस के लिए चुन गए हैं। नासा के पूर्व एडमिनिस्ट्रेटर माइकल ग्रिफिन ने इस प्रोजेक्ट की जमकर सराहना की है।

अनुसैट

अन्ना यूनिवर्सिटी सेटेलाइट या अनुसैट अन्ना यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलॉजी, मद्रास के छात्रों द्वारा बनाया गया माइक्रोसेटेलाइट है। अनुसैट का वजन 40 किग्रा है। यह अपने साथ एमेच्योर रेडियो स्टोर और फॉरवर्ड कम्युनिकेशन सिस्टम ले गया है और कई तरीके की तकनीक रिसर्च करेगा। इसरो ने छात्रों द्वारा कुछ दिनों पहले निर्मित रोहिणी-200 सीरीज का रॉकेट लांच किया है। इसके पेलोड को वेल्लोर इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलाजी के छात्रों ने बनाया है। इस रिसर्च व्हीकल के मुख्य काम मापन और एटमॉस्फिरिक प्रयोग हैं। विक्रमसाराभाई स्पेस सेंटर की देखरेख में विकसित इस राकेट में छात्रों ने ही थ्री एक्सिस एक्सीलेरोमीटर भी लगाया है।

विकीलिंक्स

हाल ही में पाकिस्तानी तालिबानी गंठबंधन को बेनकाब करती अमरीकी सैन्य खुफिया दस्तावेजों के 90 हजार से अधिक पृष्ठों को विकीलींक्स पर प्रकाशित किया गया। यह विकिलींक्स आखिर है क्या? विकिलींक्स ओ.आर.जी. में हर किस्म के बिना सेंसर किए, ऐसे गोपनीय दस्तावेज प्रकाशित किये जाते हैं जिन्हें सरकारें और संगठन अपने फायदे के लिए आम जन की पहुंच से दूर रखती हैं। विकिलींक्स तकनीक में तो भले ही विकिपीडिया के समान है पर विकि आधारित इस तंत्र पर कोई भी उपयोक्ता इसमें अपनी सामग्री डाल सकता है, परन्तु इसकी सामग्री पूरी तरह अलग किस्म की होती है और यही विकिलींक्स का मूल सिद्धान्त है।

दरअसल, विकिलींक्स में कोई भी उपयोक्ता ऐसे दस्तावेजों को मुहैया करवा सकता है, जिन्हें प्रदान करने के लिए पहचान छुपाना भी उसके लिए महत्वपूर्ण हो सकता है। विकिपीडिया के विपरीत जहाँ उपयोक्ताओं के आई.पी. पते दर्ज किए जाते हैं, विकिलींक्स में क्रिप्टोग्रफिक तकनीक के जरिए इसके उपयोक्ताओं के पूरी तरह अनाम व अचिहिन्त बने रहने की पूरी गारंटी दी जाती है। जाहिर है, बहुत से दस्तावेज जिन्हें आम जनता तक पहुंचना चाहिए, परन्तु गोपनीयता कानूनों, दंड और कानूनी कार्रवाई के भय से दबे और छुपे रह जाते हैं, निश्चित रूप से इसकी वजह से वे आम पाठक तक प्रचुरता में पहुंच रहे हैं।

सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्ष

विकिलींक्स की भी विकीपीडिया की तरह लोकप्रियता बढ़ी है और साथ ही यह सरकारों की मुश्किलों को भी बढ़ाता जा रहा है। एक ओर जहां एमनेस्टी इंटरनेशनल ने विकिलींक्स के कार्यों को सराहा है तो दूसरी और विकिलींक्स को नियंत्रित करने के प्रयास भी हो रहे हैं। चीन में विकिलींक्स पर प्रतिबंध पहले से ही है।

दुरूपयोग की सम्भावना

ऐसी आंशका भी निर्मूल नहीं कि विकिलींक्स का इस्तेमाल गलत कार्यों के लिए भी हो सकता है। राजनीतिक दल, संगठन व व्यक्ति एक दूसरे की पोल खोलने व ब्लैकमेल करने के अस्त्र के रूप में इसका इस्तेमाल कर सकते हैं। गोपनीय दस्तावेजों के विकिलींक्स पर उपलब्ध होते ही इसकी सत्यता तथा इसकी आलोचना प्रत्यालोचना संगठनों व सरकारों द्वारा तो की ही जा सकेगी, मतभिन्नता रखने वाले विभिन्न समूहों द्वारा भी इनका विश्लेषण खुलेआम किया जा सकेगा। इस तरह के प्रयोग की बातें बेमानी ही होंगी। ऐसा विकिलीक्स का मानना है।

'क्वांटम मेमोरी'

वैज्ञानिकों ने 'क्वांटम कम्यूनिकेशन सिस्टम' यानी तीव्र संचार प्रणाली और सुपरफास्ट कंप्यूटर विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल करने का दावा किया है।

वैज्ञानिकों के मुताबिक, उन्होंने प्रकाश के लिए दुनिया की सबसे असरकारी 'क्वांटम मेमोरी' विकसित कर ली हैं उन्होंने बताया कि हमनें ऐसी तकनीक का इस्तेमाल किया है, जिससे लेजर किरणों को रोका और काबू में किया जा सकता है। यहां तक कि इलेक्ट्रॉन का तापमान भी सामान्य से 270 डिग्री सेल्सियस कम किया जा सकता है। इस तकनीक का प्रयोग प्रकाश की बारीक क्वांटम प्रकृति को सहेज कर रखने इसमें फेरबदल करने और फिर से इस्तेमाल में लाने की अनुमति देता है। ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी की टीम लीडर मॉर्गन हेजेज ने इस बारे में कहा कि क्रिस्टल में प्रवेश कर रहा प्रकाश एक जगह आकर रूकता है और जब तक हम इसे आगे नहीं बढ़ाते वह उसी अवस्था में रहता है। इसे आगे बढ़ने देने पर हम उन सभी चीजों को जाने देते हैं जो त्रिआयामी होलोग्राम की तरह होते हैं। उन्होंने कहा कि क्वांटम मैकेनिक्स में अनिश्चितता के कारण इस प्रकाश में कुछ सूचनाएं तब खो जाती हैं, जब इसे मापा जाता है और इस स्थिति में हम एकबार ही होलोग्राम को पढ़ सकते हैं।

सिम लाइट मिशन (SIM Light Mission)

सिम लाइट एक अंतरिक्ष प्रेक्षणशाला है जिसका विकास नासा (NASA) के अंतर्गत Jet Propalsion Laboratory द्वारा किया जा रहा है। यह प्रेक्षणशाला विभिन्न ग्रहों एवं तारों का विस्तृत अध्ययन करेगा। तारों के अध्ययन के क्रम में यहं उनकी उत्पत्ति से लेकर उनकी मृत्यु तक की विभिन्न अवस्थाओं का सूक्ष्म अध्ययन करेगा जैसे- Brown dwarfs, Neutron stars, Black holes। इसके अतिरिक्त यह हमारी आकाश गंगा (Milky way) की आयु, उत्पत्ति का इतिहास, सूर्य की स्थिति, आकाश गंगा में डार्क मैटर का वितरण का भी अध्ययन करेगा।

रोबोनॉट-2

ये अभी सिर्फ एक प्रोटोटाइप है। पहले इसे सिर्फ पृथ्वी पर ही कैरी करने के लिए बनाया गया था। लेकिन इसके डिजाइनर यह देखना चाहते हैं कि सूक्ष्म गुरूत्वाकर्षण की स्थिति में यह किस तरह करता है। अतः इसे स्पेस शटल डिस्कवरी के जरिए स्पेश में भेजने का फैसला किया गया है। यदि यह रोबोट अपने कार्य में सफल रहा तो इससे नासा के वैज्ञानिकों को भविष्य में अंतरिक्ष में ज्यादा एडवांस्ड रोबोट अंतरिक्ष यात्री भेजने और उनके संचालन का अच्छा आधार मिल जाएगा। इस प्रोजेक्ट से जुड़े एक अधिकारी, जॉन ओलसन का कहना है कि रोबोनॉट-2 भविष्य के रोबोट्स की ऐसी पीढ़ी का परिचायक हैं, जो पृथ्वी और अंतरिक्ष में कठिन और जटिल कार्यों को अंजाम देगा।

यह रोबोट मनुष्यों की तरह ही चतुर है और उन्हीं औजारों का इस्तेमाल कर सकता है, जो अंतरिक्ष यात्रियों द्वारा प्रयोग में लाए जाते हैं। अतः इसके लिए स्पेस स्टेशन में सिस्टम की रीडिजायनिंग की जरूरत नहीं पड़ेगी। रोबोनॉट-2 की खास बात यह है कि वहाँ ट्विटर के जरिये पृथ्वीवासियों के संपर्क में रहेगा। इसने अपने नए अकांउट से ट्विटर अपडेट्स भेजने भी शुरू कर दिए हैं। यह रोबोट अभी लॉन्च से संबंधित तैयारियों को रिकॉर्ड कर रहा है। स्पेस में पहुंचने के बाद वह स्पेस स्टेशन में अपने कार्यों के बारे में अपने फॉलोवर्स का सूचित करता रहेगा। रोबोनॉट अपने संदेश खुद कंपोज नहीं कर रहा है। दरअसल ह्युस्टन स्थित नासा की जोनसन स्पेस सेंटर के वैज्ञानिक ये अपडेट तैयार कर रहे हैं।

ब्राउजर युद्ध

ब्राउजर युद्ध एक ऐसी शब्दावली है जिसका प्रयोग वेव ब्राउजिंग की सुविधा देने वाली संस्थाओं के बीच उच्च स्तरीय प्रतिस्पर्धा को अभिव्यक्त करने के लिए किया जाता है। इसी प्रकार **एसिड-3** एक परीक्षण पेज है जो वेब ब्राउजर के कुछ चयनित अवयवों का अनुसरण करता है जो आब्जेक्ट मॉडल एवं जावा स्क्रिप्ट जैसे वेब मानकों से संबद्ध होते हैं। मानकों पर खरा उतरने हेतु 100 अंकों का निर्धारण किया जाता है। इस आधार पर विभिन्न श्रेणियों के तहत आई.ई. (Internet Explorer) को 20/100, फायर फाक्स को 93 तथा क्रोम एवं ओपेरा को 100 अंक दिए गए हैं।

बूट-अप समय

इसका अर्थ कम्प्यूटर के आरम्भ एवं पूर्णतया कार्य करने की स्थिति में लगने वाला समय है। इस श्रेणी में क्रोम को विजयी घोषित किया गया है।

पेज लोडिंग

प्रत्येक ब्राउजर द्वारा फ्लैश स्मृति वाले 8 बड़े वेबसाइटों पर कार्य किया गया था जिसके आधार पर आई.ई. को अपेक्षाकृत बेहतर माना गया।

जावा स्क्रिप्ट रेंडरिंग

इस श्रेणी में जावा स्क्रिप्ट की कार्य प्रणाली का परीक्षण करने के बाद आई.ई. को अधिक विश्वसनीय कहा गया है।

स्मृति

व्यवहार में यह देखा गया है कि 8 वेब साइटों का एक साथ प्रयोग किए जाने पर फायरफाक्स द्वारा न्यूनतम स्मृति प्रयोग में लाई जाती है।

रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन को अधिक जवाबदेहपूर्ण बनाना

सरकार ने रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन को अधिक जवाबदेह एवं कार्यकुशल बनाने का निर्णय लिया है। यह उम्मीद की जाती है कि रक्षामंत्री की अध्यक्षता में रक्षा प्रौद्योगिकी आयोग का गठन स्थायी संसदीय समिति की एक रिपोर्ट में उठाई गई कुछ समस्याओं का समाधान कर पाएगा। रक्षा प्रौद्योगिकी आयोग की संरचना निम्नांकित हैं-

1. डी.आर.डी.ओ. की एकाश्मिक संरचना को तोड़कर उसे सात दिशिष्टता केन्द्रों में पुर्नगठित किया जाएगा।
2. डी.आर.डी.ओं. की कुछ प्रयोग शालाओं को कुछ दूसरे मंत्रालयों की प्रयोगशालाओं के साथ, जो समान कार्य करती हों, सहयोजित कर दिया जाएगा।

एक मानव संसाधन विशेषज्ञ को प्रोजेक्ट उन्मुख संगठन की सलाह हेतु आबद्ध किया जाएगा तथा बाजारी तकनीकों को अधिक प्रभावी बनाने हेतु एक वाणिज्यक शाखा का विकास डी.आर.डी.ओ. के द्वारा किया जाएगा। डी.आर.डी.ओ. रक्षा खरीद नीति में निर्धारित सिद्धान्तों को शामिल करते हुए उद्योग जगत से कुछ चयनित भागीदारों को चुनने की प्रक्रिया करेगा।

जूस मिशन (JUICE MISSION : Jupiter Icy Moon Explorer Mission)

2 मई, 2012 को पेरिस में 'यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी' (ESA) के सदस्य देशों के प्रतिनिधिमंडलों की बैठक में लगभग 1 बिलियन यूरो की अनुमानित लागत से बृहस्पति ग्रह और उसके बर्फीले उपग्रहों के अन्वेषण हेतु एक नए मिशन को मंजूरी प्रदान की गई। 'जूस' (JUICE : Jupiter Icy Moon Explorer) नामक यह मिशन बृहस्पति और उसके गेनिमेड, यूरोपा और कैलिस्टो नामक तीन उपग्रहों पर जीवन की अनुकूल दशाओं की तलाश हेतु जून, 2022 में 11 वर्षीय मिशन पर प्रमोचित किया गया। यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी के 'कॉस्मिक विजन 2015-2025 कार्यक्रम' के तहत अनुमोदित यह प्रथम मुख्य मिशन है।

ई-ट्यूटर (E-Tutor)

प्रधानमंत्री के सलाहकार सैम पित्रोदा ने 25 जनवरी, 2012 को स्कूली छात्रों हेतु 'क्लाउड कंप्यूटिंग' (Cloud Computing) आधारित देश के प्रथम टैबलेट कंप्यूटर 'ई-ट्यूटर' (E-Tutor) का अनावरण किया। टेक्नोपार्क स्थित ई-ट्यूटर तथा 'ओजटर्न टेक्नोलॉजी' द्वारा

संयुक्त से 12 द्वारा शि पै भा विचार वाला विभागों हेतु ई- सुरक्षा इंटरनेट उपलब्ध सेवाओं पहुंच के तह पैन इंि 'नेशनल नेशनल सदस्यों ह की ज को ख और इ जिनके और र 4 लिए डाटा के स से बे बाद से सं D

संयुक्त रूप से निर्मित यह टैबलेट कंप्यूटर अप्रैल, 2012 से बाजार में उपलब्ध है तथा इसकी कीमत ₹7,500 है। विशेषत: कक्षा 1 से 12 तक के छात्रों के प्रयोग हेतु निर्मित यह टैबलेट कंप्यूटर 'डिजिटल श्वेतपट्ट' (Digital Whiteboard) से युक्त है जिसके प्रयोग द्वारा शिक्षक विभिन्न सिद्धांतों को सरलता से समझा सकेंगे।

पैन इंडिया सुरक्षित नेटवर्क (Pan-India Secure Network)

भारत सरकार का दूरसंचार विभाग एक ऐसे अति सुरक्षित दूरसंचार एवं इंटरनेट नेटवर्क के विकास एवं स्थापना के प्रस्ताव पर विचार कर रहा है जो पूर्ण रूप से सरकारी प्रयोग हेतु समर्पित होगा। लगभग 450 करोड़ रूपये की अनुमानित लागत से विकसित होने वाला 'पैन इंडिया सुरक्षित नेटवर्क' (Pan-India Secure Network) नामक इस प्रणाली का विस्तार संपूर्ण देश में स्थित सभी सरकारी विभागों तक होगा। इस नेटवर्क के माध्यम से सरकारी विभागों से सम्बद्ध कर्मचारियों को गुप्त रणनीतिक सूचनाओं के आदान-प्रदान हेतु ई-मेल, वीओआईपी (VOIP : Vioce-Over-Internet Protocol) जैसी नेटवर्क आधारित सेवाएं भी मुहैया कराई जाएंगी जो डाटा सुरक्षा की दृष्टि से पूरी तरह सुरक्षित और विश्वसनीय होंगी। ज्ञातव्य है कि वर्तमान में सरकारी कर्मचारियों सहित अधिकतर भारतीय इंटरनेट उपभोक्ता पाठ्य एवं श्रव्य रूप में संदेशों के आदान-प्रदान हेतु विदेशी सेवा प्रदाताओं जैसे 'याहू' 'गूगल' तथा 'स्काईप' द्वारा उपलब्ध कराई जा रही ई-मेल एवं वीओआईपी सेवाओं का प्रयोग करते हैं। विदेशी सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जा रही इन सेवाओं के माध्यम से आदान-प्रदान की गई सूचनाएं कूट भाषा (Encrypted) में होने के कारण हैकरों तथा साइबर अपराधियों की पहुंच से तो सुरक्षित रहती हैं परंतु इन सेवा प्रदाताओं के सर्वर विदेशों में स्थित होने के कारण संबंधित देशों की सरकारें अपने कानूनों के तहत प्रदत्त प्रावधानों का प्रयोग कर सूचनाओं को प्राप्त कर सकती हैं।

पैन इंडिया सुरक्षित नेटवर्क द्वारा सरकारी कर्मचारियों के मध्य गोपनीय सूचनाओं का आदान-प्रदान विदेशी सर्वरों के माध्यम से न होकर 'नेशनल इंटरनेट एक्सचेंज ऑफ इंडिया' (NIXI : National Internet Exchange of India) के माध्यम से होगा।

नेशनल इंटरनेट एक्सचेंज ऑफ इंडिया सरकार द्वारा समर्थित एक गैर-लाभकारी संगठन है। यह अपने विभिन्न इंटरनेट सेवा प्रदाता सदस्यों के मध्य घरेलू इंटरनेट डाटा के आदान-प्रदान की सुविधा प्रदान करता है।

'डुकु' कंप्यूटर वायरस (Duqu Computer Virus)

हाल ही में शोधकर्ताओं को एक नए कंप्यूटर वायरस का पता चला है जिसकी तुलना स्टक्सनेट नामक उस खतरनाक वायरस से की जा रही है जिसका वर्ष 2011 में ईरान के परमाणु प्रतिष्ठानों पर किए गए साइबर हमलों में इस्तेमाल किया गया था। इस वायरस को खोज कंप्यूटर सुरक्षा के क्षेत्र में कार्यरत कंपनी 'सिमैन्टेक' (Symantec) द्वारा की गई है। नए वायरस का नाम डुकु (Duqu) है और इसे खुफिया जानकारियां जुटाने के लिए बनाया गया है। इसका नाम डुकु इसलिए रखा गया है क्योंकि ये ऐसी फाइलें बनाता है जिनके आरंभ में डी. क्यू लगा होता है। इसका कोड लगभग स्टक्सनेट की ही तरह का है और यह वायरस यूरोप के कई संगठनों और व्यवसायों के कंप्यूटरों पर मिला है।

सुदूर संवेदन डाटा नीति -2011 (Remote Sensing Data Policy-2011)

4 जुलाई, 2011 को भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय के अधीन 'अंतरिक्ष विभाग' ने विकास संबंधी गतिविधियों के लिए अधिक से अधिक प्रयोक्ताओं को उच्च विभेदन क्षमता के डाटा तक पहुंच की सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 'सुदूर संवेदन डाटा नीति-2011' (Remote Sensing Data Policy-2011) पेश की। नई नीति के तहत 1 मीटर तक की विभेदन क्षमता (Resolution) के सभी डाटा बिना भेदभाव के तथा अनुरोध के आधार पर इसरो (ISRO) द्वारा वितरित किए जाएंगे। यद्यपि एक मीटर विभेदन क्षमता से बेहतर सभी तरह के आंकड़ों के प्रेषण विरण से पहले उचित एजेंसी द्वारा जांच-पड़ताल की जाएगी तथा उसमें संशोधन करने के बाद ही उसे वितरित किया जाएगा ताकि राष्ट्रीय सुरक्षा के हितों की रक्षा की जा सके। लेकिन कोई प्रयोक्ता देश के संवेदनशील क्षेत्रों से संबंधित आंकड़े सरकार की 'हाई रिजोल्यूशन इमेज क्लियरेन्स कमेटी' की मंजूरी के बाद ही प्राप्त कर सकेगा। इस नई नीति के

अनुसार भारतीय तथा विदेशी उपग्रहों से प्राप्त भारत से संबंधित सभी सुदूर संवेदी आंकड़ों के अर्जित तथा उन्हें वितरित करने का अधिकार इसरो (ISRO) के 'राष्ट्रीय सुदूर संवेदन केंद्र' (NRSC : National Remote Sensing Centre) को प्राप्त होगा। उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व सुदूर संवेदन डाटा नीति वर्ष 2001 में जारी की गई थी जिसके तहत 5.8 मीटर विभेदन क्षमता तक के आंकड़े बिना किसी काट-छांट के स्वतंत्र रूप से वितरित किए जा सकते थे।

अरहर दाल का जीनोम मानचित्रण (Gene Mapping of Pigeon Rea)

रोग रहित उच्च उत्पादकता वाली अरहर (Pigeon Pea) की उन्नत किस्में विकसित करने हेतु किए जा रहे प्रयासों की दिशा में एक महत्वपूर्ण सफलता हासिल करते हुए हाल ही में देश के प्रतिष्ठित अनुसंधान संस्थानों के 31 वैज्ञानिकों के एक दल ने अरहर दाल की जैविक कुंडली यानि जीनोम को डीकोड (Decode) करने में सफलता प्राप्त कर ली है। भारत कृषि अनुसंधान परिषद' (ICAR) से संबद्ध राष्ट्रीय पादप जैव प्रौद्योगिकी संस्थान, नई दिल्ली के प्रो. नागेन्द्र कुमार सिंह के नेतृत्व में वैज्ञानिकों ने अनुसंधान के बाद अरहर के जीनोम का अनुक्रम तैयार किया है। इस परियोजना में राष्ट्रीय पादप जैव प्रौद्योगिकी संस्थान, नई दिल्ली, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी; तथा कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, धारवाड़ (कर्नाटक) के वैज्ञानिक शामिल थे। यह प्रथम अवसर है जब विभिन्न भारतीय संस्थानों के वैज्ञानिकों के समग्र प्रयास की बदौलत किसी पौधे के जीनोम का अनुक्रम तैयार किया गया है। फसलों में पाई जाने वाली आम बिमारियों जैसे 'फ्यूजेरियम विल्ट' और 'स्टर्लिटी मोजेक' आदि से लड़ने की क्षमता अधिक होने के कारण वैज्ञानिकों ने अरहर के जीनोम का अनुक्रम तैयार करने हेतु इसकी लोकप्रिय किस्म 'आशा' (Asha) का प्रयोग किया। आशा का जीनोम अनुक्रम दूसरी पीढ़ी की अनुक्रम तकनीक '454-एफएलएक्स' (454-FLX) द्वारा तैयार किया गया। वैज्ञानिकों ने अरहर के जीनोम में उपस्थित 47,004 प्रोटीन कोडिंग जीनों की पहचान की है। इनमें से 1,213 जीन रोग प्रतिरोधक हैं जबकि 152 जीन अकाल, उष्णता तथा भूमि की लवणता के प्रति प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करते हैं। अरहर के जीनोम में रोगों, कीटनाशकों और भूमि में उपस्थित नमी, ताप आदि के विरूद्ध प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करने वाले जीनों की सही स्थिति का पता चल जाने से अब मांग के अनुरूप अरहर की अलग-अलग किस्में काफी कम समय में तैयार की जा सकेंगी।

आलू का जीनोम मानचित्रण (Gene Mapping of Potato)

सम्पूर्ण विश्व में आलू का उत्पादन के संदर्भ में चीन के बाद भारत दूसरे स्थान पर है। संपूर्ण विश्व में आलू के कुल उत्पादन का लगभग 8 प्रतिशत भाग भारत में ही उत्पादित होता है। जुलाई, 2011 में विश्व के 14 देशों के वैज्ञानिकों के एक अंतर्राष्ट्रीय दल 'पोटैटो जीनोम सीक्वेंसिंग कंसोर्टियम' (PGMC: Potato Genome Sequencing Consortium) ने पहली बार आलू का संपूर्ण डीएनए अनुक्रम तैयार करने में सफलता प्राप्त की है। इस शोध के फलस्वरूप वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि आलू का आनुवांशिक कोड जटिल होता है तथा इसमें लगभग 39000 प्रोटीन कोडिंग जीन होते हैं। इन जीनों में से वैज्ञानिकों ने आलू में उपस्थित 800 से अधिक रोग प्रतिरोध जीनों की पहचान की है। आलू का जीनोम अनुक्रम तैयार कर लेने के बाद अब यह पता चल सकेगा कि आलू की वृद्धि और रोगाणुओं से रक्षा के लिए कौन से जीन जिम्मेदार हैं। इसके फलस्वरूप अब आलू की ऐसी किस्में तैयार की जा सकेंगी जो पौष्टिक हों और जिन पर कीटों, बीमारियों का असर न हो। उल्लेखनीय है कि आलू का जीनोम 'टेट्राप्लायड' होता है अर्थात इसकी प्रत्येक कोशिका में प्रत्येक गुणसूत्र की चार प्रतिलिपियां उपस्थित होती हैं। इसी वजह से आलू की परिष्कृत किस्मों का उत्पादन करने में काफी अधिक समय लग जाता है।

देश के आर्द्र प्रदेशों का पहला विस्तृत ब्योरा (Detailed Statement of Wetlands)

'भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन' (ISRO) द्वारा उपग्रह चित्रण तकनीकी की सहायता से भारत में पहली बार देश के नमी वाले इलाकों (आर्द्र क्षेत्रों) का एक विस्तृत ब्योरा तैयार किया गया है। इसरो के अहमदाबाद स्थित 'अंतरिक्ष अनुप्रयोग केन्द्र' (SAC : Space Application Centre) द्वारा तैयार किए गए ब्योरे और एटलस में पारिस्थितिकी की दृष्टि से महत्वपूर्ण और गैर-योजित विकास

के कारण खतरे में पड़े क्षेत्रों को चिन्हित किया गया है। अंतरिक्ष अनुप्रयोग केन्द्र ने केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा प्रायोजित 'राष्ट्रीय आर्द्र भूमि तालिका एवं आकलन परियोजना' (NWIA: National Wetland Inventory & Assessment) के तहत यह ब्योरा तैयार किया है। मुख्य भू-भाग तथा द्वीपीय परिक्षेत्र सहित संपूर्ण देश के आर्द्र प्रदेश के आकलन के पश्चात तैयार किए गए इस विस्तृत ब्योरे के अनुसार भारत के आर्द्र क्षेत्रों का कुल क्षेत्रफल 15.260 मिलियन हेक्टेयर अनुमानित है जो कि देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 4.63% है। नदियों के क्षेत्रफल को छोड़कर देश के आर्द्र क्षेत्रों का कुल क्षेत्रफल लगभग 1 करोड़ हेक्टेयर है। देश के भीतरी इलाकों में स्थित मुख्य आर्द्र क्षेत्र नदियां, जलाशय, पोखर तथा तालाब हैं जबकि तटीय इलाकों में स्थित मुख्य आर्द्र क्षेत्र अंतःज्वारीय दलदली जमीन, लैगून तथा क्रीक हैं। देश के सभी आर्द्र क्षेत्र में नदियों का क्षेत्रफल सर्वाधिक है। नदियों द्वारा घेरा गय कुल क्षेत्र 5.26 मिलियन हेक्टेयर है जो कि कुल आर्द्र क्षेत्र का 34.46 प्रतिशत है। जलाशयों का क्षेत्रफल 2.48 मिलियन हेक्टेयर (15.82%), पोखरों का 1.31 मिलियन हेक्टेयर (8.6%), तालाबों का 0.71 मिलियन हेक्टेयर (4.78%), मैंग्रोव का 0.47 मिलियन हेक्टेयर (3.09%) और मूंगे का 0.14 मिलियन हेक्टेयर (0.93%) है। आर्द्र भूमि के राज्यवार वितरण के अनुसार भारत में लक्षद्वीप में सबसे अधिक 96.12% क्षेत्र आर्द्र भूमि है। इसके बाद अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह (18.52%), दमन तथा दीव (18.46%) तथा गुजरात (17.56%) का स्थान है। पुडुचेरी (12.88%), पश्चिम बंगाल (12.48%), असोम (9.74%), तमिलनाडु (6.92%), गोवा (5.76%), आंध्र प्रदेश (5.26%) तथा उत्तर प्रदेश (5.16%) आर्द्र भूमि से समृद्ध राज्य हैं। मिजोरम में सबसे कम 0.66% क्षेत्र आर्द्र भूमि है।

स्टीरियो डिजिटल एरियल फोटोग्राफी (SDAP: Stereo Digital Aerial Photography)

देश के तटीय क्षेत्रों के जोखिम भरे इलाकों का मानचित्र तैयार करने के पहले कदम के रूप में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने स्टीरियो डिजिटल एरियल फोटोग्राफी (SDAP) प्रक्रिया जुलाई, 2011 में प्रारंभ हुई। एसडीएपी के लिए देश की मुख्य तटीय रेखा को आठ खंडों में विभाजित किया गया है जो इस प्रकार हैं :-

(1) भारत-पाकिस्तान सीमा से गुजरात में सोमनाथ तक

(2) सोमनाथ से महाराष्ट्र में उलहास नदी तक

(3) उलहास नदी से कर्नाटक में शरावती नदी तक

(4) शरावती नदी से तमिलनाडु में केप कोमोरिन तक

(5) केप कोमोरिन से तमिलनाडु में पोन्नीयर नदी तक

(6) पोन्नीयर नदी से आंध्र प्रदेश में कृष्णा नदी तक

(7) कृष्णा नदी से ओडिशा में छतरपुर तक

(8) छतरपुर से पश्चिम बंगाल में भारत-बांग्लादेश सीमा तक

इन क्षेत्रों के आकड़े एकत्र कर उनके माध्यम से पिछले 40 वर्षों की बाढ़ सीमा की पहचान और उसी अवधि में समुद्र तल में उभार और उसके प्रभाव के आंकड़े जुटाए जाएंगे। इन आंकड़ों के आधार पर अगले 100 वर्षों के दौरान होने वाले भू-क्षरणों का अनुमान लगाया जाएगा। तटीय जोखिम रेखा मानचित्र का कार्य विश्व बैंक समर्थित 'समेकित क्षेत्र प्रबंधन परियोजना' के अंतर्गत किया जाएगा। संपूर्ण तटीय मानचित्रण में ₹125 करोड़ का खर्च अनुमानित है जबकि एसडीएपी प्रक्रिया की लागत ₹27 करोड़ आंकी गई है। स्टीरियो डिजिटल एरियल फोटोग्राफी द्वारा तटीय क्षेत्रों का मानचित्रण लगभग 15 महीनों में पूरा किया जाना लक्षित है।

ग्रीन नेशनल अकोउंटिंग सिस्टम (National Green Accounting System)

मई, 2011 में भारत सरकार द्वारा की गई घोषणा के अनुसार आर्थिक वृद्धि एवं विकास के कारण पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के आकलन हेतु हाल ही में एक विशेषज्ञ समूह का गठन किया गया। योजना आयोग तथा केंद्रीय पर्यावरण मंत्रालय के संयुक्त उपक्रम में गठित इस उच्चस्तरीय विशेषज्ञ समूह के अध्यक्ष कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के विख्यात अर्थशास्त्री पार्थ दासगुप्ता हैं। इस पैनल में

योजना आयोग के सदस्य किरीट पारिख, विजय केलकर तथा नितिन देसाई जैसे अर्थशास्त्री भी सम्मिलित हैं। यह विशेषज्ञ समूह 'हरित राष्ट्रीय लेखा प्रणाली' के लिए एक खाका उपलब्ध कराएगा जिसके तहत वर्ष 2015 तक आर्थिक विकास के कारण पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का आकलन किया जा सकेगा। पर्यावरणीय मूल्यों पर गौर करने के बाद यह विशेषज्ञ समूह वर्ष 2015 तक 'सकल घरेलू उत्पाद' (GDP) का विवरण प्रस्तुत करेगा।

एमआई-17 वी 5' (Mi-17 V5)

रूस से खरीदे गए अत्याधुनिक सशस्त्र हेलिकॉप्टरों को 17 फरवरी, 2012 को भारतीय वायु सेना के बेड़े में शामिल कर लिया गया। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2008 में भारत ने अत्यधिक ऊंचाई पर सैनिकों और विभिन्न सामानों को पहुंचाने, मानवीय सहायता एवं आपदा राहत मिशनों तथा परिवहन अभियानों के लिए वायु सेना के हेलिकॉप्टर बेड़े को मजबूत करने हेतु रूस के साथ 80 एमआई-17 वी 5 हेलिकॉप्टरों के क्रय का सौदा किया था। रूस द्वारा भारत को अभी तक 21 एमआई-17 वी 5 हेलिकॉप्टरों की आपूर्ति की जा चुकी है जबकि शेष हेलिकॉप्टर वर्ष 2014 के प्रारम्भ तक भारत को सौंप दिए जाएंगे। इन हेलिकॉप्टरों की पहली तीन इकाइयां भटिंडा (पंजाब), श्रीनगर (जम्मू एवं कश्मीर) तथा बागडोगरा (पश्चिम बंगाल) में तैनात की जाएंगी। अत्याधुनिक वैमानिकी एवं नैविगेशन प्रणालियों से लैस यह हेलिकॉप्टर एमआई-17 वी 5 हेलिकॉप्टरों का उन्नत संस्करण है।

आईएनएस कृष्णा (INS Krishna)

वर्ष 1995 से भारतीय नौसेना की दक्षिणी नौसैनिक कमान स्थित प्रथम प्रशिक्षण स्क्वाड्रन का एक प्रमुख अंग आईएनएस कृष्णा पोत 17 जनवरी, 2012 को कोच्चि से मुंबई के लिए अपनी अंतिम समुद्री यात्रा पर रवाना हो गया जहां वर्ष के अंत में इसे सेवामुक्त कर दिया जाएगा। उल्लेखनीय है कि इस पोत को सर्वप्रथम 'एचएमएस एंड्रोमेडा' के नाम से दिसम्बर, 1968 में रॉयल नेवी में शामिल किया गया था।

दक्ष (Daksh)

सैन्य प्रयोग हेतु डिजाइन एवं विकसित भारत का पहला स्वदेशी 'सुदूर प्रचालनीय वाहन' (ROV : Remotely Operated Vehicle) 'दक्ष' (Daksh) 19 दिसम्बर, 2011 को भारतीय थलसेना को सौंप दिया गया। 'रक्षा अनुसंधान एवं विकास सगठन' (DRDO) से संबद्ध 'अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान (इंजीनियर्स)' के पुणे के दीघी स्थित परिसर में पांच दक्ष रोबोटों की पहली खेप थलसेना को सौंपी गई। उल्लेखनीय है कि 'आरएंडडीई (ई)' द्वारा विकसित 'दक्ष' रोबोट का प्रथम प्रोटोटाइप मई, 2005 में बनकर तैयार हो गया था तथा थलसेना द्वारा वर्ष 2006 से वर्ष 2008 तक गहन परीक्षण करने के उपरांत मार्च, 2009 में इसके बड़े पैमाने पर उत्पादन को स्वीकृति प्रदान की गई थी। थलसेना द्वारा आरएंडडीई (ई) को 20 दक्ष रोबोटों हेतु आर्डर प्रेषित किया गया था। संभावना है कि दक्ष रोबोट की शेष 15 इकाइयां थलसेना को वर्ष 2012 के मध्य तक प्राप्त हो जाएंगी। बड़े पैमाने पर दक्ष रोबोट का उत्पादन सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के उद्यमों की संयुक्त भागीदारी में किया जाएगा। दक्ष रोबोट 'तात्कालिक विस्फोटक युक्तियों' (IEDs : Improvised Explosive Devices) समेत अन्य खतरनाक विस्फोटकों का पता लगाकर उन्हें नाकाम करने में सेना की मदद के लिए प्रयुक्त किया जाएगा। दक्ष रोबोट भारतीय थलसेना की बम निरोधक इकाइयों के लिए एक बहुमूल्य संसाधन साबित होगा जिसका प्रयोग आतंकवाद निरोधक कार्रवाइयों में भी किया जा सकेगा। बमों को निष्क्रिय करने के लिए यह रोबोट उच्च-दबाव वाले 'वाटर-जेट' (Water-jet) का प्रयोग करता है। दक्ष रोबोट को भारतीय तथा डीआरडीओ आवश्यकतानुरूप सुधार कर इसका उन्नत संस्करण 'दक्ष एमके-आई' (Daksh MK-I) विकसित करेगा।

'शिवालिक' ग्रेनेड (Shivalic Grenade)

भारतीय थलसेना में शीघ्र ही पुराने हैंड ग्रेनेड के स्थान पर अत्याधुनिक मल्टी-मोड ग्रेनेड (MMG) को शामिल किया जाएगा जिससे सेना की मारक क्षमता में वृद्धि होगी। इस अत्याधुनिक ग्रेनेड को चंडीगढ़ के निकट शिवालिक पर्वत श्रृंखला की तलहटी में

स्थित डीआरडीओ की 'टर्मिनल प्रक्षेपिकी अनुसंधान प्रयोगशाला' (TBRL : Terminal Ballistic Research Laboratory) द्वारा विकसित किए जाने के कारण 'शिवालिक' नाम दिया गया है। शिवालिक ग्रेनेड की विशेषता यह है कि ये तब तक विस्फोटित नहीं होते जब तक कि इनकी सेफ्टी पिन निकाल न ली जाए। जबकि वर्तमान में प्रयोग में लाए जा रहे पुराने M-36 हैंड ग्रेनेड दुर्घटनावश कभी भी फट जाते हैं। इन अत्याधुनिक मल्टी-मोड ग्रेनेडों का निर्माण मध्य प्रदेश के जबलपुर में स्थित खमरिया आर्डनेंस फैक्टरी में किया जाएगा।

सी-17 ग्लोबमास्टर-III (C-17 Globemaster-III)

सी-17 ग्लोबमास्टर-ष्ष्ष विशाल परिवहन विमान है, जो एक बार में 1.60 लाख पौण्ड वजन ले जा सकता है। इसमें 188 सैनिक पूरी तैयारी के साथ बैठ सकते हैं और इसमें चार बड़े ट्रकों या टैंकों को ले जाया जा सकता है, इस बहुउद्देशीय विमान की एक खूबी यह भी है कि यह छोटे रनवे से उड़ान भर सकता है और ऊबड-खाबड विमान पट्टी पर उतर सकता है, इसे आधे घण्टे के अन्दर विभिन्न कार्यों के लिए रूपान्तरित किया जा सकता है और इसमें बना-बनाया विशाल अस्पताल भी ले जाकर कहीं भी स्थापित किया जा सकता है, भारत में यह विमान गाजियाबाद में हिंडन वायुसेना केन्द्र पर तैनात करने की वायुसेना की योजना है।

सामुद्रिक अनुसन्धान हेतु भारत की पहली मानव रहित पनडुब्बी

गहरे सागर में खनिज सम्पदा की खोज करने व इसकी निगरानी करने के लिए भारत ने अपने पहले 'रिमोटली ऑपरेटेड व्हीकल' (ROV) को 10 अक्टूबर, 2010 को हिन्द महासागर में उतारा गया। राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्योगिकी संस्थान (National Institute of Ocean Technology-NIOT) के अधीन संचालित इस मानव रहित पनडुब्बी का विकास रूस के एक्सपेरिमेंटल डिजाइन ब्यूरो ऑफ ओशियनोलॉजिकल इंजीनियरिंग (EDBOE) के सहयोग से एनआईओटी द्वारा किया गया है, यह आरओवी समुद्र में लगभग छह हजार मीटर की गहराई में लोहे और मैंगनीज हाइड्रॉक्साइड के स्रोत 'पॉलिमेटेलिक नॉड्यूल्स' (Polymetallic Nodules) का अध्ययन करेगा, पॉलिमेटेलिक नॉड्यूल्स को मैंगनीज नॉड्यूल्स भी कहा जाता है, जो समुद्र तल में स्थित शैल होते हैं और लोहे तथा मैंगनीज हाइड्रॉक्साइड की प्रतों से बने होते हैं, समुद्र वैज्ञानिकों के अनुसार गहरे-से-गहरे समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र में जैव विविधता का अध्ययन करने के लिए आरओवी प्रमुख प्रणाली बनता जा रहा है। अमेरीका, फ्रांस, जापान, रूस और सम्भवत: चीन के पास ही यह क्षमता उपलब्ध थी तथा अब भारत भी यह क्षमता रखने वाले इन देशों के क्लब में शामिल हो गया है।

सी-130जे सुपर हर्क्यूलिस (C-130J Super Hercules)

फरवरी 2011 में अत्याधुनिक सी-130जे सुपर हर्क्यूलिस विमान को भारतीय वायुसेना में शामिल कर लिया गया, अमरीका की लॉकहीड मार्टिन (Lockheed Martin) कम्पनी द्वारा निर्मित इस परिवहन विमान को उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद में हिंडन वायुसेना केन्द्र पर रक्षा मंत्री ने 5 फरवरी, 2011 को आयोजित एक समारोह में इसे वायुसेना में औपचारिक रूप से शामिल किया। सी-130जे सुपर हर्क्यूलिस विमान हिंडन एयरबेस पर नवगठित 77 वील्ड वाइपर्स (Vield Vipers) स्क्वेड्रन में तैनात किए जाएंगे, भारत ने ऐसे 6 विमानों की आपूर्ति के लिए वर्ष 2008 में अनुबन्ध लॉकहीड मार्टिन कम्पनी के साथ किया था, जिनमें से अभी पहला विमान ही भारतीय वायुसेना को प्राप्त हुआ है। 1.2 अरब डॉलर के इस सौदे के शेष पांचों विमान भी वर्ष 2012 के अंत तक प्राप्त होने की सम्भावना है। अमरीकी वायुसेना में प्रमुख विमान माल, ईंधन, हथियार व अन्य साजोसामान की ढुलाई के साथ-साथ काफी नीची उड़ान भरकर सैनिकों को शत्रु के इलाके में उतारने में सक्षम है। ऊबड़-खाबड़ पट्टी पर अंधेरे में भी उड़ान भरने में यह सक्षम है। हिंडन एयरबेस पर हर्क्यूलिस विमान को भारतीय वायुसेना में शामिल किए जाने से भारतीय वायुसेना के आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन मिला है।

ग्लोरी मिशन (Glory Mission)

अमेरिका की अंतरिक्ष अनुसंधान संस्था नासा (NASA : National Aeronautics and Space Administration) ने 20 जनवरी, 2011 को जलवायु परिवर्तन से संबंधित आंकड़े जुटाने के लिए ग्लोरी मिशन नामक उपग्रह छोड़ने का निर्णय लिया, कैलिफोर्निया के वेंडरवर्ग

वायु सेना क्षेत्र से ग्लोरी मिशन उपग्रह को 23 फरवरी 2011 को छोड़ा गया है। यह मिशन फेल हो गया तथा निर्धारित कक्षा में नहीं पहुंच पाया।

ग्लोरी मिशन का लक्ष्य

- प्रकृतिक और मानवीय एयरोसोल्स और बादलों का वैश्विक वितरण, मायक्रोफिजिकल गुण और उनकी रासायनिक संरचना का आँकड़े एकत्रित करना, ताकि एयरोसोल्स का जलवायु पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव को मापा जाना लक्षित था।
- यह कुल सौर विकिरण को मापेगा ताकि सूर्य से पड़ने वाले प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव को आंका जाना लक्षित था।

अम्ब्रेला ग्राफ्टिंग (Umbrella Grafting)

अम्ब्रेला ग्राफ्टिंग में कान की हड्डी और पर्दा से ही नई झिल्ली बनाई जाती है, फिर उसे कान में प्रत्यारोपित कर दिया जाता है, चिकित्सा जगत में अब तक इसके लिए गोल्ड या टिटेनियम ग्राफ्टिंग का प्रयोग किया जाता था, जो अधिक खर्जीली थी। लाला लाजपत राय मेमोरियल मेडिकल कॉलेज, मेरठ उत्तर प्रदेश के डॉ मनु मल्होत्रा की टीमपैनोप्लास्टी (Tympanoplasty: कान के पर्दे का प्रत्यारोपण) के सस्ते ऑपरेशन हेतु किए गए शोध के लिए क्लीनिकल सर्जरी में बेस्ट रिसर्च का पुरस्कार मिला। लखनऊ के किंग जॉर्ज मेडिकल यूनिवर्सिटी में यह पुरस्कार जनवरी 2011 में दिया गया। डॉ मनु मल्होत्रा की टीमपैनोप्लास्टी पर यह शोध कैम्ब्रिज के जर्नल ऑफ लैरिंजोलॉली एंड ऑटोलाजी में भी प्रकाशित हुआ। डॉ मनु मल्होत्रा ने कान में जीवाणु संक्रमण से होने वाली बीमारी, जिसमें कान की हड्डी और पर्दा गलने की समस्या के कारण सुनाई नहीं देता है, के इलाज के लिए अम्ब्रेला ग्राफ्टिंग तकनीक का इजाद किया।

अर्थ सिमिलैरिटी इंडेक्स और प्लैनेटरी हैबिटैबिलिटी इंडेक्स (ESI And PHI)

अन्य ग्रहों पर जीवन की संभावनाएं हेतु अर्थ सिमिलैरिटी इंडेक्स (ESI: Earth Similarity Index) और प्लैनेटरी हैबिटैबिलिटी इंडेक्स (PHI: Planetary Habitability Index) जारी किया गया। वाशिंगटन स्टेट यूनिवर्सिटी से डॉक्टर डिर्क शुल्ज माकश व अन्य वैज्ञानिकों द्वारा किए गये शोध के आधार पर तैयार किए गए इन दोनों इंडेक्स को एस्ट्रो बायोलॉजी जर्नल में नवंबर 2011 में प्रकाशित किया गया।

अर्थ सिमिलैरिटी इंडेक्स और प्लैनेटरी हैबिटैबिलिटी इंडेक्स से तैयार किए गए मानदंड के तहत वैज्ञानिकों की अंतर्राष्ट्रीय टीम ने पृथ्वी से परे ऐसे ग्रहों की सूची तैयार की है, जहां जीवन की संभावना सबसे ज्यादा है। इन दोनों इंडेक्स के आधार पर सौरमंडल के शनि ग्रह के एक उपग्रह टाइटन और सौरमंडल से बाहर के एक अन्य ग्रह ग्लीज 581 जी (Gliese 581-g) पर जीवन की संभावनाएं सबसे अधिक हो सकती हैं। ये दोनों ग्रह पृथ्वी से करीब 20.5 प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित हैं।

अर्थ सिमिलैरिटी इंडेक्स (ESI: Earth Similarity Index):- इस सूची में उन ग्रहों को रखा गया है, जो पृथ्वी जैसे है, इसे अर्थ सिमिलैरिटी इंडेक्स (ईएसआइ) का नाम दिया गया। इस सूची में सबसे अधिक अंक 1.00 दिए गए हैं, जो पृथ्वी के लिए है, दूसरे स्थान पर ग्लीज 581जी (0.89 अंक) को रखा गया। एक अन्य ग्रह ग्लीज 581डी को (0.56 अंक) दिया गया।

प्लैनेटरी हैबिटैबिलिटी इंडेक्स (PHI: Planetary Habitability ndex):- इस सूची में उन ग्रहों का नाम है, जहां जीवन पनपने की संभावना है, इसे प्लैनेटरी हैबिटैबिलिटी इंडेक्स (पीएचआई) का नाम दिया गया। इस सूची में शनि ग्रह के एक उपग्रह टाइटन को 0.64 अंक दिया गया। मंल ग्रह को 0.64 अंक जबकि ग्लीज 581जी (Gliese 581-g) को 0.45 अंक दिया गया। जुपिटर, शनि और वीनस ग्रह को इस सूची में समान रूप से 0.37 अंक मिला।

केपलर 22बी (Keplar 22b)

अमेरिका की अंतरिक्ष एजेंसी नासा ने सौरमंडल से बाहर पृथ्वी के समान और संभावित जीवन के लिए उपयुक्त वातावरण वाले

केपलर 22बी नामक नए ग्रह की खोज की, नासा के अंतरिक्षविदों की टीम के अनुसार केपलर 22बी नामक इस नएं ग्रह पर भविष्य में इंसानों का संभावित बसेरा हो सकता है। केपलर 22बी नामक यह नया ग्रह 600 प्रकाश वर्ष की दूरी पर है और इसका आकार पृथ्वी से 2.4 गुना बड़ा है, इसका तापमान 22 डिग्री सेल्सियस है और इस ग्रह पर भूमि और जल दोनों हैं। नासा के अंतरिक्षविदों की टीम ने केपलर टेलीस्कोप की सहायता से इस नए ग्रह की पुष्टि 5 दिसम्बर 2011 को की। केपलर 22बी नामक ग्रह पर एक साल 290 दिनों का होता है, इस ग्रह को सर्वप्रथम वर्ष 2009 में देखा गया था।

भारत का मंगल मिशन 'मंगलायन' (India's Mars Mission 'Mangalyan')

भारत के कैन्द्रिय मंत्रिमंडल ने वर्ष 2013 में मंगल ग्रह की कक्षा में उपग्रह को भेजने के अंतरिक्ष विभाग के प्रस्ताव को स्वीकृति दी। भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की अध्यक्षता में हुई केंद्रीय मंत्रिमंडल की बैठक में 3 अगस्त 2012 को यह स्वीकृति दी गई। मंगल मिशन के तहत इस ग्रह पर मौजूद वातावरण का अध्ययन किया जाना है। श्रीहरिकोटा से भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) द्वारा नवंबर 2013 में 25 किलो वाले साइंटिफिक पैलोड के साथ एक मार्स आर्बिटर का प्रक्षेपण किया जाना है। मंगल मिशन भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के वारहार्स रॉकेट (पीएसएलवी) के विस्तारित संस्करण से भेजा जाएगा। यह आर्बिटर मंगल ग्रह के चारो ओर करीब 500 गुणा 80 हजार किमी की परिधि में चक्कर लगाएगा। इस आर्बिटर का उद्देश्य मंगल ग्रह के वातावरण जियोलॉजी, उत्पत्ति, विकास और वहां पर जीवन की संभावनाओं का पता लगाना है।

एस - 2012 (S-2012)

अमेरिका के खगोलविदों ने बर्फीले लघु ग्रह प्लूटो के पांचवें और सबसे छोटे उपग्रह की खोज की। प्लूटो के इस पांचवें उपग्रह का नाम एस-2012 रखा गया। हब्बल टैलिस्कोप की मदद से इस उपग्रह की खोज हुई। अनियमित आकार वाला प्लूटो का यह छोटा सा उपग्रह प्लूटो के 10 से 25 किलोमीटर के विस्तार में है। एक हजार किलोमीटर में स्थित प्लूटो के सबसे बड़े उपग्रह चारॉन की खोज वर्ष 1978 में की गई और वर्ष 2006 में हब्बल ने अपने अवलोकन में प्लूटो के दो नए उपग्रह निक्स और हाइड्रा की खोज की थी। प्लूटो का रंग काला, नारंगी और सफेद का मिश्रण है, प्लूटो का बहुत पतला वायुमंडल है जिसमें नाइट्रोजन, मीथेन और कार्बन मोनोऑक्साईड उपस्थित हैं।

हिग्स बोसॉन या गॉड पार्टिकल (Higgs Boson or God Particle)

स्विट्जरलैंड स्थित यूरोपीय सेंटर फॉर न्यूक्लियर रिसर्च (सर्न) के वैज्ञानिकों ने पांच दशक से जारी हिग्स बोसॉन या गॉड पार्टिकल खोजने के अभियान में महत्वपूर्ण सफलता मिलने की घोषणा 4 जुलाई 2012 को की। गॉड पार्टिकल के बारे में माना जाता है कि यह उन कणों को द्रव्यमान प्रदान करने के लिए जिम्मेदार है, जिससे 13.7 अरब वर्ष पहले हुए बिग बैंग (महाविस्फोट) के बाद अंततः तारों और ग्रहों का निर्माण हुआ। एटलस प्रयोग के प्रवक्ता फैबिआलों गियानोती ने कहा, हमें अपने आंकड़ो में 126 जीईवी के द्रव्यमान क्षेत्र के आसपास पांच सिग्मा स्तर के नए कण के स्पष्ट संकेत मिले हैं, लेकिन इन परिणामें को प्रकाशन के लिए तैयार करने के लिए थोड़े और समय की आवश्यकता है। पांच सिग्मा 99 प्रतिशत खोज की निश्चितता में तब्दील होती हैं और यह किसी भी कण के खोज होने की घोषणा से पहले आवश्यक होती है। ऐसा माना जाता है कि हिग्स ऊर्जा स्पेक्ट्रम के निचले सिरे यानि 120 और 140 जीईवी के बीच छुपा रहता है। सर्न के वैज्ञानिकों के अनुसार लार्ज हैड्रॉन कोलाइडर (एलएचसी) में जो कण उन्हें मिला है वह लम्बे समय से खोजे जाने वाले हिग्स बोसॉन से मिलता-जुलता है, लेकिन खोज की पहचान के लिए और अधिक आंकड़े की आवश्यकता होगी। वैज्ञानिकों ने इसकी खोज करने के लिए तीन अरब यूरो के खर्च से विश्व की सबसे बड़ी और सबसे शक्तिशाली अणु उत्प्रेरक लार्ज हैड्रॉन कोलाइडर का निर्माण किया। स्विट्जरलैंड-फ्रांस सीमा पर 27 किलोमीटर लंबी चक्करदार पाइप ढ़ांचे में महाविस्फोट जैसी कृत्रिम स्थितियों का निमार्ण किया जससे उत्प्रेरक अणुओं के बीच टक्कर हुई। लार्ज हैड्रॉन कोलाइडर प्रयोग में प्रति सेकंड लाखों अणुओं को आपस में टकराने के लिए प्रोटोंस की दो किरणें आपस में टकराई गई, इससे महाविस्फोटक के बाद सेकंड के एक अंश के लिए रहने वाली स्थिति का निर्माण हुआ। यही वह समय था, जब हिग्स फील्ड अस्तित्व में आया तब ऐसा

माना जाता है कि हिग्स अणुओं ने ब्रह्माण्ड के निर्माण की प्रक्रिया में अन्य कणों को द्रव्यमान प्रदान किया। विदित हो कि हिग्स बोसॉन कण की अवधारणा सबसे पहले वर्ष 1964 में ब्रिटेन के वैज्ञानिक पीटर हिग्स सहित छः भौतिक वैज्ञानिकों ने दी थी। इस कण का नामकरण ब्रिटिश वैज्ञानिक पीटर हिग्स के नाम पर हिग्स रखा गया, जबकि बोसॉन शब्द अलबर्ट आइंस्टीन के समकालीन भारतीय वैज्ञानिक सत्येन्द्र नाथ बोस से लिया गया। आइंस्टीन ने बोस के क्वांटम यांत्रिकी पर किए गए कार्यों को अपनाया और उसे बोस-आइंस्टीन संकल्पना के रूप में विस्तारित किया।

लैक्स (LAX)

हाल में चीन के वैज्ञानिकों ने जैविक अनुसंधान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की। चीन के जैव वैज्ञानिकों ने कम लैक्टोज वाला दूध देने में सक्षम लैक्स नामक बछिया को प्रयोगशाला में पैदा किया। लैक्स नामक बछिया का जन्म 24 अप्रैल, 2012 को इनर मंगोलिया कृषि विश्वविद्यालय में हुआ। लैक्स नामक बछिया जैविक रूप से परिष्कृत ऐसी बछिया है जो कम लैक्टोज वाला दूध देने में सक्षम हैं। इनर मंगोलिया कृषि विश्वविद्यालय के प्रोफेसर झांग ली के अनुसार उत्तरी हॉलैंड में पाई जाने वाली एक गाय से डेढ़ माह का भ्रूण निकालकर उसकी कोशिका में लैक्टोज को घुलानेवाला एंजाइम डालकर भ्रूण को जैविक रूप से परिष्कृत किया गया। इसके बाद परिष्कृत भ्रूण को जुलाई 2011 में एक गाय के गर्भ में डाला गया। जिसके बाद लैक्स पैदा हुई। ज्ञातव्य हो कि लैक्टोज दूध में पाई जाने वाली वह शर्करा है जिसकी वजह से दुनिया में बहुत लोग दूध नहीं पीते। अधिक लैक्टोज युक्त दूध से ऐसे लोगों का एलर्जी होती है, ऐसे लोगों को दूध पीते ही शरीर पर दाने निकल आते हैं, मितली आने लगती है और वे डायरिया का शिकार हो जाते हैं। कम लैक्टोज वाले दूध से एलर्जी होने की सम्भावना काफी कम है।

एएस10 (AS–10)

अमेरिका की अंतरिक्ष एजेंसी नासा द्वारा अंतरिक्ष यात्रियों को रेडियोधर्मिता से बचाने के लिए एक पेय पदार्थ तैयार किया गया। यह अंतरिक्ष पेय चेहरे पर झुरियों और उम्र बढ़ने के संकेतों को कम करने में सहायक है। नासा द्वारा तैयार अंतरिक्ष पेय का नाम है-कांकोक्शन, इसे एएस10 भी कहा जाता है। अंतरिक्ष यात्रियों के लिए बनाया गया कांकोक्शन एएस10 विभिन्न फलों का मिश्रित पेय है, इसमें ब्राजील के कोकोआ प्रजाति का फल कुपाकु, अकाई, एसेरोला, नाशपाती व यमबेरी शामिल हैं। इसके अलावा इसमें अंगूर, अनार, हरी चाय व सब्जियों का रस भी है। ये सभी विटामिन व फाइटोकेमिकल्स के भरपूर स्रोत हैं और रेडियोधर्मिता के दुष्प्रभावों से बचाने में सक्षम हैं। अंतरिक्ष एजेंसी नासा के अनुसार कांकोक्शन के इस्तेमान से चार महीने में झुर्रियां, दाग-धब्बों व त्वचा पर सूर्य के प्रभाव का कम किया जा सकता है। अंतरिक्ष पेय कांकोक्शन (एएस10) में प्रचुर मात्रा में एंटी ऑक्सीडेंट्स पाए जाते हैं। ज्ञातव्य हो कि एंटी ऑक्सीडेंट्स त्वचा की कोशिकाओं को नुकसान पहुंचाने वाले रिएक्टिव ऑक्सीजन स्पेसीज के साथ घुल जाते हैं और उनके नुकसान पहुचाने से पहले ही उन्हें निष्क्रिय कर देते हैं। नासा ने अंतरिक्ष पेय कांकोक्शन (एएस10) को अंतरिक्ष यात्रियों के लिए पोषक पूरक तत्व के तौर पर विकसित किया है ताकि पृथ्वी के बाहर के वातावरण में मौजूद विकिरण के उच्च स्तर के नुकसानदायक प्रभावों से अंतरिक्ष यात्रियों की सुरक्षा हो सके।

रडार इमेजिंग सेटेलाइट (आरआइसेट-1) (Radar Imaging Satellite : RISAT-1)

26 अप्रैल, 2012 को स्वदेश निर्मित रडार इमेजिंग सेटेलाइट (RISAT-1) का सफल प्रक्षेपण किया गया। तमिलनाडु के श्रीहरिकोटा स्थित सतीश धवन अंतरिक्ष केन्द्र से सुबह 5:47 बजे पोलर सेटेलाइट लांच व्हिकल पीएसएलवी-सी19 के जरिए आरआइसेट-1 उपग्रह को प्रक्षेपित किया गया। प्रक्षेपण के लगभग 19 मिनट बाद इसे कक्षा में स्थापित कर दिया गया। रडार इमेजिंग सेटेलाइट (RISAT-1, आरआइसेट-1) सभी मौसमों में धरती की तस्वीर लेने में सक्षम उपग्रह है। इसके पास दिन एवं रात तथा बादलों की स्थिति में भी धरती की तस्वीरें लेने की क्षमता है। इसका इस्तेमाल प्राकृतिक आपदाओं के पूर्वानुमान, कृषि और रक्षा क्षेत्र में किया जाएगा। आरआइसेट-1 उपग्रह का वजन 1858 किलोग्राम है और यह अब तक भारत द्वारा पीएसएलवी से भेजे गए उपग्रहों में सबसे भारी उपग्रह है।

नूरी (Noorie)

जम्मू और कश्मीर राज्य स्थित शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने विश्व में पश्मीना बकरी का प्रथम सफल क्लोन तैयार किया। शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय (SKUAST: Sher-e-Kashmir University of Agriculture Science and Technology) में 9 मार्च, 2012 को विश्व में पश्मीना बकरी का प्रथम क्लोन पैदा हुआ। विश्व में पश्मीना बकरी का प्रथम क्लोन का नाम 'नूरी' रखा गया। शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के पशु जैवप्रौद्योगिकी के एसोसिएट प्रोफसर रियाज अहमद शाह के नेतृत्व में कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से बकरी के स्वस्थ मादा बच्चे का जन्म कराया गया। ज्ञातव्य हो कि एसोसिएट प्रोफेसर रियाज अहमद शाह ने वर्ष 2009 में भैंस के पहले क्लोन गरिमा को तैयार किया था। उन्होंने हरियाणा के राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में क्लोन तकनीकी से गरिमा को तैयार किया था।

टमाटर जीनोम का अनुक्रमण (Tomato Gene Sequence)

वैज्ञानिकों के एक अंतर्राष्ट्रीय दल ने टमाटर की संपूर्ण जीन कुंडली तैयार करने में सफलता प्राप्त की है। इससे टमाटर के साथ-साथ दूसरी फल-सब्जियों के पौष्टिक गुणों, स्वाद तथा रंग में सुधार करने तथा उसकी उत्पादकता बढ़ाने में मदद मिलेगी। इस महत्वपूर्ण उपलब्धि के फलस्वरूप अब टमाटर की सूखा प्रतिरोधी, रोग प्रतिरोधी तथा कीट प्रतिरोधी नई किस्में विकसित करने में मदद मिलेगी। टमाटर के जीनोम के अनुक्रमण में भारत सहित 14 देशों के 300 वैज्ञानिकों का योगदान है। वैज्ञानिकों के इस शोध दल को Tomato Genome Consortium (TGC) नाम दिया। वैज्ञानिकों के अंतर्राष्ट्रीय दल ने टमाटर, जिसका वानस्पतिक नाम : सोलेनम लाइकोपर्सिकम (Solanum Lycopersicum) है, जीनोम का अनुक्रमण पूरा करने में सफलता प्राप्त की है। इस दल ने टमाटर के निकटतम संबंधी जंगली टमाटर (Solanum Pimpinellifolium) के जीन-समूह को भी क्रमबद्ध करने में सफलता प्राप्त की है। इस परियोजना के समन्वयक प्रो. अखिलेश त्यागी थे। भारतीय परियोजना जैव प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा वित्त पोषित तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा समर्थित थी। भारतीय वैज्ञानिकों ने अंतर्राष्ट्रीय टमाटर जीन नामांकन समूह के साथ मिलकर टमाटर के समस्त वंशाणुओं (जीनों) की पहचान तथा नामांकन में भी सहयोग दिया है।

स्विचब्लेड (ड्रोन)

यह अमेरिका द्वारा निर्मित अत्यंत छोटा ड्रोन विमान है, जो कि छोटे वारहेड विस्फोटक से लैस है। स्विचब्लेड ड्रोन को 'फ्लाइंग शॉटगन' नाम भी दिया गया है। छह पाउंड से भी कम वजन वाला दो फीट लंबा यह विमान सैनिकों की पीठ पर लटकाए जाने वाले थैले में रखा जा सकता है। इस विमान को उड़ाने की प्रक्रिया मोर्टार को दागने जैसी है। इसे मोर्टार की तरह एक पाइप (ट्यूब) में रखकर फायर किया जाएगा। फायर होते ही यह विमान हवा में रफ्तार पकड़कर ऊपर उठेगा। आसमान में पहुंचते ही यह ड्रोन लाइव वीडियो और जीपीएस सिग्नल भेजने लगेगा। इस विमान को नियंत्रित करने वाला उपकरण इसे लांच करने वाले सैनिकों के पास होगा।

द साइंस एक्सप्रेस-जैव विविधता स्पेशल

यह एक प्रदर्शनी रेल है, जिसे विज्ञान एवं जैवविविधता के प्रति जागरूकता बढ़ाने के उद्देश्य से दिल्ली से 5 जून, 2012 को रवाना किया गया। 22 दिसंबर, 2012 तक यह रेलगाड़ी देश के 52 स्टेशनों से गुजरती हुई कुल 18,000 किमी. का सफर तय करेगी। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग की मदद से केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने यह पहल की है।

नियोबियम (Niobium)

नियोबियम में हाफनियम (Hafnium) मिलाकर उच्च तापमान सहन करने की क्षमता वाली मिश्र धातु नियोब हैट (Niob Hat) बनाई जाती है, जिसका इस्तेमाल अंतरिक्ष यानों की नोजल (नलिका) बनाने के लिए किया जाता है। हैदराबाद स्थित 'न्यूक्लियर फ्यूल

कॉम्प्लेक्स' में नियोबियम के उत्पादन हेतु एक केन्द्र की स्थापना की जाएगी, जो कि सालाना तीन टन नियोबियम का उत्पादन करेगा। उत्पादित नियोबियम की आपूर्ति इसरो (ISRO) को की जाएगी।

राष्ट्रीय इलैक्ट्रॉनिक मिशन (NEM: National Electronic Mission)

राष्ट्रीय इलैक्ट्रॉनिक मिशन (एनईएम) उद्योग के सहयोग से इलैक्ट्रानिक्स में अनुमोदित नीति का नीति निर्धारण, कार्यान्वयन और 'ब्राण्ड इण्डिया' के संवर्धन के लिए संस्थागत प्रणाली के रूप में एक इनईएम की स्थापना की जाएगी। इस संदर्भ में गठित टास्क फोर्स ने 198 संस्तुतियाँ सरकार को प्रस्तुत की हैं। यह मिशन इलेक्ट्रानिक उद्योग के एक नोडल एजेंसी के रूप में कार्य करेगा। यह मिशन सूचना प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत कार्य करेगा जो सीधे प्रधानमंत्री कार्यालय से संबद्ध होगा। इस टास्क फोर्स की अध्यक्षता अजय चौधरी द्वारा की जा रही है। यह मिशन इलेक्ट्रानिक उद्योग से संबद्ध विभिन्न क्रियाकलापों को एकीकृत करने में सहायता करेगा। इस संदर्भ हेतु यह सरकार के विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों से संबद्ध होगा।

एनेक्स-1 एवं गैर एनेक्स-1 (Anuexei & Non-Aunexe)

जनवायु परिवर्तन की शब्दावली के अनुसार एनेक्स-1 पार्टियों का आशय उन औद्योगिक देशों से है जो हरित गैसो के उत्सर्जन को रोकने के लिए स्वयं तत्पर हुए हैं जबकि गैर-एनेक्स-1 देशों में वे विकासशील अथवा इसी प्रकार अपेक्ष तथा कम विकाससशील देश शामिल हैं जिन्होंनें उत्सर्जन घटाने की कोई बाध्यता नहीं दर्शायी है।

मेघा ट्रॉपिक्स (Megha Tropiques)

पीएसएलवी-सी 18 द्वारा 12 अक्टूबर, 2011 को प्रक्षेपित मेघा-ट्रॉपिक्स भारत का पहला मौसम उपग्रह है, जो उष्णकटिबंधीय वातावरण में मौसम और जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में जल-चक्र का अध्ययन करेगा। यह भारत और फ्रांस की संयुक्त परियोजना है, जिसे भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) और फ्रांस के राष्ट्रीय अंतरिक्ष केंद्र (CNES) ने मिलकर विकसित किया है। मेघ, संस्कृत से लिया गया शब्द है, जिसका अर्थ 'बादल' है जबकि फ्रेंच भाषा में ट्रॉपिक्स (उष्णकटिबंधीय) को 'ट्रॉपिक्यूज' कहते हैं।

मद्रास (Madras: Microwave Analysis & Detection of Rain & Atmospheric Structure)

भारत और फ्रांस के सहयोग से विकसित पेलोड मद्रास (Microwave Analysis & Detection of Rain & Atmospheric Structure-MADRAS) एक माइक्रोवेव इमेजर है, जिसके साथ एक शंक्वाकार स्कैनिंग यंत्र भी लगा है। इसमें 150 गीगा हर्ट्ज की आवृत्ति भी जोड़ी गई है। इस पेलोड का कार्य बादल तंत्र और संवहन तंत्र से जुड़े बर्फीले बादलों का अध्ययन करना होगा।

साफिर (Saphir)

फ्रांसीसी अंतरिक्ष एजेंसी सीएनईएस द्वारा विकसित साफिर छह चैनलों वाला ध्वनि यंत्र है जो आर्द्रता का अध्ययन करने में सक्षम है। 50 डिग्री तक के आयतन कोण वाले बादलों की इस यंत्र की मदद से क्रॉस ट्रैक (पार ट्रैक) स्कैनिंग की जा सकती है।

स्कारैब (scarab: Sannuz for Radiation Budget Measurment)

फ्रांसीसी अंतरिक्ष एजेंसी सीएनईएस द्वारा विकसित स्कारैब (Sannuz for Radiation Budget Measurment-SCARAB) चार चैनल वाला स्कैनर है, जो विकिरण का अध्ययन करता है। इसका मुख्य कार्य वायुमंडल के शीर्ष पर बाहर जाने वाले उत्सर्जक फ्लक्स का मापन करना है।

नेरपा परमाणु पनडुब्बी (Nerpa Nuclear Submarine)

रूस ने भारत के लिए बनी परमाणु हमले में सक्षम बहुप्रतिक्षित नेरपा परमाणु पनडुब्बी (के-152) को प्राइमोरये बंदरगाह पर आयोजित एक समारोह के बाद 23 जनवरी, 2012 को भारतीय नौसेना को सौंप दी। इस पनडुब्बी के भारतीय नौसेना को हस्तांतरण से सम्बंधित दस्तावेजों पर रूस के सुदूर दक्षिण पूर्व के प्राइमोरये इलाके में स्थित बोलशोई कामेन पोत निमार्ण केंद्र में 29 दिसम्बर, 2011 को हस्ताक्षर किए गए थे। अकुल-2 श्रेणी की इस नेरपा पनडुब्बी को भारत ने 10 वर्ष की लीज पर प्राप्त किया है और इसके लिए रूस को 92 करोड़ डॉलर का भुगतान किया है। भारतीय नौसेना में इसका नाम 'आईएनएस चक्र' रखा गया है। इस पनडुब्बी को प्राप्त करने के बाद भारत परमाणु पनडुब्बी का संचालन करने वाला विश्व का छठा देश बन गया। नेरपा परमाणु पनडुब्बी की भार वहन क्षमता 8140 से 12770 टन है तथा इसकी गति 30 नाट है; यह पनडुब्बी में चार 533 मि.मी. के टारपीडो और चार 650 मि.मी. के टारपीडो से सुसज्जित है।

मीका मिसाइल (Mica Missile)

4 जनवरी, 2012 को केंद्र सरकार ने फ्रांसीसी कम्पनी एमबीडीए से 95 करोड़ यूरो (लगभग 6600 करोड़ रूपये) की लागत से मिराज-2000 लड़ाकू विमानों के लिए हवा से हवा में मार करने वाली 490 अत्याधुनिक मीका (एमआईसीए) मिसाइलें खरीदने की मंजूरी प्रदान कर दी। मिसाइल खरीद सौदे की शर्तों के मुताबिक एमबीडीए को सौदे की 30 प्रतिशत धनराशि वापस भारतीय रक्षा क्षेत्र में निवेश करनी होगी। 80 किमी. दूर उड़ रहे दुश्मन के लड़ाकू विमान को गिरा सकने में सक्षम मीका मिसाइलें आवाज से चार गुणा अधिक गति से दुश्मन के विमान का पीछा करते हुए हमला करने में सक्षम हैं। इसे 'फायर एंड फारगेट' यानी 'दागो और भूल जाओ' मिसाइल कहा जाता है। मध्यम दूरी की हवा से हवा में मार कर सकने वाली यह मिसाइल हर तरह के मौसम में अपने लक्ष्य को भेद सकती है। 112 किलो वजन और तीन मीटर लम्बाई वाले इस मिसाइल के कुछ श्रेणियों में ओ.आर सेंसर भी लगे हैं। जो सेंट्रल कमांड को सीधे सूचनाएं भेजते हैं।

रीप प्रणाली (REAP System: Renewable Energy Assisted Pumps)

20 जनवरी, 2012 को ऊंची इमारतों के टैंक तक पानी पहुंचाने के लिए बिजली कम्पनी बीएसईएस और भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, दिल्ली द्वारा विकसित रीप (रिन्युअल एनर्जी असिस्टेड पम्प) सिस्टम को मयूर विहार के ऑल इंडिया पंचायत परिषद में लगाया गया। उल्लेखनीय है कि रीप सिस्टम सोलर एनर्जी से बिजली बनाता है और इसे बैटरी में स्टोर करता है, वहीं रीप सिस्टम सूरज की रोशनी से एनर्जी लेकर उसका इस्तेमाल सीधे जमीन के अंदर से पानी को खींचने में करेगा।

जैक्सटर एस.एम.एस. (Jaxtor SMS)

यह एक ऐसा साफ्टवेयर है जो एक मोबाइल फोन से दूसरे मोबाइल फोन तक बिना किसी खर्च के लिखित संदेश (SMS) प्रेषित करने में सक्षम है। इस साफ्टवेयर का विकास सबीर भाटिया एवं योगेश पटेल ने किया है। उल्लेखनीय है कि सबीर भाटिया ने ही हॉटमेल का अविष्कार किया था।

नम्मा मेट्रो (Namma Metro)

कोलकाता और दिल्ली के बाद 20 अक्टूबर, 2011 को नम्मा मेट्रो रेल सेवा की शुरूआत की गई। यह बेंगलुर के एम.जी.रोड से ब्याप्पानाहल्ली के बीच 6.7 किमी. लम्बी रेल सेवा है।

जीकैब्स (G-Cabs)

जी कैब्स 28 अक्टूबर, 2011 को फार्मूला-वन रेस के दौरान लांच किया गया ग्रीन रिक्शा है जो प्रदूषण रहित होने के साथ-साथ

इन बिल्ट जीपीएस सिस्टम, फेयर मीटर और प्रिंटर से लैस है।

एईरास (Eiras)

यह अमेरिका स्थित एक गैर लाभकारी जैव प्रौद्योगिकी कंपनी है जिसे बिल एवं मिलिंडा गेट्स फाउंडेशन ने पांच वर्ष के लिए टीबी के खात्मे के लिए आधुनिक टीका विकसित करने के लिए 22 करोड़ डॉलर की सहायता देने की घोषणा 15 मार्च, 2012 को की।

नेक्सावार (Nexavar)

लीवर और किडनी कैंसर के इलाज के लिए जर्मन कंपनी बेयर कार्पोरेशन द्वार निर्मित व पेटेंट कराई गई। एक दवा है जिसकी बिक्री का लाइसेंस भारत की स्थानीय फर्म नैटको फार्मा को देने का भारत सरकार ने 12 मार्च, 2012 को ऐतिहासिक फैसला किया। उल्लेखनीय है कि भारत सरकार ने विश्व व्यापार संगठन (WTO) के कंपलसरी लाइसेंसिंग प्रॉविजन के आधार पर नैटको फार्मा को देश का पहला कंपलसरी लाइसेंस दिया है।

आईएस 701 (IS 701)

आकाश टैबलेट के समान बीएसएनएल व पेंटल टेक्नोलॉजी द्वारा बाजार में 4 फरवरी, 2012 को उतारे गए सस्ते टैबलेट का नाम है। इसमें एनरायड 3.2 ओ.एस डिवाइस को प्रयुक्त किया गया है तथा इसमें 1 गीगाहर्टस ARM11 IMP210 प्रोसेसर प्रयुक्त किया गया है।

निर्भय (Nirbhay)

निर्भय डीआरडीओ द्वारा विकसित की जा रही सतह से सतह पर मार करने वाली दो चरणों वाली (750 किमी.रेंज) सब सोनिक स्पीड पर उड़ने वाली (ध्वनि की रफ्तार से कम) मिसाइल है।

पी-4 (P-4)

पी-4 अमेरिका वैज्ञानिकों ने अंतरिक्ष में लगे विशाल हबल टेलीस्कोप के माध्यम से क्षुद्र ग्रह की श्रेणी में आ चुके प्लूटो के खोजे गए दूसरे सबसे छोटे चंद्रमा का नाम है। इसका व्यास 13 से 34 किमी. है। यह नया चंद्रमा निक्स एवं हाइड्रा की कक्षा के मध्य स्थित है। यह खोज नासा के New Horizons Mission, जो कि प्लूटो के नजदीक से वर्ष 2015 में गुजरेगा, के लिए महत्वपूर्ण सहायक सिद्ध होगी।

प्रास्पेक्टिव मल्टीरोल फाइटर (Prospective Multirole Fighter)

भारत और रूस एक संयुक्त परियोजना के तहत विश्व के सबसे आधुनिक पांचवीं पीढ़ी के लडाकू विमान (30 टन वजन, आवाज से दो गुना तेज रफ्तार, अड़वांस्ड एवियोनिक्स युक्त, स्टील्थ तकनीक एवं आएसा राडार युक्त) का निर्माण कर रहे हैं जिसे वर्ष 2018 में भारतीय वायुसेना में शामिल किए जाने का लक्ष्य है।

ग्रेल (GRAIL: Gravity Recovery And Interior Laboratory)

अमेरिका अंतरिक्ष एजेंसी नासा ने 10 सितम्बर, 2011 को जुड़वा उपग्रहों का प्रक्षेपण फ्लोरिडा के केप केनवरल एयरफोर्स स्टेशन से डेल्टा द्वितीय रॉकेट के जरिए चंद्रमा के भीतरी सतह के अध्ययन के लिए किया। चंद्रमा के इनर कोर मैपिंग मिशन पर भेजे गए इन उपग्रहों को जीआरएआईएलए और जीआरएआईएल बी नाम दिया गया है। ग्रेल मिशन वर्ष 2002 में छोड़े गये ग्रेस (GRACE:

यानी सौर पवन (सोलर सुनामी) के निर्माण के कारणों की जांच करेगा, साथ ही यह भी जानकारी लेगा कि सूर्य का बाह्य वायुमंडल यानी कोरोना उसकी सतह की अपेक्षा अधिक गर्म क्यों रहता है।

न्यू देहली मेटालो बीटा लेक्टामस (NDM-1)

यह अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रत्रिका 'लासेंट' द्वारा नई दिल्ली के अस्पतालों में मिले सुपरबग का नाम है। यह सुपरबग सर्व प्रथम भारतीय मूल के स्वीडिश नागरिक में वर्ष 2008 में खोजा गया था। यह सुपरबग विभिन्न एंटीबायोटिक दवाओं के लिए प्रतिरोधी होता है जिससे व्यक्ति के इलाज में देरी होती है।

एचआईवी स्टिगमा इंडेक्स (HIV Stigma Index)

तमिलनाडु राज्य ने एचआईवी के प्रति भेदभाव से लड़ने के लिए एचआईवी स्टिगमा इंडेक्स को विकसित किया है। यह इंडेक्स एच.आई.वी. से ग्रसित लोगों के प्रति भेदभाव तथा एच.आई.वी. से ग्रसित लोगों के अधिकारों की सम्मलित सूचनाओं पर आधारित है।

फैंटम आई (Phantom Eye)

यह अमेरिका की बोइंग फेंडम वर्क द्वारा निर्मित ड्रोन विमान की वह नई किस्म है जो 65 हजार फुट पर उड़ने की क्षमता के साथ 4 दिन तक हवा में रहले में सक्षम है। बेकार पदार्थ के रूप में सिर्फ पानी निकालने वाले इस विमान में ईंधन के रूप में हाइड्रोजन का इस्तेमाल होगा।

स्क्वायर किलोमीटर एर (SKA: Square Kilometer Array)

आइबीएम अब तक का सबसे बड़ा रेडियोटेलिस्कोप तैयार कर रहा है जिससे एक दिन में अब तक इंटरनेट पर उपलब्ध आंकड़ों का दोगुना डाटा तैयार किया जा सकेगा। नीदरलैंड्स इंस्टीट्यूट ऑफ रेडियो एस्ट्रोनॉमी (एस्ट्रॉन) के साथ मिलकर वर्ष, 2024 तक तैयार होने वाले इस प्रोजेक्ट को स्क्वायर किलोमीटर एर (SKA) नाम दिया गया है।

भारती (Bharati)

'दक्षिण गंगोत्री' व 'मैत्री' के पश्चात् दक्षिणी ध्रुव (अंटार्कटिक) में भारत ने अपना तीसरा अनुसंधान केन्द्र स्थापित कर लिया है। 'भारती' नाम के इस अनुसंधान केन्द्र का औपचारिक उद्घाटन अभी यद्यपि नहीं हुआ है, तथापि परीक्षण के तौर पर कार्य वहां शुरू हो गए हैं। राजेश अस्थाना के नेतृत्व में भारतीय वैज्ञानिकों के 15 सदस्यीय दल ने 18 मार्च, 2012 से ही वहां परीक्षण कार्य शुरू कर दिया है। 'भारती' की स्थापना लार्समैन हिल (Larseman Hills) क्षेत्र में की गई है, यह शिमाकर क्षेत्र में स्थित 'मैत्री' से लगभग तीन हजार किमी दूर है। 'भारती' अनुसंधान केन्द्र का सेवाकाल 25 वर्ष निर्धारित किया गया है।

वारयाग (Varyag)

चीन अब अपनी नौसेना में एक विमान वाहक पोत शामिल करने जा रहा है। इसके समुद्री परीक्षण वर्ष, 2011 के अंत तक शुरू किए गए हैं। सफल परीक्षणों के उपरान्त वर्ष, 2012-13 में इसे औपचारिक रूप से नौसेना में शामिल किया जाना सम्भावित है। 67,500 टन विस्थापन क्षमता वाला 'वारयाग' (Varyag) नाम का यह युद्धपोत तत्कालीन सोवियत संघ में 1980 के दशक में बना था। चीन ने इसे सन् 1998 में यूक्रेन से अर्द्धनिर्मित अवस्था में ही खरीदा था। चीन की नौसेना में इसे शी लांग (Shi Lang) नाम से शामिल किया जाएगा।

Gravity Recovery and Climate Experiment) मिशन के आंकड़ों को प्रयुक्त करेगा। ग्रेल के प्रमुख सलाहकार मारिया जुबेर (Maria Zuber) हैं। यह मिशन नासा द्वारा चाँद पर मानव के भेजने में सहायक सिद्ध होगा।

सनवे ब्लूलाइट (Sunway Bluelight)

प्रति सेकेंड एक हजार ट्रिलियन गणनाएं करने से सक्षम चीन के पहले सुपर कम्प्यूटर का नाम है। यह सुपर कंप्यूटर जियान में स्थित नेशनल सुपर कंप्यूटर सेंटर में स्थापित किया गया है। इसमें 8,700 सेनवी SW1600 माइक्रोप्रोसेसर को प्रयुक्त किया गया है। यह चीन का पहला ऐसा सुपर कंप्यूटर है जिसमें चीन निर्मित माइक्रोप्रोसेसर लगा है। यह सुपर कंप्यूटर प्रतिसेकण्ड 1000 ट्रिलियन गणना करने में सक्षम है।

कार्बन इंडेक्स (Carbon Index)

17 नवम्बर, 2011 को बाम्बे स्टॉक एक्सचेंज द्वारा शुरू किया गया एक इंडेक्स है जिसका उद्देश्य जलवायु परिवर्तन एवं कार्बन रेगुलेशन से जुड़े जोखिमों एवं अवसरों के विश्लेषण के लिए विशेषज्ञता के निर्माण में मदद करना है। यह इंडेक्स यह समझने में मददगार साबित होगा कि किस प्रकार निम्न कार्बन ट्रैजेक्टरी पर विकास हासिल किया जा सकता है और इस संदर्भ में व्यापार किस तरह की भूमिका का निर्वाह कर सकता है। किसी भी उभरती अर्थव्यवस्था में यह इंडेक्स सृजित करने का यह पहला प्रयास है।

आईएलओ-एक्स (ILO-X)

आईएलओ-एक्स चंद्रमा पर लगाई जाने वाली विश्व की पहली ऑप्टिकल स्पेस दूरबीन है जो चंद्रमा की सतह से पृथ्वी पर खगोलीय तस्वीरें भेजेगी। इस वर्ष 2014 तक चन्द्रमा पर प्रक्षेपित किया जाना लक्षित है। इस दूरबीन का प्रयोगिक परीक्षण हवाई द्वीप पर किया गया।

एसजीके-1 (SGK-1)

ब्रिटिश वैज्ञानिकों द्वारा मानव शरीर में फर्टीलिटी स्विच की भूमिका निभाने वाले एक विशेष एंजाइम की खोज की गई है जिसे न केवल बांझपन एवं अनचाहे गर्भपात की समस्या से जूझ रही महिलाओं का इलाज संभव हो सकेगा बल्कि नई गर्भ निरोधक गोलियों का निर्माण भी सुनिश्चित हो सकेगा।

स्पेस इंटरफेरोमेट्री मिशन (Space Interferometry Mission)

नासा का यह एक नवीनतम अंतरिक्ष अनुसंधान यान मिशन है जिसका उद्देश्य अन्य तारों के इर्द-गिर्द पृथ्वी के समान ग्रहों का पता लगाना तथा आकाशगंगाओं के परिशुद्ध मापन से डार्क मैटर की खोज करना है।

सोफिया (SOFIA: Stratospheric Observatory for Infrared Astronomy)

विश्व की प्रथम वायुयान आधारित दूरबीन, जो अमेरिकी अंतरिक्ष संस्था 'नासा' एवं जर्मन एयरोस्पेस केंद्र की एक संयुक्त परियोजना है। सोफिया दूरबीन एक बोइंग 747 वायुयान में लगाई गई है जिसे 2.5 मीटर व्यास वाली परावर्तक ले जाने के लिए संसोधित किया गया है। यह दूरबीन वर्ष 2014 तक कार्य करेगी। इस दूरबीन के द्वारा विभिन्न खगोलीय घटनाओं का अध्ययन किया जाएगा।

सोलर प्रोब प्लस (Solar Probe Plus)

अमेरिका द्वारा विशेष कार्बन शंकुल सीट से निर्मित कार के आकार का एक यान है जो मूल रूप से सूरज से उठती सोलर विंड